ISSN 0970-9312

जनवरी 2001

'प्राइमरी शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षकों और सबद्ध प्रशासको तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियो से सबधित जानकारियाँ पहुंचाना, उन्हें कक्षा में प्रयोग मे लाई जा सकने वाली सार्थक व सबद्ध सामग्री प्रदान करना और देश भर के विभिन्न केंद्रो मे चल रहे पाठ्यक्रमो और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा-जगत मे होने वाली गतिविधियो पर विचारो के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मंच प्रदान करती है।
पत्रिका मे प्रकाशित लेखो में व्यक्त किए गए लेखको के अपने विचार है। यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक चितन मे परिषद् की नीतियो को ही प्रस्तुत किया गया हो।

मूल्य एक प्रति : 4 रुपये वार्षिक : 16 रुपये

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष . 26 | अक : 1 | जनवरी 2001

इस अंक में

संपादक की क

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक के व्यवहार मे अपेक्षित परिवर्तन लाना तथा इस योग्य ढालना है कि वह अर्जित ज्ञान का अपने दैनिक जीवन मे कुशलतापूर्वक उपयोग कर सके। परन्तु अनेक अध्ययनों से इस बात के संकेत मिलते है कि दक्षता प्राप्त करने के उपरान्त भी कुछ विद्यार्थी सबधित अनुक्रियाओ मे सफलतापूर्वक भाग नही ले पाते। सम्भवत. इसका कारण अर्जित विद्या उनके चेतना विकास का उचित संपोषण नहीं कर पाती है। यदि हम चैतन्यमय अध्यापन को संसाधन विकास का केन्द्रीय तत्व मानकर आगे बढ़े तो निश्चय ही मानवता सबंधी मूल्यबोध व क्षमताओं को सर्वाग्र प्रतिष्ठा मिलेगी और देश को एक निरतर प्रगति की दिशा मिलेगी। बालक के सर्वागीण विकास में शारीरिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक, नेतृत्त्व गुण, मूल्य, सस्कृति का सरक्षण व अनुकूलन सशोधन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, आत्मनिर्भरता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास आदि गुण समाहित हैं। बालक के विकास की प्रक्रिया मे वैसे तो परिवार, समाज व विद्यालय सभी सहायक है परन्तु शिक्षक का इसमें विशेष योगदान है। इस महत्वपूर्ण दायित्व का सार्थक ढंग से निष्पादन के लिए शिक्षक का निम्न अपेक्षित गुणो से सम्पन्न होना आवश्यक है–

- सीखने की प्रक्रिया मे सुगमकर्ता हो,
- बच्चो के लिए मार्गदर्शक व मित्र हो,
- बिना किसी पूर्वाग्रह के हर बच्चे के प्रति स्नेहमय हो,
- हर बच्चे की पहुच मे हो,
- सक्रिय, उत्साही, कल्पनाशील, साधन सपन्न हो,
- लचीला, नए विचारो व नवाचारो के प्रति उदार हो,
- विषय-वस्तु का जानकार हो,
- स्थानीय समुदाय व प्राधिकारियो से संबंध बना सके, उनसे अतरक्रिया कर सके,
- दूसरे शिक्षको के साथ सामूहिक निर्णय ले सके व उनके साथ शालेय गतिविधियो की योजना बना सके,
- बच्चे के लिए अच्छा रोल माडल बन सके।

प्राइमरी शिक्षक परिवार की ओर से सभी पाठको को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाए।

□□

लम से

चैतन्यमय अध्यापन दिशा की दार्शनिक परिपृच्छा

❑ चन्दन सेनगुप्ता

चैतन्य का अभिप्राय चेतना से है। चेतना व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक स्तर के समेकित अभिव्यक्ति को कहा जाएगा। यह अभिव्यक्ति ही व्यक्ति के हृदय का दर्पण, आत्मशुद्धि का सूचक एव जीवन की कला है। उल्लेखित सभी जैवनिक क्रियाओ का आयाम किसी न किसी रूप मे शिक्षण-प्रशिक्षण से सम्बन्धयुक्त है। जिस आधारशिला पर हम अपनी शिक्षा व्यवस्था से जुडे उपक्रमो को सजाते हैं उसी प्रौद्योगिकी और व्यवस्थापन द्वारा संस्कार प्रवृत्तियों को सम्पोषित करना होगा। यही अभिलक्ष्य चैतन्यमय अध्यापन के नियमन को सन्दर्भित करने हेतु पर्याप्त है। प्रश्न यह रह जाता है—क्या भारतीय साझी सस्कृति के समरूप चैतन्यमय अध्यापन की रूपरेखा प्रतिपादित की जा सकेगी? क्या अध्यापक वर्ग एक निर्धारित क्रम मे अपने सामाजिक दायित्व को समझ सकेंगे? क्या अनुकरण से अनुकूलन के प्रति शिक्षुओ का रुझान बढ़ेगा? और कई प्रकार के प्रश्नो द्वारा भारतीय वातावरण मे राष्ट्रीय चेतना के विवर्तन की दिशा को प्रतिफलित करते हुए आगामी समयावधि के लिए अपेक्षित सस्क्रिया व शिक्षण सस्कार प्रवृत्तियो के उपादानो को सही स्वरूप मे सन्दर्भित करने की चेष्टा होगी।

वस्तुस्थिति

अगर शैक्षिक प्रौद्योगिकी की धुरी को समझने का प्रयास करना चाहें तो हमें प्रागैतिहासिक काल से प्रारंभ करते हुए एक विवर्तन की धारा को क्रमबद्ध रूप मे समझना होगा। इस स्थैतिक अन्वेषण से हम कुछ खास तत्वो को सफलतापूर्वक आगामी समय के लिए प्रतिपादित कर सकेगे। जैसे कि—

- ❑ वैदिक काल मे प्रचलित शिक्षण प्रक्रियाए व सस्कार आज के अत्याधुनिक काल की वैज्ञानिक प्रगति के युग मे भी समरूप उपयोगी व प्रासंगिक हैं।
- ❑ गुरु-शिष्य परम्परा से क्रमश: सांख्य युग की ओर अध्यापन क्रिया का विवर्तन हुआ।
- ❑ शास्त्र और शस्त्र की सीमित क्रियाशीलन से उभरकर एक बहुआयामी व्यक्तित्व के विकास को प्रोत्साहित करने हेतु प्रौद्योगिकी को समयोचित समझा गया।
- ❑ अनुकरण की कलाए निराधार समझी गई।
- ❑ अनुकूलन की कला को हर एक क्षेत्र मे प्राथमिकता स्तर के सर्वाग्र प्रतिष्ठित किया गया।,
- ❑ शिक्षक की भूमिका घटी।
- ❑ सहायक की भूमिका बढ़ी।
- ❑ नए-नए शिक्षण उपागम विकसित किए गए एव सामग्रिक शिक्षण प्रक्रिया मे तेजी आई।
- ❑ विद्यार्थी पर पुस्तको व कार्य-पुस्तिकाओ के बोझ बढे, यानि विस्तार के क्षेत्र मे निरन्तर प्रगति दर्ज की गई पर गहराई के क्षेत्र मे कमजोर प्रौद्योगिकी का निरन्तर सहावस्थान आधुनिक वास्तविकता है।
- ❑ कर्मकेन्द्रिकता को प्रतिष्ठा मिली।
- ❑ भारतीय भावनाप्रधान सस्कृति मे कर्मकेन्द्रिक शैक्षिक व्यवस्थापन को युगोपयोगी समझा गया एव उसी अवधारणा पर विस्तार के क्षेत्र मे प्रगति हुई।

दक्षता प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी कुछ विद्यार्थी सम्बन्धित अनुक्रियाओं में सफलतापूर्वक भाग नहीं ले पाते क्योंकि अर्जित विद्या उनके चेतना विकास को प्रभावित करने में निष्फल रह जाती है। प्रस्तुत लेख में रचनात्मक मनोभाव से चैतन्यमय अध्यापन की रूपरेखा एवं तत्सम्बन्धित अनुक्रियाओं की सूक्ष्म स्तरीय विवेचना की गई है।

तालिका 1
अभिव्यक्ति की रूपरेखा
चैतन्यमय जैवनिक क्रियाएं व अध्यापन
सहभागिता
प्रतिभागिता
प्रबन्धन
वाचन
व्यवस्थापन
लेखनी
विचार
कला
अभिव्यक्ति
मनोवैज्ञानिक समाकलन
इन्द्रिय ग्राह्य उद्दीपन
अनुभव
ज्ञान चेतना
परिवेश आधारित क्रियाए
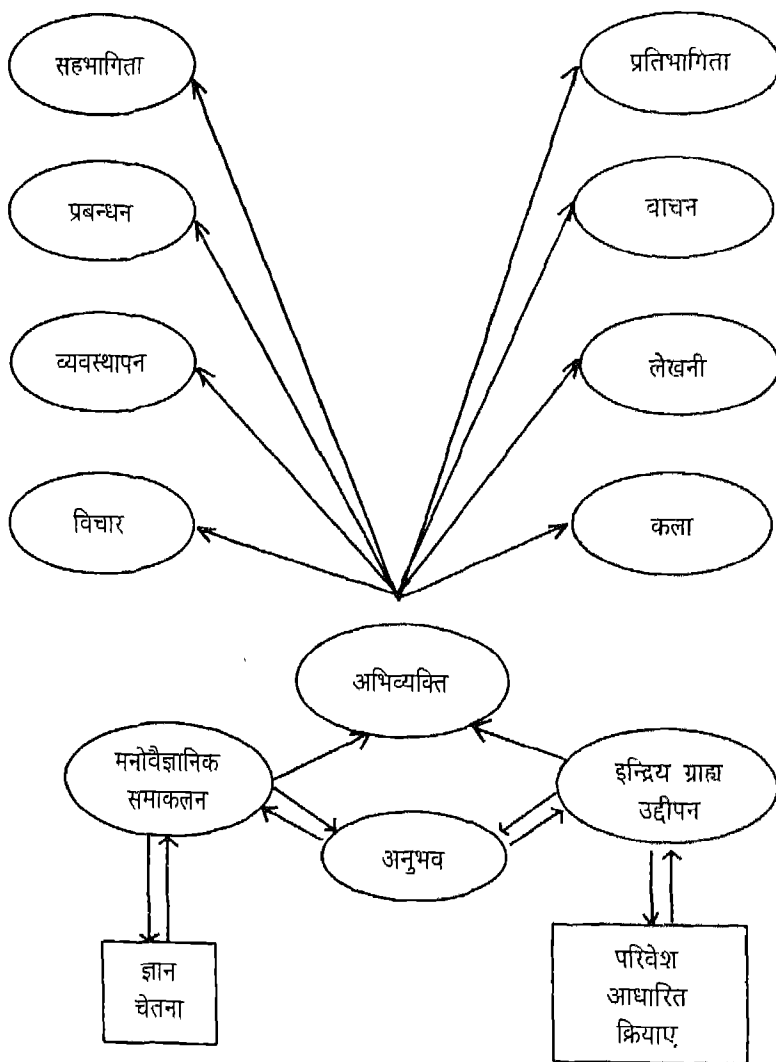
समेकित ढग से विस्तार की दिशा मे हुई प्रगति सराहनीय है, पर गहराई के क्षेत्र मे मिश्रित अनुभव दर्ज किए गए। जिस चैतन्यमय सस्कार की बाते प्राय प्राथमिकता का अग्रज रहा करती थी उन्हे अनुज का स्थान मिला एव जीवनस्तर मे अभिव्यक्ति को निराधार माना गया। अर्ध शताब्दी का अनुभव हमारे सभी क्रियाशीलन मे निहित असामजस्यता का ही प्रतिफलन है। आज भी हम असामंजस्यता की स्थिति को नही समझ पाए, नतीजा है कि भविष्य की कार्ययोजनाएं समयोचित व्यवस्थापन की सच्चाई पर प्रतिष्ठित नही हो पा रही है।

अभिव्यक्ति

सामान्य परिस्थिति मे अभिव्यक्ति को परिभाषित कर पाना व अन्य उपक्रमों के साथ अभिव्यक्ति का सम्बन्ध स्थापित कर समेकित प्रक्रिया का स्थैतिक विश्लेषण करना एक कठिन काम है व विवादास्पद भी है। शिक्षाविद आमतौर पर अपनी-अपनी समझ को सम्पोषित करने योग्य भाषा के द्वारा इस अनुक्रिया का सैद्धान्तिक व्याख्यान करते हैं। शिक्षाविदो द्वारा प्रस्तावित विचारो का सहावस्थान मानते हुए उनकी अभिव्यक्ति को निवर्तमान स्वरूप मे कुशलता पूर्वक परिभाषित किया गया है।

- ज्ञान व चेतना सम्बन्धित उपादान एवं परिवेश आधारित क्रियाओ से प्राप्त मिश्रित अनुभव का आंशिक प्रतिफलन है; (तालिका 1 देखे)
- कला, लेखनी, वाचन, प्रतिभागिता, सहभागिता, प्रबन्धन, व्यवस्थापन, विचार व अन्य जैविक क्रिया सम्बन्धित क्षेत्रो मे अनुभव को प्रतिफलित करने योग्य उपागम है,
- व्यक्ति के शिक्षा स्तर को सही स्वरूप मे समझने के लिए एक उपयोगी माध्यम है,
- चैतन्यमय अध्यापन की दिशा है;
- जीवनक्रियाओ का आधार है;

अभिव्यक्ति की रूपरेखा शैक्षिक प्रौद्योगिकी के क्षेत्र मे आवश्यकताओ को भी समान रूप से सूचित करती है। इस रूपरेखा को आधार मानकर ही हम सभी सम्भावित सस्कार प्रवृत्तियो के सम्मिलित रूप का प्रतिपादन सरल शैक्षिक प्रौद्योगिकी के साथ सन्दर्भित करने का प्रयास सफलतापूर्वक कर पाएगे। जीवन प्रक्रिया के इस अन्तर्गी कला को सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय एक बहुआयामी उपक्रम के रूप में अपनाना होगा। जाहिर है इसी दिशा मे चैतन्यमय भावधारा के उपादान पर भी प्रकाश डालना होगा, एव एक समयानुवर्ती कर्मधारा के आधार पर उसे भी परिभाषित करना पड़ेगा।

चैतन्यमय अध्यापन की रूपरेखा

अभिव्यक्ति एव अध्यापक के साथ चैतन्यमय अध्यापन के त्रैमासिक सम्बन्ध को समझने के लिए सामग्रिक प्रौद्योगिकी को निवर्तमान परिस्थिति मे विश्लेषित करना होगा। रूपरेखा को आकलित करने हेतु हम तीनो उपक्रमो की ओर से केन्द्रिय तत्व को समझने का प्रयास करेंगे।

पहला उपक्रम

तकनीक, पाठ्यक्रम क्रियाए, विद्यालय व्यवस्थापन, परिवेश, समाज, समुदाय, प्रबन्धन इत्यादि उपागमो को ध्यान में रखकर शैक्षिक प्रौद्योगिकी के सहारे अध्यापक शिशु के अभिव्यक्तित्व के साथ चैतन्यमय अध्यापन का सम्बन्ध स्थापित करने मे प्रयासरत रहते है। एक ओर से अध्यापक अपनी कर्मकुशलता के सहारे चैतन्यमय अध्यापन ओर शैक्षणिक अभिव्यक्ति का सम्पोषण करते है एव विपरीत रूप से खुद भी सम्पोषित होते रहते है। (तालिका 2 देखें)

दूसरा उपक्रम

अभिव्यक्ति शिशु के मानसिक व बौद्धिक स्तर पर आधारित अनुभव का ही सफल व समयोचित प्रतिफलन है, जो कि प्रायः परिवेश आधारित क्रियाओं के द्वारा सन्दर्भित होता रहता है। परिवेश आधारित क्रियाओं द्वारा सूक्ष्म अनुभूति का सम्पोषण भी एक वास्तविकता है।

तीसरा उपक्रम

चैतन्यमय अध्यापन प्रत्यक्ष रूप से आत्मानुभूति, जीवन की कला, चेतना विकास, कर्मकेन्द्रिकता इत्यादि कई जीवनमुखी
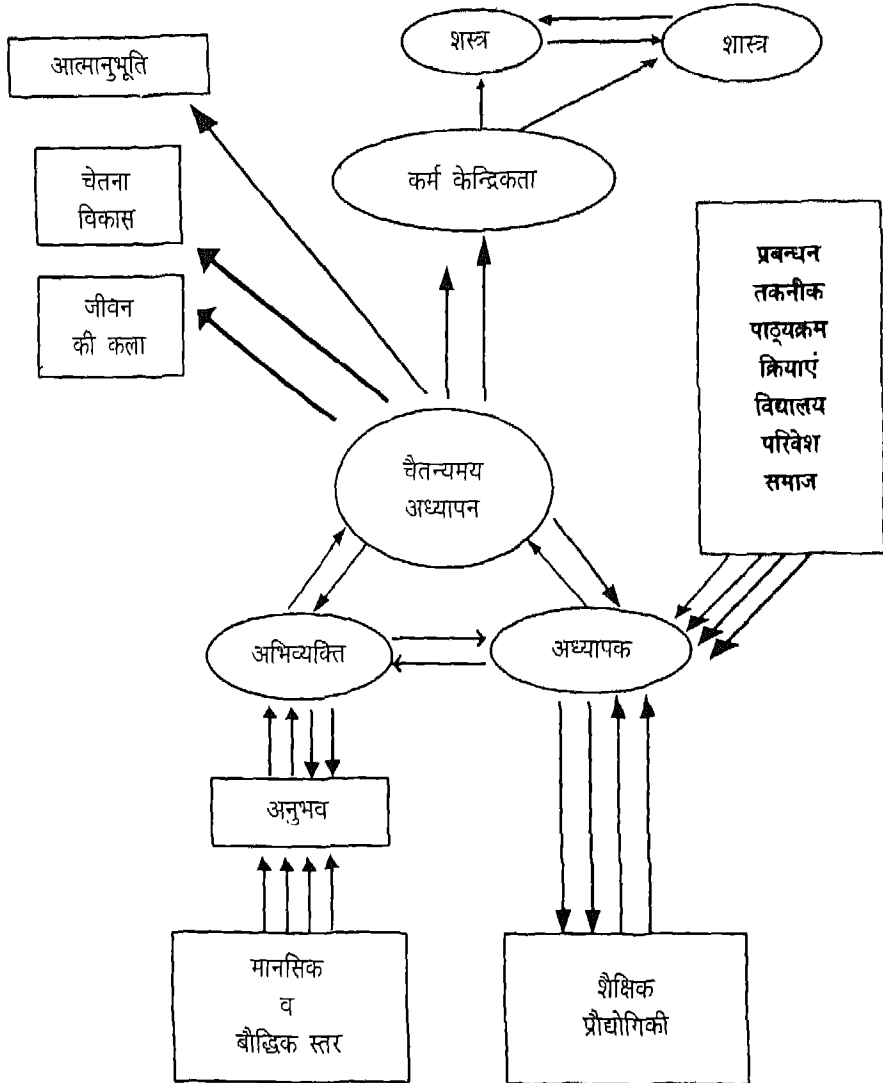
चैतन्यमय अध्यापन, अध्यापक, और अभिव्यक्ति के बीच त्रैमात्रिक सम्बन्ध
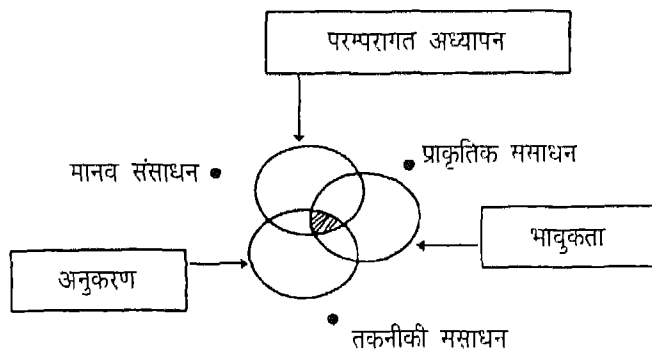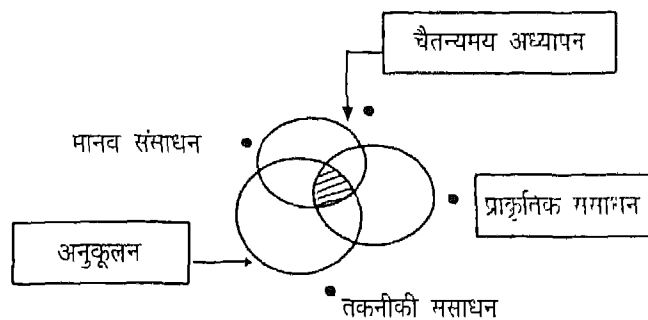
दूसरी व्यवस्था में सामंजस्यता क्षेत्र में हुई वृद्धि चैतन्यमय अध्यापन का ही फल है जिसने तीनों संसाधनों के बीच सामंजस्यता के क्षेत्र को विस्तृत किया।

आयामो को प्रभावित करता है एव अध्यापन अपने आप अध्यापक व शिक्षु के अभिव्यक्ति द्वारा प्रभावित होता रहता है।

अनुभव अभिव्यक्ति का सूचक है एव चैतन्यमय अध्यापन का परिपोषक। जिस आधार पर हम विद्यालयीन वातावरण एव समाज के बीच निहित पारस्परिक सम्बन्ध की बाते करते है उसी क्रम मे सभी आयामो को त्रैमासिक स्तर पर सजाकर परस्पर तुलना करेंगे। इस रूपरेखा की गुणवत्ता श्रेणी में विवेचना करने से कुशल अध्यापकों की केन्द्रीय भूमिका पर सफलतापूर्वक प्रकाश डालना होगा,

तभी हम उन्नत व्यवस्था का प्रतिपादन कर पाएगे।

भावुकता और कर्मकेन्द्रिकता के बीच समन्वय स्थापन

भारतीय जनमानस का रुझान परम्परागत भावनाप्रधान सस्कृति से हटकर कर्मकेन्द्रिकता पर आधारित क्रियाशीलन की ओर बढ रहा है। अत विकास की मात्रा को किसी भी परिस्थिति मे नकारा नही जा सकता। इसी क्रम मे दो चार कदम अग्रसरित होकर अगर ससाधन मानचित्र मे सामजस्यता स्थापित करने की बात करे तो ज्यादा अप्रासंगिक नही होगा। (तालिका 3 देखे) परम्परागत अध्यापन से हटकर चैतन्यमय अध्यापन के सहारे मानव ससाधन विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करने के क्रम मे हमने तकनीकी संसाधन के क्षेत्र में अनुकरण प्रधान सस्क्रिया को छोडकर अनुकूलन प्रधान संस्क्रिया को अपनाया। इसके फलस्वरूप भावुकता के स्थान पर कर्म केन्द्रिकता को ज्यादा अहमियत मिली एव विकास को एक सचल धारा में लाते हुए ससाधन मानचित्र मे सामजस्यता के क्षेत्र को अधिकाधिक विस्तृत किया गया।

भावुकता और कर्मकेन्द्रिकता के बीच सफलतापूर्वक समन्वय स्थापन हेतु प्रस्तावित ससाधन प्रबन्धन को हर एक पहलू से समझने के लिए हमे चैतन्य के सूचक को सही ढंग से सन्दर्भित करना होगा, एव साथ ही साथ अन्तर्निहित भ्रम व सशय को दूर करना होगा। चैतन्य या चैतन्यमयना के कुछ सूचक निम्नवर्णित अभिव्यक्ति के द्वारा कुशलतापूर्वक आकलित किए जा सकेगे—

- ☐ चित्रकारिता
- ☐ संगीत/ नृत्य/ रंगमच
- ☐ आवृत्ति
- ☐ वाचन क्रिया/ परिसंवाद
- ☐ लेखन क्रिया
- ☐ शस्त्रज्ञान
- ☐ आत्मानुभूति/ सहगर्भिता
- ☐ स्फूर्ति
- ☐ कर्मचचलता/ क्रियाशीलन
- ☐ कर्तव्यनिष्ठा/ कर्तव्यज्ञान
- ☐ सहिष्णुता
- ☐ दयाभाव
- ☐ परिवेश आधारित क्रियाए
- ☐ तकनीकी ज्ञान
- ☐ प्रबन्धन कला
- ☐ व्यवस्थापन कला
- ☐ नियमन कला

सभी सूचको का एकत्रित रूप हर क्षेत्र मे व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति का प्रतिफलन नही कर सकते, पर इनके द्वारा हम अभिव्यक्ति व अध्यापन के बीच निहित सामजस्यता को समझ सकेगे। जाहिर है चैतन्यमय अध्यापन के अन्तर्गत मूल्याकन प्रक्रिया के जरिए हमें विद्यार्थी की सफलताओं के साथ-साथ कमजोरियो को भी प्रतिफलित करना होगा। इस मूल्याकन विधि को एक निरन्तर शुद्धि क्रिया के रूप मे ही अपनाना सहज होगा।

वलिष्ठ शैक्षिक प्रौद्योगिकी

पूर्ववत प्रतिपादित अवधारणाओ को सहारा प्रदान करने योग्य क्रियाए व शैक्षिक प्रौद्योगिकी पर भी विचार करना होगा। इस क्षेत्र मे कुछ नवीनतम तकनीको की विवेचना ही अधिक अहमियत रखती है। मुख्यतः कुछ सस्क्रियाओ को प्राथमिकता के आधार पर चर्चा में शामिल किया गया, जो कि निम्नरूप से हैं—

1. शिक्षण व्यवस्थापन के लिए सर्वाग्र विवेचनीय क्रियाशीलन **अंशभागी परिकल्पना** पर आधारित एक सम्मिलित प्रक्रिया के जरिए सदर्भित होनी चाहिए। शिक्षण क्रिया के द्वारा जब भी अध्यापक विद्यार्थी वर्ग के साथ सम्मिलित होते है उन्हें एक ऐसी विधि के जरिए पुन. अग्रसरित होना चाहिए जो सभी शिक्षुओ मे प्रतिभागिताएं सुनिश्चित करती हो। इस परिकल्पना की रूपरेखा शिक्षण-बिन्दुओं, विद्यालय वातावरण व अन्य कई क्रियाओ को ध्यान में रखते हुए अध्यापक ही तय करेगे, पर एक सर्वमान्य अनुक्रिया की प्रस्तावना इस क्रिया को सफलतापूर्वक प्रतिफलित करती है। (तालिका 4 देखे)
2. अध्यापन क्रिया का विधि पूर्वक विश्लेषण करने के उपरान्त स्मृति शक्ति, कल्पना शक्ति, भाषाज्ञान, कलाकृति, चिन्तन, प्रबन्धन व कर्मतत्परता के

तालिका 4
अंशभागी परिकल्पना के माध्यम से चैतन्यमय अध्यापन
पाठ्यक्रम
पुस्तक
अध्यापक
जानकारी
अनुभव
उपलब्धि
ज्ञान
अध्यापन क्रिया
क्या पढ़े
क्यों पढ़े
कैसे पढ़े
कब पढ़े
चेतना
क्रियाशीलन
समझ
अनुकरण
सहायक क्रिया
समस्या समाधान
तत्व की प्रतिष्ठा
अनुकूलन
उद्भावनी शक्ति
अभ्यास
स्मृति शक्ति
कल्पना शक्ति
भाषा ज्ञान
कलाकृति
कर्मतत्परता
चिन्तन
प्रबन्धन
व्यवस्थापन
गहराई

जनसंख्या शिक्षा के क्रियान्वयन में जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान की भूमिका

❑ सरोज यादव

आज दुनिया की बढ़ती आबादी पर रोक लगाने की जरूरत से कोई इंकार नहीं कर सकता, विशेषकर भारत जैसे देश के संदर्भ में। यह भी सच है कि जनसंख्या शिक्षा की अवधारणा का प्रतिपादन भी तेज गति से बढ़ती जनसंख्या की समस्या के निदान के रूप में किया गया था। यही कारण था कि जनसंख्या शिक्षा के प्रथम चरण में जनसंख्या वृद्धि के कुप्रभावों की जानकारी देना ही अधिक महत्वपूर्ण समझा गया। 1969 में आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार में प्राथमिक स्तर से ही जनसंख्या शिक्षा दिए जाने की सिफारिश की गई। राष्ट्रीय सेमिनार द्वारा दी गई जनसंख्या शिक्षा की परिभाषा में तत्कालीन प्रचलित विचार के अनुरूप जनसांख्यिकी दृष्टिकोण हावी रहा। इसी सेमिनार की सिफारिशों के आधार पर शिक्षा की भूमिका पर बल देते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् में एक राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा परियोजना का आरंभ हुआ। 1969 के राष्ट्रीय सेमिनार में ही पहली बार "जनसंख्या शिक्षा" का नाम दिया गया जो धीरे-धीरे पूरे विश्व में मान्य हो गया।

परिषद् की प्रथम अवधारणात्मक संरचना में भी जनसंख्या वृद्धि समस्या तथा इसके कुप्रभावों को केन्द्रिक स्थान दिया गया। जनसंख्या शिक्षा की प्रथम पाठ्यचर्या में निम्नलिखित छः प्रमुख क्षेत्रों की विषय वस्तु को शामिल किया गया। (1) जनसंख्या वृद्धि (2) जनसंख्या एवं आर्थिक विकास (3) जनसंख्या एवं सामाजिक विकास (4) जनसंख्या स्वास्थ्य तथा पोषण (5) जीव विज्ञान एवं पारिवारिक जीवन (6) जनसंख्या एवं पर्यावरण। प्रारंभिक प्रतिपादन में जनसंख्या शिक्षा का उद्देश्य भी विद्यार्थियों को जनसंख्या वृद्धि का मानव समाज के विभिन्न पहलुओं पर पड़ने वाले कुप्रभावों की जानकारी देना था। यह भी माना गया कि इस प्रकार की जानकारी का विद्यार्थियों की मनोवृत्ति तथा उनके व्यवहारों पर उचित प्रभाव पड़ेगा एवं भविष्य में वे जनसंख्या संबंधी मुद्दों पर विवेकपूर्ण निर्णय ले सकेंगे।

मानव विकास के संबंध में यह मान्यता थी कि

दुनिया में व्याप्त गरीबी व भुखमरी की मूल वजह आबादी की अधिकता नहीं बल्कि सामाजिक-आर्थिक नीतियों में निहित है। आज जरूरत है संसाधनों के न्याय संगत दोहन व उपयोग की। जनसंख्या स्थिरीकरण के लिए सभी विकास कार्य योजनाओं में बुनियादी तत्वों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य के समेकित रूप से समावेश की आवश्यकता है।

जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाने से ही विकास के सभी लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि एक शैक्षिक कदम के रूप में जनसंख्या शिक्षा की ऐसी अभिवृत्ति शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं थी। यह अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान, मुम्बई द्वारा किए गए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (1998-99) ने भी स्पष्ट कर दिया है। इस सर्वेक्षण के अनुसार 99 प्रतिशत विवाहित महिलाओं को परिवार नियोजन की कम से कम एक विधि की जानकारी है लेकिन मात्र 48 प्रतिशत के द्वारा उसे व्यवहार में लाया जाता है। स्पष्ट है कि केवल जानकारी देने मात्र से मानव व्यवहार में वांछित परिवर्तन नहीं आता।

विश्व स्तर पर हुए अनेक अध्ययन यह दर्शाते हैं कि दुनिया में जारी गरीबी व भुखमरी की मूल वजह आबादी की अधिकता नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक नीतियों में निहित है। जरूरत है इस ओर ध्यान देने तथा संसाधनों के न्यायसंगत दोहन व उपयोग की। जनसंख्या स्थिरीकरण के लिए आवश्यक है सभी विकास कार्ययोजनाओं में बुनियादी तत्वों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य विशेष कर महिला शिक्षा व स्वास्थ्य का समेकित रूप से समावेश।

1994 मे काहिरा मे आयोजित अंतर्राष्ट्रीय जनसख्या एवं विकास सम्मेलन द्वारा पारित भावी कार्ययोजना ने जनसख्या तथा विकास के अन्तर्सबंधों पर प्रकाश डालते हुए जनसंख्या व विकास की कार्यसूची का लक्ष्य जनसंख्या नियन्त्रण नही बल्कि दीर्घकालीन विकास होना चाहिए रखा है। अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की सिफारिशो व राष्ट्रीय स्तर के अनुभवों के आधार पर पहली बार सभी योजनाबद्ध क्रियाकलापो का केन्द्रबिन्दु जनसख्या नियन्त्रण नहीं बल्कि जनसाख्यिकीय स्थिरीकरण को संभव बनाने वाली आवश्यक अवस्थाओं की उपलब्धि होने पर बल दिया गया है। यह सिफारिश की गई कि जनसख्या सम्बन्धी कार्यक्रमो के द्वारा अब सख्या पर बल दिए जाने की बजाए व्यक्तिगत आवश्यकताओ पर बल दिया जाना चाहिए। इन सब बातो को ध्यान मे रखते हुए जनसंख्या शिक्षा को पुनर्सकल्पित किया गया है तथा इसे आरभ से ही पाठ्यक्रम व अन्य शैक्षिक गतिविधियो का हिस्सा बनाने मे शिक्षा व शिक्षा संस्थाओ के योगदान की आवश्यकता पर बल दिया है। जिला शिक्षा प्रशिक्षण सस्थान इसके क्रियान्वयन में अहम भूमिका निभा सकता है।

जनसंख्या शिक्षा का पुनर्सकल्पित स्वरूप

जिला स्तर की सस्था विशेष रूप से जिला शिक्षा प्रशिक्षण सस्थान किस प्रकार जनसख्या शिक्षा को प्रभावशाली ढग से लागू करने में मदद कर सकती है, को जानने से पहले इसके पुनर्सकल्पित रूप को समझना आवश्यक है। जनसख्या शिक्षा की अवधारणात्मक सरचना में विश्व स्तर पर हुए 1993 के जनसंख्या शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन तथा 1994 के काहिरा सम्मेलन की कार्य योजनाओ व भारत में जनसंख्या शिक्षा क्रियान्वयन के दौरान हुए अनुभवों के आधार पर परिवर्तन किए गए है। साथ ही इसे वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विद्यालय स्तर के पाठ्यक्रम को प्रकृति के अनुरूप ढालने का भी प्रयास किया गया है। इस प्रारूप के अनुसार "जनसख्या शिक्षा एक ऐसी शैक्षणिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षार्थियो में जनसख्या एवं विकास के बीच अन्तर्सबध, जनसख्या परिवर्तन के कारण तथा परिणामो एव जनसंख्या स्थिरीकरण की अवस्थाओ के महत्व के संबंध मे समझ विकसित की जाती है जिसके द्वारा उनमें जनसख्या एव विकास के विभिन्न मुद्दो के प्रति विवेकपूर्ण मनोवृत्ति तथा उत्तरदायी व्यवहार का भी विकास हो सके ताकि वे इनके संबंध मे वांछित निर्णय ले सकें, पर बल दिया जाता है"। इस परिभाषा के आधार पर जनसख्या शिक्षा की विषय-वस्तु का गठन किया गया है। जिनको छ. क्षेत्रों मे बाटा गया है जो निम्नलिखित है—

पुनर्संकल्पित जनसंख्या शिक्षा के विद्यालय स्तर पर समावेश किए जाने वाले अवयव

पारिवारिक जीवन—समाज की आधारभूत इकाई के रूप मे परिवार की भूमिका, सदस्यो की मौलिक आवश्यकताए, अधिकार एव उत्तरदायित्व, बालक-बालिकाओं के अधिकार, परिवार के सभी सदस्यो को उपलब्ध समान अवसर, बालिकाओं की शिक्षा तथा स्वास्थ्य, महिलाओं का पारिवारिक आय व कल्याण में योगदान, पत्नी के प्रजनन अधिकार, महिलाओं को निर्णय की प्रक्रिया मे समान साझेदारी, बुजुर्गो एवं अपंग सदस्यों की देखभाल।

लैंगिक समानता एवं समभाव—पारिवारिक जीवन की गुणवत्ता तथा राज्य या देश की जनसंख्या स्थिति के निर्णायक कारक के रूप में महिलाओं की स्थिति, घर के बाहर महिलाओं के रोजगार तथा निवेश के अवसर, महिलओं के प्रजनन अधिकार एवं स्वास्थ्य, बालिकाओ की विशेष आवश्यकताओं की पहचान, पुरुषो का उत्तरदायित्व।

किशोरावस्था एवं प्रजनन स्वास्थ्य—किशोर-किशोरियो का शारीरिक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक-विकास, प्रजनन स्वास्थ्य तथा अधिकार, एच.आई.वी. / एड्स के रोगियों के प्रति व्यक्तिगत व सामाजिक दायित्व, नशीली दवाओं के सेवन के कारण, परिणाम, बचाव, पुनर्वास तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक दायित्व।

स्वास्थ्य एवं शिक्षा—जनसंख्या परिवर्तन के मुख्य निर्धारक, जनसख्या स्थिति, स्वास्थ्य तथा पोषण, स्वास्थ्य सम्बन्धी विकृति तथा मृत्युदर, शिशु जीवन एवं स्वास्थ्य, महिला स्वास्थ्य तथा सुरक्षित मातृत्व, महिला साक्षरता व स्वास्थ्य, बालिका शिक्षा व स्वास्थ्य।

जनसंख्या व सतत विकास—जनसख्या स्थिति को प्रभावित

करने वाले मुख्य तत्व प्रजननदर एव मृत्युदर, जनसख्या वृद्धि तथा इसकी संरचना, सतत आर्थिक विकास एवं गरीबी, जनसख्या परिवर्तन उपभोग तथा संसाधन विकास, जनसख्या, विकास तकनीकी एव पर्यावरण।

जनसंख्या वितरण शहरीकरण एवं प्रजनन–जनसख्या वितरण के कारण एव प्रभाव, शहरीकरण के कारण प्रभाव तथा भावी नीति, आन्तरिक एव अतर्राष्ट्रीय प्रजनन।

जनसख्या शिक्षा की ऊपर दी गई विषय-वस्तु को प्राथमिक स्तर के बच्चो के लिए चुनते समय उनकी आयु व स्तर को ध्यान मे रखना चाहिए।

प्रारंभिक स्तर पर जनसंख्या शिक्षा के क्रियान्वयन का महत्व

जनसंख्या तथा विकास के अन्तर्सबधो के बारे मे जानकारी देने व सही दृष्टिकोण विकसित करने तथा विवेकपूर्ण निर्णय लेने योग्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि जनसख्या शिक्षा प्रारभिक स्तर से ही दी जानी चाहिए। विद्यालय शिक्षा के इस स्तर पर ही भावी विचाराधाराओ की नींव डाली जाती है। अत. जीवन के प्रति सही व स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्राथमिक स्तर पर सही विचारों व मूल्यों का बीजारोपण बहुत जरूरी है। प्राथमिक स्तर का अर्थ यहां निम्न प्राथमिक व उच्चतर प्राथमिक दोनो को एक साथ मिलाकर किया गया है। प्राथमिक स्तर के बच्चों का मस्तिष्क पूर्ण परिपक्व नही होता। इसलिए इस स्तर के बच्चो को सही दिशा मे ढालना आसान है। इस आयु वर्ग में जो सोच, अभिवृत्ति व दृष्टिकोण विकसित किए जाते है वे जीवन भर बने रहते है। इस समय दिया गया ज्ञान उनकी सोच को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। इस आयु वर्ग मे बच्चे, विचारो को सहज रूप से ग्रहण कर सकते हैं। परंतु कल्पना की शक्ति बहुत सीमित होती है अतः इस स्तर पर जनसंख्या संबधी जानकारी उनको आसपास के वातावरण से मेल खाती देनी चाहिए। जनसंख्या शिक्षा की विषय-वस्तु का चुनाव बच्चों की आयु, कल्पना शक्ति व विद्यालय पाठ्यक्रम मे समावेश करने की क्षमता के अनुसार चुनना चाहिए। उदाहरण के तौर पर इस स्तर पर परिवार के सदस्यो की मौलिक आवश्यकताओ, अधिकार एव कृतव्यो, बालिकाओं की शिक्षा का महत्व बजुर्गो का सम्मान व देखभाल, अपग सदस्यो की देखभाल के बारे में बच्चो से चर्चा करके सही दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है। इस स्तर पर बच्चो को दूसरे लिग के प्रति सम्मान लड़के-लड़की को समान भाव से देखना, शरीर मे किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक, भावात्मक व मनोवैज्ञानिक परिवर्तन के बारे मे जानकारी, एड्स के बारे मे सही जानकारी देना, दुर्लभ संसाधनो के महत्व को समझना व इन सब मुद्दों के प्रति उचित दृष्टिकोण उत्पन्न करना आदि।

बच्चो तक पहुचने के लिए आवश्यक है कि उनको पढ़ाने वाले शिक्षक भी सही विषय के जानकार हों, उनकी अभिरुचि घनात्मक हो, और वे बच्चो से इस विषय के बारे मे चर्चा करने के लिए तत्पर हों। जिला शिक्षा प्रशिक्षण सस्थान इस प्रयास में अहम भूमिका निभा सकता है।

प्रारंभिक स्तर पर जनसंख्या शिक्षा को लागू करने में जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान का योगदान

विद्यालय स्तर पर जनसंख्या शिक्षा का सम्वन्ध 8,25,707 विद्यालयों, 15,42,23,520 विद्यार्थियो, 42,02,788 शिक्षकों तथा प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण सस्थाओ, गैर-सरकारी संगठनों तथा अनेक सबंधित सस्थाओ से है। जिनमें से 7,36,044 विद्यालय, 13,17,95,054 विद्यार्थी तथा 2,76,67,555 अध्यापकों का सबध केवल प्राथमिक व उच्चतर प्राथमिक स्तर से है, जो कि विद्यालय शिक्षा का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

जनसंख्या शिक्षा वर्तमान समय में मुख्य रूप से दो लक्ष्यो पर अपना प्रयास केन्द्रित कर रही है। पहला विद्यालयी शिक्षा मे पुनर्संकल्पित जनसंख्या शिक्षा के तत्वों का समावेश, दूसरा विद्यालयी शिक्षा मे किशोर प्रजनन स्वास्थ्य के तत्वो को समाविष्ट करने वाली किशोरावस्था शिक्षा का सस्थानिकरण। इन दोनों लक्ष्यो को प्राप्त करने मे जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान एक महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है जो निम्नलिखित है—

पूर्व सेवाकालीन स्तर पर होने वाले पाठ्यक्रम में पुनर्सकल्पित जनसंख्या शिक्षा की विषय-वस्तु का समावेश

जनसख्या शिक्षा के नवीनतम स्वरूप को शिक्षक तक पहुचाने के लिए या तो शिक्षक शिक्षा जगत में पहुचने से पहले ही प्रशिक्षित हो या फिर उसे अध्यापन के दौरान प्रशिक्षण दिया जाए। जिला शिक्षा प्रशिक्षण सस्थान प्राथमिक स्तर के अध्यापकों को तैयार करता है। अधिकतर राज्यो ने जनसख्या शिक्षा को प्राथमिक स्तर के पूर्वकालीन सेवा के कोर्स को एक ऐच्छिक विषय के रूप मे रखा हुआ है। जनसख्या शिक्षा के तत्वो को पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयो मे भी समाहित किया गया है। जिला शिक्षा प्रशिक्षण सस्थान, पूर्वकालीन शिक्षको के लिए बनाए पाठ्यक्रम का जनसंख्या शिक्षा की विषय-वस्तु के संबध में अध्ययन करे तथा पुनर्सकल्पित जनसख्या शिक्षा के तत्वो की पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तको तथा अन्य पठन-पाठन सामग्रियो मे समाविष्ट करने के प्रयास करे। किशोरावस्था शिक्षा के सस्थानिकरण के लिए शिक्षक-प्रशिक्षको के लिए राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के जनसख्या शिक्षा प्रकोष्ठ द्वारा निर्मित पठन-पाठन सामग्री की प्रतिया प्राप्त कर वितरित करके भी भविष्य मे बनने वाले अध्यापकों को प्रशिक्षित कर सकता है संस्थान में आयोजित सभी गतिविधियों मे पुनर्सकल्पित जनसख्या शिक्षा के तथ्यो को समाहित किया जाना चाहिए।

सेवाकालीन शिक्षकों का प्रशिक्षण

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् के द्वारा विधालयी शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्य क्रमीय सरचना मे जनसंख्या शिक्षा के तत्वों को विशेष स्थान दिया गया है। सामान्य उद्देश्यो मे दो उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप से जनसख्या शिक्षा के उद्देश्य हैं। इनके अतिरिक्त कई अन्य उद्देश्य परोक्ष रूप से पुनर्सकल्पित जनसख्या शिक्षा के उद्देश्यो की पूर्ति मे योगदान देते हैं। पाठ्यक्रम सरचना के बाद पाठ्यचर्याओ, पाठ्यपुस्तको तथा अन्य पठन-पाठन सामग्री मे भी जनसख्या शिक्षा के तत्वों का समावेश करने के प्रयास किए जाएगे। यह प्रयास राष्ट्रीय व राज्य स्तर दोनो पर होगे। परतु इन तत्वो का प्रभावशाली ढग से बच्चो तक पहुंचना तभी सभव होगा जब बच्चों को शिक्षित करने वाले अध्यापक प्रशिक्षित होगे। इन अध्यापको को पुनर्सकल्पित जनसंख्या शिक्षा के बारे में प्रशिक्षण देने के लिए जिला शैक्षिक प्रशिक्षण संस्थान का योगदान अति महत्वपूर्ण है। जनसंख्या शिक्षा की विषय-वस्तु को सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों का अभिन्न अग मानकर यह सस्थाए अध्यापकों को प्रशिक्षित करे। प्रशिक्षण के लिए जिस सामग्री का प्रयोग किया जाए उसमें जनसंख्या शिक्षा की विषय-वस्तु यथा स्थान व स्तर के अनुरूप समावेश होनी चाहिए। स्वतन्त्र रूप से शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम करने के लिए ना तो इतने संसाधन है और ना ही इसकी आवश्यकता जैसा कि हम सब जानते हैं जनसंख्या शिक्षा विद्यालय स्तर पर कोई विषय नही है बल्कि इसकी विषय-वस्तु को विभिन्न विषयों मे समाहित किया जाता है। इसलिए प्रशिक्षण स्तर पर शिक्षको को प्रभावशाली ढग से पढ़ाते समय किस प्रकार जनसख्या शिक्षा के विभिन्न तत्वो का समावेश किया जाना चाहिए, मे प्रशिक्षण देना अति आवश्यक है। इस प्रकार की तकनीक से ही प्राथमिक स्तर के अधिक से अधिक अध्यापको तक पहुचा जा सकता है।

पुनर्सकल्पित जनसंख्या शिक्षा का अभिमुखीकरण

चूंकि पुनर्सकल्पित जनसंख्या शिक्षा की संरचना जनसख्या सबधी मुद्दो को नए परिपेक्ष्य में परिभाषित करती है। अतः इसकी विशिष्टताओं को सही संदर्भ मे अपनाए जाने के लिए अनुकूल वातावरण बनाना अति आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा जगत से सबंधित नीति निर्माताओ तथा अन्य शिक्षा कर्मियों, अभिभावको, पालकों, चुने हुए प्रतिनिधियों का अभिमुखीकरण, क्रियाकलाप आयोजित करना आवश्यक है। विशेष रूप से किशोरावस्था शिक्षा के मुद्दों के स्पष्टीकरण के लिए शिक्षा जगत के कर्मियो तथा विभिन्न समुदायो के सदस्यों के साथ वार्तालाप करना आवश्यक है। किशोरावस्था शिक्षा के कुछ तत्वों की सवेदनशीलता को ध्यान मे रखते हुए अभिभावको व पालको का अभिमुखीकरण तो अति आवश्यक है। इस प्रकार के कार्यक्रमों में जिला शिक्षा प्रशिक्षण सस्थान एक अहम भूमिका निभा सकता है। इस सबके लिए यह भी आवश्यक

है कि जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान इस क्षेत्र में राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् या राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की मदद से दक्षता हासिल करे, पठन-पाठन सामग्री प्राप्त करे तभी आगे अभिमुखीकरण करे।

सहपाठगामी क्रियाकलापों का आयोजन

जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान दो प्रकार से सह पाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप को विद्यालय शिक्षा का प्रभावशाली अंग बना सकता है। जनसंख्या शिक्षा मूलरूप से विद्यार्थियों को जनसंख्या एवं विकास संबंधी विभिन्न मूल्यों के सही स्पष्टीकरण में मदद करता है। जिससे उनमें इसके विभिन्न आयामों व मुद्दों के प्रति विवेकपूर्ण मनोवृत्ति तथा उत्तरदायी व्यवहार का भी विकास हो ताकि वे इसके संबंध में वांछित निर्णय ले सके। इसके लिए संस्थान अपने पूर्व-सेवा कालीन शिक्षकों को विभिन्न क्रियाकलापों के बारे में, उनका कैसे आयोजन करना है, उनका उद्देश्य क्या होगा, इनका मूल्यांकन कैसे किया जाए आदि के बारे में वांछित प्रशिक्षण दे ताकि भविष्य में वे शिक्षा यापन से जुड़े।जनसंख्या शिक्षा संबंधी क्रिया कलापों का आयोजन कर सके। संस्थान समय-समय पर जो सेवाकालीन प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करते है उनमें भी जनसंख्या शिक्षा संबंधी क्रियाकलापों के बारे में भी प्रशिक्षण दे। विभिन्न शोध कार्यो में यह पाया गया है कि क्रियाकलापों के माध्यम से ना केवल जनसंख्या शिक्षा के मुद्दों की जानकारी दी जा सकती है अपितु सही दृष्टिकोण का विकास होता है व विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता भी विकसित होती है। जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान किशोरावस्था शिक्षा के क्रियाकलापों, प्रमुख दिवसों जैसे विश्व जनसंख्या दिवस, विश्व एड्स दिवस के अवसर पर आयोजित लम्बी दौड़, विशेषज्ञो द्वारा विशिष्ट मुद्दों पर विद्यालयों में विद्यार्थियों में विचारों का आदान-प्रदान के आयोजन में विद्यालय को सहयोग दे सकते है।

विद्यार्थियों को जनसंख्या के विभिन्न पहलुओं पर आधारित फिल्मों को दिखाने के लिए तो राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के जनसंख्या शिक्षा प्रकोष्ठ की कार्ययोजना में विशेष चर्चा की गई है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा आयोजित राज्य स्तर पर होने वाली वार्षिक विज्ञान प्रदर्शनी में भी जनसंख्या विकास शिक्षा के क्रियाकलापों के लिए राज्य स्तर पर अपना सहयोग दे सकते है।

शोध कार्य

पूर्व सेवाकालीन शिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में एक्शन रिसर्च को अति महत्व देना चाहिए। इस स्तर पर किया गया शोध, इस शिक्षा को समय-समय पर शोध सहायता प्रदान करता है जिससे शिक्षा को अधिक मजबूती से क्रियान्वन करने में मदद मिलती है। क्रियाकलापों के मूल्यांकन, शिक्षक-प्रशिक्षण विधियां, विद्यार्थी का विद्यार्थी के साथ अंतरक्रियाओं का महत्व आदि विषय पर शोध करवाए जा सकते है।

जनसंख्या शिक्षा एक ऐसी शिक्षा है जिसको प्राथमिक स्तर पर प्रभावशाली क्रियान्वयन के लिए शिक्षा जगत के अंतर्गत कार्यरत सभी संगठन संस्थाओं तथा व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता है। जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान तो प्रत्यक्ष रूप से इस स्तर पर शिक्षा के गणनात्मक व गुणात्मक दोनों ही स्तर को उन्नत करने के लिए उत्तरदायी है। शिक्षा के गुणात्मक स्तर के लिए आवश्यक है विद्यार्थियों में परिवार, लैंगिक समानता, स्वास्थ्य वातावरण, सतत विकास के बारे में सही दृष्टिकोण विकसित करना। इस उद्देश्य की प्राप्ति में जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान की भूमिका महत्वपूर्ण है। ❑❑

प्रवाचक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली

मेल-जोल से रहने की दार्शनिक पृष्ठभूमि

❑ राजेन्द्र कश्यप

सभी कुछ परिवर्तनशील है। ऐसे ही बहुत सारी चीजो, अवधारणाओं और मूल्यों के साथ शिक्षा के उद्देश्य भी समय के साथ परिवर्तनशील है। वर्तमान समय की चुनौतियों का सामना करने मे समर्थ शिक्षा के उद्देश्यो के निर्धारण के लिए यूनेस्को द्वारा एक आयोग का गठन किया गया था जिसके अध्यक्ष फ्रास के प्रसिद्ध शिक्षाविद श्री जैक डिलार्स थे और जिसके एक सदस्य हिन्दुस्तान के डा. कर्णसिह भी थे। आयोग ने सर्वप्रथम उन चुनौतियो की खोजबीन करने का कार्य किया जो आज दुनिया भर में मानवजाति के सामने हल ढूंढ़ने के रूप मे उपस्थित है। जैसे कि वैश्विक और स्थानीय हित, व्यक्ति और समष्टि, परपरा और आधुनिकता, भौतिकवाद और आध्यात्म, तात्कालिक और दूरगामी परिदृश्य, आगे बढ़ने की होड़ और अवसर की समानता और सबसे महत्वपूर्ण ज्ञान की बेतहाशा वृद्धि और मनुष्य की उसे ग्रहण करने की क्षमता के बीच टकराहट जारी है। यह टकराहटे मौजूद तो पहले भी थीं, लेकिन उनकी अनुगूज पहले बहुत धीमी थी क्योकि परिवहन और संचार के साधन उतने विकसित और प्रभावी नहीं थे जैसे कि आज है। फिर सार्वभौम राज्य की कल्पना और वास्तविकता ने प्रत्येक राज्य को अपनी सीमाओं के अन्दर बांध लिया था। जिसके भीतर आर्थिक गतिविधिया अपने-अपने नियम और कानूनों के अनुसार परिचालित होती थी।

कई तरह के पसद-नापसंद, दोस्ती-दुश्मनी, निबंध-प्रतिबंध, क्रय-विक्रय, उत्पादन-उपभोग, शुल्क-निशुल्क वस्तुओं का आदान-प्रदान, व्यापार और विनिमय आदि के कड़े नियम थे। उदाहरण के लिए भारत पाकिस्तान और भारत-चीन के बीच व्यापार की अलाभकारी परिस्थितियां थीं जिसका लाभ दूरस्थ देश उठाते थे और पड़ौसी देश घाटे में रहते थे। कमोबेश यही हालात दुनिया के अन्य भागों में जारी थे विशेष तौर पर तनाव और टकराहट ग्रस्त क्षेत्रों में जैसे कि पश्चिमी एशिया, मध्य-पूर्व, कोरिया अफ्रीका, लैटिन अमरीका, बाल्कान देश समूह और दक्षिण एशिया। शीतयुद्ध के कारण पश्चिमी और कम्युनिस्ट गुटो ने अलग से अपने सैन्यतंत्र, अर्थतंत्र और परितंत्र विकसित कर रखे थे। इस प्रकार से विभिन्न पालों मे बटी हुई दुनिया के पाले एक दूसरे की कीमत पर खुशहाल होने की गलतफहमी पाले हुए थे। लेकिन बीसवीं सदी के अंतिम चौथाई भाग में कुछ ऐसे तीव्रगामी परिवर्तन हुए कि शीतयुद्ध न केवल समाप्त हो गया बल्कि उससे जुड़ी पुरानी कटुताएं बर्लिन की दीवार ढहने के साथ ही ढेर हो गई। सर्वसत्ताग्रही शासन व्यवस्था की जगह जनतांत्रिक शासन व्यवस्थाए कायम हुई। जनगण स्वतंत्र होकर अपनी गतिविधियां स्वयं सचालित करने मे समर्थ हुए। स्वतंत्रता शाति और समृद्धि की वाहक है। अतः पड़ौसी के साथ शांतिपूर्ण सबध और दुनियाभर मे शांति और सहयोग की स्थापना आज के समय की मूलभूत आवश्यकता है—ऐसा सभी ओर समझा जाने लगा। इसी समझ से पहले पैदा

संचार और सूचना के क्षेत्र में आई अभूतपूर्व क्रांति ने अपने प्रारंभिक वर्षों में ही औद्योगिक क्रांति के प्रभाव को बहुत पीछे छोड़ दिया है। वर्तमान में प्रचलित शब्द जैसे आत्मनिर्भरता, एकाकीपन और अलगाव बदलकर परस्पर सहयोग, अन्योनाश्रित और मिलजुलकर रहने जैसे भावों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। इस नए चमत्कारिक परिदृश्य में दुनिया सिमट कर बहुत छोटी हो गई है। स्वतंत्रता शान्ति और समृद्धि की वाहक है। अतः आज के समय की मूलभूत आवश्यकता है पड़ौसी के साथ शांतिपूर्ण संबंध एवं सहयोग की स्थापना।

हुआ क्षेत्रीय सहयोग जो एशियन, सार्क, यूरोपियन यूनियन और अभी हाल ही मे गठित गगा-मेकाग परियोजना के रूप मे सामने आया और बाद मे खुले बाजार और मुक्त व्यापार के दबाव में भूमंडलीकरण के रूप में आज एक वास्तविक यथार्थ के रूप में अपना स्थान बना चुका है, जिसे न तो झुठलाया जा सकता है और न जिससे आंखे चुराई जा सकती हैं। विश्व बैंक, विश्व व्यापार सगठन, अतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, गैट और पेटेंट जैसे शब्द अब अनजाने न रहकर भारत बाग्लादेश जैसे देशों के अधिकाश निरक्षर पचों की पचायतो और सहकारी समितियो की बैठको मे प्रयोग मे लाए जाते है। आत्मनिर्भरता, एकाकीपन और अलगाव जैसे शब्द अपना अर्थ खोते जा रहे हैं। इन शब्दो से अर्थ छीनने और नए शब्द जैसे परस्पर सहयोग, अन्योनाश्रित और मिलजुल कर रहने को नए अर्थ प्रदान करने का कार्य किया है। सचार और सूचना के क्षेत्र मे आई अभूतपूर्व क्रांति ने जिसने औद्योगिक क्राति को समय सापेक्ष की दृष्टि मे प्रभाव के मान में अपने जन्म के प्रारभिक वर्षो मे ही बहुत पीछे छोड़ दिया है। इस नए चमत्कारिक परिदृश्य मे दुनिया सिमट कर बहुत छोटी हो गई है। अब आप अपने गाव के अपने घर मे बैठे हुए दुनिया के किसी भी भाग मे न केवल सपर्क स्थापित कर सकते है बल्कि सूचनाओ, सेवाओ और वस्तुओं के आदान-प्रदान के सदेश जारी कर सकते है। अब कोई चाहे तो भी इस असीम परिदृश्य को सीमित नहीं कर सकता। अत' इसे स्वीकार कर लेने मे ही बुद्धिमानी है। लेकिन इस तत्र के समुचित उपयोग और समृद्धि के लिए पर्याप्त ज्ञान, कौशल और क्षमता प्राप्त करना आवश्यक है। इसी पृष्ठभूमि मे जैक डिलोर्स शिक्षा आयोग ने गहन विचार-विमर्श के बाद विश्वव्यापी शिक्षा में चौखम्बा की परिकल्पना प्रस्तुत की है जिसके स्तंभ निम्नानुसार है—

- ☐ जानने के लिए शिक्षा—ज्ञानार्जन
- ☐ करने के लिए शिक्षा—कर्म कौशलम्
- ☐ बनने के लिए शिक्षा—आत्मविकास
- ☐ मिलकर रहने के लिए शिक्षा—वसुधैव कुटुम्बकम्।

इन सबमे अंतिम मिलजुल कर रहना सीखने की शिक्षा अभी तक शिक्षा व्यवस्था, पाठ्यचर्या एव पाठ्यवस्तु मे उपेक्षित रही है। अतः शैक्षिक पाठ्यचर्या मे मिलज़ुल कर रहना उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न अविलंब प्रारभ किए जाने चाहिए। इस परियोजना मे निम्न विषयो की भूमिका महत्वपूर्ण होगी—

- ☐ मानविकी
- ☐ सामाजिक विज्ञान
- ☐ विज्ञान।

उपरोक्त विषयों की विषय-वस्तु में सशोधन एव परिमार्जन के साथ शिक्षको के प्रशिक्षण कार्यक्रम मे भी वाछित बदलाव लाने की आवश्यकता होगी। क्योकि किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम् / प्रायोजना की सफलता शिक्षको की भूमिका पर निर्भर होती है। इसमे भी प्रमुख हैं शिक्षको के विचार, मनोभाव और आचरण मे परिवर्तन लाना। जब तक शिक्षक अपने व्यवहार मे, सोच-विचार मे स्वय मिलज़ुल कर रहने की उद्देश्यपूर्ति की आवश्यकता से संतुष्ट नही है, उद्देश्य प्राप्ति की कार्ययोजना से परिचित नही है, कार्ययोजना को लागू करने मे प्रयुक्त होने वाली सामग्री और उपकरणो की जानकारी नही है तो निश्चित माना जाना चाहिए कि उद्देश्य की पूर्ति असभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

शिक्षकीय दक्षताओ की दृष्टि स यदि विचार किया जाए तो किसी भी शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति क निम्न आधार जिन्हे नीव के पत्थर कहा जा सकता है, निर्धारित है और जो निम्नानुसार है—

- ☐ उद्देश्य की दार्शनिक एव मनोवैज्ञानिक आधार
- ☐ उद्देश्य की उपयोगिता का आधार
- ☐ उद्देश्य की विषय-वस्तु
- ☐ उद्देश्य प्राप्ति की कार्ययोजना एव साधन
- ☐ उद्देश्य प्राप्ति की मूल्याकन पद्धति एवं उपकरण
- ☐ उद्देश्य प्राप्ति के प्रभाव का आकलन।

इसी परिप्रेक्ष्य मे 'मिलजुल कर रहने के लिए शिक्षा' के लिए यदि हम दार्शनिक सिद्धांतो का घोषणा पत्र तैयार करना चाहे तो उसमे निम्न सिद्धातो का समावेश करना होगा। जिन्हें बाद मे सभी विषयो जैसे कि मानविकी, सामाजिक विज्ञान एव विज्ञान के विषय वस्तुओं की तैयारी सशोधन/ परिमार्जन के समय ध्यान मे रखना होगा।

- सभी मानवीय गतिविधियो का प्रमुख लक्ष्य आनद की प्राप्ति है जो सभी के आनद में निहित है।
- आनद की प्राप्ति के लिए समृद्धि आवश्यक है जो सभी के मिलजुल कर उत्पादन, वितरण और उपभोग के लिए कार्य करने से सभव है।
- जाति, नस्ल, लिग, क्षेत्रीयता, राष्ट्रीयता, धर्म और भाषागत भेदभाव बेमानी है।
- सभी प्रकार की कट्टरता, श्रेष्ठ होने का अहंकार, मतान्धता, अधभक्ति और अंधानुकरण की भावना का परित्याग कर वैज्ञानिक, तार्किक एव सार्वभौमिक दृष्टिकोण को विकसित करना।
- ईश्वरीय अवधारणा के स्वरूप और पूजा पद्धतियां जितनी भी है जहा तक मनुष्य की गरिमा और जीवन रक्षा के अधिकार के विरुद्ध नही हैं, स्वीकार्य है।
- पृथ्वी और उसके ससाधन मनुष्य जाति की साझी सपत्ति है।
- सस्कृतिजन्य भाषा, बोली, वेशभूषा, नृत्य-सगीत, रहन-सहन, खान-पान, त्यौहार आदि विविधताए, इतिहास और स्मारक एक सुंदर फुलवारी के सुंदर फूल की तरह है।
- विचार भिन्नता वैमनस्यता का नहीं विचार-विमर्श का विषय है।
- सभी प्रकार के विवादो का हल बातचीत और न्याय की प्रतिष्ठा मे निहित है।
- समुन्नत जीवन अन्योनाश्रित यात्रा पथ है जो जन्म से परिवार, समाज, देश और परदेश के लोगों के परस्पर उद्यम और सहयोग पर निर्भर है।
- 'सत्‌चित आनद' की अनुभूति जितना लिया है उससे अधिक प्रदान करने मे निहित है।

व्यावहारिक दृष्टि से कैसे विभिन्न विषयों के माध्यम से उपरोक्त दार्शनिक सिद्धातो को सप्रेषित किया जा सकता है ताकि मिलजुल कर रहने की शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। इस पर तत्काल विचार प्रारंभ करने की आवश्यकता है, जिसमे शिक्षाविदों के साथ विश्वविद्यालयों एव विद्यालयो मे कार्यरत शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका सुनिश्चित की जानी चाहिए। तभी प्रयास सार्थक और सफल सिद्ध हो सकेंगे। ❑❑

प्राचार्य
केन्द्रीय विद्यालय नं.-2
महाराजपुर, ग्वालियर

प्राथमिक विद्यालयों में राज्यों की प्रोत्साहन परियोजनाओं की नीतियां तथा उनका बालिका सहभागिता में योगदान

संदर्भित अध्ययन सरकार द्वारा क्रियान्वित प्रोत्साहन परियोजनाओं के मूल्यांकन से संबंधित है। इस अध्ययन का निष्पादन यूनेस्को की सलाह पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा किया गया। इसके अन्तर्गत परियोजनाओं के लागत-प्रभावी रूप संबंधी आवश्यक मूल निवेश की व्यवस्था तथा उनका बालिकाओं की सहभागिता में योगदान आकलन का अध्ययन सम्मिलित है।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानव व्यवहार मे अपेक्षित परिवर्तन लाना है। बालिकाओं के शिक्षित होने पर उनके व्यवहार मे हुए परिवर्तन से उत्पादकता तथा घरेलू कल्याणकारी क्रियाकलापो मे वृद्धि होती है। ऐसे अनेक प्रणाण राष्ट्रीय एव अतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए बालिका शिक्षा मे वृद्धि जनन क्षमता, शिशु व बच्चे की मृत्युदर मे गिरावट तथा सक्रामक रोगो मे कमी होने से सकारात्मक रूप से सबधित है। शिक्षा के प्रभाव से व्यवहार मे हुए परिवर्तन के परिणामस्वरूप उचित पोषण तथा स्वास्थ्य देखभाल द्वारा घरेलू स्वास्थ्य और बच्चो के विद्यालयी प्रदर्शन मे सुधार होता है। समाज तक इन वाछित लाभो को पहुचाने के लिए बालिकाओ की प्राथमिक स्तर की शिक्षा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

प्रारभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के अन्तर्गत सरकार 6 से 13 आयु-वर्ग के सभी बच्चो का विद्यालय मे नामाकन करने तथा उन्हे प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने तक विद्यालय में ठहराव के प्रति प्रयत्नशील है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत बालिका शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। इस दिशा मे सरकार द्वारा समय-समय पर शैक्षिक योजनाओ के पुनरावलोकन तथा पुनर्प्रतिपादन पर विशेष बल दिया जाता रहा है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986, 1992) मे बालिकाओ एवं अनुसूचित जाति तथा जनजातियो के नामाकन मे विशेष रूप से प्राथमिक स्तर पर यानि कक्षा 1-5 तक असमानताओ को कम करने की दिशा मे उच्च प्राथमिकता दी गई है।

इस प्रयास मे उचित विद्यालयी सुविधाए प्रदान की गई, विद्यालय भवन तथा बालिकाओ के लिए अलग शौचालयो का निर्माण, महिला अध्यापको की नियुक्ति, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने क लिए विद्यालयो को उपयुक्त शिक्षण सामग्री से लैस किया गया। इसके अतिरिक्त नामाकन मे लिग समता लाने तथा विद्यालय त्याग दर कम करने के लिए सरकार ने बालिकाओ की सहभागिता बढाने के उद्देश्य से अनेक रणनीतियो को आरभ किया। इनमे बालिकाओ की शिक्षा के महत्व के बारे में समुदाय को सचेन करना, क्रेचों व शिशु देखभाल केन्द्रो की सुविधाए प्रदान करना जिससे बालिकाए अपने छोटे भाई-बहनो की देखभाल से मुक्त हो सके, विद्यालय कार्यक्रम मे लचीलापन लाने ताकि घरेलू कार्यो मे व्यस्त बालिकाए उपस्थित हो सकें, नि शुल्क शिक्षा का प्रावधान तथा सीधे प्रोत्साहन देने की व्यवस्था। सीधे प्रोत्साहन देने मे नि शुल्क पोशाक, मध्याह्न भोजन, नि·शुल्क पाठ्यपुस्तकें तथा बालिका उपस्थिति छात्रवृत्ति परियोजनाओ का प्रावधान किया गया।

उपर्युक्त नामाकित चार प्रोत्साहन परियोजनाए पिछले कई वर्षो से विद्यालयो में क्रियान्वित हैं। इन परियोजनाओ के उद्देश्यो की प्राप्ति का मूल्याकन करने के अभिप्राय से यूनेस्को ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् को इन परियोजनाओ के अध्ययन का प्रस्ताव दिया।

इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित कर इसे वर्ष 1998-99 मे प्रतिपादित किया गया—

1 प्रोत्साहन परियोजनाओ का लागत-प्रभावी रूप बनाने के लिए आवश्यक मूल निवेश प्रदान करना।
2 तमिलनाडु तथा उत्तर प्रदेश राज्यो में प्रोत्साहन

परियोजनाओ का बालिकाओ की सहभागिता मे योगदान का आकलन करना।

सदर्भित अध्ययन के प्रथम चरण में राज्य स्तर पर सभी राज्यो एव केन्द्रशासित प्रदेशों की प्रोत्साहन परियोजनाओ का अध्ययन किया गया तथा द्वितीय चरण में विद्यालय स्तर पर केवल तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में इन परियोजनाओ का अध्ययन किया गया। एकत्रित आकड़ो तथा अन्य प्रासगिक विवरणो का विश्लेषण कर एक प्रतिवेदन तैयार किया गया। इस अध्ययन के निष्कर्षो को उक्त दस्तावेज से उद्धृत किया गया है।

— स्वतत्रता प्राप्ति के समय बालिकाओं की शिक्षा मे सहभागिता बहुत कम थी, यह सर्वविदित है। वर्ष 1950-51 मे प्राथमिक स्तर पर बालिकाओ के सकल नामाकन-अनुपात (Gross Enrolment Ratio) 24 8 मात्र था। उसके पश्चात् देश मे इस दिशा मे असाधारण रूप से प्रगति हुई। प्राथमिक स्तर पर बालिकाओ के सकल नामाकन-अनुपात जो 1970-71 में 60 5 था, 1992-93 मे बढ़कर 73 5 हो गया। इसी अवधि में प्राथमिक स्तर पर बालिकाओ की विद्यालय छोडने की दर 70 9 प्रतिशत से घटकर 46.7 प्रतिशत रह गई।

— स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् बालक तथा बालिकाओ की नामाकन सख्या के बीच अन्तर मे पर्याप्त कमी आई। नामांकन लिग-समता (gender parity) सूचक जो 1965 मे केवल 58 57 प्रतिशत था, 1993 मे बढ़कर 81.19 प्रतिशत हो गया। परतु बिहार, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्यो मे उस समय भी यह सूचक 80 प्रतिशत से कम था।

— राज्य सरकारों ने प्राथमिक स्तर पर बालिकाओ की सहभागिता बढ़ाने के लिए कई कदम उठाए। इसके लिए जनसमुदाय को बालिकाओ की शिक्षा का महत्व समझाने के लिए अभियान चलाए। बालिकाए अपने छोटे भाई-बहनो की देखभाल मे ही व्यस्त न रहे, इसके लिए शिशुसदन बनाए। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारो ने मध्याह्न भोजन, नि.शुल्क पाठ्यपुस्तके, नि.शुल्क पोशाक तथा बालिका उपस्थिति छात्रवृत्ति जैसे प्रोत्साहनो का प्रावधान किया ताकि अभिभावक बालिकाओ को शिक्षित करने के लिए प्रेरित हो सके। इन प्रोत्साहन योजनाओ का उद्देश्य मुख्यत. सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछडे वर्ग की बालिकाओ की शिक्षा पर होने वाले अभिभावको के वित्तीय भार को कम करना है। इन सब प्रोत्साहनो के बावजूद राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण-52वां दौर (1995-96) के अनुसार, 6+ से 10+ आयु-वर्ग की 37 प्रतिशत ग्रामीण बालिकाए कभी भी विद्यालय नहीं गई। इसका मुख्य कारण वित्तीय प्रतिबध तथा बालिकाओ की शिक्षा के प्रति अभिभावको की उदासीनता रही है।

— अभी तक प्रोत्साहन परियोजनाओ की क्षमता की समीक्षा-अध्ययनो से पता चलता है कि प्रोत्साहन मिलने से बालिकाओ के नामांकन में वृद्धि हुई है जबकि विद्यालय मे उनकी उपस्थिति मे सुधार के विषय मे मतभेद है। उदाहरण के लिए मध्याह्न भोजन परियोजना के अन्तर्गत खाद्यान्न सामग्री वितरित करने से नामाकन मे तो वृद्धि होती है परतु उपस्थिति दर में सुधार नही। जबकि पका हुआ भोजन वितरित करने से नामाकन मे वृद्धि के साथ-साथ उपस्थिति में भी सुधार होता है। इन अध्ययनो के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि प्रोत्साहनों द्वारा आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुए वर्ग के बच्चो के नामाकन मे वृद्धि, उनकी उपस्थिति मे सुधार तथा विद्यालय छोड़ने की दर मे कमी आई है। अभी तक किए गए अधिकाश अध्ययन किसी एक विशेष राज्य पर सीमित रहे है।

— यद्यपि राष्ट्रीय मध्याह्न भोजन योजना 1995 से सभी राज्यों में लागू की गई, तथापि गोवा (1967), तमिलनाडु (1956), पश्चिम बगाल (1977), चण्डीगढ़ (1980), लक्षद्वीप (1956), तथा पाडिचेरी (1960), मे यह योजना पहले से ही विद्यमान थी। राष्ट्रीय योजना केवल प्राथमिक कक्षाओ के सभी बच्चो के लिए लागू की गई है। परतु तमिलनाडु तथा पाडिचेरी मे कक्षा 1 से 10 तक के छात्र, गुजरात, केरल, अडमान व निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप में कक्षा 1 से 8 तक के छात्र इस योजना से लाभावित हुए है। अधिकाश राज्यो में प्रत्येक छात्र को 3 किलोग्राम खाद्यान्न दिया जाता है। पश्चिम बगाल, चण्डीगढ तथा दिल्ली मे फ्रूटी ब्रेड जबकि गुजरात, जम्मू और कश्मीर, केरल, उड़ीसा, तमिलनाडु, दादरा व नगर हवेली, दमन व

दीव तथा पाडिचेरी मे छात्रो को पका हुआ भोजन दिया जाता है। वर्ष 1995-96 मे वितरित खाद्य सामग्री की औसत लागत प्राथमिक शिक्षा पर हुए कुल व्यय का 3 30 प्रतिशत है। यह लागत दर गोवा (0 12) मे निम्नतम तथा दिल्ली (7 50) मे अधिकतम है। राज्य सरकारो ने इस योजना को लागू करने में कई कठिनाइयो को वर्णित किया है। इनमे से मुख्यत. खाद्यान्न का निर्धारण गत वर्ष के नामाकन के आधार पर किया जाता है जिससे चालू वर्ष मे नए नामाकित छात्र इससे वचित रह जाते है, लाभावित छात्रो के बारे मे जानकारी एकत्रित करने मे बहुत समय लग जाता है, सरकारी उचित दर की दुकानों के लिए खाद्यान्न के अग्रिम भुगतान मे देरी होने से मध्याह्न भोजन योजना के अन्तर्गत खाद्यान्न मिलने मे देरी, सरकार द्वारा भारतीय खाद्यान्न निगम को खाद्यान्न की कीमत का समय पर भुगतान न होने से जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर मे खाद्य सामग्री मिलने मे अवरोध; सरकारी उचित दर के दुकानदारों द्वारा अनाज का कम तोलना तथा खाद्यान्न का दुरुपयोग करना, खराब सडके, ढुलाई के लिए स्वीकृत दरो का कम होना; शिक्षको को बच्चो के पढाने मे अवरोधन।

— निःशुल्क पोशाक योजना 24 राज्यो तथा केन्द्रीय शासित प्रदेशो मे लागू है। त्रिपुरा राज्य मे यह सबसे पहले 1960 मे लागू की गई। आन्ध्र प्रदेश, असम, केरल, मणिपुर, नागालैड, पजाब, उत्तर प्रदेश तथा लक्षद्वीप मे यह योजना लागू नही है। इस योजना के अन्तर्गत सामान्यतया सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर पिछडे वर्ग के बच्चे आते है। हरियाणा, बिहार, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, मेघालय, त्रिपुरा तथा पश्चिम बगाल मे यह योजना केवल बालिकाओं के लिए है। तेरह राज्यो मे कक्षा 1 से 5 के बच्चे, नौ राज्यों मे कक्षा 1 से 8 के बच्चे इस योजना से लाभ उठा रहे है तथा शेष दो राज्यो मे से दमन व दीव में कक्षा 1 से 10 के बच्चे तथा दिल्ली में कक्षा 1 से 12 के बच्चे इस योजना से लाभान्वित हो रहे है। तमिलनाडु राज्य मे नि शुल्क पोशाक कक्षा 1 से 8 के केवल उन्ही बच्चो को मिलती है जो कि मध्याह्न भोजन योजना में सम्मिलित है। तीन चौथाई राज्यो मे यह योजना शिक्षा निदेशालय द्वारा सचालित होती है जबकि बिहार, गुजरात, उड़ीसा तथा तमिलनाडु राज्यों मे समाज-कल्याण विभाग द्वारा सचालन होता है। मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक मे बुनकर सस्थाए इस योजना को कार्यान्वित करने में सम्मिलित की गई है। हरियाणा, मेघालय तथा त्रिपुरा मे पोशाक खरीदने के लिए नकद धनराशि दी जाती है जबकि जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, मिजोरम, चडीगढ, दिल्ली, दादरा व नगर हवेली तथा दमन व दीव मे पोशाक के लिए केवल कपडा ही दिया जाता है, लेकिन गोवा, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, मेघालय, सिक्किम, तमिलनाडु तथा पश्चिम बगाल राज्यो मे सिली हुई पोशाक दी जाती है। इस योजना से प्रति छात्र वार्षिक लाभ परिसर त्रिपुरा मे 40 रुपए से लेकर दमन व दीव मे 450 रुपए है। इस योजना पर व्यय प्राथमिक शिक्षा के कुल व्यय का प्रतिशत परिसर हिमाचल प्रदेश मे 0 04 से लेकर सिक्किम मे 7 35 है। इस योजना को कार्यान्वित करने मे जो कठिनाइया आती है उनमे से मुख्य है अपर्याप्त निर्धारण धनराशि, कपड़ो की पूर्ति के लिए एजेसी निर्धारित करने मे देरी, एक पचवर्षीय योजना से दूसरी मे इस योजना के लिए निर्धारित निधि मे कमी होना।

— नि शुल्क पाठ्यपुस्तक योजना सभी राज्यो तथा केन्द्र शासित प्रदेशो मे लागू है। उड़ीसा मे यह 1950 मे, सबसे पहले तथा उत्तर प्रदेश मे 1998 में, सबसे बाद मे लागू की गई। केरल, मणिपुर तथा उत्तर प्रदेश में यह योजना केवल बालिकाओ के लिए है, जबकि तमिलनाडु के अतिरिक्त, शेष राज्यों मे प्राथमिक कक्षाओं के बालक तथा बालिकाओ दोनो के लिए हैं। तमिलनाडु मे यह कक्षा 1 से 8 तक के उन सभी छात्रो के लिए है जो कि मध्याह्न भोजन योजना से लाभान्वित है। यह योजना उडीसा तथा पजाब मे समाज कल्याण विभाग द्वारा कार्यान्वित की जाती है जबकि असम, बिहार, कर्नाटक, राजस्थान तथा तमिलनाडु मे पाठ्यपुस्तक प्रकाशन निगम द्वारा। मणिपुर तथा त्रिपुरा में नकद धनराशि दी जाती है जबकि शेष सभी राज्यो मे पाठ्यपुस्तक वितरित होती है। इस योजना पर एक वर्ष का प्रति छात्र व्यय पश्चिम बगाल (14 रुपए) मे सबसे कम तथा मिजोरम (443 रुपए) मे सबसे अधिक होता है। इस योजना के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा की कुल धनराशि का प्रतिशत व्यय सबसे कम दादरा व नगर हवेली (1.05) मे तथा सबसे

अधिक लक्षद्वीप (7 79) मे किया जाता है। पाठ्यपुस्तको को रखने के लिए गोदामो की कमी, खराब सड़कें, पुस्तको की आपूर्ति मे देरी, सभरक द्वारा हिसाब देने में देरी, अपर्याप्त निर्धारण धनराशि आदि इस योजना के कार्यान्वयन की मुख्य बाधाए है।

— बालिका उपस्थिति छात्रवृत्ति योजना केवल 14 राज्यो तथा केन्द शासित प्रदेशो मे लागू है। त्रिपुरा में यह सबसे पहले (1962) तथा पजाब मे सबसे बाद (1992) में लागू की गई। मिजोरम, राजस्थान तथा चडीगढ़ मे समस्त बालिकाए जबकि शेष ग्यारह राज्यो मे अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछडी जाति की बालिकाए इस योजना के अन्तर्गत आती है। प्रत्येक बालिका की एक वर्ष के लिए छात्रवृत्ति धनराशि पाडिचेरी (20 रुपए) में सबसे कम तथा पजाब (500 रुपए) में सबसे अधिक है। प्राथमिक शिक्षा पर कुल व्यय का इस योजना पर प्रतिशत व्यय दमन व दीव (2 20) मे सबसे अधिक तथा हिमाचल प्रदेश (0 01) मे सबसे कम है।

— राज्यो की सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक पृष्ठभूमि पर आधारित, 23 राज्य-स्तरीय सूचक विभिन्न राज्यो के बीच गहन विषमता दर्शाते हैं। इनमे से कुछ सूचक औसत से ऊपर वाले राज्यो मे अधिक विषमता दर्शाते है। यह सूचक राज्य की जनसख्या, अनुसूचित जाति की जनसख्या, अनुसूचित जनजाति की जनसख्या, खेतिहर महिला मजदूर, प्रति व्यक्ति मासिक व्यय तथा पक्की सडकें है। परतु गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले व्यक्तियो पर आधारित सूचक औसत मूल्य मे ऊपर वाले राज्यो तथा इससे नीचे वाले राज्यो के बीच समान विषमता दर्शाता है।

— उपरोक्त 23 सूचको के मध्य सहसबध गुणाक (Correlation Coefficient) सीमित रूप से ही उनके बीच सबध दर्शा पाया है। परतु इस विश्लेषण ने दर्शाया कि विभिन्न राज्यो की जनसख्या का वितरण सूचक कई अन्य सूचको से सबधित है। अत' प्राथमिक स्तर पर बालिकाओ की सहभागिता के अन्य सूचको से अनुबन्ध स्थापित करने के लिए पथ-विश्लेषण विधि के प्रयोग से पूर्व राज्यो की जनसख्या के अनुपात के आकडे समायोजित किए गए। इस पथ-विश्लेषण मे विभिन्न घटको के बीच कालिक सबंधो के द्वारा प्रत्येक घटक के योगदान का आकलन अन्य घटको के अशदान को स्थिर रखने मे सहायक हुआ।

— उपरोक्त पथ-विश्लेषण विधि दर्शाती है कि बालिकाओ के नामाकन का राज्य स्तर पर अनुपात उन राज्यो मे अधिक है जहा गरीबी, प्रति व्यक्ति व्यय तथा अनुसूचित जाति की जनसख्या का अनुपात औसतन कम है। इसके अतिरिक्त दूसरी ओर शिक्षा सुविधा, पके भोजन का आबटन, नि शुल्क पाठ्यपुस्तक, नि'शुल्क पोशाक तथा उपस्थिति छात्रवृत्ति के लक्ष्य क्षेत्र का विस्तार तथा नि.शुल्क पाठ्यपुस्तक, योजना से लाभान्वित छात्र सख्या जैसे घटको के स्तरो में वृद्धि से बालिकाओ के नामाकन भी बढ़े है। लेकिन मध्याह्न भोजन योजना के अन्तर्गत लाभान्वित छात्र सख्या बालिकाओं के दाखिले के अनुपात से ऋणात्मक रूप से ही सबद्ध है।

— दाखिला अनुपात मे लिग-समता सूचक मे अच्छी स्थिति वहा है जहा पर गरीबी तथा प्राथमिक स्तर पर प्रति व्यक्ति व्यय कम है। शिक्षा सुविधा, मध्याह्न भोजन का प्रकार, नि शुल्क पोशाक के लक्ष्य क्षेत्र का विस्तार जैसे घटको का योगदान लिग-समता बढाने मे सहायक रहा है।

— तमिलनाडु मे विद्यालय स्तर पर किए गए अध्ययन से पता चलता है कि वहा पर विद्यालयो मे बच्चो को मध्याह्न भोजन पूरे वर्ष (365 दिन) दिया जाता है। सभी बच्चो को संतोषजनक गुणवत्ता का भोजन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अधिकाश विद्यालयो के अनुसार भोजन की गुणवत्ता की समय-समय पर जाच की जाती है। लगभग 95 प्रतिशत विद्यालयो ने बताया कि मध्याह्न भोजन योजना से बालिकाओ के नामाकन तथा अवधारण (retention) मे वृद्धि हुई है। एक-तिहाई अभिभावको ने सुझाव दिया कि भोजन की मात्रा मे वृद्धि की जानी चाहिए। कुछ अभिभावको (16.67%) ने दूध तथा फल दिए जाने का भी सुझाव दिया। लगभग सभी विद्यालयो में नि शुल्क पाठ्यपुस्तकें सत्र के पहले माह मे ही वितरित कर दी जाती है। केवल 4 प्रतिशत विद्यालयो में बच्चों को पुस्तके मिलने मे एक माह की देरी हुई। सभी विद्यालयों मे पुस्तके उनकी माग के अनुसार मिली। 89.3 प्रतिशत विद्यालयो मे इस योजना का निरीक्षण ब्लाक स्तर के अधिकारियों द्वारा किया गया। 96 प्रतिशत

से अधिक विद्यालयो के अनुसार इस योजना से बालिकाओ के नामाकन तथा अवधारण मे वृद्धि हुई। तीन-चौथाई से अधिक अभिभावको ने इच्छा प्रकट की कि इस योजना के अन्तर्गत बच्चो को कापिया भी मिलनी चाहिए। नि शुल्क पोशाक योजना 97 प्रतिशत विद्यालयो मे चल रही है, उनमे से लगभग 93 प्रतिशत मे मांग के अनुसार पोशाकें मिली। लगभग दो-तिहाई विद्यालयो मे पोषाक सत्र के प्रथम दो माह मे वितरित की गई। लगभग 15 प्रतिशत विद्यालयो ने उनकी सिलाई की गुणवत्ता के बारे मे शिकायत की। उन्होने इच्छा व्यक्त की कि पोशाक के दो सेट मिलने चाहिए तथा उनका कपड़ा अच्छी गुणवत्ता का होना चाहिए। अभिभावको तथा ग्राम मुखियाओं द्वारा लगभग एक से ही विचार व्यक्त किए गए। विद्यालय स्तर के आकडो पर आधारित पथ-विश्लेषण से पता चलता है कि पोशाक योजना बालिकाओ के नामाकन तथा उनकी उपस्थिति पर सीधा धनात्मक प्रभाव डालती प्रतीत होती है। यह विश्लेषण यह भी दर्शाता है कि यदि शिक्षक विद्यालय मे अधिक से अधिक उपस्थित रहे तो बालिकाओ का नामाकन प्रतिशत बढ सकता है। अवधारण दर मे लिग समता तथा अभिभावको की बालिकाओ के प्रति मनोवृत्ति के बीच धनात्मक सबध का भी पता चलता है।

— उत्तर प्रदेश मे किए गए विद्यालय स्तर पर अध्ययन के अनुसार मध्याह्न भोजन योजना सभी चुने हुए विद्यालयो मे लागू है। 97 प्रतिशत से अधिक विद्यालयो मे 80 प्रतिशत उपस्थिति के मानक का पालन हो रहा है। आधे से कुछ अधिक विद्यालयो ने सूचित किया कि उन्हे इस योजना को कार्यान्वित करने मे आई कठिनाइयो का निवारण करने मे ग्राम शिक्षा समिति से कोई सहायता नही मिली। फैजाबाद तथा सुल्तानपुर जनपदो के सभी विद्यालयो मे 1998-99 सत्र में 5 से लेकर 10 माह तक बच्चो को खाद्यान्न वितरित नहीं हुआ। नैनीताल जनपद के कुछ विद्यालयो मे भी फरवरी तथा मार्च 1999 मे कुछ इसी तरह की स्थिति बनी रही। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक छात्र को एक सत्र मे 10 माह तक तीन किलोग्राम प्रति माह के हिसाब से खाद्यान्न वितरित किया जाता है। अभिभावको तथा ग्राम मुखियाओ ने सुझाव दिया है कि खाद्यान्न का वितरण या तो विद्यालय के माध्यम से किया जाए अन्यथा राशन कार्ड द्वारा। उन्होने यह भी सुझाव दिया कि खाद्यान्न के साथ दाले तथा अन्य पौष्टिक खाद्य सामग्री भी दी जानी चाहिए। उन्होने खाद्यान्न की मात्रा तथा गुणवत्ता मे वृद्धि के लिए अपेक्षा की। नि शुल्क पाठ्यपुस्तक योजना राज्य मे पहली बार 1998-99 मे डी पी ई पी प्रोग्राम के अन्तर्गत 15 जनपदो मे लागू की गई। यह योजना दो डी पी ई पी जनपदो के सभी 60 चुने हुए विद्यालयो मे चालू है। अधिकाश (96%) अभिभावको ने सूचित किया है कि बच्चो को पाठ्यपुस्तकें अच्छी हालत मे मिली। इन विद्यालयो मे 85 प्रतिशत से अधिक ने सूचित किया कि इस योजना से बालिकाओ के नामाकन तथा अवधारण में वृद्धि हुई है। विद्यालयों ने पुस्तको के वितरण में हुई तीन से पाच माह की देरी के विषय मे बताया। इसके अतिरिक्त 22 प्रतिशत विद्यालयो ने सूचित किया कि उन्हे पुस्तकें माग के अनुसार प्राप्त नही हुई। अभिभावको तथा ग्राम मुखियाओ ने सुझाव दिया कि पाठ्यपुस्तके सत्र के प्रारभ मे ही बच्चों को उपलब्ध की जानी चाहिए तथा सभी बच्चो को, विशेषतया गरीब बच्चो को चाहे वे किसी भी जाति के हो, मिलनी चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि पाठ्यपुस्तको के साथ सलेट तथा कापिया भी दी जानी चाहिए। विद्यालय स्तर के आकडो पर आधारित पथ-विश्लेषण, मध्याह्न भोजन योजना तथा निःशुल्क पाठ्यपुस्तक योजना के साथ बालिकाओ के नामाकन तथा उनके अवधारण का सबध स्थापित करने मे उपरोक्त कारणो से असफल रहा। ❑❑

साभार : शैक्षिक सर्वेक्षण और आंकड़ा प्रक्रियन विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली

सामान्य एवं दृष्टिबाधित बालक-बालिकाओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

❑ विजय प्रताप विश्वकर्मा

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समुचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान करना राज्य का दायित्व है जिससे वह समाज में आत्मनिर्भर बनकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सके। इस दृष्टि से केवल सामान्यजन की ही नहीं, बल्कि शारीरिक रूप से अक्षम, असमर्थ अथवा विकलांगों की भी समुचित देखभाल करना आवश्यक है। कोठारी आयोग एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने विकलांग बालकों की समस्याओं को देखते हुए उनके लिए छात्रावास सहित विशिष्ट-विद्यालयों की जरूरत पर बल दिया है। इन्हीं दृष्टिबाधित विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के समायोजन की जानकारी प्राप्त करना एवं सामान्य विद्यार्थियों से इनकी तुलना करना, इस अध्ययन का प्रमुख ध्येय है।

सम्पूर्ण विश्व मे समता एव अवसर की समानता के लिए व्यापक माग है। अपेक्षित आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु सभी जनतात्रिक एव समाजवादी देशो मे यथा सभव प्रयास भी किया जा रहा है, क्योकि इन राष्ट्रो की प्रगति प्राकृतिक ससाधनो के साथ-साथ मानवीय संसाधनो पर भी निर्भर करती है। इस दृष्टि से मानवीय ससाधनो के विकास मे शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अत. राष्ट्र की प्रगति मे समस्त जन समुदाय की सहभागिता के लिए सभी को समुचित शिक्षा एव समान अवसर सुलभ हो, यह व्यवस्था सुनिश्चित करना राष्ट्र का दायित्व है। इन समस्त जनो मे 'विकलाग' भी सम्मिलित है।

भारत मे तीव्र गति से बढती हुई जनसख्या वृद्धि के साथ-साथ विकलागों की संख्या भी निरन्तर बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय-न्यादर्श सर्वेक्षण (N S S.) (1991) के अनुसार शारीरिक रूप से विकलाग व्यक्तियो की कुल सख्या 14 56 मिलियन है जिनमे 36,262 लाख व्यक्ति दृष्टिबाधित है। केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय, भारत सरकार की एक रिपोर्ट (1997) के अनुसार विश्व मे कुल दृष्टिबाधित व्यक्तियो की सख्या 4 20 करोड़ है जिनमे 1.20 करोड़ दृष्टिबाधित भारतीय है। इन समस्त लोगों की समुचित शारीरिक देखभाल के साथ-साथ इनकी शिक्षा एव प्रशिक्षण की व्यवस्था करना सरकार एव समाज का दायित्व है। पर्याप्त एव यथोचित शिक्षण एव प्रभावी प्रशिक्षण द्वारा ही इन्हे आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। इससे इनमे समायोजन की क्षमता का विकास भी सभव हो सकेगा।

बोमैन (1950) ने टिप्पणी करते हुए कहा है कि "शारीरिक दोष के प्रत्यक्ष प्रभाव की तुलना मे व्यक्तित्व प्रणाली उनकी विकलागता के सामाजिक और आर्थिक परिणाम पर विस्तृत रूप से आधारित होती हैं।" राइट (1960) ने अपंगता-स्तर एव समायोजन से सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा करते हुए लिखा है कि "सामान्यतया यह माना जाता है कि व्यक्ति में जितनी अधिक मात्रा मे अपगता होगी, उतनी ही मात्रा मे उसे समायोजन अर्जित करने मे कठिनाई का सामना करना पडेगा।" बैनसेवेज (1968) का कहना है कि "स्वास्थ्य, शारीरिक बनावट और शारीरिक क्षमता मे असमानता का सामाजिक ग्राह्यता एवं समायोजन से सीधा सम्बन्ध है और विकलागता के कारण व्यक्ति को सीमित अवसर मिलने के कारण उनमे आवश्यक मानसिक कौशलो का विकास नही हो पाता है।" कपूर एव सेन (1984) ने व्यक्तित्व दरो के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि--"दृष्टिबाधितो के सन्दर्भ मे मानसिक अभिवृत्तियां सामान्यत. उनके प्रतिकूल होती है तथा

सामाजिक रूढ़िग्रस्त धारणाएं एव अन्तर्क्रियाए दृष्टिहीनो के सन्दर्भ मे अनुकूल नहीं होती और उनकी स्वय की धारणा तथा व्यक्तित्व का समायोजन उन पर प्रभाव डालती है।" उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि किसी भी प्रकार की विकलागता व्यक्तित्व के समायोजन को प्रभावित करती है जिससे वे राष्ट्रीय विकास मे अपनी सक्रिय भूमिका निभाने मे असमर्थ एव अक्षम हो जाते है।

राष्ट्रीय विकास में विकलागो की सक्रिय भागीदारी एव उनके लिए समुचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था हेतु कोठारी आयोग ने प्रकाश डालते हुए कहा है कि—"विकलागो के सामान्य विकास के लिए इन्हे समानता के आधार पर जीवन का सामना करने, आत्म-विश्वास जागृति करने एव साहस उत्पन्न करने हेतु शारीरिक तथा मानसिक रूप से विकलागो के लिए वाछित शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।" राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) मे स्वीकार किया गया है कि "विकलागो को शिक्षा देने का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे पूरे समाज के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सके। उनकी उन्नति भी आम लोगो की तरह हो। वे भी पूरे भरोसे और हिम्मत के साथ जिन्दगी जिये।" कोठारी आयोग एव राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के सुझावो के अनुरूप इन विशिष्ट एव विकलाग बालको की विभिन्न प्रकार की समस्याओ को दृष्टिगत रखते हुए इनकी यथोचित शिक्षा एव प्रशिक्षण हेतु भारत मे विशिष्ट-विद्यालयों की स्थापना को गति मिली। इन विशिष्ठ विद्यालयो मे से दृष्टिबाधित विद्यालय भी एक है, जिनमे अध्ययनरत विद्यार्थियो की समायोजन क्षमता को जानने का प्रयास किया गया।

इस निमित्त तत्सम्बन्धी साहित्य का अवलोकन किया गया, यथा—आडवानी (1965) ने दृष्टिबाधितो के शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओ के अध्ययन मे पाया कि "बहुतायत दृष्टिबाधित बच्चे अपर्याप्त शैक्षिक पृष्ठभूमि वाले गरीब परिवारों से आते है।" सिह एव अखतर (1971) ने सामान्य एव दृष्टिबाधित लोगो के तुलनात्मक अध्ययन मे पाया कि "आत्म-सम्मान के महत्व के साथ सामाजिक महत्व के आकडो पर, दृष्टिबाधित समूहो मे सामान्य समूह अच्छे थे।" वासुदेव (1979) ने दृष्टिबाधित लोगो के सामाजिक समायोजन का अध्ययन किया और व इस निष्कर्ष पर पहुचे कि "दृष्टिबाधिता अनिवार्यत व्यक्तित्व के विकास मे अथवा समायोजन मे सार्थक अन्तर उत्पन्न नही करती है।" मल्होत्रा (1979) ने अपने [illegible] अध्ययन मे दृष्टिबाधित बालको को सामान्य बालको की अपेक्षा अधिक कुसमायोजित पाया। तारा और मोहन्ती (1981) ने अपने अध्ययन मे पाया कि "सामान्य बालको की तुलना मे दृष्टिबाधित बच्चे कम आक्रमणकारी, कम प्रौढ़, कम जोशीले, निवर्तन प्रतिक्रिया युक्त, सवेगात्मक दृष्टि से कम सन्तुलित, नियमो का पालन करने वाले, निम्न स्तर का स्व-बोध रखने वाले और न्यून स्तर के स्वाभिमान वाले बालक होते है।" बाला (1985) ने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि "सामान्य बालको की तुलना मे दृष्टिबाधित बच्चे गृह, स्वास्थ्य, भावात्मक तथा शैक्षिक समायोजन की दृष्टि से निम्न श्रेणी के थे।" जबकि, लता (1985) ने सामान्य एव दृष्टिबाधित विद्यार्थियो के समायोजन मे सार्थक अन्तर नही पाया। प्रवीन एव सरिता (1990) ने दृष्टिबाधित बालक एव बालिकाओ के विभिन्न प्रकार की समायोजन प्रवृत्तियो के अन्तर्गत पाया कि "शैक्षिक एव भावात्मक समायोजन की दृष्टि से ये सुसमायोजित होते है, जबकि इनमे सामाजिक कुसमायोजन की समस्या प्रबल रूप से पायी जाती है।"

उपरोक्त विवेचन से विदित होता है कि सामान्य बालको का विकलाग बालको से समायोजन से सम्बन्धित तुलनात्मक अध्ययन तो हुए है, परन्तु कोई भी ऐसा अध्ययन नही हुआ जिसमे उच्च प्राथमिक स्तर पर सामान्य एव दृष्टिबाधित बालक-बालिकाओ की समायोजन प्रवृत्तिया को जानने का प्रयास किया गया हो। इसी की पूर्ति हेतु प्रस्तुत अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

- कक्षा 6, 7 एव 8 मे अध्ययनरत सामान्य एव दृष्टिबाधित बालक-बालिकाओ के समायोजन की जानकारी प्राप्त करना।
- कक्षा 6, 7 एव 8 मे अध्ययनरत सामान्य एव दृष्टिबाधित बालक-बालिकाओ के समायोजन मे अन्तर ज्ञात करना।

परिकल्पनाएं

उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओ का निर्माण किया गया—

- कक्षा 6, 7 एव 8 में अध्ययनरत सामान्य एव दृष्टिबाधित वालको के समायोजन मे सार्थक अन्तर नही है।
- कक्षा 6, 7 एव 8 मे अध्ययनरत सामान्य एव दृष्टिबाधित बालिकाओं के समायोजन में सार्थक अन्तर नही है।

पदों की परिभाषा

दृष्टिबाधित बालक—प्रस्तुत अध्ययन मे, दृष्टिबाधित बालक से आशय ऐसे बालको से है जिनमे दृष्टि की समुचित सुधारो के बावजूद जिसकी दृष्टि तीक्ष्णता 20/200 फुट या 6/60 मीटर तक रह जाती है वह दृष्टिबाधित बालक कहा जाता है। अत इसमे आंशिक दृष्टिबाधित एव पूर्णत. दृष्टिहीन दोनो प्रकार के बालक सम्मिलित है।

समायोजन—प्रस्तुत अध्ययन मे, समायोजन का आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा पर्यावरण एवं विभिन्न परिस्थितियो मे अधिक सामजस्य पूर्ण सम्बन्ध बनाने हेतु व्यक्ति अपने व्यवहारो मे परिवर्तन लाने मे सक्षम होता है।

अध्ययन विधि एवं न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन मे अनुसधान की सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया है। न्यादर्श के रूप मे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली के दो सामान्य एवं चार दृष्टिबाधित विद्यालयो मे मत्र 1998-99 में अध्ययनरत कक्षा 6, 7 एवं 8 से क्रमश 40, 28 एव 32 (कुल 100) विद्यार्थी अध्ययनार्थ चयनित किए गए। दृष्टिबाधित विद्यालयो मे अध्ययनरत विद्यार्थियो की सख्या कम होने के कारण यादृच्छिक रूप से चयनित कुल 50 दृष्टिबाधित बालक-बालिकाओ के साथ 50 सामान्य बालक-बालिकाओ पर प्रस्तुत अध्ययन सम्पादित किया गया।

प्रयुक्त उपकरण—समायोजन के अध्ययन हेतु डा टी एस 'राव (बी.एच यू) द्वारा निर्मित चिल्ड्रेन एडजेस्टमेट इन्वेटरी' का प्रयोग किया गया। आविष्कारिका के विश्वसनीयता की गणना सम-विषम, अर्द्ध-विच्छेद द्वारा की गई जिसकी विश्वसनीयता फलाक 0.57 है।

इस आविष्कारिका मे 73 वक्तव्य हैं जो उच्च प्राथमिक कक्षाओ मे पढने वाले विद्यार्थियो की समायोजन विशेषताओ का वर्णन करते है। आविष्कारिका के अभिभावक प्रारूप व शिक्षक प्रारूप मे से केवल शिक्षक प्रारूप का ही प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण—आंकडों के सांख्यिकीय-विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक-विचलन के अलावा 'टी' परीक्षण की सहायता से प्रदत्तो का विश्लेषण किया गया।

विश्लेषण, व्याख्या एवं परिणाम—सामान्य एव दृष्टिबाधित बालक-बालिकाओ के सामान्य समायोजन तथा दोनो के मध्य तुलनात्मक अध्ययन हेतु सांख्यिकीय विश्लेषण से प्राप्त परिणामों की व्याख्या पूर्व निर्मित उद्देश्य एव शून्य परिकल्पनाओ के आलोक मे की जा रही है।

परिकल्पना संख्या 1

कक्षा 6, 7 एवं 8 में अध्ययनरत सामान्य एवं दृष्टिबाधित बालको के समायोजन में सार्थक अन्तर नही है।

तालिका. 1 का अवलोकन करने पर विदित होता है कि कक्षा 6 एव 7 के सामान्य एवं दृष्टिबाधित बालको के मध्य समायोजन की विभिन्न प्रवृत्तियों के स्तर पर सार्थक अन्तर नही है, जबकि कक्षा 8 के सामान्य एव दृष्टिबाधित बालको के मध्य समायोजन की प्रत्याहार-प्रवृत्ति सामाजिक-कौशल एव अपर्याप्तता की भावना की प्रवृत्ति स्तरो पर सार्थक अन्तर है तथा समग्र समायोजन के स्तर पर भी सार्थक अन्तर है। अत परिकल्पना स. 1 कक्षा 6 एव 7 के कक्षा-स्तर पर स्वीकार की गई, जबकि कक्षा 8 के स्तर पर अस्वीकार की गई, क्योकि इस स्तर पर समायोजन की तीन प्रवृत्तियों (क्रमाक 2, 4 एव 6) के अलावा समग्र समायोजन के स्तर पर दोनो की समूहो मे सार्थक अन्तर है। यद्यपि, कक्षा 8वी के स्तर पर उक्त समायोजन की प्रवृत्तियो (यथा प्रत्याहार की प्रवृत्ति, सामाजिक-कौशल एवं अपर्याप्ता की भावना) के स्तर पर 0 05 विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक अन्तर है तथापि, दृष्टिबाधित बालको की अपेक्षा सामान्य बालको के

कक्षा-6,7 एवं 8 के सामान्य एवं दृष्टिबाधित बालकों के समायोजन की विभिन्न प्रवृत्तियों की स्तर पर तुलना
(उच्च मध्यमान कुसमायोजन का घोतक है)
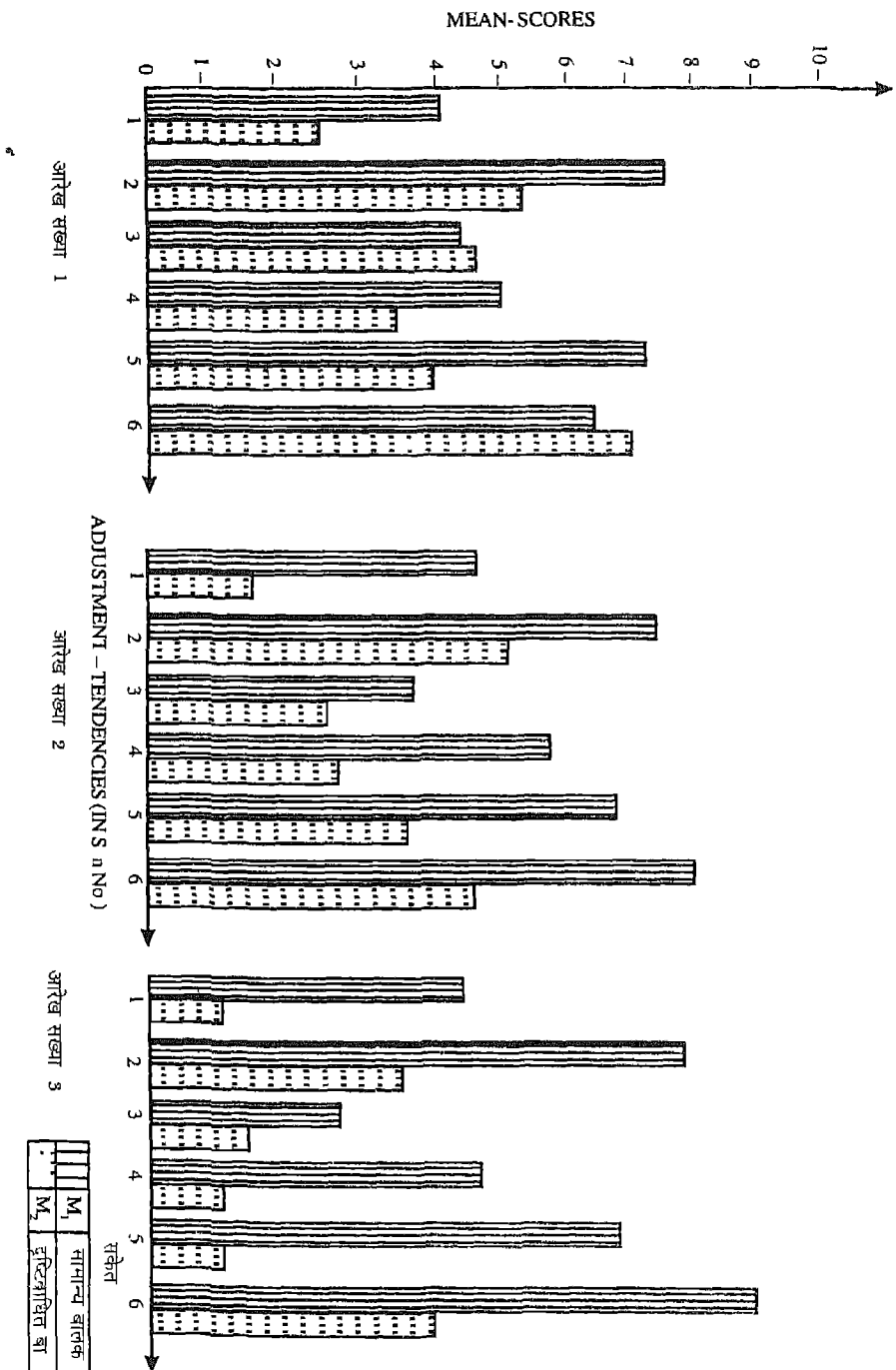
कक्षा 6,7 एवं 8 की सामान्य एवं दृष्टिबाधित बालिकाओं के समायोजन की विभिन्न प्रवृत्तियों की स्तर पर तुलना
(उच्च मध्यमान कुसमायोजन का द्योतक है)
MEAN- SCORES
0
1
2
3
4
5
6
7
8
9
1
2
3
4
5
6
ADJUSTMENT – TENDENCIES (IN S No)
आरेख सख्या 4
आरेख सख्या 5
आरेख मख्या 6
सकेत
M1 सामान्य बालिकाएं
M2 दृष्टिबाधित बालि०
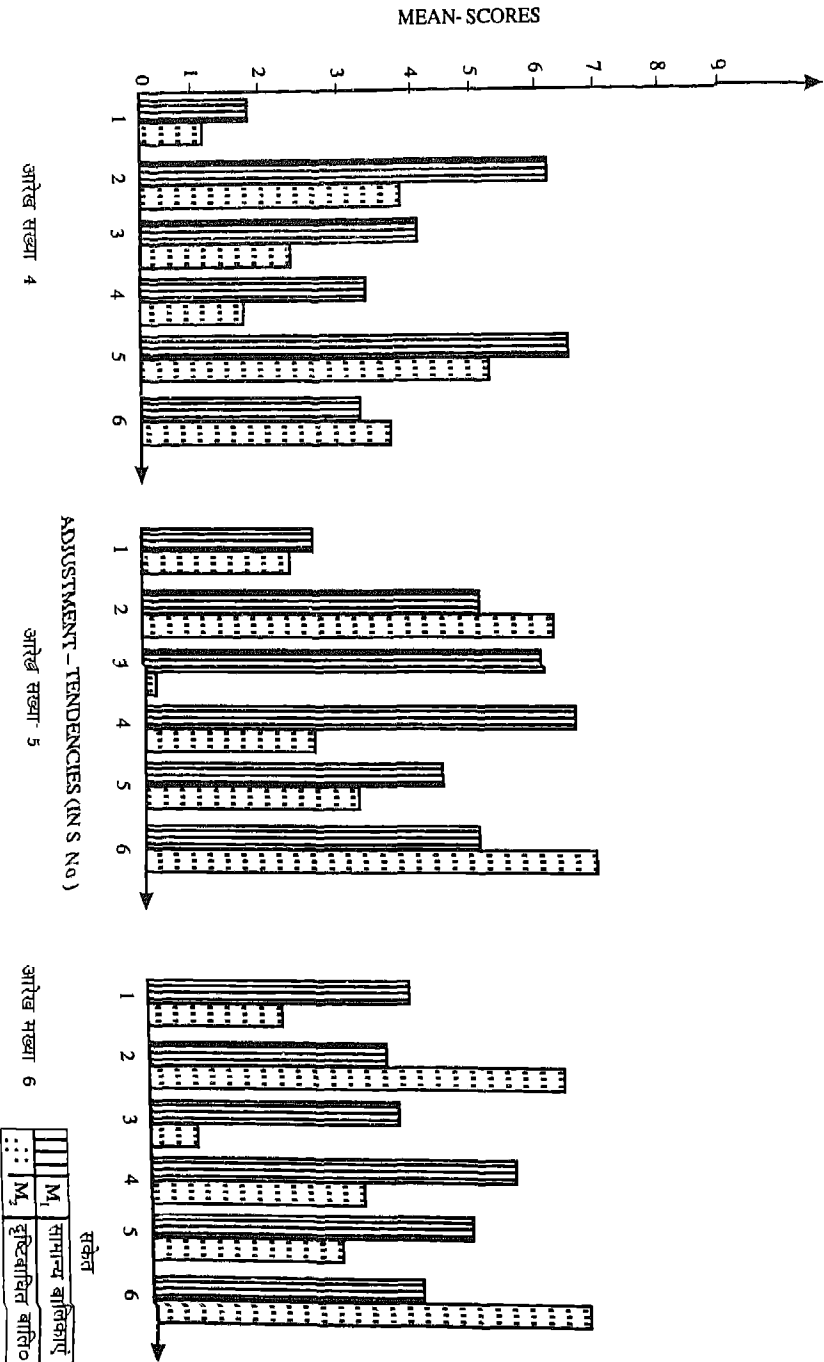
तालिका 1

कक्षा 6, 7 एवं 8 के सामान्य एवं दृष्टिबाधित बालकों के समायोजन का सांख्यिकीय-विश्लेषण

कक्षा 6 के बालक

समायोजन प्रवृत्तिया	सामान्य		दृष्टिबाधित		
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मान. विच	टी मू.
1. समाज विरोधी प्रवृत्ति	4 00	3 535	2 666	0 745	0 782
2. प्रत्याहार प्रवृत्ति	7.5	2 327	5 5	2 061	1 364
3 घबराहट की प्रवृत्ति	4 333	3 299	4 5	2 397	-0 086
4 सामाजिक कौशल	4.75	3 538	3 66	0 942	0 627
5 आक्रामक-प्रवृत्ति	7 166	4 079	4 00	1 414	2 046
6 अपर्याप्तता की भावना	6.833	2 969	7 333	0 471	-0 352
समग्र समायोजन	34.583	14 180	27 666	4 552	0 984
प्रतिदर्श	12 + 12 = 24				

कक्षा 7 के बालक

समायोजन प्रवृत्तिया	सामान्य		दृष्टिबाधित		
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मान विच	टी मू.
1. समाज विरोधी प्रवृत्ति	4.7	5.568	1 3	1 417	1 197
2. प्रत्याहार प्रवृत्ति	7.5	3 930	4.5	2 5	1.303
3. घबराहट की प्रवृत्ति	3.5	3 232	2.7	1 1	0 474
4. सामाजिक कौशल	5.6	3 261	2.3	2 368	1 656
5. आक्रामक-प्रवृत्ति	6 1	5.629	5.2	0 871	0.478
6 अपर्याप्तता की भावना	8.0	2.720	4 4	3.411	1.722
समग्र समायोजन	35.4	19 131	20 4	10.855	1 379
प्रतिदर्श	10 + 10 = 20				

कक्षा 8 के बालक

समायोजन प्रवृत्तियां	सामान्य		दृष्टिबाधित		
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मान विच	टी.मू
1 समाज विरोधी प्रवृत्ति	4 583	3 639	1 25	1 479	1 798
2 प्रत्याहार प्रवृत्ति	7.416	2 531	3.666	1 972	2.478 *
3 घबराहट की प्रवृत्ति	2 916	2.498	1 583	0 493	1 109
4. सामाजिक कौशल	4 75	2.52	1.25	1.479	2.539 *
5 आक्रामक-प्रवृत्ति	7 00	5 369	4 166	0 986	1 049
6. अपर्याप्तता की भावना	9.00	3.464	3 5	2 958	2 560 *
समग्र समायोजन	35.666	16.478	15 416	6.409	2 428 *
प्रतिदर्श	10 + 10 = 20				

* टी. मूल्य = 0 05 विश्वनीयता-स्तर पर सार्थक अन्तर।

मध्यमान का अधिक होना उनके कुसुमायोजन का द्योतक है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सामान्य बालाकों मे दृष्टिबाधित बालको की तुलना मे दृढ निश्चय का अभाव, समाज विरोधी व्यवहार एव आत्मविश्वास मे अपेक्षाकृत कमी होती है जबकि दृष्टिबाधित बालक अपनी दृष्टिबाधिता को स्वीकार करके आत्मविश्वास एव सावधानी पूर्वक आने वाली विपरीत परिस्थितियो का सामंजस्यपूर्ण सामना करने एव अपने व्यवहार को सक्षम बनाने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहते है।

यदि हम कक्षा 6, 7 एव 8 मे अध्ययनरत सामान्य एव दृष्टिवाधित बालको का (विश्लेषणात्मक दृष्टि से) समायोजन की विभिन्न प्रवृत्तियो से प्राप्त मध्यमानो के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करे, तो निम्न आरेखों को देखा जा सकता है–

आरेख सं. 1, 2 एव 3 का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि–

1. कक्षा 6 के सामान्य बालक घबराहट की प्रवृत्ति (क्रमाक-3) एव अपर्याप्तता की भावना (क्रमांक-6) की प्रवृत्तियों के अलावा शेष सभी समायोजन की प्रवृत्तियो के स्तर पर दृष्टिबाधित बालको की अपेक्षा अधिक कुसुमायोजित हैं।
2. कक्षा 7 एव 8 के सामान्य बालक समायोजन की सभी प्रवृत्तियो के स्तर पर दृष्टिबाधित बालको की अपेक्षा अधिक कुसुमायोजित है।

परिकल्पना संख्या 2

कक्षा 6, 7 एव 8 मे अध्ययनरत सामान्य एव दृष्टिबाधित बालिकाओं के समायोजन मे सार्थक अन्तर नही है।

तालिका. 2 पर दृष्टिपात करने पर विदित होता है कि कक्षा 6, 7 एव 8 के सामान्य एव दृष्टिबाधित बालिकाओ के मध्य समायोजन के किसी भी स्तर पर सार्थक अन्तर नही है। अत शून्य परिकल्पना स्वीकृत की गई। यदि हम दोनो प्रकार की बालिकाओ में समायोजन की विभिन्न प्रवृत्तियो पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि सामान्य बालिकाए दृष्टिबाधित बालिकाओं की अपेक्षा अधिक कुसमायोजित है, जो कि उनके मध्यमानो के तुलनात्मक अवलोकन से भी स्पष्ट हो जाता है। कक्षा 6, 7 एव 8 मे अध्ययनरत इन सामान्य एव दृष्टिबाधित

तालिका 2

कक्षा 6, 7 एवं 8 के सामान्य एवं दृष्टिबाधित बालिकाओं के समायोजन का सांख्यिकीय-विश्लेषण

कक्षा 6 की बालिकाएं

समायोजन प्रवृत्तिया	*सामान्य*		*दृष्टिबाधित*		
	मध्यमान	*मानक विचलन*	*मध्यमान*	*मान विच*	*टी मू*
1 समाज विरोधी प्रवृत्ति	1 75	0.43	1.125	1.452	0.771
2. प्रत्याहार प्रवृत्ति	5.75	2 817	3 75	2.277	1 036
3 घबराहट की प्रवृत्ति	4.00	3 640	2 375	0.992	0 808
4 सामाजिक कौशल	3.125	3 443	1.625	2.175	0 689
5. आक्रामक-प्रवृत्ति	6 5	1 5	5 00	0.866	1.621
6 अपर्याप्तता की भावना	3.25	1.785	3 50	3.240	0.126
समग्र समायोजन	24.375	9 472	17.375	9.949	0 953
प्रतिदर्श	8 + 8 = 16				

कक्षा 7 की बालिकाएं

समायोजन प्रवृत्तिया	*सामान्य*		*दृष्टिबाधित*		
	मध्यमान	*मानक विचलन*	*मध्यमान*	*मान विच*	*टी मू*
1. समाज विरोधी प्रवृत्ति	2.75	2.048	2.5	0 866	0 108
2. प्रत्याहार प्रवृत्ति	5.00	1.870	6.5	0.5	0 858
3. घबराहट की प्रवृत्ति	6.25	3.631	0.75	0.433	2.202
4 सामाजिक कौशल	7.25	3.344	3.00	00	1.862
5 आक्रामक-प्रवृत्ति	4.5	2.598	3.00	00	0.845
6. अपर्याप्तता की भावना	5 75	1.479	7.00	00	1 238
समग्र समायोजन	31.5	6.982	22.75	0.433	1.831
प्रतिदर्श	4 + 4 = 8				

कक्षा 8 की बालिकाएं

समायोजन प्रवृत्तिया	सामान्य		दृष्टिबाधित		
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मान विच	टी मू
1 समाज विरोधी प्रवृत्ति	3 5	2 598	2.00	1 00	0.789
2 प्रत्याहार प्रवृत्ति	4 00	1.870	6.5	0.5	1 892
3 घबराहट की प्रवृत्ति	4 5	3.5	1 00	00	1 449
4. सामाजिक कौशल	5 75	4.866	3.00	00	0 832
5. आक्रामक-प्रवृत्ति	4.75	1.299	3.00	00	1 975
6 अपर्याप्तता की भावना	4.5	3.5	7 00	00	1 046
समग्र समायोजन	27 00	12.389	22 5	0 5	0 531
प्रतिदर्श	4 + 4 = 8				

टी मूल्य, विश्वसनीयता के किसी स्तर पर सार्थक अन्तर नही।

बालिकाओं का (विश्लेषणात्मक दृष्टि से) समायोजन की विभिन्न प्रवृत्तियो से प्राप्त मध्यमानों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन निम्न आरेखो द्वारा किया जा सकता है—

आरेख स 4, 5 एवं 6 का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि—

1. कक्षा 6 की सामान्य बालिकाए समायोजन के अपर्याप्तता की भावना को छोड़कर (क्रमांक-6) शेष सभी समायोजन की प्रवृत्तियों के स्तर पर दृष्टिबाधित बालिकाओ की अपेक्षा अधिक कुसमायोजित हैं।
2. कक्षा 6, 7 एव 8 की समान्य बालिकाए प्रत्याहार की प्रवृत्ति (क्रमाक-2) एव अपर्याप्तता की (क्रमाक-6) के स्तर के अलावा शेष सभी समायोजन की प्रवृत्तियो के स्तर पर दृष्टिबाधित बालिकाओं की अपेक्षा अधिक कुसमायोजित है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर ये बालिकाएं यद्यपि समान पाठ्यक्रम का अध्ययन करती है, तथापि दृष्टिबाधित बालिकाओ में शारीरिक, मानसिक एव सामाजिक दृष्टि से कही न कही अवश्य विपमताए पाई जाती है। अत. दृष्टिबाधित बालिकाओ मे उनकी उक्त विपमताए समान्य समायोजन मे बाधक प्रतीत नहीं होतीं, ऐसा प्राप्त परिणामो के आधार पर कहा जा सकता है। उक्त परिणाम वासुदेव (1979), एव लता (1985) के परिणामो से मेल खाते है। इसके अलावा प्रवीन एव सरिता (1990) के निष्कर्ष कि 'शैक्षिक एवं भावात्मक समायोजन की दृष्टि से दृष्टिबाधित बालक-बालिकाए सुसमायोजित होती है, को ध्यान मे रखते हुए कहा जा सकता है कि दृष्टिबाधित किसी भी बालक एव बालिका के समायोजन में बाधक नही होतीं। इन्हे सामान्य विद्यार्थियों के साथ समान रूप से समायोजित किया जा सकता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

अध्ययनो के परिणाम यह स्पष्ट इगित करते है कि दृष्टिबाधित बालक एव बालिकाओ की समायोजन प्रवृत्तियां उल्लेखनीय ही नही बल्कि समान्य बालक-बालिकाओं की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। तथापि, दोनो ही समूहों में विभिन्न प्रकार की समायोजन समस्याएं यथा—समाज विरोधी प्रवृत्ति, प्रत्याहार प्रवृत्ति, घबराहट की प्रवृत्ति, सामाजिक

कौशल, आक्रामक प्रवृत्ति, एवं अपर्याप्तता की भावना से सम्बन्धित पाई गई।

दृष्टिबाधित बालको मे घबराहट की प्रवृत्ति एव अपर्याप्तता की भावना (कक्षा 6 मे) एव बालिकाओ मे अपर्याप्तता की भावना सहित प्रत्याहार की प्रवृत्तियो के स्तर पर समायोजन की समस्या सामान्य बालक-बालिकाओ की अपेक्षा अधिक पाई गई। जिसके निराकरण हेतु ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

अध्ययन के निष्कर्ष इगित करते है कि यदि दृष्टिबाधित विद्यालयों के वातावरण, प्रदत्त सुविधाओ एव क्रिया-कलापो मे अपेक्षित सुधार किया जाए तो निश्चित रूप से इन विशिष्ट विद्यार्थियो की समायोजन क्षमता में सम्यक रूप से विकास होगा। अध्ययन के परिणामो के आधार पर कहा जा सकता है कि दृष्टिबाधिता इनके शैक्षिक, मानसिक एव सामाजिक विकास मे बाधक नही होती, और न ही ये विद्यार्थी सामान्य विद्यार्थियो की अपेक्षा कम सुसमायोजित है। अत. विशिष्ट विद्यालयो में अध्ययनरत इन विशिष्ट विद्यार्थियो की शिक्षा से जुडे समस्त लोगो का विशिष्ट विधियो एव तकनीको द्वारा इनगे अपेक्षित मूल्यो, समायोजन क्षमता एव व्यक्तित्व के विकास की दिशा मे सचेष्ट प्रयास वाछित है। शैक्षिक ज्ञान के साथ-साथ उनमे व्यावसायिक कौशलो के विकास पर भी बल दिया जाना चाहिए। इससे, एक तरफ इनमे आत्मनिर्भरता की प्रवृत्ति विकसित होगी तथा दूसरी तरफ समाज के लिए स्वयं की उपयोगिता सिद्ध करने मे इन्हे मदद मिलेगी। इससे इनके आत्मविश्वास मे वृद्धि होगी, हीनता की भावना से उबरने मे मदद मिलेगी और समुचित समायोजन की क्षमता का विकास होने के साथ-साथ 'सबके लिए शिक्षा' के राष्ट्रीय लक्ष्यो की पूर्ति होने मे भी सहायता मिल सकेगी। ❑❑

प्रवक्ता (विशिष्ट शिक्षा)
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान
गांधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर (चूरू)
राजस्थान

प्राथमिक स्तर पर भूगोल शिक्षण और शैक्षिक क्रीड़न की उपादेयता

❑ जी. सी. भट्टाचार्य

भूगोल एक ऐसा विषय है जिसे प्राथमिक से लेकर माध्यमिक, उच्च माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के सभी स्तरों में पढाया जाता है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर तो यह अनिवार्य विषय होता ही है, आगे ऐच्छिक विषय के रूप मे भी इसका महत्व किसी भी दृष्टि से कम नही हो जाता है। भूगोल शिक्षण के लिए मात्र चित्र, मानचित्र, रेखाचित्र, ग्लोब आदि का प्रयोग करना ही पर्याप्त नही माना जाता है अपितु शैक्षिक यात्रा या भ्रमण को भी समान रूप से महत्व दिया जाता है। वस्तुत: समस्त घटना तथा कार्यक्रम को चूंकि भौगोलिक परिप्रेक्ष्य के अभाव मे समझ पाना कठिन होता है, अत. भूगोल का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपरिहार्य हो जाता है। ऐतिहासिक घटनाओ से लेकर किसी क्षेत्र का धरातलीय स्वरूप (भौतिक तथा मानव निर्मित) आधारित उद्योग-धन्धे, यातायात, सचार साधन, रीति-रिवाज, आचार-विचार, व्यवहार तथा परम्परा आदि समस्त सामाजिक क्रियाकलापो को ठीक ढग से समझने के लिए भौगोलिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। इतना ही नही, भूगोल विषय के अध्ययन से मानसिक विस्तारण हो पाता है। वह विद्यार्थी जो इस विषय को ठीक से पढ़े होते है, अपने को विश्व नागरिक मानने से इन्कार नहीं कर पाते। अत प्राथमिक स्तर पर भी यह एक महत्वपूर्ण विषय माना जाता है। परतु वर्तमान काल मे आमतौर पर जिन शिक्षण विधियो का भूगोल जैसे विषय के अध्ययन के लिए प्रयोग किया जाता है, वे बहुधा इसे अरुचिकर बना देने में कोई कसर शेष नहीं छोडती है।

एक सर्वेक्षण मे यह देखा गया कि छोटे बच्चो के लिए प्राय: जिस कहानी कथन प्रणाली का उपयोग किया जाता है, वे कहानी के प्रति आग्रह जन्य ही स्वीकृत होते है। इसी प्रकार मानचित्र तथा ग्लोब आदि का प्रयोग भी प्राथमिक स्तर पर मात्र नवीन दर्शनीय वस्तु के रूप में आर्कषण का केन्द्र बिन्दु बन पाते है। प्रादेशिक या सकेन्द्रीय विधि आदि भी रोचक सिद्ध नही हो पाती है। अत. प्राथमिक स्तर पर भूगोल शिक्षण हेतु एक उपयुक्त विधि की खोज मे निरन्तर प्रयास किया जाना प्राथमिकता बन चुकी थी। भ्रमण या यात्रा विधि को कुछ हद तक उचित पाया गया लेकिन व्यय नियन्त्रण, तथा व्यवस्थापना की कठिनाईयों को देखते हुए अधिकाशत: विद्यालयो मे प्रयोग सम्बन्धी कठिनाईया सामने आने लगी। इस परिप्रेक्ष्य मे प्राथमिक स्तरीय अध्यापक, अध्यापिकाएं तथा शिक्षाशास्त्रियो के अभिमत को संग्रहित करने के बाद एक रोचक परिणाम सामने आया।

यह पाया गया कि कहानी कथन, भ्रमण, मानचित्र-चित्र, प्रदर्शन, गृह प्रदेश भूगोल तथा सकेन्द्रीय विधि, प्रोजेक्ट,

प्राथमिक स्तर पर भूगोल शिक्षण को रुचिकर बनाने के लिए जिन शिक्षण प्रणालियों का उपयोग किया जाता है, उनमें शैक्षिक क्रीड़न जिसे प्रस्तुत विवरण में भौगोलिक क्रीड़न के रूप में स्वीकृत किया गया है, एक महत्वपूर्ण नवाचारिक प्रणाली है। विकासात्मक परिप्रेक्ष्य पर विचार करते हुए इस प्रणाली के पद तथा उपादेयता की चर्चा की गई है। साथ ही प्राथमिक स्तर के लिए उपयोगी छः प्रमुख भौगोलिक क्रीड़न कार्यक्रमों का निर्माण किया गया जिनकी उपादेयता प्राथमिक तौर पर लघु अध्ययन के आधार पर प्रमाणित हुई।

शैक्षिक क्रीड़न, भूमिका निर्वाह तथा अनुरूपण आदि अनेक विधियों मे से शैक्षिक क्रीड़न प्रणाली को 56 प्रतिशत अभिमत प्राप्त हुए। उसके बाद द्वितीय स्थान पर भूमिका निर्वाह तथा अनुरूपण विधि थी क्योकि प्राप्त अभिमत 29 प्रतिशत रहा। कहानी कथन को 7 प्रतिशत, भ्रमण को 4 प्रतिशत, प्रदर्शन को 2 प्रतिशत एव सकेन्द्रीय तथा प्रोजेक्ट प्रणालियों को क्रमश: एक-एक प्रतिशत अभिमत प्राप्त हुए। इस सर्वेक्षण के आधार पर यह तय किया गया कि प्रथम

तथा द्वितीय स्तर पर वर्णित दोनो प्रणालियो की शैक्षिक तथा व्यावहारिक उपादेयता की जाच एक-एक करके की जाए। प्रस्तुत विवरण मे शैक्षिक क्रीडन को ही सर्वप्रथम प्रस्तुत करने के लिए प्रयास किया गया है।

शैक्षिक क्रीड़न

मूलत. यह एक नवाचारिक प्रणाली है जो खेल के माध्यम से सीखने के सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण दिनोदिन अधिक आर्कषक बनता जा रहा है। शैक्षिक क्रीडन वह खेल कार्यक्रम है जिसमे मानव व्यवहारो को अनुरूपित किया जाता है ताकि अधिगमकर्ता उन्हें रुचिकर ढग से भली-भाति सीख और समझ सके। सामाजिक सरचना के अन्तर्गत विभिन्न मानव व्यवहारों से सम्बन्धित परस्पर क्रियाओं को इन खेलो में केन्द्र बिन्दु माना जाता है और अधिगमकर्ता इनके माध्यम से सामाजिक व्यवहार सम्बन्धी रीति रिवाज, नियम, विधि निषेध तथा मर्यादाओ से परिचित होने के लिए प्रयास करते है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि शैक्षिक क्रीड़न खेल द्वारा सामाजिकरण प्रक्रिया के सचालन सम्बन्धी एक नवाचारिक व्यवस्था या प्रणाली है। निश्चित रूप से इसके माध्यम से अधिगमकर्ता, पारस्परिक सहयोग, मोलभाव, समझौता, समन्वयन, सगठन, प्रतिबद्धता, सहनशीलता आदि सामाजिक गुण तथा क्रियाओ से परिचित होते है, जो भूगोल विषय का एक महत्वपूर्ण (मानवीय) पक्ष है। यह मानव जीवन की सरचित या अनुरूपित परिस्थितिया प्रस्तुत करती है। इन परिस्थितियो मे प्रतिद्वन्द्विता तथा हार जीत की स्थिति सदा विद्यमान हो यह आवश्यक नही, लेकिन यह जरूरी हो जाता है कि सामूहिक तौर पर सहयोगाधारित ढंग से कार्य करना, स्वतत्र रूप से निर्णय लेना, पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को सीमित सन्दर्भ एव साधन के अन्तर्गत प्राप्त करने के लिए प्रयास करना आदि सीखना सम्भव हो सके।

एलेन (1966) ने मूलत. मनोरंजन सम्बन्धी खेलो की रचना सर्वप्रथम की थी जिसमे अधिगमकर्ता स्वेच्छापूर्वक अवकाशकाल मे ही प्रतिभागिता किया करते थे ताकि वे अमूर्त चिन्तन कर सके, कुछ गणितीय तर्को को समझ सके और सूत्रो का निर्माण कर सके। यह खोल पासे (डाईस) पर आधारित हुआ करते थे जिसके प्रत्येक तल पर एक अक्षर लिखे होते थे। इन पासो के सहारे खेलने वालो को दिए गए नियम के अनुसार सुसंरचित सूत्र बनाने पड़ते थे।

कोलमैन (1961-63) और उनके सहयोगियो ने जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालय मे एक भिन्न प्रकार के शैक्षिक खेलों का निर्माण किया जिसके माध्यम से सामाजिक तथा सामूहिक जागरूकता का विकास करना उद्देश्य था। इन्हे विपदा, व्यावसायिक क्रीड़ा आदि के रूप में प्रस्तुत किया जाता था ताकि क्रीड़क स्थानीय, तार्किक, क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जागरूक और सजग बन सके।

टेन्सी और अनविन (1966) ने भी अधिगमकर्ताओ मे सामाजिक और नागरिकता के गुणो को विकसित करने के लिए जनतन्त्र शीर्षक क्रीड़ा की रचना की थी। अत यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार कौशल आदि को विकसित करने के लिए अनुरूपण और अभ्यास की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मूल्य, गुण, व्यवहार कुशलता आदि पक्षो को प्रेरित करने के लिए शैक्षिक क्रीड़न प्रणाली को उपयोग मे लाया जा सकता है, जहां अन्य प्रणालियां कारगर साबित नही हो पाती है। शैक्षिक क्रीड़न मूलत· भूमिका निर्वाहन तकनीक पर आधारित होती है। किसी सामाजिक भूमिका को चयनित करने के बाद एक सरचित परिस्थिति मे अपनी-अपनी निर्दिष्ट भूमिका का निर्वाह करते हुए खेलने वाले पारस्परिक अन्तर्क्रिया करते रहते है ताकि विभिन्न सामाजिक समस्यात्मक परिस्थितियो मे घटित या अपेक्षित मानव व्यवहारो के सम्बन्ध मे शिक्षाप्रद ज्ञान प्राप्त करना सम्भव हो सके।

संसाधन अवलम्बन

शैक्षिक क्रीडन हेतु प्रायः कई ससाधन अवलम्बन की आवश्यकता होती है। जैसे—भूमिका या परिच्छेदिका आलेख, दृश्य विधान, नियमावली आदि। परिच्छेदिका आलेख मे खेल मे निर्वाह की जाने वाली भूमिका के व्यवहार से सम्बन्धित विवरण स्पष्ट रूप से अकित किए जाते है, जबकि दृश्य विधान मे उन समस्त सामाजिक परिवेश एव परिस्थितियों का विवरण रहता है जिनमे खेलने वालो को अपनी भूमिकाए निभानी होती है। नियमावली में खेल के पूर्व-स्थापनाओ का उल्लेख किया जाता है, जो सभी के लिए आवश्यक रूप से प्रतिपाल्य होता है।

शिक्षकीय भूमिका

शैक्षिक क्रीड़न की सफलता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षकीय भूमिका को अनिर्देशित और अव्यवस्थापकीय माना जाए। खेल के प्रारंभ होने के पहले शिक्षक निदेशात्मक भूमिका का पालन कर सकते है ताकि खेल विधि, नियमावली, व्यवहार, भूमिका आदि को समझाना उनके लिए सम्भव हो सके लेकिन खेल के चलते समय पर्यवेक्षक तथा निर्णायक का कार्य करने की अपेक्षाए होती हैं। खेल की समाप्ति पर शिक्षक की भूमिका आलोचनात्मक बन जाती है क्योकि खेल के स्वरूप, कमियां, लाभ आदि पर परिचर्चा करने के लिए उसे दायित्व ग्रहण करना पड़ता है। अत भूमिका बदलती रहती है।

शैक्षिक क्रीड़न के पद

शैक्षिक क्रीड़न के पद सरल और मनोरंजक होते हैं ताकि सूचना या ज्ञान इस दृष्टि से प्रदान करना सम्भव हो सके कि खेल भार स्वरूप न हो जाए। साथ ही प्रतिभागी ज्ञान को आसानी से स्वीकार कर पाते है कोलमैन ने सामाजिक संरचना विश्लेषण और सामाजिक प्रक्रिया के अनुरूपण हेतु इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर प्रणाली का प्रयोग करते हुए इसकी सफलता को स्थापित किया था। मतदान प्रणाली के क्षेत्र मे भी उसने इसके उपयोग पर अध्ययन किया।

भूमिका निर्धारण, निर्वाहन, दृश्य विधान के अनुरूप संवाद विभाजन, तथा अनुरूपित परिस्थिति, क्रम विभाजन इस प्रक्रिया के प्रमुख पद होते है। अत्याधुनिक युक्तियों का प्रयोग सुविधा और साधन सम्पन्नता के आधार पर किया जा सकता है। लेकिन अनुरूपित परिस्थितियो का निर्माण सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है। टैन्सी और ॲनविन (1967) ने अनुरूपण को किसी एक परिस्थिति या वातावरण का किसी सादृश्य या रूपक द्वारा प्रतिनिधित्व माना है, जो वास्तविक परिस्थितियो की तुलना मे कम जटिल और अधिक सुविधायुक्त तथा कम समय सापेक्ष्य होता है। क्रीडन को वे एक अनुरूपित परिस्थिति मे कृत्रिम प्रतियोगिता या सहयोगिता के तत्व के समावेश के रूप मे स्वीकारे है।

भूमिका निर्वाह मे कठिनाई के कारण इस प्रणाली को पूर्व प्राथमिक की तुलना मे उच्च प्राथमिक तथा निम्न माध्यमिक स्तर पर भूगोल शिक्षण हेतु अधिक उपयोगी माना गया।

उपादेयता

अधिगमकर्ता केन्द्रित प्रणाली होने के कारण तथा क्रिया के माध्यम से सीखने पर वल देने के कारण यह प्रणाली बच्चो के लिए अधिक आकर्षक और मनोवैज्ञानिक पाई गई। प्रयास करते हुए सीखना इस प्रणाली के माध्यम से सम्भव हो पाता है। जहा मानचित्र या शब्द चित्र विशेष प्रभावी नही बन पाता है वहा शैक्षिक क्रीडन भूगोल शिक्षण के क्षेत्र मे पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है। अध्ययन हेतु कई भौगोलिक क्रीड़न कार्यक्रम तैयार किए गए। जैसे—

भौगोलिक क्रीड़न कार्यक्रम

प्राथमिक स्तर पर सर्वप्रथम निम्नलिखित भौगोलिक क्रीडन कार्यक्रम तैयार किए गए। उपादेयता परीक्षण प्राथमिक तौर पर लघु अध्ययन (पायलट स्टडी) आधार पर किया गया—

क. भौगोलिक स्थान तथा सकल्पनाओ के नामाधारित क्रीडन,
ख. भौगोलिक क्षेत्र निरीक्षण आधारित क्रीड़न,
ग पर्यावरण प्रदूषण, यातायात एव सचार मे वृद्धि हेतु कठिनाई सम्बन्धी जागरूकता सम्बन्धी क्रीडन,
घ त्यौहार, परम्परा, रीतिरिवाज प्रदर्शन सम्बन्धी क्रीडन,
च विश्व के विभिन्न क्षेत्र तथा देशो के निवासियो की वेशभूषा तथा व्यवहार सम्बन्धी क्रीडन,
छ. विविध धार्मिक तथा सामाजिक क्रियाओ से सम्बन्धित व्यवहारिक क्रीड़न आदि।

भौगोलिक क्रीड़न हेतु चयनित तथा निर्मित कार्यक्रमों की उपादेयता की जाच व्यावहारिक तथा परीक्षणात्मक तौर पर भी किया गया। ❑❑

नं.-4, टीचर्स फ्लैट, (विश्वविद्यालय परिसर)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गुरु शिष्य संबंध – तब और अब

❑ शरण मिश्रा

भारतीय संस्कृति की मान्यतानुसार जगत के सचालन मे त्रिदेवो का समन्वित योगदान कल्पित किया गया है। तदनुसार ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता, विष्णु पालनकर्त्ता और शिव सहारक है। इनके अद्भुत समन्वय का दर्शन हम गुरु के विराट व्यक्तित्व मे करते है, जिसकी पुष्टि हेतु निम्न श्लोक उद्धृत किया जा सकता है–

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर ।
गुरु· साक्षात् पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नम ।।"

अर्थात् गुरु ब्रह्मा के समान व्यक्ति के दैवीय पक्ष का जन्मदाता, विष्णु के समान उसके उदात्त एव अलौकिक गुणों का पोषणकर्त्ता है और शिव सदृश उसके आसुरी प्रवृत्तियो का विनाशक है। दुर्लभ मानव योनि को सार्थक बनाने, उसे उदात्त मूल्यो से विभूषित कर, जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त कराने मे गुरु की भूमिका ब्रह्मा, विष्णु एव महेश से कम नहीं। ऐसा विलक्षण शक्ति सम्पन्न गुरु क्यो न गोविद से अधिक वदनीय एवं पूजनीय हो, तभी तो भारत भूमि पर आदि काल से गुरु शीर्ष स्थान पर विराजमान है।

गुरु और शिष्य दो ऐसे ध्रुव है, जिनके परस्पर सहयोग एवं क्रिया-प्रतिक्रिया के अभाव मे शिक्षा प्रक्रिया का सम्पन्न होना सम्भव ही नही है। गुरु शिष्य का आत्मीय व घनिष्ठ सवध भारतीय शिक्षा जगत का अनूठा पक्ष है। आधुनिकता की वर्तमान अवधारणा ने हमारी समृद्ध शैक्षिक परंपरा के इस विशिष्ट तत्व को अतीत की वस्तु बना दिया है। आज शिक्षा के क्षेत्र मे गुरु शिष्य के आदर्श सबंधो का सम्मोहक परिदृश्य धूमिल पड गया है। यदि हम इन सवधो को पुनर्जीवित करना चाहते है, तो उन परिस्थितियो का विश्लेषण करना होगा जिनमें ये सबध-सूत्र बने थे और जिनमे ये बिखर गए। आदर्श गुरु-शिष्य संबधो की सहायक परिस्थितिया सक्षेप मे इस प्रकार थी–·

गुरु शिष्य का आत्मीय व घनिष्ठ संबंध भारतीय शिक्षा जगत का अनूठा पक्ष है। आधुनिकता की वर्तमान अवधारणा ने हमारी समृद्ध शैक्षिक परम्परा के इस विशिष्ट तत्व को अतीत की वस्तु बना दिया है। आज शिक्षा के क्षेत्र में गुरु शिष्य के आदर्श संबंधों का सम्मोहक परिदृश्य धूमिल पड़ गया है। यदि हम इन संबंधों को पुनःजीवित करना चाहते हैं तो उन परिस्थितियों का विश्लेषण करना होगा जिनसे ये संबंध सूत्र बने और फिर बिखर गए। आज समाज को ऐसे गुरु की आवश्यकता है जो शिष्य के हृदय में शाश्वत मानवीय मूल्यों का शिलान्यास कर सके, उसे सुसंस्कृत बना सके, अपरिमित अलौकिक शक्तिसम्पन्न कर सके, ज्ञान के दुरुपयोग से रक्षा कर सके।

संबंधों का पल्लवन

गुरु शिष्य के मध्य वात्सल्य पूर्ण सबधों को दृढ़ता, आत्मीयता व माधुर्य प्रदान करने मे तत्कालीन शिक्षा पद्धति एवं परिवेश की प्रमुख भूमिका थी। गुरु शिष्य का अटूट व अद्भुत सबध हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति का सुदृढ़ मेरुदड था। निस्वार्थ स्नेह एवं त्याग, परस्पर निष्ठा एव विश्वास द्वारा बड़े प्रयत्न एवं श्रम से, दीर्घावधि सामीप्य से आत्मीयता की वेल पल्लवित होती है। अन्तरग अनुराग के लिए साहचर्य अपरिहार्य है। यह साहचर्य ही है जो मधुर संबधो की पृष्ठ भूमि बनाता है, तभी शिक्षा की सहज प्रक्रिया

सचालित होती है। जिन विलुप्त सबधो का स्मरण कर हम उन्हें पुनर्स्थापित करने के लिए लालयित एव चितित दीख पडते है, वह एक विशिष्ट मूल्याधारित आचार-विचार और परिवेश का प्रतिफल था। आज जब प्रत्येक सबध की नीव ही स्वार्थपरक हो गई है, तब केवल परपरा के परिपालन हेतु किसी सबध का विकास असभव है। मानवीय सबधो का पाठ कक्षा मे पढ़ाया तो जा सकता है, किन्तु बनाया नहीं जा सकता है।

पात्रता

शिक्षा हेतु गुरु और शिष्य दोनो की पात्रता अनिवार्य थी। पात्रता-विहीन व्यक्ति शिक्षक नहीं बन सकता था। शिष्य और गुरु दोनो की पात्रता शिक्षा से पूर्व परखी जाती थी। इसके अन्तर्गत केवल बौद्धिक या मानसिक ही नही, व्यक्तित्व के सभी पक्षों पर विचार किया जाता था, क्योकि व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था, और आज भी है। अपात्र को सुपात्र बनाना सहज कार्य नहीं है। दूसरी ओर यदि गुरु स्वय ही अपात्र होगा, तो वह शिष्य को सुपात्र कैसे बना सकेगा?

गुरु श्रेष्ठता का आधार

प्राचीन युग मे गुरु का ज्ञान क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान था, वही शिक्षा की धुरी था। शिक्षा मे राजनीति का प्रवेश न था। सामाजिक हस्तक्षेप से वह मुक्त थी। मुद्रण कला का आविष्कार नही हुआ था। अत शिक्षा पूर्णतया मौखिक सम्प्रेषण पर आधारित थी। गुरु ही ज्ञान का एकमात्र स्रोत, विद्या और कला का प्रकाड विद्वान होता था। उसका तेजस्वी व्यक्तित्व, उदात्त चरित्र और तपोमय जीवन समाज के समक्ष आदर्श का प्रतिमान और अनुकरणीय था। बडे-बडे राजा-महाराजा परम ज्ञानी गुरु चरण की धूल सिर माथे चढ़ा कर स्वय को धन्य मानते थे। समाज में मानवीय एवं आध्यात्मिक मूल्य प्रतिष्ठापित थे। शिक्षा दान की वस्तु थी, विक्रय की नही, अत निशुल्क थी। अपने जीवन की सार्थकता हेतु गुरु स्वेच्छा से इस पवित्र कार्य को अपनाता था, क्योंकि ज्ञान-दान पावन सुकर्म के रूप मे सम्माननीय था।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे उन कारणो का उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है जो गुरु-शिष्य सबधो को क्षतिग्रस्त करने के लिए उत्तरदायी है, उनमें प्रमुख है—

प्रतिकूल परिस्थितियां

आज की परिस्थितिया विपरीत, विषम और विकराल है, जिसने मानव-जीवन, उसके आचार-विचार, व्यवहार और आस्था विश्वास को प्रभावित किया है। भीषण उथल-पुथल और परिवर्तन के गुण मे शिक्षा भी उससे अछूती नहीं रही। "धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय" का धैर्य हममे नही रहा। 'ऋतु आए फल होय' की प्रतीक्षा का समय हमारे पास नही। इस 'शार्टकट' के वैज्ञानिक युग मे तत्काल फल की आकाक्षा के विकराल ताडव ने समस्त व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया है। परिणामत गुरु शिष्य का आदर्श एव मनोहारी सबध भी मरणासन्न अवस्था मे है।

गुरु की आदर्श छवि का लोप

आज शिक्षण कार्य स्वेच्छा से नहीं, अपितु जीवकोपार्जन के साधन के रूप मे अपनाया जाता है। शिक्षक बनने के लिए केवल बौद्धिक पात्रता को महत्व दिया जाता है। व्यक्तित्व के अन्य पक्ष उपेक्षित रहते है, यहा तक कि अनैतिकता को भी नितात व्यक्तिगत पक्ष मानकर उसकी अवहेलना कर दी जाती है। समाज मे अपनी दयनीय स्थिति के कारण वह सदैव कुठित व हीनता से ग्रस्त रहता है। ऐसा शिक्षक राष्ट्र-निर्माता कैसे बन सकता है? जब वह स्वय ही रात दिन जीवन की समस्याओ से जूझ रहा हो, तो शिष्य की चिन्ता कैसे कर सकता है? वह भी जब शिष्यो की विशाल भीड़ सामने हो। घोर भ्रष्टाचारी, अवमूल्यित एवं आदर्शहीन समाज में ऐसे शिक्षक जन्मे और पले है, फिर वे समाज के समक्ष आदर्श का प्रतिमान कैसे उपस्थित कर सकते है? शिक्षक की स्थिति आज यत्रवत् है, ऐसे मे वह ज्ञान का भंडार कैसे बन सकता है? आज उसकी कर्मस्थली एकात रमणीय प्राकृतिक परिवेश मे नही, समाज मे घुली-मिली तथा अनेक दुष्प्रभावो की शिकार है।

शिष्य की अभिवृत्ति

आज की जनतात्रिक व्यवस्था मे सभी शिक्षा के अधिकार

के प्रति सजग है, पात्रता उपेक्षित हो गयी है। आरक्षण के दुरुपयोग के साथ-साथ शिष्य भी सामाजिक व नैतिक अवमूल्यन के प्रभाव से मुक्त नही। ज्ञान गरिमा अक-महत्ता के समक्ष फीकी पड़ गई है। ज्ञान केवल व्यावसायिक सफलता के माध्यम तक ही सीमित हो गया है। जीवन के अतिम उद्देश्य का शिक्षा से कोई ताल-मेल नही रहा। ज्ञान के अनेक स्रोत सुलभ होने के कारण भी शिष्यो मे गुरु के प्रति श्रद्धा, कर्त्तव्य-बोध और ऋण से उऋण होने का भाव मृतप्राय-सा है।

संबंधों का क्षरण

विखडित होते मानवीय सबधो के युग मे गुरु शिष्य के मध्य हार्दिक प्रीति और मधुर सबध की परिकल्पना का यथार्थ होना असभव सा लगता है। आज माता-पिता, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, भाई-बहन जैसे रक्त-सबधो की प्रगाढ़ता स्वार्थ-सिद्धि पर अवलम्बित हो गई है। ऐसे मे गुरु शिष्य के मध्य उत्कट प्रेम एव श्रद्धा की कामना कैसे फलित हो सकती है? जब शिष्य को अपने शिक्षा काल मे विविध व्यक्तित्व वाले अनेक गुरुओं का अल्पकालीन सम्पर्क ही उपलब्ध हो पाता है। आश्चर्य तो तब होता है जब पारिवारिक सबंधो की भावनात्मक दूरियों को हमने 'पीढ़ी का अन्तराल' मान कर सहज-भाव से स्वीकार भी कर लिया है। गुरु शिष्य के मध्य बढ़ती खाई और घटती मधुरता भी इसी अतराल का ही एक अपरिहार्य अंग है।

व्यावसायिक मनोवृत्ति का विकास

बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे शिक्षा के क्षेत्र मे पूर्व-प्राथमिक स्तर मे विश्वविद्यालय स्तर तक व्यावसायिक मनोवृत्ति का तीव्रता से विकास हुआ। आज की स्थिति यह है कि नि शुल्क शिक्षा के स्थान पर यह व्यवसाय के रूप मे फली-फूली है। उपभोक्तावादी सस्कृति के विस्तार ने गुरु शिष्य के आत्मीय और मधुर सबधों मे दरार उत्पन्न की है। इस मनोवृत्ति के विकास से उनके अद्भुत सबंधो मे अब स्नेह व श्रद्धा की मिठास नही रही। कारण, गुरु तो अब सूचना सम्प्रेषण का वाहक मात्र माना जाने लगा है।

संचार माध्यमों का विस्तार

संचार माध्यमो के विविध और विपुल भडार ने वर्तमान समय मे ज्ञान के सम्प्रेषण मे महती भूमिका निभाई है। मुद्रित और इलैक्ट्रॉनिक माध्यम द्वारा ज्ञानार्जन सहज और सुविधाजनक हो गया है। शिष्य के मस्तिष्क में गुरु की अनुपयोगिता और अवहेलना के भाव ने भी उसके प्रति आकर्षण और सम्मान को क्षीण कर दिया है। जब गुरु के बिना ही वह ज्ञानार्जन मे सक्षम है, तो परस्पर सबध जुड़ेगा भी कैसे?

सबंध चाहे जैसे भी रहे, दोनों का अस्तित्व तो सृष्टि मे चिरकाल तक रहेगा। अत. हमे आत्ममथन कर यह सुनिश्चित करना होगा कि इक्कीसवी सदी की शिक्षा में गुरु शिष्य सबध की क्या सार्थकता है?

व्यक्तित्व का परिमार्जन

शिक्षा व्यक्तित्व का परिष्कार करती है। यही मानव जीवन एव शिक्षा का परम लक्ष्य है। व्यक्तित्व का सामजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील विकास कोई सहज कार्य नही है। मशीन हमे सूचना और ज्ञान का भंडार तो दे सकती है, किन्तु हमे दिव्य गुण सम्पन्न नहीं बना सकती। वह हमारी वैयक्तिक दुर्बलताओ और समस्याओं का समाधान करने मे सक्षम नहीं। मानव को पाशिवक वृत्तियों से मुक्ति दिलाकर, व्यक्तित्व का परिमार्जन कर उसे श्रेष्ठ व सुन्दर रूप प्रदान करने के दुरूह कार्य को सम्पन्न करने मे गुरु ही सक्षम है। ज्ञानवान एवं शक्तिवान रावण भी था, विद्याओ के ज्ञाता तो दानव भी थे, फिर वे अधोगति को क्यो प्राप्त हुए?

ज्ञान का कल्याणकारी स्वरूप

ज्ञानार्जन करना सहज है, किन्तु उसे बहुजन सुखाय बनाने के लिए समुचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। असावधानीपूर्वक अमृत का सेवन भी विष समान प्राण घातक हो सकता है। विज्ञान ने ही विश्व-विनाशक परमाणु बम का सृजन किया है, दोषी विज्ञान नही, उसका उपयोगकर्ता है। स्मरण करें, भस्मासुर अपने वरदान के दुरुपयोग से ही नष्ट हुआ था। यही नियम शिक्षा के क्षेत्र में भी चरितार्थ होता है।

संवेदनशीलता

एकलव्य द्वारा द्रोणाचार्य की प्रतिमा मे धनुर्विद्या प्राप्त करना, गुरु और शिष्य के अलौकिक सबधो का सदेश ही तो है। गुरु न भी हो तो क्या? ज्ञान के विस्तार के लिए मुद्रित और इलैक्ट्रॉनिक अनेकानेक साधन जैसी ज्ञानदाता प्रतिमाए गढी जा चुकी हैं। फर्क इतना है कि एकलव्य के हृदय मे गुरु के प्रति श्रद्धा के जो बीज थे, अगूठे की गुरु-दक्षिणा के रूप मे प्रस्फुटित हुए, इतिहास मे उसने अमरत्व प्राप्त कर लिया। क्या यंत्रो के प्रति हमारे हृदय मे इस तरह का भाव जागृत हो सकता है? क्या यांत्रिक शिक्षण व्यक्ति को भावनात्मक सन्तुष्टि दे सकता है? क्या यत्र मानवीय मुस्कान व स्पर्श की सुखद अनुभूति, कुठा और निराशा के क्षणो मे नव प्रेरणा सचार कर सकता है? उत्तर नकारात्मक है। विज्ञान के उन्नत यत्रों ने शिक्षक के वर्चस्व को जो चुनौती दी है, वह इस उत्तर के साथ ही समाप्त हो जाती है। यह उत्तर ही गुरु के महान सकारात्मक पक्ष का उद्घोषक है कि विश्व की कोई वस्तु गुरु का विकल्प नहीं बन सकती।

सुसंस्कार

उन्नत सूचना प्रौद्योगिकी के युग मे भी यंत्र प्रदत्त ज्ञान व्यक्ति को सस्कारित नहीं कर सकता। सस्कार शून्य ज्ञान मानवता के लिए घातक होता है, सामाजिक विघटन का कारण भी बनता है। आज हम साक्षात् देख रहे है, हमारे बच्चे ज्ञानी तो बन रहे है, किन्तु सस्कारी नहीं। चाद पर तो विजय प्राप्त कर रहे है, किन्तु अपना चरित्र कालिमा रहित तथा चाद सा उज्जवल नहीं बना पा रहे। सस्कारित करने का कर्त्तव्य परिवार, विद्यालय और समाज का है, जिसमे सर्वोपरि भूमिका गुरु की होती है। वह गुरु ही है, जो शिष्य के हृदय मे शाश्वत मानवीय मूल्यो का शिलान्यास कर उसे सुसस्कृत बनाता है, अपरिमित अलौकिक शक्ति सम्पन्न बनाता है, ज्ञान के दुरुपयोग से रक्षा करता है।

यदि हम अपने पूर्व कालीन शिक्षा के इस क्षीण होते रिश्ते के प्रति सम्मोहित है तो उसे पुनर्जीवित करने का बीड़ा हमारे शिक्षाविदो, समाजशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों को मिलकर उठाना होगा। अपनी शिक्षा व्यवस्था और सामाजिक मनोवृत्ति मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने होगे। परिवार, समाज व विद्यालय को अपनी सक्रिय भूमिका निभानी होगी। इस अनोखे मानवीय रिश्ते मे विज्ञान की उन्नत तकनीकी को इस प्रकार जोडना होगा कि प्राचीन और अर्वाचीन के अद्भुत सगम से इक्कीसवी सदी मे एक नया अध्याय प्रारभ हो सके। ❑❑

प्रवाचक
शिक्षा संकाय
डी. ई. आई. (सम) विश्वविद्यालय
दयालबाग, आगरा

मूल्य-परक शिक्षा की महत्ता का स्वरूप

□ पूनम गौड़

भूमिका

जीवन में सफलता का आधार वस्तुत शिक्षा मे निहित है क्योकि शिक्षा व्यक्ति को समाज मे अपनी भूमिका अधिक दक्षता से अदा करने की क्षमता प्रदान करती है। समय के साथ-साथ शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहते है। एक ओर तो शिक्षा को व्यवसायोन्मुखी बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है, उत्तम सास्कृतिक विरासत के सरक्षण व हस्तान्तरण पर भी ध्यान दिया जा रहा है। परन्तु दूसरी ओर सार्वजनिक जीवन मे नैतिकता व सामाजिक मूल्यो के ह्रास के प्रति ध्यान आकर्षित नही किया जा रहा है। जब से देश स्वतत्र हुआ है कई समितियो तथा शिक्षा आयोगो ने शिक्षा के विविध पहलुओ पर विचार-मथन किया है और मूल्य-परक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 मे भी कहा गया है कि— समाज मे अनिवार्य मूल्यो मे निरतर कमी तथा बढती हुई स्वेच्छाचारिता के कारण पाठ्यक्रमों मे परिवर्तन आवश्यक हो गया है ताकि शिक्षा के माध्यम से सामाजिक एव नैतिक मूल्यो को विकसित किया जा सके। अत नैतिक, आध्यात्मिक एव मानवीय मूल्यो के विकास मे शिक्षा की विशेष भूमिका है तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा मे अध्यापको को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। लेकिन मूल्य-परक शिक्षा के क्षेत्र मे प्रभावशाली कार्य के लिए यह जानना आवश्यक है कि मूल्य-परक शिक्षा क्यो, कैसे और किस प्रकार दी जा सकती है।

मूल्य-परक शिक्षा क्या है?

मूल्य का सबध उन बातो से है जिन्हे हम समाज में उचित मानते है या मूल्य मानव अस्तित्व मे किसी महत्वपूर्ण वस्तु का प्रतिनिधित्व करते है। मनुष्य जीवन पर्यन्त सीखता रहता है जिससे उसके अनुभवो मे अभिवृद्धि होती रहती है तथा वह ऐसे अनुभव प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते है। ये निर्देशक तत्व जीवन को दिशा प्रदान करते है। इन्हे ही मूल्य कहते है। ये मूल्य प्रत्येक समाज मे देश, काल और परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते है। परतु कुछ मूल्य ध्रुव सत्य होते है, बदलते नही।

जैक आर फ्रैंकल के मतानुसार "मूल्य आचार, सौन्दर्य, कुशलता या महत्व के वे मानदण्ड है जिनका लोग समर्थन करते है, जिनके साथ वे जीते है तथा जिन्हे वे कायम रखते है।"

आलपोर्ट के विचार मे "मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है।

रथ के अनुसार "मूल्य तीन प्रक्रियाओं पर आधारित होते है—चयन करना, महत्व देना तथा क्रिया करना।"

मूल्य वह गुण है जो समालोचना व वरीयता प्रकट करता है। यह एक आदर्श है जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति जीता है तथा आजीवन प्रयास करता है। शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका बालक में नैतिक, आध्यात्मिक एवं मानवीय मूल्यों का विकास करना है जिससे वह समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन अधिकाधिक दक्षता के साथ कर सके तथा अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर सके।

इस प्रकार मूल्य किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण है जो समालोचना व वरीयता प्रकट करता है। यह एक आदर्श है जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति जीता है तथा आजीवन प्रयास करता है। प्रत्येक व्यक्ति अनेक विकल्पो मे से कुछ विकल्पो को उनके परिणामों के आधार पर चुनता है तथा चयन के आधार पर क्रिया करता है। ये क्रियाए

ही सामूहिक रूप से मूल्य-निर्धारण करती है और समाज का अभिन्न अंग बन जाती हैं।

मूल्यों की प्रकृति

मूल्यों की प्रकृति तीन मतो पर आधारित है—

1. आत्मनिष्ट मत—इस मत के अनुसार मूल्य इच्छा, रुचि, परिश्रम, कार्य तथा सन्तोष जैसे कारको पर निर्भर होते है।

2. वस्तुनिष्ठ मत—इस मत के अनुसार मूल्य व्यक्ति से स्वतंत्र होते हैं तथा वे व्यक्ति मे निहित नहीं होते। उनमे वस्तुनिष्ठता होती है।

3. आपेक्षिकीय मत—इस मत के अनुसार मूल्य अशत भावना तथा अशत तर्क पर निर्भर होते है।

कुछ लोग मूल्यो की शाश्वत प्रकृति में विश्वास रखते है। कुछ अपने मूल्यों को दूसरे मूल्यों की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं। मूल्य सकट की स्थिति मे मूल्य प्राथमिकताओ मे परिवर्तन लाकर उनके समाधान की चेष्टा की जाती है।

मूल्य व शिक्षा

स्किनर व हैरीसन का मत है कि "इस बात से कोई फर्क नही पडता कि शिक्षा कहा दी जाती है या किस प्रकार दी जाती है। जरूरी यह है कि बालक को दी जाने वाली शिक्षा को उसके चरित्र-निर्माण मे अनिवार्य रूप से योग देना चाहिए।"

दरअसल शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बच्चो मे ऐसे विशेष गुणो, दृष्टिकोणो, सामाजिक मूल्यों तथा व्यवहारो का विकास किया जा सकता है जो उनके लिए एव समाज के लिए हितकारी हो। शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य और लक्ष्य मानव ससाधनो का विकास, मानवीय मूल्यो के प्रति निष्ठा, सामाजिक न्याय, राष्ट्रीय एकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास, मानसिक एव आध्यात्मिक स्वतत्रता, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता आदि अच्छे जीवन के सिद्धात है। शिक्षा के माध्यम से इन सिद्धातों को पीढ़ी दर पीढ़ी प्रेषित किया जा सकता है तथा मानव समाज इसी प्रकार अपने मूल्यो को धरोहर की तरह सुरक्षित रखता है, उन्हे आगे बढ़ाता है। इसी दृष्टि से शिक्षा के सम्मुख यह चुनौती है कि मूल्य-परक शिक्षा हेतु न केवल उपयुक्त प्रशिक्षण दे वरन् सबसे अधिक उपयोगी परिस्थितियो का निर्माण भी करे।

शिक्षा द्वारा बालक मे अच्छे मूल्यो के विकास हेतु अनेक विधियों को अपनाया जा सकता है। जैसे—

- ☐ बालक को नियमित रूप से नैतिक शिक्षा देनी चाहिए।
- ☐ बालक के अच्छे विचारो, इच्छाओ व प्रवृत्तियो को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- ☐ बालक को अच्छे परिवेश मे रखकर, उसमे नैतिक गुणो का विकास करना चाहिए।
- ☐ बालक को ऐसे वातावरण मे रखना चाहिए, जिसमे उसमें भय, घृणा, क्रोध आदि अवाछनीय भाव उत्पन्न ही न हो।
- ☐ बालक के प्रति प्रेम, दया, सहानुभूति का व्यवहार करके उसमें इन स्थायीभावो को जगाना चाहिए।
- ☐ बालक मे अच्छी आदतो का निर्माण करना चाहिए और उसकी इच्छा शक्ति को दृढ बनाने का प्रयास करना चाहिए।

शिक्षाविद् मानते है कि समाज में बालक के चरित्र का निर्माण एकाकी जीवन व्यतीत करने से नहीं, वरन् दूसरो के सम्पर्क मे आने से होता है। अत· सामाजिक क्रियाकलापो का आयोजन कर बालक को उनमे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

अत शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियो मे सद्गुणो का विकास करके मानव समाज अपने मूल्यों को सुरक्षित रख सकता है और आगे बढ़ सकता है। तभी तो विद्वानजन कहते है कि मनुष्य अच्छे गुणों का जितना अधिक सगठन करता है उतना ही अधिक वह अपने चरित्र की अभिव्यक्ति करता है।

वर्तमान वातावरण व मूल्य परक शिक्षा

विद्याददाति विनयम् अर्थात् शिक्षा विनय प्रदान करती है। परतु आज के संदर्भ में विद्यालयो, महाविद्यालयो मे यह बात देखने को नहीं मिलती।

समाज मे आज का मानव मूल्यो की बाते तो करता

है परतु उन पर अमल नहीं करता। वह अपने जीवन को भौतिक आनन्दों से अभिभूत करने के लिए किसी भी ढग से पैसा कमा सकता है। सत्ता की लोलुपता के पीछे वह भाग रहा है। भारतीय जीवन-दर्शन को वह भूल गया है। किसी पर वह विश्वास नही करता। आपसी सबधो को वह महत्व नहीं देता। वह नितांत स्वार्थी हो गया है। प्रतियोगिता के कारण दिन पर दिन वह प्राकृतिक जीवन से दूर होता जा रहा है।

इन्ही कारणो की वजह से आज विद्यालय व महाविद्यालय आलोचना के पात्र हो गए है। विगत काल मे शिक्षा तप, त्याग, नम्रता व ब्रह्मचर्य आदि पर आधारित थी। विद्यार्थी, गुरु के निरीक्षण मे कार्य करते थे। इन्ही कारणो से उनका जीवन अर्थपूर्ण था। आज हम सब नही जानते कि हम किधर जा रहे हैं? हमारे विद्यार्थियो का नेतृत्व किस प्रकार हो रहा है? आज मूल्यो को कल्पना की बात समझा जाता है या उन्हे थोथे आदर्शो की सज्ञा दी जाती है। परतु आज भारतीय जीवन-मूल्यों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था की अति आवश्यकता है।

मूल्यों के विकास में विद्यालय का योगदान

मूल्य परक शिक्षा के विकास मे विद्यालयो में दी जाने वाली शिक्षा का एक महत्वपूर्ण योगदान है। बच्चो को मूल्यो की शिक्षा तो दी जा सकती है परंतु उन पर सचमुच मे अमल करना सिखाना अत्यन्त कठिन कार्य है। विभिन्न कक्षाओ के लिए अलग से पाठ्यक्रम बनाना तथा अलग-अलग मूल्यो का शिक्षण करना दुष्कर है। विद्यालयी शिक्षा मे मूल्य-परक शिक्षा का क्या योगदान है इसे समझने की आवश्यकता है। जैसे—

(क) सर्वप्रथम यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बच्चो को सही मूल्यो, सही भावनाओ, सही विचारो तथा कार्यो से अवगत कराना है क्योंकि मूल्य-परक शिक्षा वह है जो बच्चो के व्यक्तित्व के तीनो पक्षो (सीखना, अनुभव करना एव व्यवहार मे लाना) का विकास करती है।

(ख) मूल्य-परक शिक्षा बच्चे की मनोवैज्ञानिक तैयारी तथा अनुभव से जुड़ी होनी चाहिए। अतः कुछ गुण बच्चे मे आदत के रूप मे ढालने चाहिए, जैसे—स्वच्छता रखना, समय पर कार्य करना एव सत्य बोलना आदि।

(ग) मूल्यो की शिक्षा व मूल्य-परक गतिविधिया बच्चे की उम्र तथा कक्षा के स्तर के अनुरूप होनी चाहिए।

आरभिक स्तर पर मूल्य-परक शिक्षा जीवन के अनुभवो व परिस्थितियों के अनुरूप होनी चाहिए क्योकि जब बच्चा बडा होता है तो वह मूल्यो को अपने विचारो के अनुरूप ढाल लेता है। विद्यालयी विषयो के अध्यापन को मूल्यो की शिक्षा से सम्बद्ध करके मूल्यो को विकसित करने की आज आवश्यकता है। इसके लिए उपयुक्त शिक्षण सामग्री के विकास हेतु सम्पूर्ण विद्यालयी पाठ्यक्रम मे परिवर्तन अपेक्षित है। इस प्रकार विद्यार्थियो तक वाछित गुणो के सम्प्रेषण हेतु विद्यालयी वातावरण में सुधार कर शिक्षाकाल मे विभिन्न मूल्यो को आत्मसात करने के सक्रिय अवसर उपलब्ध कराए जा सकते हैं।

विद्यालयो में मूल्य-परक शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित होने चाहिए—

- बच्चो मे नैतिक व अध्यात्मिक भावनाए विकसित करना।
- छात्रो मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण व अभिवृत्ति जागृत करना।
- छात्रो मे विभिन्न मूल्यो के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना।
- मूल्यो को जीवन में उतारने के अवसर प्रदान करना।

इन्ही बातो को ध्यान मे रखकर राष्ट्रीय भावात्मक एकता समिति ने मूल्य-परक शिक्षा के विकास हेतु निम्न सुझाए दिए है—

- स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम का पुनर्नवीनीकरण करना।
- शैक्षिक कार्यक्रमो का विस्तार करना।
- विद्यालय गणवेश की आदत डालना।
- राष्ट्रीय गान की आदत डालना।
- राष्ट्रीय ध्वज के प्रति सम्मान व्यक्त करना।
- विद्यालयो मे राष्ट्रीय पर्वो का आयोजन करना।
- देश की एकता पर व्याख्यान कराना।

- राज्यो द्वारा छात्रो का आदान-प्रदान, यात्रा के अवसर उपलब्ध कराना।
- महापुरुषो की जीवनियो के प्रभावोत्पादक प्रसग प्रस्तुत करना।
- अध्यापकों के लिए कार्यशाला आयोजित करना तथा भारतीय जीवन दर्शन से उन्हें परिचित् कराना।

मजूमदार (1983) के अनुसार—"मूल्यों को औपचारिक या अनौपचारिक रूप से पढाया नही जा सकता। इन्हें तभी विकसित किया जा सकता है जब विद्यालय इनके विकास के लिए छात्रो को उचित अवसर प्रदान करें। विद्यार्थी विद्यालय के अन्दर तथा बाहर अपने अनुभवो के आधार पर ईमानदारी, सहभागिता, आत्मनियंत्रण जैसे गुणों को सीखता और विकसित करता है।"

अब अहम सवाल यह है कि "वे कौन से मूल्य है जिन्हे हम बच्चों मे विकसित करना चाहेगे?"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे कहा गया है—

"हमारे बहुवर्गीय समाज मे शिक्षा को सर्वव्यापी और शाश्वत मूल्यो को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि भारतीय जन मानस मे राष्ट्रीय एकता की भावना बढ़े ओर सकीर्ण सम्प्रदायवाद, धार्मिक अतिवाद, हिसा, अन्धविश्वास व भाग्यवाद को समाप्त किया जा सके।"

तभी तो राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा के अनुसार, स्वतत्रता, समानता, बंधुत्व, जनतत्र, समाजवाद एव धर्म निरपेक्षता जैसे मूल्यो को मान्यता दी गई है। अत' बच्चों मे ऐसे राष्ट्रीय मूल्यो का निर्माण करना चाहिए जो सभी को मान्य हो और जिनसे उनके व्यक्तित्व को मजबूत किया जा सके। क्योंकि आज के दौर मे सभी अपने अस्तित्व के लिए सघर्षरत है, श्रीकात वर्मा ने कहा है—

इतने मकान पास-पास सटे,
मगर प्रेम नही,
सुबह इन मादो का खुलना
शाम को धीरे-धीरे बन्द होना,
दिन भर आय आय,
अर्थ नही भांय भाय
सहमति नही पिश्वास नहीं
एक-दूसरे से मिलने की ललक नहीं।

कैसी विडम्बना है। अत. विद्यार्थियो मे मूल्य रूपी वृक्ष के रोपण की सख्त जरूरत है।

मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका

दो बच्चे भले ही एक ही विद्यालय में पढ़ते हो, एक ही समान शिक्षको से प्रभावित होते हो, एक सा अध्ययन करते हो, फिर भी वे सामान्य ज्ञान, रुचियों, भाषण, व्यवहार और नैतिकता मे अपने परिवारो के कारण, जहा से वे आते हैं पूर्णतया भिन्न हो सकते है। वास्तव मे मूल्यो की शिक्षा बच्चे के घर से शुरू होती है। जब वह अपने माता-पिता के व्यवहार को देखता है तो उनका अनुकरण करता है। यही से मूल्य-परक शिक्षा की शुरुआत होती है। तभी तो परिवार को शिक्षा की प्राथमिक सामाजिक सस्था कहा गया है।

"परिवार ही वह स्थान है जहां महान गुण उत्पन्न होते है, प्रेम का विकास होता है, न्याय और अन्याय, सत्य और असत्य, परिश्रम और आलस्य मे अन्तर करके बालक अच्छी आदतें ग्रहण करता है।"

परिवार मे अधिगम की परिस्थितियो के प्रति बच्चे अधिक सवेदनशील होते है तथा घर में सीखी गई सामाजिक बातें जीवन पर्यन्त स्थाई रहती है। ये बाते बाद मे खेल के मैदान, विद्यालय, समुदाय के अनुभवो से रूपान्तरित होती है। माता-पिता निम्न कार्यकलापों तथा व्यवहार द्वारा बच्चों में मूल्यो को विकसित कर सकते हैं—

- माता-पिता को परम्परागत मूल्यो के प्रति बच्चो को आस्थावान बनाना चाहिए।
- बच्चों पर मूल्यो को थोपना नहीं चाहिए, सिखाना चाहिए।
- मूल्यो की महत्ता का विरोध नही करना चाहिए।
- कुशिक्षा के प्रति चेतना विकसित करनी चाहिए।
- बच्चों को स्वतन्त्रतापूर्वक निर्णय लेने व अपने निर्णयो के परिणाम का समाना करने हेतु अवसर देने चाहिए।
- बच्चो को कुसगति से बचाने हेतु सैदव सावधान रहना चाहिए।

- माता-पिता बच्चो को मूल्य-आधारित कहानिया पढ़ने व सुनने के अवसर प्रदान कर भी अपने मूल्य विकसित कर सकते है।
- मूल्य आधारित व्यवहारो के प्रदर्शन के लिए बच्चो को उपयुक्त पुरस्कार मिलना चाहिए।
- बच्चो मे आत्म-विश्लेषण की आदत को विकसित करना चाहिए।

"यदि परिवार का वातावरण अच्छा है तो बालक की विचारधारा तथा उसके विकास पर प्रशसनीय प्रभाव पड़ता है।"

मूल्यों के विकास में मण्डलीय शिक्षण और प्रशिक्षण संस्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका

मण्डलीय शिक्षण और प्रशिक्षण सस्थान बालको के व्यक्तित्व को निखारने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है क्योकि ये सस्थान प्रतिभाशाली अध्यापक तैयार करते है जो समाज के एक महत्वपूर्ण अग है तथा जिनका व्यवहार विद्यार्थियो को प्रभावित करता है।

शिक्षक-प्रशिक्षक का योगदान

छात्राध्यापको के व्यवहार को निखारने की मुख्य जिम्मेदारी शिक्षक-प्रशिक्षक के हाथो मे होती है क्योकि आगे चलकर यही छात्राध्यापक बालकों के भविष्य को निखारेगे। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षक प्रशिक्षक अपने छात्राध्यापकों को प्रभावित करता है। अत' अपने छात्राध्यापको के समक्ष उन्हे अपने स्पष्ट व्यक्तित्व को दर्शाना चाहिए। अपने छात्राध्यापकों से चर्चा करने के लिए समय देना चाहिए। चर्चा केवल विषय-वस्तु पर ही आधारित नही होनी चाहिए वरन् सामाजिक या व्यक्गित समस्याओ पर भी चर्चा की जा सकती है। उनमे विद्यार्थियो के सवेगो के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए।

शिक्षण-संव्यूहन

विभिन्न शिक्षाविदो के द्वारा बताए गए सव्यूहन जैसे—भूमिका निर्वहन शिक्षण प्रतिमान, मूल्य स्पष्टीकरण विधि, न्यायिक शिक्षण प्रतिमान, कहानी प्रस्तुतीकरण विधि, अनुरूपीकरण, मूल्य-विश्लेषण, शिक्षण प्रतिमान, चर्चा, योग, जीवनी पठन आदि छात्राध्यापको में मूल्यो को विकसित करते है। इन तकनीकों मे महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर आते है, जिन पर छात्राध्यापक चर्चा करके अपने मूल्यो का स्पष्टीकरण कर सकते है। समुदाय आधारित प्रोजेक्ट कार्य भी छात्राध्यापको को जीवन की वास्तविकता से साक्षात्कार कराते है।

पाठ्य सहगामी क्रियाएं

पाठ्य सहगामी क्रियाए भी छात्राध्यापको मे मूल्यों को विकसित करने मे सहायक है। इस दृष्टि से निम्न गतिविधिया महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं—

1. सामाजिक समस्याओ पर वाद-विवाद
2. महत्वपूर्ण घटनाओ की चर्चा
3. सास्कृतिक कार्यक्रमो के लिए सामाजिक सम्मेलन
4. विभिन्न प्रतियोगिताओ का आयोजन
5. शैक्षिक भ्रमण
6. सौन्दर्यात्मक मूल्यो को विकसित करने की गतिविधिया।

संस्था का वातावरण

छात्राध्यापको के व्यवहार को प्रभावित करने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कारक है। मूल्य आधारित वातावरण का निर्माण एक जटिल कार्य है। निम्न बिन्दुओ को ध्यान मे रखकर वातावरण को सहज बनाया जा सकता है।

- शिक्षक-प्रशिक्षक तथा छात्राध्यापको के बीच मैत्रीपूर्ण सबध।
- छात्राध्यापको के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण।
- सभी को एक दूसरे का ध्यान रखना चाहिए।
- सभी के विकास मे विश्वास।
- प्रशासक को सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
- सस्था सौन्दर्यात्मक अनुभूति को बढ़ावा दे।
- छात्राध्यापको को अपने विचारो को अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रदान करें।

शिक्षक-प्रशिक्षक तथा अभिभावक सम्मेलन

मण्डलीय शिक्षण और प्रशिक्षण सस्थानों को कम से कम

साल मे एक बार अभिभावकों का सम्मेलन आयोजि करना चाहिए। इस कार्य से समाज तथा संस्थान एक दूसरे के सपर्क मे आते हैं जिससे विचारों का आदान-प्रदान सरल हो जाता है। छात्राध्यापक भी इसमे भाग लेकर लाभ उठा सकते हैं।

मूल्यो को आत्मसात करने की भावना को जागृत करना, मूल्य विकास की दिशा मे एक महत्वपूर्ण कदम है। छात्राध्यापको मे मूल्यो का विकास करके शिक्षा की नीव को मजबूत बनाया जा सकता है क्योकि यही लोग देश का भविष्य तैयार करते है। फ्रैंकल कहते हैं–

"मूल्य, आचार, सौन्दर्य, कुशलता, वे मानदण्ड है जिनका लोग सवर्धन करते है, जिनके साथ वे जीते है और दूसरो को हस्तान्तरित करते है।"

मण्डलीय शिक्षण और प्रशिक्षण सस्थान प्रभावशाली अध्यापक तैयार करने की दिशा मे अग्रसर है। इनका प्रयास है कि भावी शिक्षक एक अच्छे समाज की रचना करने मे समर्थ हो क्योकि आज का मानव मानवीय गुणों से दूर होता जा रहा है। राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने कहा भी है–

करते हम पतित जनो पर, बहुधा पशुता का आरोप।
करता है पशु वर्ग किन्तु क्या, निज निसर्ग नियमो का लोप।
मैं मनुष्यता को सुरत्व की, जननी भी कह सकता हू।
किन्तु पतित को पशु कहना मै, कभी नही सह सकता हू।

अस्तु आज की परिस्थितियों मे समाज के सभी सदस्यो मे मानवीय मूल्य जागृत करने की आवश्यकता है। इसके लिए मूल्य शिक्षा अत्यावश्यक है।

शिक्षा आयोग (1948-49) मे उल्लेखित है

"यदि हम अपने को सभ्य मानते है तो हममे असहायो तथा दुखियो के प्रति सहानुभूति, स्त्रियो की मर्यादा की रक्षा, देश, धर्म, जाति, रंग से परे मानव भाईचारा, शाति एव स्वतत्रता के प्रति प्रेम, नृशसता के प्रति घृणा तथा न्याय के प्रति सतत् लगाव होना चाहिए।

इस प्रकार मूल्यो को केवल शिक्षण द्वारा ही विकसित नही किया जा सकता वरन् मूल्यो को विकसित करने के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति मूल्य जागृति वातावरण मे भी रहे। मूल्य-चेतना को विकसित करना मूल्यो के विकास की दिशा मे एक महत्वपूर्ण कदम है।

वस्तुत ई. लॉयल के अनुसार "नैतिकना अथवा चरित्र बाजार मे तैयार नही बिकते है। इन्हे प्रतिदिन थोड़ा-थोडा सचित करना पडता है।" ❑❑

वरिष्ठ प्रवक्ता
मण्डलीय शिक्षण और प्रशिक्षण संस्थान
राजेन्द्र नगर, नई-दिल्ली

व्यक्तित्व एवं नेतृत्व विकास : आवश्यकता और औचित्य

❑ दामोदर जैन

ससार का प्रत्येक मानव अपना स्वय का विधाता होता है अर्थात् उसका जन्म जिस रूप में होता है वह सदैव उसी रूप मे नही बना रहना चाहता, बल्कि अपने साधनो से, आत्मशक्ति से अपना आत्म विकास करता रहता है। जो मनुष्य स्वय को जब जैसा बना लेता है, समाज में उसकी गणना उसी रूप मे होने लगती है। इस प्रकार आत्म विकास एक प्राकृतिक और राष्ट्रीय धर्म है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने गुण, कर्म को लोकश्रेष्ठ बना सकता है। ससार के प्रत्येक प्राणी का यह पुनीत कर्त्तव्य भी है कि वह नैतिक, भौतिक, व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से अपना सर्वागीण विकास करते हुए समाज मे श्रेष्ठतम् स्थान पाने का अधिकारी बने।

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की यह प्रक्रिया मूलत आत्म विकास द्वारा शुरू होती है। आत्मोन्नति के लिए प्रयासरत लोगो में कुछ लोग दूसरों के बताए मार्ग का अनुसरण करते है, उन्हे प्रेरणास्रोत मानकर उनके पथानुगामी हो जाते है परतु जो विलक्षण प्रतिभा के धनी, स्वय कुछ विशेष कर गुजरने के पक्षधर होते हैं तो वे खुद अपना रास्ता खोज लेते हैं। कहा भी गया है—

"लीक-लीक गाड़ी चले, लीकहि चले कपूत।
लीक छाडि तीनहिं चले, शायर सिह सपूत।"

जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे विकास करना सरल नही है। यह चिरतन सत्य है कि मानव का जन्म निरर्थक नही होता और यही विश्वास व्यक्ति को आत्मस्फूर्त बनाता है, उसकी अन्तर्निहित शक्तियो को कुछ करने के लिए जगाता है। अपने जीवन मे स्वतत्र विकास करने की सोच रखने वाले ऐसे लोग आत्मसत्ता पर सर्वाधिक विश्वास करते है। आत्मशक्ति की दृढ़ता एव सबलता सर्वत्र सफलता देती हैं। आत्मशक्ति के विश्वास के लिए व्यक्ति को प्रमुखत आत्म विश्वास, आत्म ज्ञान और आत्म शुद्धि का प्रयास करना चाहिए।

व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया मूलतः आत्मविकास से होती है जो प्रमुख रूप से आत्मविश्वास, आत्मज्ञान और आत्मशुद्धि की अवस्था है। व्यक्तित्व और नेतृत्व विकास के लिए शिक्षा के क्षेत्र में आज ठोस कार्यनीति निर्धारित करने की आवश्यकता है। जब तक लोक शिक्षण की दशा और दिशा में व्यापक परिवर्तन कर अध्यापन कार्य की श्रेष्ठता को पुनर्स्थापित नहीं किया जाएगा तब तक विद्यार्थियों के अपेक्षित विकास की परिस्थितियां और संभावनाएं प्रबल नहीं हो सकतीं।

आत्मविश्वासी व्यक्ति की मान्यता यह होती है कि उसका जन्म न तो निरर्थक है और न ही आवश्यक। सजीव, शक्तिमान और स्वावलम्बी व्यक्ति ही आत्मोन्नति करने मे समर्थ होता है। वह स्वय के साथ सच्चा व्यवहार करता है। आत्मज्ञान के बगैर आत्मोन्नति सभव ही नही है। आत्मज्ञान यानि स्वय को पहचानना। अपनी इच्छाओ, कल्पनाओ और विचारधाराओ के साथ-साथ शारीरिक और बौद्धिक सार्मथ्य को तौलना ही आत्मज्ञान है। अपनी अपूर्णता और असमर्थता को समझ बूझकर ही व्यक्ति सस्कारित ज्ञान गुण सम्पन्न और आत्म शक्ति सम्पन्न हो सकता है। जो अपनी रामर्थता और विवशता को पहचानता है वही आत्मज्ञानी हो सकता है।

आत्मज्ञान के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है आत्मशुद्धि। अनेक प्रकार की आसुरी वृत्तिया मानव मन की कई प्रकार की मनोव्याधियो से मुक्त नही होने देती। मानसिक व्याधियो का प्रभाव इतना सशक्त होता है कि उससे निवृत्त होना सहज नही होता। मनोव्याधियां मानसिक भीरूता पैदा करती

है, यही भीरूता जीवन की गति और प्रगति को जडता की ओर ले जाती है। स्वाभाविक भीरूता, निराशा, अस्थिरता, उद्विग्नता, अनभिज्ञता या अनुभवहीनता के कारण जब मन से द्वन्द या दुविधा व्याप्त रहती है तो मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाता है और उसके बनते काम बिगड जाते हैं। भयभीत मनुष्य जीवन सग्राम में स्थिर नही रह पाते। अस्तु' आत्मशक्ति पैदा कर आत्मोत्थान और आत्मशुद्धि के लिए प्रयासरत रहते हुए अपने मन को नि·शक बनाना चाहिए। कर्त्तव्य पथ पर आगे बढने के पूर्व मनोविकारो से मुक्ति बहुत जरूरी है।

आत्मशुद्धि के लिए व्यक्ति को आत्मसयम की ओर बढ़ना चाहिए। आत्म नियत्रण से सद्‌विचार पैदा होते है। सद्‌विचार अच्छे कार्य करने की ओर प्रवृत्त करते है। सद्‌कर्म, व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि करते है। ऐसा व्यक्ति सवका विश्वास अर्जित करते हुए लोकजीवन मे श्रेष्ठतम् स्थान प्राप्त करता है।

आत्मशक्ति के विकास के लिए आशा, उत्साह, साहस और धैर्य की महती आवश्यकता होती है। आशावादी कभी हताश नहीं होता अपितु आत्मस्फूर्त होकर कर्तव्यपालन करता रहता है। "नास्त्युत्साहात् पर बलम्" अर्थात् उत्साह से बढकर कोई बल नही है। उत्साह से ससार की सभी वस्तुए प्राप्त की जा सकती है। साहसी व्यक्ति अपने पुरुषार्थ और मनोवल से उत्कृष्ट स्थान पा जाते है। आशा, उत्साह, विश्वास और साहस से परिपूर्ण व्यक्ति धैर्यवान होता है। धैयपूर्वक कार्य करने से कभी हताशा नही होती है। कई बार की विफलता के बावजूद अंतत· सफलता पाने के लिए धैर्यगुण अत्यत आवश्यक है।

आत्मसयमी प्राणी अपने जीवन को सार्थक बनाता है। वह अपने स्वास्थ्य, चरित्र, स्वभाव और ज्ञान को सस्कारित करता है। इससे उसकी इच्छाशक्ति प्रबल होती है। श्रेष्ठ इच्छाशक्ति सद्‌संकल्पों को पैदा करती है। दृढ़ सकल्प मनोकामना पूरी करते है। अपने लक्ष्य को नियमित कर जो व्यक्ति, कल्पनाशक्ति का विकास करता है वह दूरदर्शी कहलाता है, अतः सफलता पाने के लिए व्यक्ति को एक निश्चित लक्ष्य बनाकर कार्यक्रम तय करना चाहिए और तदनुसार उद्यम कर लक्ष्य पूर्ति के प्रयास करते रहना चाहिए। नीतिकारों के मतानुसार–

"उद्यमेन हि सिद्धयन्ति, कार्याणि न मनोरथै.।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रकान्ति मुखे मृगाः।।"

उद्यम, आत्मविकास का मूलमत्र है। जो आगे बढना चाहते है उन्हे लक्ष्य निर्धारित कर उसकी पूर्ति मे पूर्ण निष्ठा से जुट जाना चाहिए। लगातार उद्यम से कार्य सिद्धि अवश्य होती है। निर्धारित कार्ययोजना के अनुरूप सम्पूर्ण पुरुषार्थ से कार्य अभ्यास और लक्ष्य पूर्ति का प्रयास करना ही कार्य साधना है, जिसकी पूर्ति में अनेक बाधाए, विवशताएं, विफलताए सभव हैं किन्तु इनका मुकाबला करते हुए उन पर विजय हासिल करना ही श्रेष्ठता का प्रतीक होता है। *व्यक्तित्व विकास के क्रम मे ऐसी बाधाए व्यक्ति को निखरने* का अवसर देती है जो लोग साधारण प्रलोभनो से मुक्त रहते हुए *अपने मुख्य लक्ष्य से भटकते नहीं है और न ही* कार्य की गति को शिथिल पडने देते हैं वही आत्म विकास कर पाते है। ऐसे लोग सजग होकर समय की गति और अपने मूल प्रयोजन को ध्यान मे रख कर अथक परिश्रम करते हुए सतत उद्योग करते है। अपनी गलतियो को स्वय सुधारते है और निरंतर अपने कर्मोपार्जन में लगे रहते है इस कर्मयुग में आत्मोत्थान के लिए "कार्यसाधना" बहुत उपयोगी है।

समग्रत· आत्मविकास को ही व्यक्तित्व विकास कहा जा सकता है। जब किसी के जीवन मे अलौकिकता, विलक्षणता अथवा विशिष्टता प्रकट हो तभी उसका व्यक्तित्व स्पष्ट नजर आता है। व्यक्तित्व व्यवहार का दपर्ण होता है किसी का असाधारण विकास ही उसको स्वतत्र व्यक्तित्व देता है। जिस व्यक्ति के जीवन मे प्रभाव, आकर्षण, तेज, आत्मबल और गुण चरित्र का समुचित विकास होता है, उसी के व्यक्तित्व से समाज प्रभावित होता है।

दुनिया में ऐसे कई लोग है जो जन्म जात सर्वगुण सम्पन्न और विशेष गुणी नजर आते हैं लेकिन कई लोग अपने कर्मों से महान बनते हैं। भगवान महावीर ने कहा था "व्यक्ति जन्म से नही कर्म से महान बनता है।" कर्म और सस्कारो से उपजी ऐसी महानता की विलक्षणता कहलाती है। आत्मविकास को प्रभावित करने वाले कुछ अन्य गुण इस प्रकार हैं–

स्वभाव

स्वभाव मनुष्य के आत्मस्वरूप का सच्चा रूप प्रकट करता है। स्वभाव की सरलता, कुटिलता या जटिलता से उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है। स्वभाव की सरलता से व्यक्ति का व्यक्तित्व उन्नत होता है उसके प्रति स्वाभाविक आकर्षण बढ़ता है जब तक स्वभाव सरल नही होगा तब तक व्यक्तित्व सरल नही होता।

गुण और चरित्र

श्रेष्ठ गुणो से ही व्यक्ति गणमान्य होता है। गुणवान और चरित्रवान व्यक्ति कुरूप, निर्धन और अकुलीन होते हुए भी प्रभावशाली तथा लोकमान्य बन जाता है उसकी लोक प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। गुणो के साथ नैतिकता होने से व्यक्ति का सम्मान स्वत· बढ़ जाता है। यद्यपि कभी कभार बड़े-बड़े लोग भी अपनी चारित्रिक दुर्बलता से पथ भ्रष्ट, मानभ्रष्ट हो जाते है जिससे उनका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। अत· अपने चरित्र का आत्म मूल्याकन सदैव करते रहना चाहिए।

कार्यदक्षता

कार्यदक्षता व्यक्ति को समर्थ और उपयोगी बनाती है कार्यक्षेत्र में दक्ष और सफल होने पर व्यक्ति कार्य प्रवीण, सिद्धहस्त और विशेषज्ञ मान लिया जाता है। कार्यदक्ष व्यक्ति ही अपने कार्य को सुचारू कर पाता है।

वाणी बल

वाणीहीन प्राणी मृततुल्य होता है। अपनी भावनाओ को प्रभावी भाषा द्वारा सार्थक ढंग मे व्यक्त करना ही वाणी बल होता है। वाणी की सिद्धि से मनुष्य लोकनायक बन जाता है। वाणी मौखिक और लिखित दोनों रूप से प्रकट होती है। अच्छा भाषण सारगर्भित, विचारोत्तेजक, सर्वहितैषी और मर्मस्पर्शी होता है इसलिए प्रभावोत्पादक भी होता है। कुशल वक्ता अपने वाणी बल से समाज मे लोक पूज्य बन जाता है। वाणी का दूसरा माध्यम लेखन है। लेखन शक्ति से व्यक्तित्व का आकर्षण और बल बढ़ जाता है एक अच्छे पत्रकार का सभी सम्मान इसलिए करते है क्योकि उसके हाथ में लोकमत होता है। निर्भीकता, स्वतत्रता और सतर्कता से वाणी जीवित हो उठती है।

गंभीरता

विचार, वाणी और कर्म की गभीरता व्यक्ति के मान को बढ़ाता है। गंभीर और शांतचित्त होना लोकनायको का असाधारण गुण होता है। जो व्यक्ति क्रोधी और असहनशील होता है जो सदैव ठुकराया जाता है।

अलौकिकता

स्वार्थत्याग और वासनामुक्त होना अलौकिकता है। मानवीय दुर्बलताओं से मुक्त व्यक्तित्व का सब सम्मान करते है। अपने व्यक्तित्व को सरल बनाकर उसे गभीरता और चतुराई से अलौकिक बनाया जा सकता है।

संगति

बड़ों की सगति (सत्सगति) से सम्मान बढता है और कुसंगति से सम्मान नष्ट हो जाता है। "कबिरा सगत साधु की, ज्यो गधी की बास। गंधी जो कुछ दे नही, तो भी बास-सुवास।"

स्वावलंबन

"एकला चलो रे" की नीति के अनुरूप कर्तव्य का निश्चय करके जो व्यक्ति साधना और साहसपूर्वक अपने मार्ग पर चल पड़ते हैं वे अनेक संकटो के बाद लोकपूज्य बन जाते हैं। व्यक्तित्व विकास के लिए सदैव स्वावलबी होना चाहिए। अनेक महापुरुषों के उदाहरण हमे प्रेरणा देते है।

क्रमशः विकास

अनेक सफलता/असफलताओं के बाद भी व्यक्ति का क्रमशः व्यक्तित्व विकसित होता है। मनसा, वाचा और कर्मणा से एकाग्र होकर किया गया कर्म यश, कीर्ति, धन और स्वास्थ्य की वृद्धि करता है। अतः कथनी-करनी का भेद समाप्त करते हुए व्यक्तित्व का क्रमशः विकास करना चाहिए।

विश्वसनीयता

विश्वसनीयता व्यक्तित्व विकास के लिए अत्यंत आवश्यक गुण है। परस्पर विश्वास से लोग एक-दूसरे के सहयोगी बन जाते है। मित्र बन जाते हैं। समूहबद्ध होकर बडे से बड़ा कार्य सम्पादित किया जा सकता है।

मुख्यत: ऊंचे मनोबल वाला पुरुषार्थी जीव ही अपने व्यक्तित्व का वास्तविक विकास कर पाता है। उच्च व्यक्तित्वशाली व्यक्ति ही समाज का सही नेतृत्व कर सकते है। समाज नेतृत्व का अनुसरण करता है। अत: सोच समझ कर ही नेतृत्व सौपा/स्वीकार किया जाना चाहिए। दुर्भाग्य से अभी अनेक सार्वजनिक पदो पर नेतृत्व की मर्यादा के विपरीत, कदाचारी लोग आरूढ़ हो गए हैं। जिनका अनुसरण करते हुए नई पीढ़ी दिग्भ्रमित होती जा रही है। समाज और राष्ट्र को दिशा देने के लिए सुयोग्य नेतृत्व का विकास करना बेहद चुनौतीपूर्ण कार्य है। नेतृत्व की शिथिलता से सर्वत्र अराजकता फैल रही है जो भविष्य के लिए नुकसानदेह साबित होगी। अस्तु! समाज मे व्यक्तिगत विकास हेतु सार्थक शिविरो का आयोजन उपयोगी और आवश्यक है।

अच्छा होता यदि हमारे शैक्षिक सस्कार केन्द्र विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय विद्यार्थियो को लौकिक विषयों की शिक्षा के साथ-साथ उन्हे सस्कार भी देते। व्यक्तित्व निर्माण मे संस्कारो की महती भूमिका होती है। व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहारों का ऐसा सयोजित संकलन होता है जो वह अपने सामाजिक व्यवस्थापन के लिए अर्जित करता है। बगैर व्यक्तित्व विकास किए व्यक्ति का आचरण और चरित्र प्रभावी नही हो सकता है। यदि हमे समाज के लिए आत्मनिर्भर, सुयोग्य और चरित्रवान पीढ़ी तैयार करनी है तो वर्तमान शिक्षा पद्धति मे बदलाव कर व्यक्तित्व विकास के साधनों को विशेष महत्व देना होगा। आजकल अनेक माता-पिता अपने बच्चों को विद्यालयों मे भर्ती करके ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं अथवा परीक्षा के दिनो मे "ट्यूशन" लगाकर या नकल के साधन उपलब्ध कराकर बच्चो की प्रगति हेतु आश्वस्त हो बैठते है, लेकिन उनके आचरण, व्यवहार के प्रति कतई सजग नही होते। यथार्थ मे सदाचार (सत्यता, नम्रता, निष्कपटता) माता-पिता और गुरुजनो के आचरण और सदव्यवहार मे सीखे जा सकते है। एक सभ्य समाज मे माता-पिता और गुरुजनो की भूमिका सदाचारी होनी ही चाहिए।

उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य मे यह अत्यंत जरूरी है कि सरकार और समाज सुयोग्य भावी पीढ़ी के निर्माण हेतु गभीरतापूर्वक विचार करें तथा व्यक्तित्व और नेतृत्व विकास के सदर्भ में ठोस कार्य नीति निर्धारित कर उसके सुचारू क्रियान्वयन के प्रति अपनी जिम्मेदारियो का सजगतापूर्वक निर्वाह करें।

यदि हम चाहते है कि हमारा देश वास्तविक प्रगति के पथ पर अग्रसर हो, हमारा समाज गौरवशाली बने, देश मे बढ़ती समस्याओं का निदान यथासभव हो, तो वर्तमान शैक्षणिक परिदृश्य को बदलने के लिए प्रभावी प्रयास किए जाने चाहिए। जब तक लोक शिक्षण की दशा और दिशा मे व्यापक परिवर्तन कर अध्यापन कार्य की श्रेष्ठता को पुनर्स्थापित नहीं किया जाएगा तब तक विद्यार्थियो के व्यक्तित्व और नेतृत्व विकास की परिस्थितियां और सभावनाएं प्रबल नही हो सकती। शिक्षार्थी आत्म विकास की प्रक्रिया को स्वीकारे, इस हेतु सुयोग्य शिक्षकों की व्यवस्था पर शैक्षिक पाठ्यक्रम, शिक्षा का वातावरण, माध्यम और परीक्षा प्रणाली को भारतीय प्राचीन सस्कृति के अनुरूप तय करना होगा। इस प्रकार हम कृत्रिम और बोझिल शिक्षा प्रणाली की बजाय योग्यतम नागरिको के नवनिर्माण हेतु व्यक्तित्व और नेतृत्व के विकास के कार्य को पूरा कर सकते है, जिसकी वर्तमान मे महती आवश्यकता भी है।

6/191, सिद्धबाबा कॉलोनी
टीकमगढ़, म.प्र.

शिक्षा की सार्थकता

□ गोपीनाथ शर्मा

देश की शिक्षा प्रणाली मे परिवर्तन की बात पर हमारे देश के शिक्षाशास्त्री, समाजशास्त्री एव राजनेता पिछले पाच दशकों से अनवरत बल दे रहे है। परन्तु अभी तक सभी प्रयास प्रभावहीन ही प्रतीत हो रहे है। एक परिवर्तन जो स्पष्टत दिखाई दे रहा है, वह है विद्यालयो, महाविद्यालयो एव विश्वविद्यालयो तथा उनमें पढने वाले विद्यार्थियो की सख्या मे वृद्धि। अंग्रेजी शासन में शिक्षा का उद्देश्य ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना था, जो नौकरी के लिए अंग्रेजो पर निर्भर रहे तथा अंग्रेज भक्त बने। छोटा सा देश इंग्लैण्ड जो विश्व के अनेक देशों पर शासन करता रहा वह सब जगह सभी पदो पर अपने देशवासियो को स्थापित नही कर सकता था। अत शिक्षा के माध्यम से शासित देशो के लोगों को उन पढ़े-लिखे लोगो के द्वारा गुलाम बनाए रखने का प्रयत्न होता रहा। हमे स्वतत्रता मिली। शासन मे प्रजातत्र प्रणाली स्वीकार की गई, किन्तु शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य नौकरी प्राप्त करना ही रहा। सम्पूर्ण भारत के सभी विश्वविद्यालयो के सभी विद्यार्थियो से यदि एक प्रश्न पूछा जाए—आप शिक्षा क्यो ग्रहण कर रहे है, तो 80 प्रतिशत से अधिक का उत्तर शायद यही होगा 'नौकरी चाहिए'। शिक्षा का उद्देश्य, लक्ष्य, ध्येय चाहे जो कहें 'अच्छा मानव' बनाना होना चाहिए। मनुष्यता विकसित करना, इसानियत पैदा करना, अच्छा व्यक्तित्व बनाना शिक्षा का काम है। आज किसी भी स्तर की पढाई को ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह 'सच्चे या अच्छे मानव' के निर्माण का ही प्रयास कर रही है।

शिक्षको से पूछा जाए, उनका ध्येय बालकों के पाठ्यक्रम को पूरा कराना है अथवा केवल नौकरी करना है अथवा सब विद्यार्थी अच्छे प्रतिशत से उत्तीर्ण हो सके यह है अथवा सुयोग्य व्यक्तित्व का निर्माण करना है जो 21वी सदी मे विश्व के साथ खड़ा हो सके। यदि ध्येय अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण है या विकसित भारत का सुयोग्य नागरिक बनाने का है तो इसके लिए वे शिक्षण के साथ-साथ कौन से अतिरिक्त प्रयत्न करते है।

शिक्षा के उद्देश्य कौन तय करता है? शिक्षा के साधन कौन जुटाता है? समाज कैसा बनाना है इसका दिशा निर्देश कौन देता है? क्या पूरी जिम्मेदारी शिक्षक को ही दी जाए? शिक्षार्थी को विद्यालय में आदर्श बनाने का प्रयत्न हो भी तो वह घर तथा समाज मे क्या देखता है? सोचने योग्य है। चाहते सब है। सिद्धांत भी बनाते है, लेकिन बदलाव के लिए कोई तैयार नही है। जैसे सब कहते है—हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है, बहुमत की भाषा है इसमे अध्ययन अध्यापन होना चाहिए। लेकिन जब स्वय के बच्चे को पढाने की बात आती है तो अंग्रेजी माध्यम का आधुनिक विद्यालय ढूढने का प्रयत्न किया जाता है, जहां चाहे भारतीयता या भारतीय सस्कृति न सिखाई जाए, किन्तु बालक को अच्छी अंग्रेजी, कुछ आधुनिक तौर-तरीके, विदेशी रहन-सहन तथा विदेश मे स्वय को समायोजित करने की क्षमता विकसित हो सके ऐसी शिक्षा की बात की जाती है।

बालक का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। सर्वांगीण विकास में शारीरिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक, नेतृत्व गुण, मूल्य, संस्कृति का संरक्षण व अनुकूल संशोधन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, आत्मनिर्भरता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास आदि समाहित हैं। शिक्षक समाज का निर्माता व विद्यार्थी का सच्चा सहायक है। अतः शिक्षक को अपना दायित्व नहीं भूलना चाहिए। साथ ही उसका समाज द्वारा उचित सम्मान भी अत्यावश्क है।

शिक्षा के उद्देश्य

अच्छा व्यक्ति बनाने का प्रयास ही शिक्षा है और बालक का सर्वागीण विकास शिक्षा का उद्देश्य। शारीरिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक, नेतृत्व गुण, मूल्य-विकास, संस्कृति का सरक्षण व अनुकुल संशोधन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, आत्मनिर्भरता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास आदि शिक्षा के अनेक मान्य उद्देश्य है। शारीरिक विकास के लिए पी. टी. एव खेलकूद, मानसिक विकास के लिए अध्ययन-अध्यापन, नैतिक-चारित्रिक एव मूल्य विकास के लिए दैनिक प्रार्थना, जयन्तिया, राष्ट्रीय पर्व आयोजन, पाठ्यक्रम मे विशेष पाठो का समावेश आदि, सामाजिक विकास के लिए सामूहिक रहन-सहन, सामूहिक नेतृत्व गुण विकास के लिए छात्र ससद प्रणाली, सस्कृति विकास के लिए सास्कृतिक पर्वो का आयोजन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लिए पाठ्यक्रम में माध्यमिक स्तर तक सामान्य विज्ञान का अनिवार्य ज्ञान तथा आगे कम्प्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक्स आदि अनकानेक विषयो का समावेश एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकास के लिए दैनिक जीवन में विज्ञान का महत्व, विज्ञान के चमत्कार तथा समाज मे व्याप्त गलत धारणाओ के निवारण के लिए तार्किक रूप से सोच विकसित करने का प्रयत्न आज शिक्षा में हो रहा है। लगता है कि शिक्षा मान्य उद्देश्यो के लिए पूरी तरह प्रयन्नशील है, फिर भी ये सब उद्देश्य पूरे क्यों नही हो रहे है? या तो ये सैद्धातिक है या प्रयत्न में कही कमी है। सैद्धांतिक रूप मे इन सब को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है, लेकिन परीक्षा उत्तीर्ण कर प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लक्ष्य के अतिरिक्त इन उद्देश्यो पर वास्तव मे अत्यल्प ध्यान दिया जाता है। शायद इसीलिए सब कहते हो कि शिक्षा अपेक्षित परिवर्तन नहीं ला रही है।

पाठ्यक्रम

प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम बोझिल है। बालक मे जितना वजन नहीं, उसके बस्ते मे उससे ज्यादा बोझ है। बाल मनोविज्ञान की सैद्धातिक चर्चा होती है। शिक्षा को बालकेन्द्रित कहा जाता है, किन्तु ऐसा लगता है कि शिक्षा पाठ्यक्रम तथा परीक्षा केन्द्रित हो गई है। माध्यमिक या उच्च स्तर का विद्यार्थी जो परीक्षा मे 75-80 प्रतिशत तक अंक ला रहा है, उसी विद्यार्थी से उसी विषय से सबधित पाठ्यक्रम से बाहर की बात की जाए या उसी ज्ञान को व्यावहारिक जीवन मे प्रयोग करने की बात की जाए तो वह अनभिज्ञता प्रदर्शित करता है या स्वय को असमर्थ पाता है। पाठ्यक्रम मे शिक्षा के अर्थ व उद्देश्यो को पूरा करने की क्षमता होनी ही चाहिए, परन्तु ऐसा हो नहीं पा रहा है।

शिक्षण विधि

पुराने समय में बिना प्रशिक्षण के अच्छे शिक्षक बन जाते थे। आज शिक्षक बनने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक हो गया है। प्रशिक्षण विद्यालय-महाविद्यालय किस प्रकार का प्रशिक्षण दे रहे है? आज जिसे प्रशिक्षण दिया जा रहा है, वह 21वी सदी के भारत के नागरिक तैयार करने वाला शिक्षक, प्रशिक्षण ले रहा है। एन.सी.टी.ई. ने फ्रेम-वर्क बनाया। प्रशिक्षण सस्थानो ने उसके अनुरूप पाठ्यक्रम बनाने का प्रयास किया। प्रशिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण में उस पाठ्यक्रम को लागू किया गया। शिक्षक बनने के बाद शिक्षण कौशलो तथा विधियों का कितना सही प्रयोग हो सका, यह विचार व शोध का विषय बना। अधिकाश शोध परिणाम दर्शाते है कि अनेक सदर्भो मे नई विधिया अधिक उपयुक्त हैं। इन्हें अधिकाधिक प्रयोग करे। विद्यालयो मे शिक्षक न जाने उन कौशलो व विधियों के प्रयोग में कैसे पुरानेपन पर ही आ जाते है।

विद्यालय

जनसख्या के अनुरूप भारत मे विद्यालयो की कमी है। अनेक विद्यालयो की कक्षाओ में 60-70 विद्यार्थी तक बैठते है। अनेक विद्यालय उपयुक्त सुविधाओं से हीन हैं। जो विषय चल रहे हैं बोर्ड या विश्वविद्यालय की परीक्षाएं आने तक भी उन विषयों में से कई विषयों के अध्यापक/प्राध्यापकों की व्यवस्था ही नहीं होती। सत्र जिसे कम से कम 210 दिनों का होना चाहिए अनेकानेक कारणों से 150 दिनो का भी नही रह पाता। पुस्तकालयों की व्यवस्था नहीं है। पुस्तकालय है तो पुस्तकें नहीं है। पुस्तकें है भी तो उनका उचित आदान-प्रदान नही हो पा रहा है। विज्ञान के विषयों

को भी पुस्तक की सहायता से पढा दिया जाता है, क्योकि प्रयोगशालाओ की व्यवस्था नही है।

शिक्षक और विद्यार्थी

'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु'' जैसा आदर्श शिक्षक प्रकृतिवाद के कारण पर्दे के पीछे का शिक्षक और प्रयोजनवादी विचारधारा के कारण विद्यार्थी का साहयक बन गया है। शिक्षक विद्यार्थी का सच्चा सहायक बन जाए तो भी पर्याप्त है। समस्याओ के लिए उचित मार्गदर्शन, अपनी क्षमताओ की जानकारी तथा अच्छे अध्ययन की तैयारी के लिए वह क्या प्रयत्न करे आदि संदर्भो मे शिक्षक विद्यार्थियो की वास्तव में कोई अधिक सहायता नही कर रहे है। दूसरी ओर 'आचार्य देवो भव' का अनुकरण करने वाला छात्र शिक्षक को उचित सम्मान नही दे रहा है। जैसी राजनीति देश मे राष्ट्रीय स्तर पर है, वैसी ही विद्यालयो, महाविद्यालयो एव विश्वविद्यालयो मे दिखाई पड रही है। शिक्षक कुछ सिखाने का प्रयत्न भी करे तो समाज मे व्याप्त संदर्भो को देखकर विद्यार्थी शिक्षक द्वारा प्रेरित आदर्शो को सीखने के लिए तैयार ही नही है। वह तो येन-केन-प्रकारेण प्रमाण-पत्र तथा डिग्री प्राप्त करना चाहता है।

अन्य संदर्भ

ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा प्रमाण-पत्र केन्द्रित हो गई है। प्रत्येक नियोक्ता शिक्षा की या शिक्षा के किसी स्तर की शर्त तो रखता है, परन्तु परीक्षा पर विश्वास नही रखता। तभी तो प्रत्येक नियोजक नियुक्ति देने से पूर्व अपनी परीक्षा लेता है। विद्यार्थी पिछले 5 वर्षो के प्रश्न-पत्रो को सामने रखकर अनुमान लगा लेता है कि इस वर्ष परीक्षा में क्या आना सम्भावित है। यदि ठीक से परीक्षा की तैयारी की भी गई तो किसी परीक्षा मे 75 प्रतिशत तक अक लाने वाले विद्यार्थी को आगे एक-दो वर्षो मे कितना याद रह पाता है अथवा वह सीखे हुए ज्ञान को आगे एक-दो वर्षो मे कितना याद रख पाता है यह विचार का विषय है। वस्तुस्थिति यह है कि 75-80 प्रतिशत तक अक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी परीक्षा के दो वर्ष बाद उस ज्ञान को विस्मृत कर देते हैं। उसके हाथ मे केवल डिग्री/ प्रमाण-पत्र या अक तालिका ही रह जाती है। तब शिक्षा की सार्थकता प्रश्नवाचक बन जाती है।

प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक एव महाविद्यालयी शिक्षा के साथ शिक्षक प्रशिक्षण पर भी विचार किया जाना अपेक्षित है। एक ओर तो यह कहा जाता है कि शिक्षक प्रशिक्षण स्तरीय नही है। शिक्षक प्रशिक्षण हेतु चयन पद्धति की विश्वसनीयता सदिग्ध है। शिक्षक मे भाषा, गणित, सामान्य ज्ञान व मानसिक योग्यता के साथ शिक्षण के प्रति लगाव, बालक के प्रति स्नेह व सम्प्रेषण योग्यता होनी चाहिए। जबकि शिक्षक प्रशिक्षण चयन के बाद के तीनो गुणो के मूल्याकन को कोई स्थान नही है। साथ ही प्रशिक्षण सस्थाओं मे पर्याप्त शिक्षक नही होते। अभ्यास शिक्षण, शिक्षण विधिया, नवीन तकनीक प्रयोग, शिक्षण कौशल तथा उनका मूल्याकन प्रभावी नही है। प्रशिक्षण सस्थाओ में कुछ प्राध्यापक 120 या इससे अधिक प्रशिक्षणार्थियो को प्रशिक्षण देते है तथा सत्र मे कुल कार्य दिवस भी पर्याप्त नही होते है।

एक महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न है शिक्षा में आज सख्यात्मक वृद्धि पर जोर दिया जा रहा है अथवा शिक्षा की गुणात्मकता पर। शायद प्रत्येक स्तर पर शिक्षा मे सख्यात्मक वृद्धि पर बल है न कि गुणात्मकता पर।

हम विकसित देशो की श्रेणी मे आना चाहते है। भारतीयता को सुरक्षित रखना चाहते हैं, कभी ससार को शिक्षा देने वाले भारत के बालक आज ज्ञान प्राप्ति के लिए अन्य देशो पर निर्भर हो रहे है। ऐसे मे कमियां गिनाने से काम नही चलेगा। कुछ सार्थक प्रयत्न करने होगे।

समाधान एवं सुझाव

उल्लिखित तथ्य सत्य व कटु अवश्य हैं, किन्तु वास्तविक है। समस्या का समाधान सम्भव ही नहीं है, यह भी गलत धारणा है। न तो शिक्षक दोषी है, न विद्यार्थी और न अभिभावक। दोषी हैं तो हम सभी हैं। अतः सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता है। विकास के लिए शिक्षा को सभी आवश्यक व अपरिहार्य मानते हैं। अतः सभी को अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी।

राष्ट्रीय, राजनैतिक व सामाजिक स्तर

राष्ट्रीय स्तर पर राजनेता व समाजशास्त्री भावी समाज का जो भी स्वरूप तय करे, उसके लिए सुस्पष्ट शिक्षा नीति

बनाई जाए। एक सरकार की नीतियो को दूसरी सरकार अमान्य कर देती है। इससे राष्ट्रीय धन, श्रम व समय का अपव्यय होता है। इसलिए शिक्षा को समाजशास्त्रियो व शिक्षाशास्त्रियों को सौप दिया जाए, जो भावी समय की सम्भावनाओ को ध्यान मे रखकर समाज एव शिक्षा के लक्ष्य तय करे। तदनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जाए। सारी जिम्मेदारी/ जवाबदेही शिक्षको पर न थोपी जाए। उन पर विश्वास किया जाना चाहिए व उन्हे उचित सम्मान दिया जाना चाहिए।

शिक्षक के स्तर पर

शिक्षक यह कहकर हार मानता है कि मै क्या कर सकता हू? मै तो पढ़ा सकता हू। बालक समाज मे जो देख रहा है, उसका ही बालक पर ज्यादा प्रभाव है आदि निराशाजनक सदर्भ है। एक ओर तो समाज व शिक्षक दोनो कहते है कि शिक्षक समाज का निर्माता है, फिर शिक्षक अपने दायित्व को क्यो भूल रहा है? उसे शिक्षण में वे सब प्रयत्न करने चाहिए जो उसके साथ जुड़े हैं। शिक्षक ने यदि शिक्षण व्यवसाय चुना है तो उसे जिम्मेदारी से विमुख नही होना चाहिए। शिक्षण की नव तकनीको व विधियो का प्रयोग, अपने दायित्व के प्रति लगाव तथा विद्यार्थियो का विषयेतर उचित मार्गदर्शन शिक्षकों का दायित्व है।

अभिभावक के स्तर पर

आज शिक्षा का सारा उत्तरदायित्व शिक्षक को ही नही सौपा जा सकता। अनौपचारिक सदर्भ आज अधिक प्रभावी हो गए है। बालक के व्यक्तित्व की प्रथम निर्मात्री माता है। माता-पिता अपनी भूमिका को किस प्रकार निभा रहे है? वे बालक मे सद्‌गुण चाहते तो है, किन्तु क्या स्वय भी उन गुणो के विकास के प्रयत्न करते है? पुराने समय में माता-पिता अथवा गुरु के सामने बालक का जवाब देना असम्मानजनक माना जाता था। आज बच्चे खुलेआम अपने बुजुर्गो से तर्क करते है। कई सदर्भो मे यह ठीक हो सकता है, किन्तु कही इसी कारण बुजुर्गो ने अपने बच्चों को सही रास्ता दिखाने के लिए चुप्पी तो नही साध ली है। शायद इसीलिए अनुभव द्वारा अर्जित शिक्षा का सम्प्रेषण कम होता जा रहा है। घर के वातावरण पर माता-पिता को ध्यान देना अपेक्षित है। बालक को गलत दिशा में जाने से रोकना व उचित मार्गदर्शन देना अभिभावको का भी दायित्व है।

शिक्षा में उद्देश्यनिष्ठता

प्रत्येक स्तर की शिक्षा के अनेक उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं। सम्बन्धित विभाग समय-समय पर इन उद्देश्यो की समीक्षा कर परिवर्तन भी करते है। तद्‌नुरूप पाठ्यक्रम बनाया जाता है। उस पाठ्यक्रम से जिन अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनो की आशा की जाती है, वह नही हो पाता। या तो पाठ्यक्रम मे सकारात्मक परिवर्तन नहीं होता है अथवा शिक्षण विधि मे दोष रह जाता है। कही ऐसा तो नही है शिक्षको ने अपना ध्येय पाठ्यक्रम पूरा कराना ही मान लिया है अथवा विद्यार्थी शिक्षा का एक ही उद्देश्य मान लेते है, परीक्षा उत्तीर्ण करना तथा अच्छे अंक लाना। इसकी समीक्षा व अनुसंधान किए जाने की आवश्यकता है।

प्रवेश-परीक्षा

आज अनेक पाठ्यक्रम ऐसे है जिनके लिए प्रवेश परीक्षा होती है। विभिन्न पाठ्यक्रमो के लिए आयोजित की जाने वाली इन प्रवेश परीक्षाओ से उन पाठ्यक्रमो मे अभ्यर्थी की रुचि, अभिरुचि व योग्यता का मापन किया जाता है। वस्तु स्थिति यह है कि ये परीक्षाए इन गुणो का सत्यता से मापन नहीं करती। यथा शिक्षक प्रशिक्षण की प्रवेश परीक्षा मे भाषा, गणित, मानसिक योग्यता तथा सामान्य ज्ञान आदि का लिखित आधार पर मूल्याकन होता है। मौखिक वार्तालाप, सम्प्रेषण कौशल, अध्यापन के प्रति रुचि-अभिरुचि आदि के मापन को कोई स्थान नही है। पाठ्य-वस्तु योग्यता भी औसत दर्जे की मान्य की गई है। तब पाठ्यविषयो पर अच्छा अधिकार रखने वाला, सहृदय, कर्त्तव्यनिष्ठ, व्यवहार कुशल तथा समर्पित शिक्षक का चयन कहा सम्भव हुआ?

परीक्षा प्रणाली

शिक्षा परीक्षा एव प्रमाण-पत्र पर केन्द्रित न हो। व्यक्तित्व के वे सारे पक्ष जिन्हे हम उस शिक्षा से विकसित करना चाहते है, उन सबका सही मूल्यांकन होना ही चाहिए।

अन्यथा डिग्री व प्रमाण-पत्र में अंक/श्रेणी के स्थान पर केवल यह अंकित कर दिया जाए कि विद्यार्थी ने इस पाठ्यक्रम को पूरा कर लिया है। पाठ्यक्रम पूरा कर लेने के बाद आगे की कक्षा या आगे के पाठ्यक्रम में अध्ययन के लिए अवसर मिल जाए। यदि उस पाठ्यक्रम के आधार पर कोई नियोक्ता विद्यार्थी को नियुक्ति देना चाहता है तो वह आज भी अपनी परीक्षा तथा साक्षात्कार आदि लेता है, उसी प्रकार अपनी परीक्षा लेकर ही नियुक्ति दे।

गुणात्मक नियंत्रण

प्रजातंत्र की सुदृढ़ स्थापना के लिए शिक्षा का सार्वजनीकरण आवश्यक है। संविधान में अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान भी है। विद्यार्थियों एवं विद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि हो रही है, किन्तु जरूरत गुणात्मक नियन्त्रण की है। यह गुणात्मक नियन्त्रण शिक्षा के सभी स्तरों पर होना चाहिए।

शिक्षा सार्थक कैसे हो? शिक्षा तभी सार्थक हो सकती है जबकि शिक्षा के द्वारा एक आदर्श नागरिक, जो शारीरिक रूप से स्वस्थ, ज्ञान सम्पन्न, बहादुर, सद्गुणी, श्रमनिष्ठ आत्मनिर्भर नेतृत्व गुणों से युक्त, सुनागरिक, देशप्रेमी, सबका हितैषी तथा न्यायकारी बनाए जाए। इसके लिए जो भी प्रयत्न करने पड़े, बिना संकोच एवं भय के वे प्रयत्न किए ही जाने चाहिए। एतदर्थ शिक्षक, अभिभावक व समाज सभी को दृढ़ संकल्प लेना होगा, तभी शिक्षा सार्थक हो सकेगी। ☐☐

प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र
वनस्थली विद्यापीठ, राज.

यौन तथा एड्स शिक्षा की अनिवार्यता

❑ हरिश्चन्द्र व्यास

किशोर देश व समाज के महत्वपूर्ण घटक होते हैं। फिर भी, अभी तक, इस समूह की यौन शिक्षा, यौन संचरित रोग एव एड्स जैसी गंभीर समस्याओ की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। 1990 मे भारत में हुए अध्ययनो एवं अनुसंधानो ने यौन शिक्षा एवं यौन सचरित सक्रमणों को आलेखित करके काफी हद तक इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया है। आज देश में प्रजनन स्वास्थ्य सबधित संक्रमणो तथा एच.आई.वी. / एड्स संबधित विषय को राष्ट्रीय स्तर पर महत्व प्रदान किया जा रहा है। प्रजनन तंत्र सक्रमण / एड्स जैसी जानलेवा व्याधि का मुख्य कारण है सही समय पर किशोर व किशोरियो को अभिभावको तथा शिक्षण संस्थाओ द्वारा यौन सबधित ज्ञान प्रदान न करना है। अतः देश की समस्त उच्च प्राथमिक, माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक शिक्षण सस्थाओं द्वारा विभिन्न विषयो के माध्यम से यौन शिक्षा तथा प्रजनन तत्र के सक्रमणो तथा एच.आई.वी./ एड्स से सबधित तथ्यात्मक ज्ञान प्रदान करने से हम भावी पीढ़ी के स्वास्थ्य तथा देश की संस्कृति की रक्षा करने मे सफल हो सकते है। किशोरो को स्वस्थ रहने की आवश्यकताओ के बारे में जानकारी तथा प्रजनन तंत्र सक्रमण निवारण हेतु सेवाओ को सुस्पष्ट किया जाए ताकि वे भली-भाति अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें।

भारत मे 12 से 19 वर्ष की आयु के किशोर व किशोरिया कुल जनसंख्या का पाचवा भाग है। इस आयु-वर्ग मे लगभग 20 करोड़ की अनुमानित जनसख्या है। 23 प्रतिशत जन्म, 15-19 वर्ष की किशोर माताओ द्वारा होता है। यौनिक गतिविधियो के शीघ्र शुरू होने, यौन-साथियो के परिवर्तन की आवृति के कारण किशोरो को एड्स सहित यौन सचरित रोगों के होने की अधिक सम्भावना रहती है। 12 से 19 वर्ष की आयु के लड़के और लड़कियो को शारीरिक तथा भावात्मक रूप से सन्तुलन रखने की दृष्टि से यौन सचरित रोगों, सभी प्रकार की यौनिक हिसा जैसे अस्वाभाविक एव असामाजिक कृत्य से मुक्त रहने देने हेतु यौन शिक्षा तथा एड्स शिक्षा को उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर पढाये जाने वाले पाठ्यक्रम के समस्त विषयो में समाहित करने के लिए अधिकाधिक महत्व प्रदान करना सामाजिक व राष्ट्रीय स्वास्थ्य की दृष्टि से अति आवश्यक है। किशोरावस्था के अभियोजनो का व्यक्ति के जीवन, अवसरों, शिक्षा तथा स्वास्थ्य स्तर पर काफी प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। भारत मे विवाह की कानूनी आयु लडकियो के लिए 18 वर्ष तथा लड़को के लिए 21 वर्ष

देश में विकृत व भ्रमित यौन तथ्यों के फलस्वरूप यौन व्याधियों एवं इनके संक्रमणों की उपस्थिति में एच.आई.वी. संक्रमण / एड्स के अवसर स्वतः बढ़ जाते हैं। अधिकांश प्रजनन तंत्र संक्रमण किशोर व किशोरियों में यौन सम्पर्कों से फैलता है। अतः देश की शिक्षण संस्थाओं द्वारा विभिन्न विषयों के माध्यम से यौन शिक्षा तथा प्रजनन तंत्र के संक्रमणों, एच.आई.वी. / एड्स से संबंधित तथ्यात्मक ज्ञान प्रदान करने से हम भावी पीढ़ी के स्वास्थ्य तथा देश की संस्कृति की रक्षा करने में सफल हो सकते हैं।

है फिर भी आज भी आंचलिक राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में 50 प्रतिशत से अधिक लड़के व लड़कियों का विवाह 16 वर्ष से कम की आयु मे ही हो जाता है। जिससे यौन मान्यताओ तथा व्यवहार की नई चिन्ताए उत्पन्न हो जाना भी स्वाभाविक ही है। किशोरों मे यौनिक गतिविधियों की व्यापकता काफी है और लडकियो की अपेक्षा, लड़को में अधिक है। किशोरियो द्वारा, सामाजिक भय के कारण, गैर वैवाहिक यौन सबंधो का स्वीकार करना काफी कम है। इसलिए विवाह पूर्व यौन

सबधो की व्यापकता का वास्तविक अनुमान लगाना सामान्यत· सभव नही है। फिर भी कहा जा सकता है कि देश मे शादी से पूर्व तथा शादी के बाद यौन संबंध बनाने के बारे मे रवैया "स्वतत्र" किस्म का है। प्रथम बार यौन सबधों के लिए प्राय व्यावसायिक यौन कर्मियो का ही प्रयोग किया जाता है।

यौन के मुद्दों मे अध्ययनरत किशोरो का ज्ञान गौण अथवा अल्प होता है। 50 प्रतिशत किशोरियो को मासिक धर्म के बारे मे भी ज्ञान नही होता। जिनको सीमित ज्ञान है, वह भी कुछ सामाजिक परम्पराओं (जैसे कि मासिक धर्म के दौरान भोजन बनाने की अनुमति न देना) पर आधारित है न कि शरीर क्रिया के ज्ञान पर। किशोर व किशोरिया को यौन मुद्दे पर सखा-साथियो से ही जानकारी प्राप्त होती है। जो सामान्यत' गलत तथा भ्रमित करने वाली होती है। अभिभावको तथा शिक्षको से भी जानकारी मिलना नगण्य है क्योंकि वे यह जानकारी किशोरो व किशोरियो को देने मे काफी झिझकते है। आयु तथा लिग कारको से किशोरो को प्रजनन तथा यौन सबधी निर्णय लेने मे काफी रुकावट होती है।

भारत मे पश्चिमी सस्कृति के प्रभाव स्वरूप अवाछित गर्भ तथा उत्प्रेरित गर्भपात एक आम बात होती जा रही है। जबकि "प्रीनेटल डायग्नोस्टिक टेकनिक एक्ट, 1994" के अन्तर्गत महिला भ्रूणो के गर्भपात को एक कानूनी अपराध माना है। उत्प्रेरित गर्भपात अक्सर अप्रशिक्षित कर्मियो द्वारा अस्वच्छ औजारों से तथा अप्रमाणित स्थानो पर किये जाते है जिसके कारण किशोरियो के जीवन को अत्यधिक जोखिम होने की प्रबल सम्भावना बन जाती है। गर्भपात हो जाने के उपरान्त नि सतानता, मानसिक तनाव तथा पारिवारिक कलह जैसे कष्टदायक तत्वों से तो जीवन भर की वेदना को भी सहन करने के लिए उसे विवश होना पड़ सकता है। यह जोखिम और भी बढ़ जाता है अगर गर्भपात दूसरे या तीसरे मास मे किया जाता है—जैसा कि किशोरावस्था के गर्भधारण में अक्सर होता है। किशोर-किशारियों मे यौनिक गतिविधियो मे शीघ्र शुरू होने तथा यौन साथियो के परिवर्तन की आवृति के कारण किशोरो को एच आई.वी./ एड्स सहित यौन सचरित रोगो के होने का अधिक जोखिम होता है। बलात्कार के अधिकतम मामले 10-16 वर्ष की आयु मे होते है अर्थात् देश में यौन उत्पीडन की घटनाए व्यापक रूप ले रही है। गरीबी, पर्यटन एव सही रूप मे शिक्षा प्रदान करने जैसी कमी के फलस्वरूप अध्ययनरत किशोरियो को वेश्यावृति मे धकेल दिया जाता है ताकि कुवारी लडकी के साथ यौन सबधो से एच आई वी / एड्स सहित सभी यौन सचरित रोग नही हो पाते।

देश में विकृत व भ्रमित यौन तथ्यो के फलस्वरूप यौन व्याधियो एव इनके सक्रमणो की उपस्थिति में एच. आई.वी सक्रमण/ एड्स होने के अवसरों का बढ जाना भी स्वाभाविक ही है। किशोरो को भी प्रजनन तत्र के सक्रमण, विशेषकर यौन सचरित रोग होते है परन्तु इनकी प्रचुरता तथा दुष्परिणाम किशोरियो मे अधिक गभीर होते है। प्रजनन तत्र सक्रमणो के फलस्वरूप पुरुषो तथा महिलाओ के ऊपरी तथा निम्न प्रजनन तत्रो मे, विभिन्न जीवाणुओ, विषाणुओ तथा प्रोटोजोआ से उत्पन्न होने वाले सक्रमण सम्मिलित है। अधिकाश प्रजनन तत्र सक्रमण किशोर व किशोरियो मे यौन सम्यको से ही फैलता है। प्रजनन तत्र सक्रमण निम्न प्रजनन तत्र मे शुरू होते है तथा सही समय पर सक्षम डाक्टर द्वारा उपचार न होने की स्थिति मे ये ऊपरी प्रजनन तंत्र के अंगों, जैसे गर्भाशय, फैलोपियन, नलिकाओं तथा अंडाशय मे भी फैल जाते है।

किशोरियो द्वारा असुरक्षित गर्भपात तथा आंतरिक रूप से होने वाले सक्रमण जो व्यक्तिगत यौन सम्बन्धो के कारण हो जाने की प्रबल सम्भावना बन जाती है। आज देश मे किशोर व किशोरियों मे प्रजनन तत्र सक्रमण काफी व्यापक रूप से फैल रहा है। किशोरो में मूत्र नलिका मे तथा जनन अगो में सक्रमण होने पर उपचार हेतु नीम-हकीमों के पास पहुचने के सत्य तथ्य पत्र-पत्रिकाओ में परिलक्षित होते हैं। क्योंकि किशोर व किशोरियां दोनो में इन सक्रमणों से प्रभावित होने के उपरान्त इसके बारे मे बात न करने का रिवाज है। उत्तर प्रदेश मे किए गए एक अध्ययन के अनुसार लगभग 9 प्रतिशत पुरुषों मे किसी यौन सचरित रोग से ग्रस्त होने की बात स्वीकार की लेकिन उनमे से केवल 45 प्रतिशत ने ही किसी स्वास्थ्यकर्मी से उपचार के लिए सलाह

ली थी अर्थात् यौन रोगो के बारे मे सलाह लेना लाछित होना समझने की मानसिकता पाले हुए है। किशोरिया अपनी माता से भी इन रोगो के बारे मे चर्चा तक नही करना चाहती है। उसी तरह भारतीय किशोर व किशोरियो के लिए ऐसी असमजस की स्थिति मे सक्षम स्वास्थ्य अधिकारी से स्वास्थ्य सेवाएं प्राप्त करना उनके लिए एक अत्यधिक कठिन कार्य बन जाता है जो उनके ऊपर कोई गलत छाप या लांछन न लगाएं। सामाजिक लांछन के भय से उपयुक्त ढग से निदान व उपचार हेतु योग्य डाक्टर से सलाह लेने के अभाव मे यौन सक्रमण रोग, प्रजनन तत्र तथा शरीर के अन्य अगो में फैल कर काफी जटिलताए उत्पन्न होने की सम्भावनाएं बन जाती है।

प्रजनन तंत्र के सक्रमणों तथा एच आई वी./ एड्स से सबधित सक्रमण दोनों किशोर व किशोरियों द्वारा अनेक साथियो के साथ असुरक्षित यौन सबधों के जोखिम भरे व्यवहार से जुडे हुए होते है। अत. वे सब उपाय, जो प्रजनन तत्र सक्रमणो की रोकथाम करते हैं एच.आई.वी सक्रमण की रोकथाम के लिए भी कारगर है। किशोर व किशोरियों के प्रजनन तंत्र के सक्रमण की उपस्थिति मे एच.आई.वी. सक्रमण को प्राप्त करना तथा उन्हे फैलाना काफी सरलता से हो जाता है। सिफिलिस, शेंक्राइड तथा हरपीज जैसे जनन अंगों मे रिसने वाले जख्म पैदा करने वाले सक्रमणों से एच. आई.वी. सक्रमण से सचरण का खतरा निश्चय ही 10 गुना बढ़ जाता है। ऐसे सक्रमणो से, सुजाक, क्लेमाइडियल सक्रमण, टाइकोमोनिआसिस तथा वैक्टीरियल, एच आई.वी. सक्रमण के सचरण का जोखिम 4 गुणा हो जाता है। ऐसी स्थिति मे शरीर की रोगों से लडने की क्षमता मे स्वाभाविक रूप से कमी हो जाने से प्रजनन तंत्र के सक्रमणो द्वारा खतरनाक स्थिति पैदा करने मे सफल होते जाते है।

किशोर व किशोरियो को आखिरकार प्रजनन तत्र सक्रमण तथा एच.आई वी./ एड्स से निजात्त हम कैसे दिलवा सकते है? इसके लिए आवश्यक है कि अध्ययनरत किशोर व किशोरियों को यौन शिक्षा तथा एच आई वी / एडस् के बारे मे सम्पूर्ण व सही जानकारी प्रशिक्षित अध्यापको द्वारा शिक्षण सस्थाओ द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा के अभाव में यौन रोग व सामाजिक तथा प्रजनन स्वास्थ्य संबधित समस्या में प्रति वर्ष 5 प्रतिशत की वृद्धि होने का अनुमान है। शाला छोडने वाले तथा कभी भी शिक्षण सस्थाओ मे प्रवेश न लेने वाले किशोर व किशोरियो को अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रो द्वारा सही ढग से "यौन" तथा "एड्स" के बारे मे श्रव्य-दृश्य साधनो से ज्ञान प्रदान करना वांछित है। किशोर व किशोरियों को पुरुष व महिला के क्रमिक विकास के स्तर के अनुकूल परिवर्तित होने का ज्ञान, मानव की कामुकता उसके सम्पूर्ण जीवन से एक स्वास्थ्य की इकाई के रूप में होने का ज्ञान, यौन अगो एव कामेच्छा के बारे मे उत्सुकता का निवारण करना तथा गलत रास्ते पर भटने से सम्भावित दुष्प्रभावो के बारे मे आगाह करने जैसे तथ्यों को विभिन्न विषयों की पाठ्य-वस्तु मे इन्ट्रीग्रेटेड रूप मे अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया हेतु किशोर व किशोरियों के लिए सृजन करना व करवाना आवश्यक है। बहुत से विकसित राष्ट्र भी काम शिक्षा एव एड्स के बारे मे पाठ्य-वस्तु के रूप मे सृजन करने तथा पढाने के पक्षधर नही हे। लेकिन देश के किशोर-किशोरियो को गलत रास्तो पर भटकने से बचाने तथा अपनी भावी पीढ़ी के जीवन मे प्रजनन तत्र सक्रमण तथा एच.आई.वी / एड्स जैसी जानलेवा व्याधियो से बचाते हुए दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने हेतु अति वांछित है। यौन शिक्षा तथा प्रजनन स्वास्थ्य सम्बन्धित ज्ञान से तो भौतिक, मानसिक (चेतन व अर्द्धचेतन मन), मूल प्रवृतियों, सवेगात्मक, सामाजिक-आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक मानव संबधो के ऐसे पक्षों का विश्लेषणात्मक अध्ययन है जो किशोर व किशोरियो के सबधो से प्रभावित होते हैं। कामुकता उसके सम्पूर्ण जीवन को एक स्वस्थ्य इकाई के रूप मे और एक सृजनात्मक शक्ति के रूप मे समन्वित करने हेतु शिक्षण संस्थाओं द्वारा उत्प्रेरित किया जाना चाहिए।

किशोर व किशोरियों द्वारा कामेच्छा या यौनागो के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता, मानसिक व शारीरिक विकास के साथ यौन तथा यौन रोगो सबधी जानकारी देने, वीर्यपात, मासिक धर्म, हस्तमैथुन, शादी, संभोग, गर्भाधान, सन्तानोत्पति और यौन रोग एव प्रजनन सक्रमण रोग के बारे मे सही रूप मे ज्ञान प्रदान करने, किशोर व किशोरियो को नीम-हकीमो के चक्कर मे न फसने देने; काम शिक्षा का सांस्कृतिक मूल्यो से सहसम्बन्ध स्थापित करने, व्यक्तिगत यौन विकास से उत्पन्न व्याकुलता व चिताओ से किशोर-किशोरियो को मुक्त करने, मानसिक

कुठाओ से निजात दिलाने एव किशोर व किशोरियो को काम-विकृतियो से बचाने के लिए यौन शिक्षा शिक्षण सस्थाओ द्वारा उपयुक्त ढग से प्रदान करना आज के समाज के लिए आवश्यक है। अभिभावक यौन एव एड्स शिक्षा देने के प्रसग मे चाहे सकारात्मक या नकारात्मक वृत्ति क्यो न रखते हो, लेकिन अधिकाश किशोर व किशोरिया स्वय यौन एव प्रजनन स्वास्थ्य सबधित तथ्यो के बारे मे ज्ञान शिक्षण सस्थाओ द्वारा प्रदान किए जाने के प्रबल पक्षधर है। किशोरो मे बच्चों के जन्म, लिगो में भेद, सतानोत्पत्ति, गर्भाधान, यौन जीवन एव प्रजनन स्वास्थ्य को लेकर उत्पन्न भ्रातिया व गलत धारणाए विद्यमान हैं। इन गलत धारणाओ को सामान्य विज्ञान, जीव विज्ञान एव शरीर विज्ञान आदि विषयो के माध्यम से अध्यापक द्वारा ज्ञान प्रदान करना उपादेय सिद्ध हो सकता है। यदि किशोर अवस्था प्रारम्भ होते ही उनको उचित यौन शिक्षा एव प्रजनन स्वास्थ्य सबंधित तथ्य प्रदान किए जाए तो वे यौन-रोग, यौन भ्रान्तियो, एड्स जैसी जानलेवा व्याधियो से निजात प्राप्त करते हुए आनन्दमय दाम्पत्य जीवन, खुशी एवं स्वस्थ युवक तथा युवतियो के रूप में व्यक्तित्व को विकसित होने मे सफल सिद्ध हों सकते हैं।

अभिभावको का भी उत्तरदायित्व है कि वे अपने किशोर व किशोरियो, बेटे-बेटियो की यौन रुचियो पर नजर रखना सूक्ष्म रूप से अपना कर्तव्य समझे। उनके शारीरिक वृद्धि के साथ-साथ यौनागो के विकास के सबध मे उचित ज्ञान प्रदान करना प्रत्येक मा-बाप का पुनीत कर्तव्य है। किशोरावस्था मे लड़को मे वीर्यपात व लडकियो में मासिक धर्म को लेकर उत्पन्न गलत धारणाओ को स्वाभाविक तथ्य के रूप अवबोधित करवाने का सफल प्रयत्न करना चाहिए। युवक लडकों व लडकियो मे प्रेम और शादी के बारे में उनके स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास भी अभिभावको द्वारा किया जाना चाहिए। यौन-रोग, हिसा के कारण गर्भावस्था के बुरे परिणाम, यौन सचरित सक्रमण, जीवन में आत्मविश्वास एव आत्म नियत्रण की अभिवृति का विकास करने की प्रेरणा देना प्रत्येक अभिभावक का प्रमुख उत्तरदायित्व है।

प्रजनन स्वास्थ्य मे सुधार हेतु सार्वजनिक तथा निजी प्रयासो का सम्मिश्रण करना चाहिए। ठीक इसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर यौन शिक्षा का प्रचार-प्रसार व सही जानकारी प्रदान करने हेतु सार्वजनिक व निजी सस्थानो एव पीढियो को भी हरसम्भव प्रयास करना चाहिए।

औपचारिक शिक्षण सस्थाओ द्वारा किशोर व किशोरियो को अध्यापक द्वारा कथन विधि से यौन प्रक्रियाओ के प्रसग मे जानवरो के उदाहरण प्रस्तुत करके "एनोलॉजी" के आधार पर अध्ययन करवाते हुए प्रसगवश किशोर व किशोरियो को यौन भ्रान्तियां, सुरक्षित यौन आचार-व्यवहार, गर्भपात तथा अन्य क्रियाओ एव जनन अगो की स्वच्छता के बारे मे जानकारी देने का कोई अवसर हाथ से न जाने दे। यौन-रोग, प्रजनन तत्र सक्रमण/ एड्स विशेषज्ञो द्वारा अधिकृत जानकारी किशोर व किशोरियो को दी जाने की व्यवस्था शिक्षण सस्थाओ द्वारा निष्पादित करनी चाहिए। औपचारिक व प्रौढ़ शिक्षा अनुदेशको का पुनीत कर्तव्य है कि वे यौन शिक्षा एव एड्स से सम्भावित खतरो के बारे मे वाद-विवाद, निबन्ध प्रतियोगिता तथा समूह चर्चाओ का आयोजन करे। अध्यापको द्वारा समुदाय मे भी इन मुद्दो पर समूह चर्चा का आयोजन उपादेय सिद्ध हो सकता है। यौन शिक्षा मे नकारात्मक निषेध और नैतिक निर्देश से अध्यापक को सदैव बचना चाहिए। स्वास्थ्य विज्ञान की पाठ्यपुस्तको का सृजन करते-वक्त शारीरिक बनावट, हारमोन्स, यौन प्रक्रिया एव एड्स से होने वाले दुष्प्रभावो के बारे मे तथ्यात्मक ज्ञान प्रदान करने का सफल प्रयत्न होने के प्रतिमान को सामने रखना वाछित है। सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक मे शादी और पारिवारिक सबधो एव सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के स्वरूप पर भी पर्याप्त तथ्य किशोर-किशोरियो को माध्यमिक स्तर पर प्रदान करना भावी पारिवारिक जीवन के लिए अति उपादेय सिद्ध हो सकता है।

यौन शिक्षा, प्रजनन तत्र के सक्रमणो तथा एच आई. वी./ एड्स के सबध में अभिभावको और औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षण सस्थाओं द्वारा तथ्यात्मक जानकारी किशोर व किशोरियो को उच्च प्राथमिक, माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक स्तर पर सही तरीके व स्वाभाविक रूप से प्रदान करना उनका नैतिक कर्तव्य समझना चाहिए। प्रजनन स्वास्थ्य के स्तर तथा जीवन की गुणवत्ता पर यौन शिक्षा का प्रभाव अधिकाधिक पड़ता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि किशोर व किशोरियो के अलावा सभी

आयु-वर्ग को यौन शिक्षा एव एड्स से सम्बन्धित तथ्यो के आधार पर अभिवृत्ति मे परिवर्तन करते हुए उचित ढग, विवेक युक्त कार्यो की जीवन मे शुरुआत करने का दृढ संकल्प ले। जिससे किशोर व किशोरियो मे पनप रहे भ्रमित दृष्टिकोण से वे निजात पा सके और कुठाओ का भी समाधान सहज ही सभव हो सके। जब अध्यापक व अभिभावको द्वारा सही समय पर सही ढग से सही तथ्यात्मक ज्ञान उन्हें प्रदान किया जाता है तो वे अपना दाम्पत्य जीवन वफादारी के साथ व्यतीत करते हुए स्वस्थ एव सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास करते हुए उत्पादक नागरिक के रूप मे भारतीय समाज मे उभर कर राष्ट्रीय सेवा देने मे सफल हो सकता है। ❑❑

कीकाणी व्यासों का चौक
बीकानेर, राजस्थान

पर्यावरण सजगता पर आर्थिक स्तर का प्रभाव

❑ प्रेम छाबड़ा
❑ उषा भटनागर

विद्यालय ज्ञान प्रवर्तन के महत्वपूर्ण केन्द्र होते है। पर्यावरण के गिरते स्तर को सुधारने मे यह महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है। बालक विद्यालयो की महत्वपूर्ण इकाई होते है। विद्यालय का परिवेश उसे अत्यधिक प्रभावित करता है। यहा की स्वच्छता, शुद्धता उसमे पर्यावरण के प्रति सजगता जागृत करती है। यही बालक अपने समाज मे पर्यावरण सजगता जागृत करके भविष्य के लिए सुरक्षित जीवन की सभावनाओ का निर्माण कर सकते है।

प्राथमिक स्तर के उच्च तथा निम्न आर्थिक स्तर के बालको मे पर्यावरण के प्रति सजगता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन के उद्देश्य

- उव्च एव निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियो की पर्यावरण सजगता के आधार पर परस्पर तुलना करना।
- उच्च आर्थिक स्तर के बालको एव निम्न आर्थिक स्तर के बालको की पर्यावरण सजगता के आधार पर परस्पर तुलना करना।
- उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओ एव निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओ की पर्यावरण सजगता के आधार पर परस्पर तुलना करना।
- उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओ तथा निम्न आर्थिक स्तर के बालको मे पर्यावरण सजगता के आधार पर परस्पर तुलना करना।
- निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओ एव उच्च आर्थिक स्तर के बालको मे पर्यावरण सजगता के आधार पर परस्पर तुलना करना।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध में दो विद्यालयो के कक्षा चार के 9⁺ आयु समूह के विद्यार्थियो का चयन यादृच्छीकृत विधि द्वारा किया गया। न्यादर्श मे 85 विद्यार्थियो को सम्मिलित किया गया।

सामान्यतः ऐसी धारणा है कि निम्न आर्थिक स्तर के बालकों की तुलना में उच्च आर्थिक स्तर के बालकों के घर तथा आसपास का वातावरण स्वच्छ व सुन्दर पाया जाता है। यह असमानता उनके क्रियाकलापों, व्यवहार व पर्यावरण के प्रति सजगता संबंधी आचार-विचारों को प्रभावित करती है। इस धारणा की पुष्टि के संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन का चयन कर क्रियान्वित किया गया है।

उपकरण

कक्षा चार के बालको की पर्यावरण सजगता की जाच हेतु पर्यावरण सजगता– परिस्थिति परीक्षण के निर्माण मे दैनिक जीवन से सबधित 30 परिस्थितियो को सम्मिलित किया गया। इसमे पेड़-पौधो, पशु-पक्षियो के प्रति प्रेम, दया उनका सरक्षण, जल एव ऊर्जा की मितव्ययिता, विद्यालय की स्वच्छता, खाद्य सामग्री की स्वच्छता तथा आसपास के पर्यावरण से जुडी परिस्थितिया ली गई। 30 परिस्थितियो के आधार पर एक उदाहरण यहा प्रस्तुत है–

स्कूल के विद्यार्थी पिकनिक पर गए। सभी ने बगीचे मे बैठकर खाना खाया। बाद में सभी बस मे बैठने की जल्दी करने लगे। आप क्या करेगे–

- ❑ केवल अपना सामान उठाकर बस की ओर चल देगे।
- ❑ *कागज, छिलके आदि वही पडे रहने देगे।*
- ❑ मित्रो के साथ कागज, छिलके, झूठन आदि

नियत स्थान पर फेंकेंगे।

- ☐ अपने मित्रो को ढूढ़ेंगे।
- ☐ मित्रो को रुकने के लिए कहेंगे।

पर्यावरण सजगता– परिस्थिति परीक्षण में प्रत्येक परिस्थिति के लिए पाच विकल्प दिए गए जिनके क्रमानुसार 5, 4, 3, 2, 1 अक निर्धारित किए गए।

संचालन

प्रस्तुत शोध मे पर्यावरण सजगता– परिस्थिति परीक्षण का प्रशासन कक्षा चार के 9+ आयु समूह के यादृच्छीकृत विधि से चयनित दो विद्यालयो के 85 बालकों पर किया गया। परीक्षण के सचालन से पूर्व बालकों के आर्थिक स्तर से सबधित जानकारी एकत्र की गई। इस परीक्षण मे दैनिक जीवन से संबधित 30 परिस्थितिया ली गई। परीक्षण के सचालन के बाद परीक्षण पत्रो को एकत्र किया गया तथा उनका अंकीकरण एव साख्यिकीय कार्य प्रारंभ किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य उच्च एवं निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की पर्यावरण सजगता की जाच करना था। अत' न्यादर्श पर सचालित पर्यावरण सजगता– परिस्थिति परीक्षण के प्राप्ताको का साख्यिकीय विश्लेषण मध्यमान, प्रामाणिक विचलन एव "टी" परीक्षण द्वारा किया गया।

उद्देश्य एवं परिकल्पनाओ पर आधारित विश्लेषण निम्नानुसार है–

सारिणी 1

उच्च एवं निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के संदर्भ में पर्यावरण सजगता के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन एवं टी मान

परिवर्त्य	*मध्यमान*	*प्रामाणिक विचलन*	*टी मान*
उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	143 58	7 20	6 18*
निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	132 48	7 67	

* 0.01 स्तर पर सार्थक स्वतंत्र अश 83

सारिणी 1 से विदित होता है कि "टी" परीक्षण का मान 6.18 है जो कि 0 01 स्तर पर सार्थक है जबकि स्वतत्र अश 83 है। इसका अर्थ है कि उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थियो के पर्यावरण सजगता मध्यमान में अतर है।

सारिणी 1 से स्पष्ट है कि उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थियो का पर्यावरण सजगता मध्यमान 143.58 है तथा निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियो का पर्यावरण सजगता मध्यमान 132.48 है। दोनो आर्थिक स्तर के विद्यार्थियो की तुलना करने से ज्ञात होता है कि उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थियो का पर्यावरण सजगता मध्यमान सार्थक उच्च है, इसका अर्थ है कि उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थियो मे पर्यावरण के प्रति सजगता अधिक है।

सारिणी 2

उच्च एवं निम्न आर्थिक स्तर के बालकों के संदर्भ में पर्यावरण सजगता के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन एवं टी मान

परिवर्त्य	*मध्यमान*	*प्रामाणिक विचलन*	*टी मान*
उच्च आर्थिक स्तर के बालक	140 36	6.56	4 32*
निम्न आर्थिक स्तर के बालक	130 81	6 46	

* 0.01 स्तर पर सार्थक स्वतत्र अश 33

सारिणी 2 से ज्ञात होता है कि "टी" परीक्षण का मान 4 32 है जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है जबकि स्वतंत्र अश 33 है। इसका अर्थ है कि उच्च आर्थिक स्तर के बालको के पर्यावरण सजगता मध्यमान एव निम्न आर्थिक स्तर के बालको के पर्यावरण सजगता मध्यमान मे सार्थक अंतर है। इस आधार पर उच्च एव निम्न आर्थिक स्तर के बालकों की पर्यावरण सजगता मे अतर है।

यह भी स्पष्ट है कि उच्च आर्थिक स्तर के बालकों का पर्यावरण सजगता मध्यमान 140.36 है तथा निम्न आर्थिक स्तर के बालको का पर्यावरण सजगता मध्यमान 130 81 है। दोनो आर्थिक स्तर के बालको की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि उच्च आर्थिक स्तर के बालको का

पर्यावरण सजगता मध्यमान उच्च है, इसका अर्थ है कि उच्च आर्थिक स्तर के बालको मे पर्यावरण सजगता अधिक है।

सारिणी 3
उच्च एवं निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओं के संदर्भ में पर्यावरण सजगता के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन एवं टी मान

परिवर्त्य	*मध्यमान*	*प्रामाणिक विचलन*	*टी मान*
उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओ	145 07	6 86	3 60*
निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओ	133 09	9 43	

* 0 10 स्तर पर सार्थक स्वतत्र अश 48

सारिणी 3 से स्पष्ट है कि टी परीक्षण का मान 3 60 है जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है जबकि स्वतत्र अश 48 है। इसका अर्थ है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओ के पर्यावरण सजगता मध्यमान एव निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओ के पर्यावरण सजगता मध्यमान मे सार्थक अंतर है। इस आधार पर उच्च आर्थिक स्तर एव निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओ की पर्यावरण सजगता मे अतर है।

यह भी ज्ञात होता है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओ का पर्यावरण सजगता मध्यमान 145 07 है तथा निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओ का पर्यावरण सजगता मध्यमान 133.09 है। दोनो आर्थिक स्तर की बालिकाओ की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओ का पर्यावरण सजगता मध्यमान उच्च है, इसका अर्थ है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाए पर्यावरण के प्रति अधिक सजग है।

सारिणी 4 से विदित होता है कि टी परीक्षण का मान 7 36 है जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है जबकि स्वतत्र अश 55 है। इसका अर्थ है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओ के पर्यावरण सजगता मध्यमान एव निम्न आर्थिक स्तर के बालको के पर्यावरण सजगता, मध्यमान मे सार्थक अतर है। इस 'आधार पर उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओं एव निम्न आर्थिक स्तर के बालको की पर्यावरण सजगता मे अतर है।

सारिणी 4
उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओं एवं निम्न आर्थिक स्तर के बालकों के संदर्भ में पर्यावरण सजगता के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन एवं टी मान

परिवर्त्य	*मध्यमान*	*प्रामाणिक विचलन*	*टी मान*
उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाए	145 07	6 83	7.36*
निम्न आर्थिक स्तर की बालक	130 81	6 46	

* 0 10 स्तर पर सार्थक स्वतत्र अश 55

इसका अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओ का पर्यावरण सजगता, मध्यमान 145 07 है तथा निम्न आर्थिक स्तर के बालको का पर्यावरण सजगता मध्यमान 130.81 है। दोनो की तुलना करने से स्पष्ट है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओं का पर्यावरण सजगता मध्यमान सार्थक उच्च है। इसका अर्थ है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओं मे पर्यावरण सजगता अधिक है।

सारिणी 5
निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओं एवं उच्च आर्थिक स्तर के बालकों के संदर्भ में पर्यावरण सजगता के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन एवं टी मान

परिवर्त्य	*मध्यमान*	*प्रामाणिक विचलन*	*टी मान*
उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाए	133 09	9 43	2.08*
निम्न आर्थिक स्तर के बालक	140 36	6.56	

* 0.05 स्तर पर सार्थक स्वतत्र अश 26

सारिणी 5 से स्पष्ट होता है कि टी परीक्षण का मान 2.08 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है जबकि स्वतत्र अश 26 है। इसका अर्थ है कि निम्न आर्थिक स्तर की

बालिकाओं के पर्यावरण सजगता, मध्यमान एव उच्च आर्थिक स्तर के बालको के पर्यावरण सजगता मध्यमान मे सार्थक अतर है। इस आधार पर निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओं एवं उच्च आर्थिक स्तर के बालको की पर्यावरण सजगता मे अतर है।

यह भी विदित होता है कि निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओ का पर्यावरण सजगता मध्यमान 133.09 है तथा उच्च आर्थिक स्तर के बालको का पर्यावरण सजगता, मध्यमान 140 36 है। दोनो की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि उच्च आर्थिक स्तर के बालको का पर्यावरण सजगता, मध्यमान सार्थक उच्च है। इसका अर्थ है कि उच्च आर्थिक स्तर के बालको में पर्यावरण सजगता अधिक है।

निष्कर्ष

- उच्च एवं आर्थिक स्तर के विद्यार्थियो की पर्यावरण सजगता— परिस्थिति परीक्षण के प्राप्तांको मे तुलनात्मक रूप से अतर है। अर्थात् उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थियो के प्राप्ताक अधिक हैं। जो यह प्रदर्शित करते है कि उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण सजगता अधिक है।
- उच्च आर्थिक स्तर एव निम्न आर्थिक स्तर के बालको के पर्यावरण सजगता— परिस्थिति परीक्षण के प्राप्तांको मे परस्पर तुलना करने से ज्ञात होता है कि उच्च आर्थिक स्तर के बालको मे पर्यावरण सजगता अधिक है।
- उच्च आर्थिक स्तर एव निम्न आर्थिक स्तर के बालिकाओ की पर्यावरण सजगता— परिस्थिति परीक्षण के प्राप्ताको मे परस्पर तुलना करने से ज्ञात होता है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओं मे पर्यावरण सजगता अधिक है।
- उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओ एवं निम्न आर्थिक स्तर के बालकों के पर्यावरण सजगता— परिस्थिति परीक्षण के प्राप्ताको में तुलनात्मक रूप से अतर है, जो यह वताता है कि उच्च आर्थिक स्तर की बालिकाओं की पर्यावरण सजगता अधिक है।
- निम्न आर्थिक स्तर की बालिकाओ एव उच्च आर्थिक स्तर के बालको की पर्यावरण सजगता— परिस्थिति परीक्षण के प्राप्ताको मे परस्पर तुलना करने से ज्ञात होता है कि उच्च आर्थिक स्तर के बालको में पर्यावरण सजगता अधिक है।

उपरोक्त निष्कर्ष यह सूचित करते है कि आर्थिक स्तर छात्रो की पर्यावरण सजगता को प्रभावित करता है। उच्च आर्थिक स्तर के छात्रों मे पर्यावरण के प्रति अधिक सजगता है जबकि निम्न आर्थिक स्तर के छात्रो मे पर्यावरण के प्रति कम सजगता है।

यह परिणाम इस ओर संकेत करते हैं कि छात्र किसी भी स्तर से संबंधित हो, पर उनके आर्थिक स्तर को बदलना या परिवार के परिवेश को बदलने का दायित्व लेना कठिन है। परन्तु विद्यालयो की भूमिका को पर्यावरण के प्रति सजगता के लिए सुनिश्चित किया जा सकता है।

एक विद्यालय मे हर प्रकार के आर्थिक स्तर तथा पारिवारिक परिवेश के विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते हैं। अत' विद्यालय में कक्षा, मैदान, सभाकक्ष, प्राचार्य कक्ष, शिक्षक कक्ष, पुस्तकालय, वाटर हट तथा शौचालय आदि की व्यवस्था तथा रख-रखाव ऐसा होना चाहिए जो शुद्ध तथा स्वच्छ पर्यावरण का उदाहरण बन सके। इस परिवेश का अनुकरण करके प्राथमिक स्तर के छात्र अपने परिवार का पर्यावरण कुछ अंशो तक बदल पाएगे जो पर्यावरण सजगता का परिणाम होगा। इसी के साथ प्राथमिक स्तर पर शिक्षको द्वारा दिया गया मार्गदर्शन जिसमे छात्रो के शरीर की सफाई (आंख, कान, बाल, नाखून) बस्ते का रख-रखाव, उचित गणवेश, साफ-सुथरा लंच बाक्स आदि मुख्य बिंदु हो। छोटी-छोटी दैनिक घटनाए जिनका पर्यावरण से सबंध है उनका निकटगामी तथा दूरगामी प्रभाव समझाकर पर्यावरण के प्रति सजग बनाया जा सकता है। इस प्रकार की भूमिका यदि विद्यालय प्राथमिक स्तर के छात्रो के सामने प्रस्तुत करता है तो किसी भी आर्थिक स्तर के छात्रों में समान रूप से पर्यावरण के प्रति सजगता देखी जा सकेगी। □□

लोकमान्य तिलक शिक्षा महाविद्यालय
उज्जैन

अप्रैल 2001

अध्ययन-अध्यापन में नवाचार विशेषांक

'प्राइमरी शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षको और सबद्ध प्रशासकों तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित जानकारियां पहुचाना, उन्हे कक्षा मे प्रयोग में लाई जा सकने वाली सार्थक व संबद्ध सामग्री प्रदान करना और देश भर के विभिन्न केंद्रों मे चल रहे पाठ्यक्रमो और कार्यक्रमो आदि के बारे मे समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा-जगत में होने वाली गतिविधियों पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मच प्रदान करती है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों मे व्यक्त किए गए विचार लेखको के अपने विचार भी हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक चितन मे परिषद् की नीतियो को ही प्रस्तुत किया गया हो।

मूल्य एक प्रति . 4 रुपये वार्षिक . 16 रुपये

प्राइमरी शिक्षक

अध्ययन-अध्यापन में नवाचार विशेषांक

वर्ष 26 अक 2 अप्रैल 2001

इस अंक में

संपादक की कलम से

शैक्षिक संस्थानों का प्रभावशाली होना बहुत से तत्वों पर निर्भर करता है जैसे– अध्ययन-अध्यापन, पढ़ाने की कला, पाठ्यक्रम, भौतिक व मानवीय सुविधाएं, विद्यालय क्रियाओं में समय नियोजन और सबसे अधिक अध्यापक की तुलनात्मकता व प्रेरणास्रोत जिसे वह कक्षा में अध्ययन-अध्यापन के प्रयोग में लाता है। संपूर्ण शैक्षिक प्रणाली में सुधार लाने में अध्यापक एक मुख्य कारक है। शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति केवल सक्षम अध्यापक के द्वारा ही हो सकती है जो नवाचार पाठ्यक्रम व अन्य साधनों द्वारा छात्रों में सकारात्मक मानक मूल्यों के निर्माण व उनके चरित्र विकास के साथ-साथ उनकी अधिगम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।

अध्यापक में अपेक्षित गुणों की अपूर्णता होने पर समाज में उचित सम्मान नहीं मिलता। वर्तमान शिक्षा प्रणाली को सुधारने के लिए अध्यापक प्रशिक्षण में निरंतर परिमार्जन की आवश्यकता है। अध्यापक अध्ययन-अध्यापन अनुभवों द्वारा व्यावहारिक नवाचार प्रयोगों में दक्ष हो सकते हैं। उनके लिए कक्षा एक प्रयोगशाला है। यहां पर वह निरंतर नवाचार पद्धति में खोज कार्य व प्रयोग कर सकते हैं। खोज व अध्ययन-अध्यापन कार्य एक-दूसरे को बल देते हैं। अध्यापक शोधकर्ता के रूप में क्रमबद्ध ढंग से अपने अध्यापन कार्य को सूक्ष्मता से देख सकते हैं और कक्षा अभ्यास को उसी दृष्टिकोण से सुधार सकते हैं तथा अध्यापन व्यवसाय के विकास में अपना योगदान दे सकते हैं। उनकी शोध अंतःदृष्टि व शोधकार्य के परिणामों को दूसरे अध्यापकों तक पहुंचाने की भी आवश्यकता है ताकि अन्य साथी अध्यापक उनके प्रयोगों को जांच परख सकें और अपने कक्षा अध्ययन-अध्यापन कार्य में उनका प्रयोग कर सकें।

अध्यापक के प्रयोग, अनुसंधान और अभिनव पद्धतियां उन में व्यावसायिक क्षमता का विकास करती हैं। नवाचार अध्यापक सृजनात्मक अध्यापक होता है जो विद्यमान तौर-तरीकों में कुछ न कुछ नए परिवर्तन करता है। नवाचार नवीन विचारों से अधिक है, इसमें उन्हें सफलतापूर्वक परिचित कराने की प्रक्रिया या कार्य को नवीन ढंग से करना भी सम्मिलित है। वह विचारों को उपयोगी, व्यावहारिक और/व्यावसायिक उत्पादों या सेवाओं में परिवर्तित करता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) द्वारा प्रतिवर्ष दो अखिल भारतीय प्रतियोगिताएं, एक अध्यापक प्रशिक्षकों के लिए तथा दूसरी विद्यालयी अध्यापकों के लिए शिक्षा में अभिनव पद्धतियां और प्रयोग नामक कार्यक्रम के अन्तर्गत आयोजित होती हैं। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अध्यापक प्रशिक्षकों और विद्यालयी अध्यापकों में प्रयोग, अनुसंधान और अभिनव पद्धतियों को उन्नत करने के लिए उन्हें प्रेरित करना और उनमें व्यावसायिक क्षमता का विकास करना है। यह भी परिकल्पना की गई है कि इन योजनाओं से अध्यापक शिक्षा और विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे अभिनव प्रयोगों, नई पद्धतियों और परीक्षणों से उनका सम्पर्क बराबर बना रहेगा। ऐसी प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाले अध्यापक सृजनात्मक विचारों के समझे जाते हैं। अध्ययन-अध्यापन में इन अध्यापकों ने क्या-क्या नवाचार किए हैं, प्रस्तुत अंक में उनके स्वरचित लेख प्रकाशित किए गए हैं। ❒❒

अध्ययन-अध्यापन में नवाचार

❑ शकुन्तला नागपाल

प्रख्यात शिक्षाविद् श्री बालकृष्ण जोशी के अनुसार किसी भी राष्ट्र की प्रगति का निर्णय वहा की विधानसभाओं, कल-कारखानो एवं न्यायालयो द्वारा नही, वरन् विद्यालयों द्वारा होता है। अत. हमे जिस प्रकार के भारत का निर्माण करना है उसकी शुरुआत विद्यालयो से ही होनी है। विद्यालय एक छोटा समाज है जो बड़े समाज मे अच्छी प्रकार से समायोजित हो सकने का प्रशिक्षण स्थल है। शिक्षा और जीवन अन्तरपरिवर्तनीय शब्द है। जीवन ही शिक्षा है। ऐसी कोई शिक्षा नही है जो प्राणहीन हो। शिक्षा जन्म के साथ शुरू होती है और जीवन के अत तक चलती रहती है, पालने से लेकर कब्र तक। शिक्षा एक प्रकार से संगीत है जिसमे दो स्पष्ट स्वर बजते रहते है और जब वे विभिन्न तालो मे राग बदलते है तो यह मालूम होता है कि मनुष्य की आतरिक शक्तियों—शारीरिक और मानसिक, बौद्धिक और काल्पनिक, सृज़न और अत बोध—का विकास हो रहा है। शिक्षा का आरंभ आश्चर्य के साथ होता है। जब मानव मस्तिष्क कोई अपरिचित दृश्य देखता है तो उसका मन रहस्य से रोमाचित हो जाता है। जिज्ञासा की सहज भावना से उसे अज्ञात का रहस्योद्घाटन करने के लिए रोमाचित हो उठता है। प्रत्येक मनुष्य मे एक छोटा कवि विद्यमान होता है जो शेक्सपियर के पागल प्रेमी व कवि की तरह अपने आसपास की अद्भुत सृष्टि को समझने के लिए उसे सूक्ष्म आतुर भाव से देखता है। शिक्षा के सगीत का दूसरा स्वर अपेक्षाकृत कठोर है, इसमें अनुशासन और आंतरिक आत्म नियत्रण अपेक्षित है। वस्तुओ का ज्ञान उनके यथार्थ रूप मे होना चाहिए न कि अपने मन के अनुसार।

शिक्षा के क्षेत्र मे कल्पना की स्वतत्रता और आत्म नियत्रण, असहमति और अनुशासन बदल कर नये-नये रूपो में दिखाई देते हैं। ये तत्व ही शिक्षा-प्रणाली के सार तत्व है जिन्हे असहमति के प्रबंध की कला कह सकते है। यदि असहमति अधी है, तो उसकी ज्योति बुझ जाती है, लेकिन यदि अनुशासन के नियत्रण में रखी जाती है तो ज्ञान व क्रिया के नये क्षेत्रो को उजागर करती है। अत. रोमांचित भावना और अनुशासन की कठोरता दोनों को उचित संतुलन मे जीवित रखा जाना चाहिए ताकि वे एक-दूसरे को नष्ट न कर दे।

शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमो का मूल्य अवश्य है लेकिन इससे महत्वपूर्ण यह है कि विद्यार्थी कैसे सीखता है और अपनी मानसिक शक्तियो को कैसे समझता है और किस प्रकार निर्णय लेता है।

राष्ट्रीय विकास में शिक्षा का योगदान

यदि व्यक्ति को समाज का रचनात्मक सदस्य बनना है तो उसे केवल अपना ही विकास नहीं करना चाहिए वरन् समाज के विकास मे योगदान देना चाहिए।

शिक्षा ही किसी राष्ट्र या समाज की आधारशिला होती है। जिस पर राष्ट्र रूपी भव्य महल खड़ा होता है। शिक्षा द्वारा ही नवयुवक सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास के नये विचारो और तकनीकों को ग्रहण करने के लिए उत्सुक होते है। इसलिए कहा जाता है कि शिक्षा विनियोग है अर्थात् सुशिक्षित व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रो मे अपनी प्रतिभा के बल पर कर्त्तव्यनिष्ठ होकर राष्ट्रीय हित मे अपनी अभूतपूर्व भूमिका अदा करता है।

भारत की लगभग 70% जनसख्या गावो मे निवास करती है। गांव की अधिकाश जनसंख्या निरक्षर है, जिससे उनमें जागरूकता की कमी है। हमारा देश कृषि प्रधान देश है अत. अत्याधुनिक कृषि तकनीकी विधि से कृषि उत्पादन में और भी अधिक वृद्धि की जा सकती है। प्राचीन रूढ़िवादियो, परंपराओ से विमुख करने के लिए ग्रामीण जनता में चेतना पैदा करना आवश्यक है। दुनिया में ज्ञान का विस्फोट हो रहा है, बहुत से राष्ट्र विकास के उच्च शिखर पर पहुच गये है। हमारा देश भी विकसित देशों की श्रेणी मे आ सकता है यदि हमारे देश की ग्रामीण जनता विवेक सम्पन्न हो जाए और वह अपने कर्त्तव्यों व अधिकारो के प्रति जागरूक हो जाए। देश मे ससदीय शासन प्रणाली

है जिसमे सर्व शक्ति जनता में निहित होती है, अतः देश की जनता यदि जागरूक होगी तो देश के योग्य, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं चरित्रवान शासक ही सत्ता प्राप्त कर सकेगे।

- ग्रामीण जनता मे जागरूकता का अभाव,
- आर्थिक स्थिति की शोचनीय दशा,
- ग्रामीणो मे प्रतिकूल विचारधाराएं,
- सरकार का शिक्षा पर अपर्याप्त बजट प्रावधान और सुनियोजित योजना का अभाव,
- लोकतत्र मे अपराधीकरण की प्रवृत्ति बढ़ने का कारण नेता का अपने कर्त्तव्य पथ से विमुख हो जाना,
- जनसख्या विस्फोट।

सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अतर्गत प्राइमरी स्कूलो को अधिकाधिक सख्या मे खोलने एव इनकी गुणवत्ता मे क्रातिकारी सुधार लाने हेतु ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना चलाई है जिससे ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा मे कुछ सुधार की झलक दृष्टिगोचर हुई है। लेकिन यह अभी पर्याप्त नही है अपितु जन सहयोग सुनिश्चित करने के लिए एक मिशन प्रारंभ करने की आवश्यकता है। तभी ग्रामीण क्षेत्रों मे शिक्षा का प्रसार होगा और उसमें नवाचार अध्यापकों का सहयोग अनिवार्य है।

प्राथमिक शिक्षा का महत्व

सरकार द्वारा प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण करने हेतु सुनियोजित कार्यक्रम तय करने की आवश्यकता है और उसे युद्ध स्तर पर क्रियान्वित भी करना होगा तभी इस पुनीत लक्ष्य की प्राप्ति हो सकेगी। शिक्षा प्राप्त करने का हमे सविधान मे मौलिक अधिकार भी दिया गया है। जो कि प्राथमिक शिक्षा को प्राप्त करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

किसी भी राष्ट्र के विकास की आधारशिला वहा की शिक्षा व्यवस्था होती है और शिक्षा व्यवस्था वहा के सुयोग्य शिक्षको पर निर्भर करती है। यदि किसी राष्ट्र के शिक्षकों की शैक्षिक सप्राप्ति एवं सृजनात्मकता उच्च स्तर की होगी तो निस्सदेह वहा के विद्यार्थी भी अधिक सृजनशील होगे। आज सारा विश्व ज्ञान के विस्फोट के कारण नवाचारों के माध्यम से उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है, इसलिए हमारे देश को भी उच्च शैक्षिक उपलब्धि एव सृजनशील नागरिको की आवश्यकता अपरिहार्य है। पं जवाहरलाल नेहरु ने लिखा है कि "मै ऐसे विद्यार्थी चाहता हूं जो विशिष्ट कृत्यो के लिए स्वय को प्रशिक्षित करे न कि छोटे-छोटे विवादों तथा कुछ सघर्षो में अपनी शक्ति को नष्ट करे। विद्यार्थी जगत मे नये और स्पष्ट विचारो तथा अनुशासित कर्म का समुचित स्थान होना चाहिए"। आज दुर्भाग्यवश इन सभी गुणो का अभाव दिखाई देता है।

इससे यह स्पष्ट होता है हमारे राष्ट्र मे शिक्षार्थियों को रचनात्मक कार्यो को करने की ओर उन्मुख नही किया गया। अत: जिस राष्ट्र के नागरिक जितने उच्च शैक्षिक सप्राप्ति एव उच्च सृजनात्मकता वाले होगे वह राष्ट्र उतना ही समृद्ध होगा। छात्रो की शैक्षिक सप्राप्ति एव सृजनात्मकता को प्रभावित करने वाला प्रमुख घटक शिक्षक ही है। अध्यापक अपनी जगह एक महत्वपूर्ण घटक है और वह विद्यार्थी की शिक्षा का दायित्व समझता है। अध्यापक अपनी शिक्षण कला के कौशल द्वारा विद्यार्थी का मार्गदर्शन करता है। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि अध्यापक का व्यक्तिगत जीवन उसका रहन-सहन, सोचने-विचारने और काम करने का तरीका कैसा है जिसका उदाहरण वह स्वय प्रस्तुत करता है। वह विद्यार्थी की स्वाभाविक शक्ति और क्षमता, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति, कल्पना और अन्तर्बोध, सूझ-बूझ और सृजनशक्ति के उपयोग के लिये प्रेरणा प्रदान करता है। फिर भी प्रत्येक विद्यार्थी की वास्तविक शिक्षा वह होती है जिसे वह स्वय अपने प्रयास से प्राप्त करता है।

शिक्षा का लक्ष्य नयी और सृजनात्मक गतिविधियों का विकास करना है ताकि कठिन परिश्रम से अनुराग हो और शैक्षणिक संस्थाओ मे शिक्षा के स्तर मे सुधार के लिए आवश्यक ससाधनो में से कुछ का उत्पादन भी सभव हो।

किसी भी लोकतात्रिक राष्ट्र मे शिक्षको का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योकि एक सुयोग्य शिक्षक ही राष्ट्र के लिए सुयोग्य नागरिकों का निर्माण कर सकता है जो देश, काल एव परिस्थितियों की चुनौतियों का सहर्ष सामना कर सकते हैं। शिक्षक संपूर्ण राष्ट्र मे शिक्षा के माध्यम से राजनैतिक चेतना जागृत करता है जिससे हमारा प्रजातत्र सजग व मजबूत होता है। शिक्षक ही हमे अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध,

राष्ट्रीयता, विश्व-बधुत्व, धर्मनिरपेक्षता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, कर्त्तव्यबोध, श्रम की महत्ता इत्यादि मूल्यो की शिक्षा प्रदान करता है। जिसके द्वारा एक व्यक्ति सुयोग्य मानव के रूप मे परिणित होता है और अपने वाछित लक्ष्य की प्राप्ति सहजतापूर्वक कर लेता है।

मनोवैज्ञानिक शिक्षा के द्वारा शिक्षक बच्चो के दिलो व दिमाग मे यह भाव भरता है कि किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमारे पास दो सशक्त रास्ते है—

- ज्ञानात्मक विचारधारा
- गुणात्मक विचारधारा

इसमे से गुणात्मक विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इस विचारधारा के माध्यम से शिक्षक बतलाता है कि सृजनात्मकता, व्यक्तित्वता, स्वधारणा उपलब्धि, अभिप्रेरणा और जिज्ञासा एव अभिवृत्ति के द्वारा लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार सुयोग्य शिक्षक इस विचारधारा की प्रमुखता और ध्यान पर विशेष बल देता है।

छात्रो की शैक्षिक उपलब्धि मे शिक्षक के व्यवहार का अत्यत महत्व है। क्योकि बच्चो मे अनुकरण करने की अभूतपूर्व क्षमता होती है। इसलिए कहा जाता है कि शिक्षक को शिक्षा उपदेश द्वारा नही वरन् आचरण द्वारा देनी चाहिए। क्योकि आज तक जो महापुरुष हुए है उनके पीछे किसी न किसी गुरु (शिक्षक) का हाथ रहा है, (जैसे चन्द्रगुप्त जैसे राष्ट्र नायक के निर्माण मे गुरु चाणक्य और वीर शिवाजी जैसे सपूतों के निर्माण मे गुरु रामदास का हाथ)। अतः किसी भी राष्ट्र के निर्माण मे शिक्षक की अहम् भूमिका है। शिक्षको को अपने व्यवहार को परिष्कृत करना आवश्यक है। अनेक व्यक्तियो का निर्माण करने वाला शिक्षक केवल एक व्यक्ति न होकर अपने आप मे एक सस्थान होता है। इस संदर्भ मे रोल्डन ई डेविस ने ठीक ही कहा है कि प्रत्येक विद्यालय की महत्ता मुख्य रूप से उसके अध्यापक पर निर्भर है।

जब तक शिक्षक स्वयं ही विकसित, गतिमान, सृजनात्मक व नवाचारी नही होगा तब तक व्यवसाय जीवन्त एव उन्नत नहीं हो सकता। शिक्षक को अपना व्यक्तित्व प्रभावी बनाना होगा तभी समाज और प्रशासन उसे सम्मान एव उचित वेतनमान स्वतः ही दे सकेगे और उनमे नवीन चेतना, सजीवता, आस्था, श्रद्धा, प्रेरणा और अभिरुचि जागृत होगी।

व्यवसाय के प्रति निष्ठा

सर्वप्रथम शिक्षक को अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा होनी चाहिए। उसको यह नही सोचना चाहिए कि वह परिस्थितियो वश शिक्षक बन गया है। ऐसा सोचने से हीन भावना का जन्म होता है और एक सुयोग्य शिक्षक के रूप मे कर्त्तव्यपालन करने मे असफलता प्राप्त होती है। इसके विपरीत यदि शिक्षक व्यवसाय के प्रति निष्ठावान होता है तो वह छात्रो को भी अपने व्यक्तित्व से प्रभावित करता है और स्वय उसको भी आत्म सतुष्टि प्राप्त होती है।

स्वाध्यायी एवं विषय का पूर्ण ज्ञान होना

गुरुदेव टैगोर के शब्द कितने अर्थपूर्ण है कि "जिस दीपक मे स्वय का प्रकाश नही वह भला दूसरो को क्या रोशनी देगा।" अध्यापन का हौसला रखने वाले को अध्ययन का उत्साह रखना आवश्यक है। शिक्षक को अपने विषय का सम्यक ज्ञान होना अनिवार्य है। नियमित रूप से नित नवीन तकनीक, पद्धति एव प्रणाली का प्रयोग करने मे रुचि हो। आज का विश्व अत्यत गतिमान है, जिसमे गति नही, जोश नही, उत्साह नही उसका पीछे रह जाना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार शिक्षा जगत मे अभिनव प्रयोग अनुसधानों की जानकारी बनाये रखनी है जिससे छात्र को भी उस ज्ञान से अवगत कराता रहे।

बुद्धिमता का होना

शिक्षक की बुद्धिलब्धि मात्रा का छात्रो की बुद्धिलब्धि मात्रा के साथ धनात्मक संबध होता है अर्थात् यदि शिक्षक उच्च शैक्षिक योग्यता एव उच्चलब्धि वाला है तो छात्रो की बुद्धि पर सार्थक प्रभाव पडता है और वह राष्ट्र या समाज के लिए एक सुयोग्य नागरिक के रूप मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। क्योकि "बुद्धिमान एव विवेक युक्त शिक्षक ही बुद्धिमान शिक्षार्थी तैयार कर सकता है।"

सुयोग्य अध्यापक अपने उत्कृष्ट कार्य एव आचरण के द्वारा छात्रो पर अमिट छाप छोडकर स्वय तो आत्मसतुष्टि

को प्राप्त करते ही है साथ ही साथ इससे छात्रो मे भावी जीवन की तैयारी हेतु उपयोगी जीवन मूल्य भी विकसित होते हैं। जिससे शिक्षार्थी देश, काल व परिस्थितियो के अनुकूल अपने को समायोजित करते है।

सृजनात्मकता का होना

शिक्षक को सृजनशील होना आवश्यक है। चितन और सृजनशक्ति शिक्षक के व्यक्तित्व को निखारते हैं। इसके लिए उसका अध्ययन विशद एवं विविध होना चाहिए। उसे स्पष्ट रूप से यह ज्ञात हो कि क्या पढ़ाना है, कैसे पढ़ाना है। सृजनशील अपने छात्रो के बौद्धिक स्तर एव मानसिक पृष्ठभूमि के अनुरूप अपने शिक्षण को व्यवस्थित करना, अभिनव साहित्य पढ़ना, शैक्षिक चितन तथा अपने मानसिक विकास का विस्तार करने का प्रयास इत्यादि सब सृजनशीलता के ही अंतर्गत आते है। शिक्षक की सृजनशीलता छात्रों को मौलिक विकास की ओर प्रेरित करती है।

डा. राधाकृष्णन के अनुसार, " मानव एक स्वतत्र कर्ता है तथा सृजनात्मकता उसकी प्रकृति मे निहित है। आधुनिक मनोविज्ञान ने पूर्व प्रचलित इस विचारधारा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है कि सृजनात्मकता कुछ गिने-चुने लोगो का ही विशेषाधिकार है। वास्तव में सृजनात्मकता के अकुर प्रत्येक मानव मे विद्यमान है, आवश्यकता है समुचित वातावरण तथा सही मार्गदर्शन की। सृजनात्मकता और बुद्धि एक-दूसरे के पर्यायवाची नही है। यह आवश्यक नही है कि जो बालक बुद्धिमान है उनमे सृजनात्मकता की क्षमता हो। यह भी देखा गया है कि सृजनात्मक बालक सदैव बुद्धिमान नही होते हैं। स्पष्ट है कि प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति सृजनशील नहीं होता। अत किसी भी राष्ट्र के विकास मे सृजनशील व्यक्तियो का ही महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसलिए शिक्षक का यह दायित्व है कि बालको मे सृजनात्मकता उत्पन्न करने का प्रयत्न करे। शिक्षा का यह पुनीत कार्य एक सृजनशील शिक्षक ही कर सकता है। एक सृजनशील शिक्षक निम्न आयामों द्वारा छात्रो को सृजनशील बनाने मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है—

- ☐ छात्रो को सृजनात्मक बनाने हेतु समस्या का स्तर पहचानने की क्षमता पैदा करके।
- ☐ समस्या से संवधित तथ्यो की जानकारी देकर।
- ☐ मौलिक चितन करने की शक्ति पैदा करके।
- ☐ सही मूल्याकन करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करके।
- ☐ स्वचितन की शक्ति पैदा करके।
- ☐ छात्रो को किसी कार्य, वस्तु या प्रक्रिया मे सुधार हेतु सशोधन प्रस्तुत करने पर बल देकर।

अत' इस वैज्ञानिक एव तकनीकी युग में जितने भी आविष्कार हुए हैं वह सब सृजनात्मकता के ही परिणाम हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे तो हमारे देश मे सृजनशील नागरिको की बढ़ती आवश्यकता की अनुभूति की गई है, क्योकि दुनिया के नक्शे में विकसित देशो की श्रेणी में आने का यही एक मात्र साधन है। अत स्पष्ट है कि जब हम 21वी शताब्दी में प्रवेश कर गये है तो आज के सृजनशील छात्र ही भारत के भविष्य निर्माता सिद्ध होंगे और यह कार्य एक सृजनशील शिक्षक के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है।

आत्म प्रत्यय का उच्च होना

उच्च विचार युक्त गुरु चाणक्य ने सम्राट चन्द्रगुप्त जैसे राष्ट्रनायक का निर्माण किया, जो केवल महान पराक्रमी ही नही वरन् आत्मबल का धनी भी था। इसलिए शिक्षक के आत्म प्रत्यय का सबध छात्रो के आत्म प्रत्यय पर सीधा पडता है। आज जबकि दुनिया विनाश के कगार पर खड़ी है (अर्थात् विज्ञान मानव के लिए वरदान की जगह अभिशाप सिद्ध हो रहा है।) तो इस समय उच्च विचार युक्त सुयोग्य नागरिको की आवश्यकता है और इस आवश्यकता की पूर्ति का मुख्य साधन शिक्षा है और इस शिक्षा का आधारस्तभ शिक्षक प्राथमिक कक्षा से ही छात्रों मे उच्च विचार पैदा करने का सतत् प्रयास कर सकते है।

आज हमारे राष्ट्र में विभिन्न समस्याए विकराल रूप में मुंह बाये खडी है जैसे— जनसख्या की समस्या, गरीबी, बेरोजगारी, राष्ट्रीयता इत्यादि।

कई अध्ययनो से पता चला है कि इन समस्याओ के मूल में लोगो मे आत्म प्रत्यय की कमी का पर्याप्त अभाव है। शिक्षक को उच्च स्वधारणा युक्त होना चाहिए क्योकि यदि शिक्षक की धारणा उत्कृष्ट कोटि की होगी

तो स्वभावत छात्रो की भी धारणा उच्च स्तर की होगी। इसलिए एक शिक्षक को उच्च विचार युक्त होना चाहिए ताकि विद्यार्थी की मानसिकता भी उच्च विचारयुक्त हो सके। अत. छात्र क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता एव रूढ़िवादिता जैसे विचारो से मुक्त होकर अन्तर्राष्ट्रीयता, राष्ट्रीयता एव वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित कर सकेगा।

आकांक्षा स्तर का उच्च होना

यह सर्वविदित सत्य है कि किसी महान सफलता को प्राप्त करने में उच्चाकांक्षा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। जिस किसी राष्ट्र के नागरिक जितने उच्चाकांक्षी होगे वह राष्ट्र उतना ही विकसित होगा। उच्चाकाक्षी व्यक्तियो को पैदा करने का श्रेय शिक्षको को ही जाता है। अत यह स्पष्ट है कि शिक्षक जितने उच्चाकाक्षी होंगे, तो छात्र भी उसी अनुपात मे उच्चाकाक्षी होगे। अत अध्यापको के आकाक्षा स्तर एव छात्रो के आकाक्षा स्तर में धनात्मक सबंध है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे जब हम 21वी शताब्दी मे प्रवेश करने की बात करते हैं, विकसित देशो की श्रेणी मे आने की बात करते है तो हमें इस लक्ष्य तक पहुचने का मार्ग ढूंढना होगा और जो मार्ग मिलेगा वह मिलेगा उच्चाकाक्षा का। क्योकि इसी के सहारे व्यक्ति लक्ष्य का निर्धारण करता है और लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कठोर परिश्रम करता है। इसी के द्वारा छात्रों मे कुशल वैज्ञानिक, इजीनियर, प्रशासक, इतिहासकार, अर्थशास्त्री, गणितज्ञ, साहित्यकार, शिक्षाविद् आदि बनने के विचार आते है और लक्ष्य की प्राप्ति करके राष्ट्र के विकास मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

अभिवृत्ति एवं आत्मबल का धनी होना

अपने व्यवसाय के प्रति सही रुख, रुचि, प्रवृत्ति अत्यत आवश्यक है। आज शिक्षक समाज में काफी हेय दृष्टि से देखा जाने लगा है। स्वयं शिक्षको मे भी कोई मनोबल नजर नही आता है। शैक्षणिक अनुसधान कर्ताओ के प्रतिवेदनो के आधार पर यह स्पष्ट है कि किसी भी व्यवसाय के विकास के लिए व्यक्ति को आत्मबल का धनी होना चाहिए और तभी छात्रो मे भी अभिवृत्ति एव आत्मबल को पैदा किया जा सकता है। इस सदर्भ मे ठीक ही कहा गया है कि "आत्मबल का धनी पुरुष रणक्षेत्र मे अकेले ही कूद पड़ता है जबकि सख्या बल का सहारा कायर ही लेते है।"

शिक्षक उपदेश देने की अपेक्षा छात्रो को अपने आचरण एव व्यक्तित्व से अधिक सिखा सकता है अर्थात् शिक्षक के प्रभावी व्यक्तित्व का छात्रो के व्यक्तित्व पर सीधा प्रभाव पड़ता है। वैसे आचरण (चरित्र) व्यक्तित्व का ही भाग है और इसी तरह के विभिन्न गुणों के योग को व्यक्तित्व कहते है। इसके अतर्गत सृजनात्मकता, आत्म प्रत्यय, बुद्धिमता व अभिवृत्ति, आकाक्षा स्तर सम्मिलित तो है ही इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी सम्मिलित किए गए है जिनका छात्र के ऊपर परोक्ष एव प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त आयामों मे शिक्षक के समस्त गुणो का समावेश आ गया है जो छात्र के बौद्धिक, शैक्षिक, नैतिक, सामाजिक एव प्रजातात्रिक मूल्यो को प्रभावित करता है। छात्रो की बुद्धि, सृजनात्मकता व शैक्षिक निष्पत्ति पर अध्यापको के व्यक्तित्व के इन गुणो का प्रभाव पडता है। प्रस्तुत नवाचार अध्यापकों के शोध अध्ययन इस स्वरूप मे आज तक हुए शिक्षा अध्ययनों की श्रेणी मे इस तरह की समस्या पर प्रथम प्रयास है।

गिलफोर्ड की बौद्धिक प्रज्ञा आकृति और नवाचार पुरस्कृत अध्यापक

पश्चिम देशो में बौद्धिक प्रज्ञा आकृति के बारे मे बहुत अध्ययन हुए। वास्तव मे जब नवाचार व सृजनात्मकता की बात होती है तो अकसर शिक्षाविद् व मनोवैज्ञानिक गिलफोर्ड व टौरन्स का नाम लेते है। अध्यापक शिक्षा विभाग ने नवाचार प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों का एक गहन अध्ययन किया। उस अध्ययन मे अध्यापको के मनोसामाजिक, बौद्धिक तत्वो की जाच भी की। वास्तव मे नवाचार व सृजनात्मकता की सपूर्ण परिभाषा मे व्यक्ति की मानसिक सृजनात्मक प्रक्रिया, सृजनात्मक आलेख व विषय-वस्तु, सरचना, सृजनात्मक वातावरण और सृजनात्मक व्यक्तित्व के गुणो का सम्मिश्रण होता है। गिलफोर्ड ने इन सब को ध्यान मे रखते हुए बौद्धिक प्रज्ञा आकृति का नमूना

दिया जिसमे उसके व्यक्तित्व अध्ययन मे बहुतत्वीय सिद्धान्त का विश्लेषण किया है। निम्न पृष्ठो मे गिलफोर्ड की बौद्धिक प्रज्ञा आकृति को नवाचार पुरस्कृत प्राथमिक अध्यापको के व्यक्तित्व विश्लेषण का समावेश किया है जो इस दिशा मे एक अनूठा सगम है।

नवाचार अध्यापकों के व्यक्तित्व अध्ययन की व्याख्या मे गिलफोर्ड के बहुतत्वीय सिद्धात की बहुत उपयुक्त भूमिका है। बौद्धिक प्रज्ञा के मुख्य तीन भाग हैं—प्रक्रिया (Process) विषय-वस्तु (Content) और परिणाम या संरचना (Product)।

गिलफोर्ड ने इन तीन भागो को पूर्ण मानसिक योग्यता को समझने से जोड़ा है। इन तीनो भागो के आगे क्रमश. पाच, चार व छः प्रकार बताये गये है। बौद्धिक क्रियाए पाच है। संज्ञान (Cognition) स्मरण शक्ति (Memory) परम्परागत विधि से सोचना या तर्कसंगत सोचना यानि आपसारी चितन (Convergent Thinking) अपरम्परागत सोचना या अभिसारी चिंतन (Divergent Thinking) और मूल्यांकन (Evaluation) ये सभी तत्व नवाचार अध्यापकों के अध्ययन मे झलकते दिखाई देते है।

मानव मस्तिष्क सचेत रहते हुए अपने वातावरण के प्रति जागरूक रहता है। वातावरण के प्रति मानव जागरूकता ही सज्ञान (Cognition) है। केवल यह सज्ञा प्रर्याप्त नही है। वातावरण मे पाई गई कमियों, दोषो, असुविधाओ को भी नजरअदाज नही किया जा सकता। उनको दूर करने के लिए दिमाग मे उनकी छवि बनानी पड़ती है ताकि उचित समय आने पर कमियो को दूर करने के लिए उचित दिशा मे उचित कदम उठाए जाए। इस सज्ञान के बाद सबधित बातों को दिमाग मे सजो लेना ही साधारण शब्दों में स्मरण शक्ति है। अत. स्मरण शक्ति की भूमिका प्रज्ञा सगठन में बहुत महत्वपूर्ण है। वातावरण की किसी भी पद्धति को सुधारने मे स्थापित नियमो को ध्यान मे रखना पडता है। सुधार के अंतर्गत तर्कसगत युक्तिया देने की आवश्यकता होती है। तर्कसगत युक्तियो के अनुरूप सुधार लाने मे मानसिक प्रक्रिया की भूमिका महत्वपूर्ण है और वह मानसिक प्रक्रिया बुद्धि ही है। हम सब जानते है कि बुद्धि वह केन्द्रीय तत्व है जो प्राणी द्वारा की गई सक्रियाओ के माध्यम से सम्पादित होती है। गिलफोर्ड के शब्दो में इसे परम्परागत चितन व आपसारी चितन की सज्ञा दी गई है। मानव स्वभाव प्रत्येक घटित घटना का कारण जानने के लिए उत्सुक रहता है और जब उसे तर्कसगत सही व्याख्या नही मिल पाती तो वह भिन्न-भिन्न दिशाओं में सोचना आरभ कर देता है। तब उसकी चितन प्रक्रिया संभावित तर्कसगत भिन्न-भिन्न दिशाओ मे विचलन करती है। तब तर्कसगत सभावनाओ की मानसिक सूचना बन जाती है जिसे गिलफोर्ड ने अपरम्परागत सोचना या अभिसारी चितन का नाम दिया है। यह चितन ऐसी परिस्थिति मे मानव के समक्ष आई हुई समस्याओं का सभावित हल खोजने के लिए एक मानसिक परियोजना बनाती है। इसी मानसिक परियोजना के चितन को परिकल्पना निरूपण की सज्ञा दी गई है। यही परिकल्पना निरूपण धीरे-धीरे मानसिक प्रायोगिक विधि से परिकल्पना सस्थापन की मानसिक प्रक्रिया मे परिवर्तित हो जाती है। यदि वह कोई प्रयोग करता है अथवा किसी नई विधि-विधान को अपनाने का प्रयत्न करता है तब उसके प्रयत्न का परिणाम उसके आने वाले नये व्यवहार को पुन बदल देता है। इस प्रयत्न सफलता और पूर्ण प्रयत्न सफलता के द्वारा मानव प्रज्ञा भविष्य कथन विश्लेषण, सश्लेषण व मूल्यांकन की उच्चतम मानसिक प्रक्रिया को प्राप्त कर लेती है।

सभी नवाचार अध्यापकों ने बौद्धिक प्रज्ञा आकृति मे सब मानसिक प्रक्रियाओ को पार किया है। पुरस्कृत लेख उनकी सृजनात्मकता का परिणाम है। इनकी मनोवैज्ञानिक सृजनात्मक परीक्षण के द्वारा पुष्टि की है। इन सब अध्यापकों के अदर विशिष्ट मानसिक योग्यता विद्यमान है।

सृजनात्मकता का उद्गार किसी मानसिक प्रक्रिया के द्वारा ही होता है। सृजनात्मकता का उद्गार करने के लिए कुछ बौद्धिक सरचना का होना आवश्यक है। गिलफोर्ड ने इसे विषय-वस्तु व माध्यम कहा है। यह विषय-वस्तु चार प्रकार की हो सकती है—

- ☐ साकेतिक जिन्हें दृश्य/श्रव्य आकृत्यात्मक (Symbolic) भी कहते है।
- ☐ प्रतीकात्मक (Figural)।

- अर्थात्मक (Semantic)।
- व्यवहारात्मक (Behavioral)।

अध्ययन-अध्यापन क्रिया को प्रभावशाली बनाने मे तथा छात्रो व अध्यापको को शिक्षा मूल्य दर्शाने मे नवाचार अध्यापकों ने सभी प्रकार के माध्यमो का प्रयोग किया है। इन सब मे अत्यधिक मान्य उनके लिखित आलेख है। इन लिखित आलेखो द्वारा उन्होने अपने साथियो तक अपने विचारो को पहुचाने की कोशिश की है। इस साधन को अर्थात्मक माध्यम कहा जा सकता है। इस माध्यम द्वारा उन्होने अपने विचार शैक्षणिक योजनाकर्ता और शिक्षाविदो तक पहुचाने का प्रयत्न किया है। वास्तविक कक्षा मे ये अध्यापक साकेतिक माध्यम, मौखिक माध्यम और व्यावहारिक माध्यमो का छात्रो के व्यवहार मे वाछित सुधार लाने के लिए प्रयोग करते है। अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया मे समाज का सहयोग दर्शाने के लिए इन्होने सामाजिक बुद्धि का भी प्रयोग किया। इन्होने पेटिग, कविताए, कहानिया, चित्र और अन्य वातावरण मे उपलब्ध आकृतिक माध्यम के भी पुस्तकीय सूक्ष्म ज्ञान को समझाने के लिए प्रयोग किया ताकि छात्रो की स्वाभाविक सीखने की इच्छा जागृत हो। नवाचार अध्यापको ने वातावरण मे उपलब्ध स्थूल वस्तुओं का भी अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए प्रयोग किया और इन्हीं विचारो पर बड़े-वडे शिक्षा मनोवैज्ञानिक जैसे प्याजे, फ्रायड, रूसो, गाधी, टैगोर आदि ने समय-समय पर बल दिया है। यह कहना कठिन है कि इन अध्यापको ने इन बड़े-बडे वैज्ञानिको व शिक्षाविदो को पढ़ा है या नही लेकिन स्वाभाविक रूप से ही ये उनके सब विचारो को दैनिक कक्षा कार्य में क्रियान्वित कर रहे है। उदाहरणत: यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ और अच्छा लगा कि एक पूर्व-प्राथमिक नवाचार अध्यापिका ने सपूर्ण नर्सरी कक्षा का ढाचा प्याजे द्वारा निर्धारित शैशव काल अवस्था के अनुकूल ढाल दिया। छात्रो को बैठने का स्थान, कक्षा व्यवस्था में कम भार वाली हिलने-डुलने वाली कुर्सिया, छोटे-छोटे खिलौनों की अलमारिया, जहा पर चित्र पुस्तिकाएं, रगदार पेन्सिलें विशेष प्रकार की बनाई हुई कापियां, छात्रो के अवस्था अनुकूल संगीत के लिए रेडियो, कैसेट प्लेयर, बाल सगीत व कविता से भरे हुए कैसेट छोटे-छोटे हाथ से खेलने वाले खेल, चितन-खेल, सुनियोजित विधि से रखे हुए थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कि वह अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया मे प्याजे के विचारों से प्रयोग कर रही हो। न केवल यह अपितु शब्द निर्माण व शब्दकोश विकास प्रक्रिया को दैनिक जीवन अनुभवों से विधिवत जोड़ने का प्रयास कर रही हो। छात्र प्रतिदिन सडक पर भिन्न-भिन्न प्रकार के विज्ञापनो को देखते है। अत: शब्द विकास प्रक्रिया में इन सब वातावरण मे पाये गए यन्त्रो के माध्यम से प्रयोग किया। इस प्रकार गिलफोर्ड के द्वारा दर्शाये गये सब माध्यमो की विषय-वस्तु नवाचार पुरस्कार विजेता पूर्व-प्राथमिक अध्यापक ने प्रयोग किया। सृजनात्मक चितन मानसिक प्रक्रिया के अतर्गत नवाचार अध्यापको ने सब प्रकार के सभावित माध्यमो को नई अध्ययन-अध्यापन तकनीक द्वारा छात्रो तक पहुचाया। नई अध्ययन-अध्यापन तकनीक व युक्तियां, नयी, मनोरजक, शैक्षणिक सामग्री, जटिल विषयो को पढ़ाने के लिए खेल विधियो का विकास इन अध्यापकों ने किया। भाषा अध्ययन-अध्यापन मे रोचक कविताए, मुहावरे, लौकोक्तिया, कहानी सग्रह, पहेलिया, चुटकुले और लेखों की इन नवाचार अध्यापको ने रचना की। गणित के अध्ययन मे इन अध्यापको ने गणित के जटिल सूत्रो को सरल बनाया। इन अध्यापको ने छात्रो के अदर वातावरण को स्वच्छ रखने मे, सुलेख सुधारने मे हस्त कार्य मे प्रेरणा देने मे और शिक्षा को सामाजिक आवश्यकता के अनुकूल बनाने मे, सहयोग की भावना विकसित करने मे अद्भुत योगदान दिया है। अतः नवाचार अध्यापकों के अध्ययन से यह देखने को मिला कि सृजनात्मकता के बहुतत्व और बहु-गुणो का मिश्रण इन अध्यापकों मे विद्यमान है।

निष्कर्ष मे यह कह सकते हैं कि नवाचार अध्यापक बहुपक्षीय, बहुतत्वीय, विचारशील, भावुक, सृजनात्मक व्यक्ति है। इन्होने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के बहुत से रोचक रास्ते निकाले है। इनकी बौद्धिक प्रज्ञा एक ऐसी चितन प्रक्रिया है जो कि इन्हे समाज से उचित प्रेरणा मिलने पर ऐसी सरचना करने के योग्य बनाती है जो नई हो, मौलिक हो, अद्भुत हो और व्यक्ति और समाज के लिए लाभदायक हो। इनकी सृजनात्मकता उनके लिए एक आत्म

अनुभव की प्रक्रिया है। मानवीय अनुभवो के विकास मे यह एक उच्च लक्ष्य है। सज्ञानात्मक सख्या की प्रक्रिया मे इसका स्थान सबसे ऊपर है। सज्ञानात्मक अधिगम शृखला के चार पहलू हैं-- ज्ञान, अवबोध, अनुप्रयोग और सृजनात्मकता। ब्लूम (Bloom) ने मूल्याकन पद्धति के छ स्तर बताए हैं अर्थात् ज्ञान, अवबोध, अनुप्रयोग, विश्लेषण, सश्लेषण और निर्णय। अनुप्रयोग मे तर्क, परिकल्पना निरूपण, परिकल्पना सस्थापन, निर्णय और भविष्य कथन नामक मानसिक प्रक्रियाओं का वर्णन है। विश्लेषण, सश्लेषण और निर्णय लेने की मानसिक प्रक्रिया सृजनात्मकता और नवाचार की ओर ले जाती है। इन अध्यापको के गुणात्मक अध्ययन मे इन सब योग्यताओ का सगम पाया गया है। शैक्षणिक योजना के अतर्गत नवाचार अध्यापको के विचारो को सम्मिलित करना आवश्यक है। अध्ययन-अध्यापन युक्तियो की योजना मे अध्यापक शिक्षा की रूपरेखा मे, पुस्तको के विकास मे, कक्षा सुविधाओं के नियोजन करने मे कक्षा स्तर अनुसार भिन्न क्रियाओं के वर्गीकरण मे और कक्षा मे अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया मे नवाचार अध्यापको के प्रयोग अच्छी भूमिका निभा सकते है। यह प्रयोग बहुत सरल व सस्ते है और सुविधाजनक स्थानीय अध्ययन-अध्यापन के अनुकूल होने के कारण विद्यालयी शिक्षा को प्रभावशाली बना सकते हैं।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली

बिना बस्ते के शिक्षा

□ प्रेम नारायण कौशिक

आज सभी शिक्षक एव शिक्षाविद् मानते है कि विद्यार्थी ही नही शिशु पर भी बस्ते का इतना भारी बोझ लादा जा चुका है कि उसका शैशव काल ही उस बस्ते के बोझ के नीचे कही दब कर रह गया है। जब यह सर्वविदित सत्य है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वागीण विकास करना है, तो क्या शिक्षा व्यावहारिक एव जीवनोपयोगी नही होनी चाहिए।

क्या वास्तविकता से मुह मोडना स्वय को धोखा देना नही है? यदि वास्तविकता पर जाये तो क्या आज के भारी भरकम बस्ते के कारण बच्चो के साथ-साथ बच्चो के माता-पिता को पढना/ पढाना नही पड रहा है। ज़रा सोचे तो स्पष्ट समझ मे आता है कि शिक्षा की आधुनिक शिक्षण पद्धति मे बच्चा कही भी स्वतत्र नही है। लगता है जिस प्रकार आज मशीनो का कम्प्यूटीकरण किया जा रहा है। ठीक उसी प्रकार कल के भावी नागरिक को केवल बस्ते से जोडकर एक नए समाज की स्थापना की ओर बढ रहे है। यही नही हर माता-पिता भी इस ओर लालायित है। परन्तु हम सब यह क्यो भूल चले है कि स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मन वास करता है।

आंकडे दर्शाते है कि लाखो लोगो की सख्या मे यौवन आने से पहले ही बचपन मे चश्मे चढ़ चुके हैं जिनमें से कुछ बच्चे कुपोषण व गरीबी की मार खाये परिवारो से हैं, तो बहुत से बच्चे समृद्ध परिवारो से भी है। उनका इस *भयावह रोग से ग्रस्त होना अनैच्छिक शिक्षा प्रणाली व* बस्ते का बढता भारी बोझ है।

अन्वेषक का शिक्षक के रूप मे ग्रामीण विद्यालयों में व्यतीत हुआ तीन दशक से भी अधिक समय मे अनुभव हुआ है कि विद्यालय मे बहुत से ऐसे बच्चे आते है जिनके माता-पिता की शिक्षा की ओर विशेष रुचि नही होती। कारण भले ही कुछ भी रहे हो। परन्तु ऐसे माता-पिता की सख्या भी कम नही है जो अपने बच्चो को अध्यापक / अध्यापिका के भरोसे पर ही छोड़ देते है। उनका मानना है कि ये अभिभावक एक ओर तो अनपढ़ हैं और दूसरी ओर इनके पास शारीरिक कार्यो की अधिकता है।

इस अध्ययन के अन्वेषक, एक प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक हैं जिनकी अपनी विद्यालयी शिक्षा का स्तर केवल 12वीं कक्षा तक है। इसके अतिरिक्त आपने उस समय प्रचलित प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण (जे.बी.टी.) प्राप्त किया। आपको लगभग चार दशक का अध्ययन-अध्यापन का अनुभव है। इस लम्बी अध्ययन-अध्यापन अवधि में औपचारिक रूप से तो शिक्षा में इनकी कोई वृद्धि नहीं हुई अपितु ये एक वास्तविक रूप में सृजनात्मक प्राथमिक स्तर के ग्रामीण अध्यापक हैं। अपने अध्ययन-अध्यापन कार्यकाल में इन्होंने अनेक राज्य स्तरीय व राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार प्राप्त किए। इन्होंने अनेक शिक्षा गोष्ठियों में भी भाग लिया। राष्ट्रीय डी.पी.ई.पी. नामक कार्यक्रम में भी ये भागीदार रहे। इन्होंने अनेक नवाचार पद्धतियां और प्रयोग किए जिसके कारण समाज में विद्यालय की प्रतिष्ठा बढ़ी। इसके साथ-साथ राष्ट्रीय उद्देश्य यानि शिक्षा के प्रति जन जागरण हुआ जिसके फलस्वरूप अधिक से अधिक छात्र विद्यालय की ओर आकृष्ट हुए। अध्ययन के दौरान विद्यालय छोड़ने की प्रथा कम हुई तथा गांव की शिक्षा में गुणात्मक प्रगति हुई।

अन्वेषक समझता है कि यह समर्पित भाव अध्यापक के उत्तरदायित्व को कही और अधिक बढ़ा देता है। इस अवस्था मे प्रश्न उठता है कि अध्यापक करे तो क्या करे—

□ क्या अध्यापक कक्षा में बच्चो से कम काम करवाए

ताकि बच्चो को घर जाकर कोई शैक्षिक कार्य न करना पड़े।

- ☐ क्या अध्यापक बच्चों को कक्षा मे इतना अधिक काम करवाए कि बच्चो को घर जाने के पश्चात् गृह-कार्य करने से अवकाश ही न मिले।
- ☐ या फिर अध्यापक कोई ऐसी शिक्षण पद्धति को अपनाए ताकि बच्चा अधिक से अधिक पठन-पाठन कार्य विद्यालय में ही करे। परन्तु कुछ हल्का-फुल्का रोचक व रचनात्मक कार्य घर से भी करके लाए।

अध्यापक ने अनुभव किया है कि तीसरी प्रकार की अपनाई गई कार्यशैली मे विद्यार्थी को सीखने/ समझने मे कही ज्यादा आनन्द आता है। यह उसकी प्रयोग आधारित मान्यता है। इसी पद्धति को अपनाकर **"बिना बस्ते के शिक्षा"** को कक्षा प्रथम के लिए एक प्रोजेक्ट के रूप में चयनित किया, ताकि बच्चों, अध्यापकों एव अभिभावको (समाज को) को नए अनुभवो का लाभ मिले और बच्चो को बस्ते के भारी भरकम बोझ से भी मुक्त रखा जा सके।

उद्देश्य

- ☐ बच्चों मे सृजनात्मकता का विकास करना।
- ☐ कक्षागत गतिविधियों में बच्चो की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- ☐ सीखने/ सिखाने की प्रक्रिया में गतिविधियों को आधार बनाते हुए शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार लाना।
- ☐ शिक्षा को मूल्य-परक बनाना।
- ☐ बच्चो द्वारा बच्चो के लिए कक्षा मे प्रयोगात्मक रूप मे क्रियान्वित ऐसे कार्यकलाप कराना जिनसे कक्षा व विद्यालय दोनो का वातावरण शैक्षणिक लगे। जैसे—बालगीतो का सामूहिक गान, प्रश्न मंच, शैक्षिक खिलौनो का निर्माण एव प्रयोग, एलबम व मनोरजक एवं ज्ञानवर्धक खेल।
- ☐ पाठ्यक्रम को छात्र केन्द्रित बनाना।
- ☐ शिक्षा के क्षेत्र मे आवश्यक न्यूनतम अधिगम स्तर की प्राप्ति।
- ☐ बच्चो मे जिज्ञासा कौशल का विकास करना।
- ☐ पढाई-लिखाई मे कठिनाई अनुभव करने वाले छात्र/ छात्राओ की शिक्षा सबंधी आवश्यकताओं को समझना व उनकी पूर्ति के बारे मे प्रयास करना।
- ☐ बच्चो द्वारा स्वय किए गए "शिक्षण सामग्री निर्माण" का सही मूल्यांकन कर सकने में सक्षम बनाना।

बच्चों का कक्षा में प्रवेश एवं ड्रॉप आउट

पूर्व विचारों में सुधार—वर्तमान पाठ्यक्रम के बोझिल होने को प्रायः सभी अध्यापक अनुभव करते है। अध्यापक व बच्चा उसे पूरा करने मे कठिनाई महसूस करते हैं। राज्यों में कक्षा 1 से कक्षा 5 तक प्रायः एक ही अध्यापक सभी "पाचो" विषय पढ़ाता है। इसका एक पहलू सकारात्मक है तो दूसरा पहलू नकारात्मक है।

कक्षा एक से पाच तक आते-आते बच्चा अध्यापक के पूरे संपर्क मे आ जाता है, जो कि बच्चे के शैक्षिक विकास मे सहायक हो सकता है। इसके प्रतिकूल यदि अध्यापक मे उदासीन भाव हो तो बच्चे का जीवन बर्बाद होकर रह जाता है। देखने मे आया है कि बहुत से अध्यापक ऐसे भी है जिन्होने विज्ञान जैसे विषय को एक विषय के रूप मे पढ़ा ही नहीं। ऐसी परिस्थिति मे यदि अध्यापक का वैज्ञानिक दृष्टिकोण हो और वह केवल सरल गणित का ही ज्ञान रखता हो तो सहायक शिक्षण सामग्री का उपयोग कर शैक्षिक गतिविधियां लागू कर कठिन पाठ्यक्रम को सरल व सुलभ बनाते हुए अपने उत्तरदायित्व का पालन कर सकते है अन्यथा अध्यापक मे उदासीनता का भाव प्रबल होना शैक्षिक उद्देश्यो मे बाधक बनेगा।

सामान्य परिस्थितियां और अपर्याप्त धन

राजकीय विद्यालयो मे पठन-पाठन हेतु शिक्षक को कोई आर्थिक सहायता नही मिलती। बच्चो से नाममात्र के लिए निधियो के रूप में कुछ राशि ली जाती है जो पर्याप्त नही है और जो राशि जमा होती है उसी में से मटके, झाड़ू, झाड़न, चॉक आदि खरीदे जाते हैं।

समृद्ध राज्य होते हुए भी बहुत से विद्यालयो में भवनो का अभाव बना रहता है। उदाहरणस्वरूप वर्तमान विद्यालय में, नवाचार अध्यापक मुख्य अध्यापक के पद पर सेवारत है। उसके अतिरिक्त विद्यालय मे 13 अध्यापक/अध्यापिकाएं

है और कक्षा 1 से 5 तक 13 विभाग है, जबकि कमरे केवल 4 है वे भी क्षतिग्रस्त अवस्था मे है। यही नही विद्यालय भवन मे न मुख्य अध्यापक के लिए कार्यालय है, न अध्यापक व बच्चो के लिए पेशाबघर, न पीने के पानी की कोई व्यवस्था है न ही चारदीवारी और न कोई स्टाफ के बैठने के लिए अलग से कमरा।

सहायक शिक्षण सामग्री का अभाव एवं दुरुपयोग

परिस्थितिया बताती है कि पाठ्यक्रम अनुसार जो शिक्षण सामग्री चाहिए वह विभाग की ओर से प्राय उपलब्ध नही होती। इन्ही कारणो के चलते अध्यापक की उदासीनता और बलवती हो उठती है। उसका दृष्टिकोण ही नकारात्मक सा बना रहता है। इस प्रकार ऐसे अध्यापक से शिक्षण सामग्री का निर्माण तो एक दिवास्वपन सा ही है। वह तो उपलब्ध सामग्री का उपयोग भी नही करेगा। उदाहरणस्वरूप पूरे राज्य भर के प्राथमिक विद्यालयो मे ऑडियो/ रेडियो सैट उपलब्ध है, परन्तु अधिकतर तालो के अन्दर बद हैं। लाइब्रेरी की पुस्तको को दीमक खा रहा है क्योकि अधिकतर अध्यापको को भय बना रहता है कि ये चीजें खराब होने पर हर्जाना देना पडेगा।

आज आवश्यकता है कि अध्यापक के पूर्व विचारो एव विषयो मे सुधार करके उन्हे नई दिशा देने अथवा उचित मार्गदर्शन की, ऐसे प्रशिक्षण की जिसमे वह सहायक शिक्षण सामग्री का निर्माण कर उसकी उपयोगिता व प्रयोग विधि को जान सके, ताकि वह उदासीनता का परित्याग कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना (बना) सके।

कार्यान्वयन

प्रथम चरण–अप्रैल 1996 को गाव मे (6-11 वर्ष) आयु-वर्ग के सभी बच्चो का नामाकन करने हेतु सर्वप्रथम एक सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के समय देखने में आया कि शहर की भाति ही गाव के लोगो मे भी अपने बच्चो को अंग्रेजी माध्यम विद्यालय मे पढ़ाने का आकर्षण बना हुआ है। जबकि अभिभावको मे अनपढ़ो या कम पढ़े-लिखों की संख्या काफी थी, परन्तु यह आकर्षण उन्हे भी लालायित किए हुए था। इस धारणा के कारणो को जानकर बच्चो के माता-पिता से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किए। उन्हें विद्यालयी योजना की सक्षिप्त रूपरेखा बतलाई/समझाई और अभिभावको की एक समिति का गठन कर विद्यालय मे करवाए गए (अपनाए गए) कार्यकलापो से जोडा।

परिणामस्वरूप 33 ऐसे बच्चे जो किन्हीं अन्य विद्यालयो मे प्रवेश चाहते थे उन्हे विद्यालय (प्रथम कक्षा) मे प्रवेश दिया। यही नहीं बच्चो की आवश्यकताओ को समझते हुए यथासभव आर्थिक सहायता भी प्रदान की। अर्जित धनराशि को निम्न मदो पर खर्च किया–

- ☐ पाठ्यपुस्तक,
- ☐ अभ्यास पुस्तिका,
- ☐ स्केच पैन, पानी के रग, ड्राइग सीट, पेन्सिल, रबर, फुटरूल,
- ☐ इसके अतिरिक्त स्थानीय परिवेश मे उपलब्ध शिक्षण सामग्री।

विशेष कथन–समस्त सामग्री को एक किट का रूप दिया। जिसे बच्चे अपने साथ घर नही ले जाते, वे साथ ले जाते है केवल एक अभ्यास पुस्तिका, जिस पर वे गृह-कार्य के रूप मे हल्का-फुल्का शैक्षिक कार्य एवं रचनात्मक कार्य घर से कर के लाते है।

द्वितीय चरण–भिन्न-भिन्न पारिवारिक वातावरण से आए नन्हे-मुन्नो से बातचीत की। उन्हे विश्वास मे लिया। भोले-भाले बच्चो के साथ मातृ-पितृ भाव से स्नेहपूर्ण व्यवयहार किया, जिनकी उन्हे आवश्यकता थी। इसके पश्चात् बच्चो को शिष्ट ढग से बोलचाल के लिए प्रोत्साहित किया। जैसे– "तू" को "आप" कहकर पुकारना आदि। परिणामस्वरूप विद्यालय का व्यवहार स्नेहात्मक लगने लगा और मा-बाप की सरकारी विद्यालयो के प्रति विद्यमान निराशाजनक धारणा टूटने लगी। बच्चे विद्यालय से उकताए नहीं इसलिए प्रतिदिन मध्यान्तर के बाद उन्हें समूह मे बैठाकर "कोलड़ा छुपाके जुम्मे रात आई है" व "चोर-सिपाही" जैसे मनोरंजक खेल खिलाने का कार्यक्रम रखा।

तृतीय चरण–बच्चो को भिन्न-भिन्न चित्र दिखाकर उनके बारे में बातचीत की। बच्चे चित्रो के विषय मे अधिक कुछ नही बता पाए। चित्रो (रेखाचित्रो) का इनके प्रोजेक्ट मे

विशेष स्थान है। अध्यापक ने कुछ चित्र श्यामपट्ट पर बनाए। प्राय: सभी चित्रो का आकार/आधार "अण्डा व डण्डा" था।

"अण्डा व डण्डा" विधि को बच्चो ने सरलता से समझा और अपनाया। आगे चलकर बच्चो ने "अण्डा व डण्डा" विधि का प्रयोग कर तिनके और तीलियों से मुह बोलते चित्र बनाकर दिखलाए।

थोडे से मार्गदर्शन के पश्चात् बच्चो ने पत्र-पत्रिकाओ से भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र काटकर (इकट्ठे करके) भी दिखाए। इन्ही चित्रों को आधार मानकर अध्यापक ने बच्चो को बाल-कहानिया, बाल कविताए व बालगीत भी सुनाए। विद्यालय में कार्यरत अध्यापिकाओं के सहयोग से जिन बालगीतो को सुनवाया उनमें से प्रमुख बालगीत निम्नलिखित रहा—

बालगीत

हम नन्हे-मुन्ने हैं,
पर पढ़ने जाएगे।
खेलेंगे, कूदेंगे,
और मौज मनाएगे।
नहीं मोटर है लारी,
और, है बस्ता भी भारी।
गर हो शाला प्यारी,
हम हंसते जाएगे।
खेलेगे . ...
बन चन्दा चमकेगे,
घर आगन-दमकेंगे।
शाला के आगन में,
नए पेड उगाएगे।
खेलेगे.............. ....

इस गीत के अभिनय व गायन के समय बच्चे तालिया बजा-बजाकर नाचते-गाते भाव विभोर हो उठते हैं।

चतुर्थ चरण

प्रोजेक्ट की शिक्षण पद्धति

- प्रार्थना सभा की समाप्ति पर बच्चों के कक्षा में पहुचते ही उपस्थिति लेकर बच्चो की व्यक्तिगत रूप से सफाई का निरीक्षण कर आवश्यक निर्देश देना अध्यापक की दिनचर्या का पहला व आवश्यक पहलू रहा।
- नैतिक शिक्षा जिसे सरकार (शिक्षा विभाग) ने अनिवार्य विषय के रूप मे लागू किया है, को ध्यान मे रखते हुए प्रतिदिन बच्चो को सृजनात्मक परिचर्चा, बालगीत, कविताए, कहानिया, लघुकथाएं व आस-पडोस मे प्रतिदिन घटित घटनाओ को सुनाता है ताकि बच्चो का नैतिक उत्थान हो और पाठ्यक्रम मे दर्शाए पहलुओं की पूर्ति हो।
- कम खर्च व खर्चीली शिक्षण सामग्री आधारित सहायक शिक्षण सामग्री जैसे— चित्र, रेखाचित्र, कार्टून, शैक्षिक खिलौने, मॉडल, चार्ट, बालफ्रेम, मिट्टी की गोलिया, तीलियों आदि का प्रयोग व बच्चों की भागीदारी को बल देते हुए पाठ्यक्रम मे निर्धारित न्यूनतम अधिगम स्तर के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया।
- बच्चो द्वारा घर से अभ्यास पुस्तिका मे कुछ रचनात्मक रूप मे कार्य कर लाने का निर्देश देना। जैसे—स्थानीय पशु-पक्षियों के चित्र चिपकाना, जगली पशुओ के चित्र चिपकाना, यातायात के साधनो के चित्र चिपकाकर लाना, रग-बिरंगे कागजों से झोपड़ी, पहाड़ व पेड़ो जैसी आकृतिया बना कर लाना, पत्र-पत्रिकाओं से भिन्न-भिन्न चित्र काटकर लाना आदि।

कक्षा का पहला दिन

रोल-प्ले

प्रार्थना सभा के पश्चात् बच्चो का कक्षा मे आगमन। अध्यापक द्वारा छात्र उपस्थिति लेना व व्यक्तिगत सफाई का निरीक्षण कर सामान्य निर्देश देने के पश्चात्।

अध्यापक

"हा प्यारे बच्चो सुनो। मै कल सायंकाल गाव से बाहर बने मन्दिर में घूमने गया। वहा मन्दिर के पीछे की ओर एक तालाब था। तालाब का पानी बिल्कुल साफ-स्वच्छ था। पानी मे छोटी-छोटी रग-बिरंगी मछलियां तैर रही थीं जो

पानी मे साफ-साफ दिखलाई पड रही थी। कुछ छोटे-छोटे बच्चे तालाब के किनारे बैठे रह-रहकर उन मछलियो पर कंकड़ मार रहे थे।

तालाब के किनारे पर ही एक वट का पेड़ था। मै वट के पेड के नीचे कुछ समय के लिए बैठ गया। पेड़ पर देखा तो बहुत सी मकडिया अपना-अपना ताना-बाना बुन रही थीं देखने पर ऐसा लग रहा था मानो इनकी दुनिया ही अलग है।

तभी वहा कुछ मोर-मोरनियां आ गईं। उन्होने पानी पीया और उड़कर वट के वृक्ष पर बैठ गए। सूर्यास्त होने वाला था। थोडी ही देर में एक मोर ने मीठे स्वर मे आवाज लगाई, तभी मन्दिर की घंटिया बज उठी। पुजारी लोग आरती गाने लगे।

मैने भी नल पर हाथ मुह धोए और आरती मे शामिल हो गया। थोड़ी ही देर मे आरती पूरी हो गई। पुजारी जी ने प्रसाद बांटा। मैने भी प्रसाद लिया और घर की ओर चल पड़ा।"

अध्यापक ने बच्चों को यह विवरण सुनाया और फिर उन्हे कुछ चित्र कार्ड दिए। सभी "चित्र कार्डो" पर एक जैसे चित्र थे। इसके पश्चात् बच्चो से कुछ प्रश्न पूछे जो निम्नलिखित है—

प्रश्न— बच्चो, चित्र मे वह कौन-सा पक्षी है जिसे कल सैर करते समय देखा था?

सभी बच्चे— (एक साथ तुरन्त बोलते हुए) मोर।

प्रश्न— बच्चो, पानी मे क्या देखा था?

सभी बच्चे— (एक स्वर मे) मछलियां।

अध्यापक— अरे वाह! फिर तो आप यह भी जानते होगे कि पेड़ पर ताना-बाना कौन ....

सभी बच्चे— (बात काटते हुए) मकड़ी।

अध्यापक— (स्वय में) बच्चों सैर के समय मैने हाथ मुंह कहां धोए थे?

एक बालक— (धीमे स्वर मे) नल पर।

अध्यापक— बच्चो। क्या इस चित्रकार्ड पर नल का चित्र नही है? (इस बात को सुनते ही सभी बच्चे मेरे चारो ओर इकट्ठे हो जाते हैं। सभी अपने-अपने "चित्र कार्ड" पर नल का चित्र दिखाते है। बच्चो के उत्साह को देख अध्यापक स्वय प्रेरित हो उठा। (बात को आगे बढ़ाने हेतु)

मैंने बच्चो से कहा—

"बच्चो, क्यों न हम इन चित्रों को बोर्ड पर बनाएं?

इस बात को सुनते ही बच्चों की उत्सुकता और भी बलवती हो उठी।
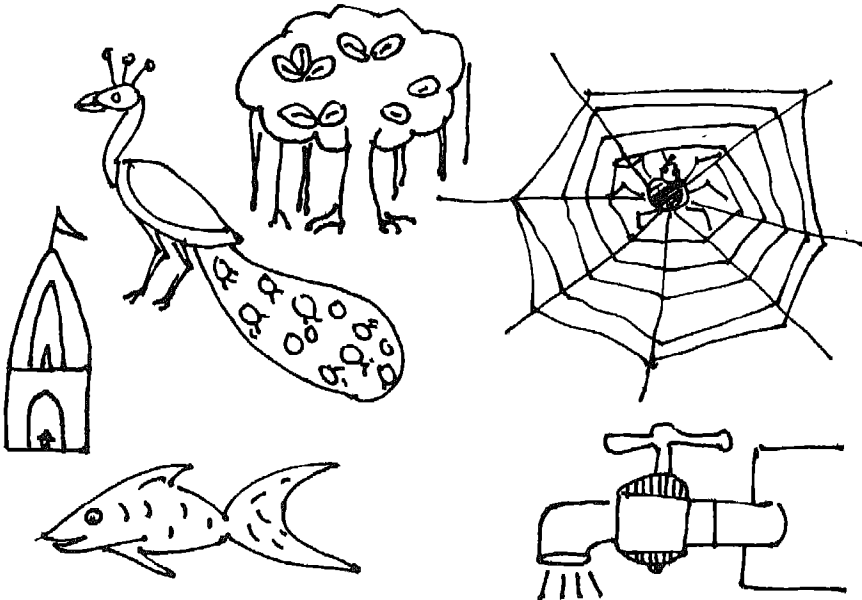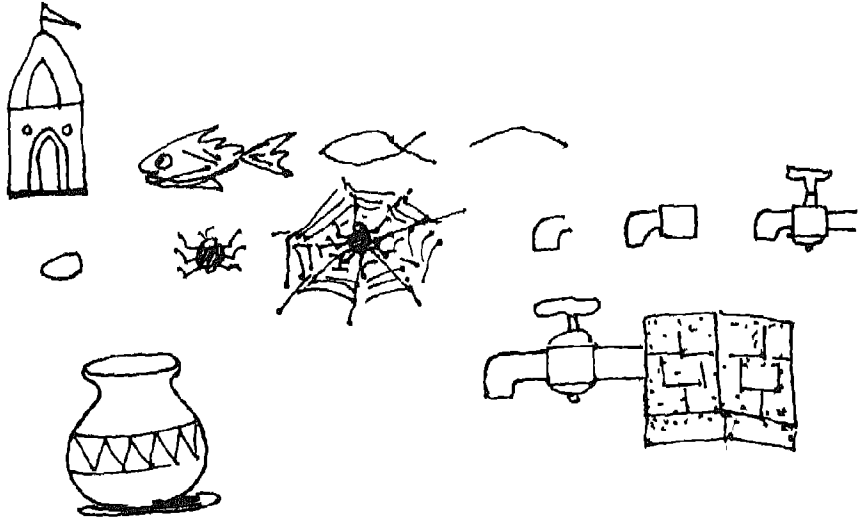
सभी बच्चे प्रसन्नचित्त होकर चित्र बनाओ, चित्र बनाओ कह कर शोर मचा रहे थे।

अब अध्यापक ने चॉक से बोर्ड पर "अण्डा व डण्डा" विधि अपनाकर कुछ चित्र बनाए। जैसे—

म मन्दिर,
म मछली,
म मकड़ी,
म मटका,
न नल

इसके पश्चात् अध्यापक ने "म" और "न" जो कि उस दिन के पाठ का मुख्य विषय थे, को उजागर करने के लिए कुछ और चित्र दिखाए जिनमे "म" और "न" बार-बार बोलने और सुनने मे आये। जैसे— नयन (आख) नदी, महल, मगर व मजदूर आदि।

बच्चो ने कुछ चित्रो को देखकर उनके नाम आसानी से व खड़ी बोली मे सुनाए जिन्हें अध्यापक ने बाद मे शुद्ध नाम से कह सुनाया। उसने श्यामपट्ट पर "न" और "म" दोनो वर्ण लिखे और बच्चों से कहा— बच्चो जो चित्रकार्ड आपके हाथ मे है, उन चित्रों के नीचे लिखे नामो मे "म" और "न" को पहचानो। बच्चो ने "न" और "म" को शीघ्रता से ढूढ निकाला परन्तु कुछ बच्चे इस दौड़ में पिछड से गए।

अब उसने बच्चो से कहा— बच्चो अब अपना पहला पाठ निकाल ले। बच्चो ने पहला पाठ निकाल लिया। उसने पहले शब्दो को बुलवाया और शब्द विच्छेद कर "न" "म" और ा की मात्रा का बोध करवाया।

पाठ 1

नाम

न न

ा ना नाना

म मा मान मना माना मामा

मन न माना

नाना न माना

मामा न माना

मान न मान

न नाम न मान

नोट– पाठ पढाने के पश्चात् बटन व तिनको की सहायता से बच्चो ने दिखाई अक्षर बनावट का अनुकरण करते हुए अक्षर बनाए जैसे—

इसके पश्चात् बच्चों को कुछ कंचे दिए और उनके द्वारा अध्यापक को वापिस एक-एक व तीन-तीन करके दिए गए। बच्चे एक, दो, तीन की संख्या का बोध रखते हैं, परन्तु लिखना नही जानते। मध्यान्तर के बाद बच्चो को मैदान में गोल दायरे मे बैठाकर पहले "न" और "म" की अगुली से लिखवाकर अभ्यास करवाया और बाद मे "कोलड़ा छिपाके जुम्मे रात आई है" का मनोरजक खेल खिलाया।

अध्यापक द्वारा
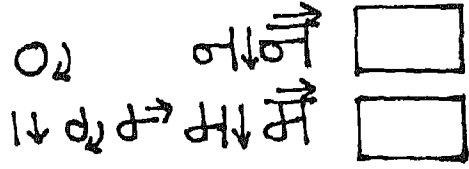
बच्चो द्वारा

बटन और तिनको के प्रयोग द्वारा
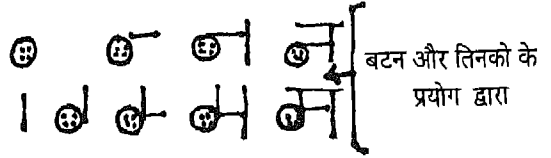
अभ्यास

पढ़िए

लिखिए

न ....

ा .. . .

म ... .

नम .. ..

मन ... .

नाम ... .

मान ....

नाना . . . .

मामा ... .

माना .. ..

शब्द पूरा करें

न ....

ना ....

म . ...

मा ....

कोई चार शब्द लिखें

....

.. ..

....

. ...

गिनकर लिखिए

कक्षा में दूसरा दिन

दैनिक उपस्थिति व व्यक्तिगत सफाई देखने के पश्चात् बच्चों को समूहो मे बैठाया। उन्हे गत्ते के टुकड़े दिए जिन पर ा म लिखे हुए थे। उन्हे हल्का-सा खेल के बारे मे मार्गदर्शन दिया। तत्पश्चात् बच्चों ने शब्द बनाने का खल खेला। बच्चो का लेखन कार्य सन्तोषजनक रहा।
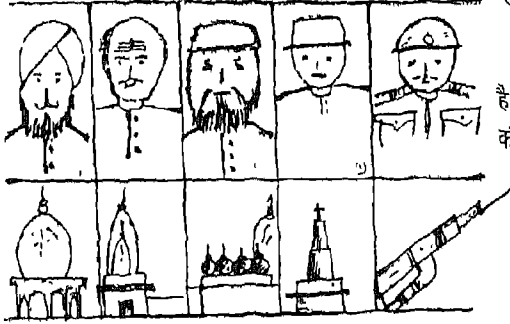
मध्यान्तर के पश्चात् बच्चो को "टोली बनाओ = टोली बिगाड़ो" (संख्या बोधक) खेल खिलाते हुए, दो, तीन का बोध कराया।

कक्षा में तीसरा दिन

दैनिक औपचारिकताओं का पालन करते हुए—

अध्यापक— "बच्चो आज हम आपको कहानी सुनाते हैं। कहानी है उस जवान की जिसने भारत मा की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी।

बच्चो, जानते हो उसका क्या नाम था? नही! तो सुनो। उस वीर (साहसी) जवान का नाम था "रण बाकुरा मलखान सिंह।

बच्चों, मलखान सिह के पास दो हथगोले थे, उसने दोनों हथगोलों से शत्रु के दो टैक उड़ा दिए। वह यम की भाति शत्रु पर टूट पड़ा। बच्चो, मलखान सिह आखिरी सास तक शत्रु से लड़ता रहा। अत मे "भारत मा की जय" का नारा लगाते हुए भारत मा की गोद मे सदा-सदा के लिए सो गया। बच्चो, मलखान सिह अमर हो गया। सदा-सदा तक उसका नाम अमर रहेगा।"

नोट— कहानी सुनाने के पश्चात् बच्चो से कुछ प्रश्न पूछे। बच्चे प्रश्नो का उत्तर संतोषजनक नहीं दे सके। बच्चो को जवान के बारे मे विस्तार से बताया और इसके पश्चात् बच्चो को एक "चित्रकार्ड" दिया। "चित्रकार्ड" पर कुछ चित्र बने हुए थे।

जैसे—

अण्डा डण्डा

अब बच्चों से पुनः प्रश्न पूछे—

प्रश्न— बच्चो, आपको एक "चित्र कार्ड" दिया गया है। क्या आप इनमें से बता सकते हैं कि "जवान" कौन है?

(प्राय सभी बच्चो ने चित्र नं 5 की ओर इशारा करते हुए कहा— "यह रहा"

अध्यापक— बच्चों, क्या आप दूसरे चित्रो (अन्य चित्रों) के बारे मे जानते हो?

(इस बारे मे बच्चे चुप रहे।)

तब इन चित्रो के विषय मे अध्यापक ने उन्हें अगले दिन कुछ बताने को कहते हुए कहा— बच्चो इन चित्रो को देखो— जिस पर "जय जवान" लिखा था। आज हम इसका पाठ पढ़ाएंगे।

पाठ 2 "जय-जवान" (ज य व)

जय	जवान	जय	व	
ज	जज	जमा	जमाना	मजमा
य	यम	यान	नया	माया
व	वन	जवान	नाव	मानव

मामन मान जा

नया जवान

नया जमाना

जय जवान जय जवान

इसके पश्चात् "शब्द चक्र" खेल खिलाया।
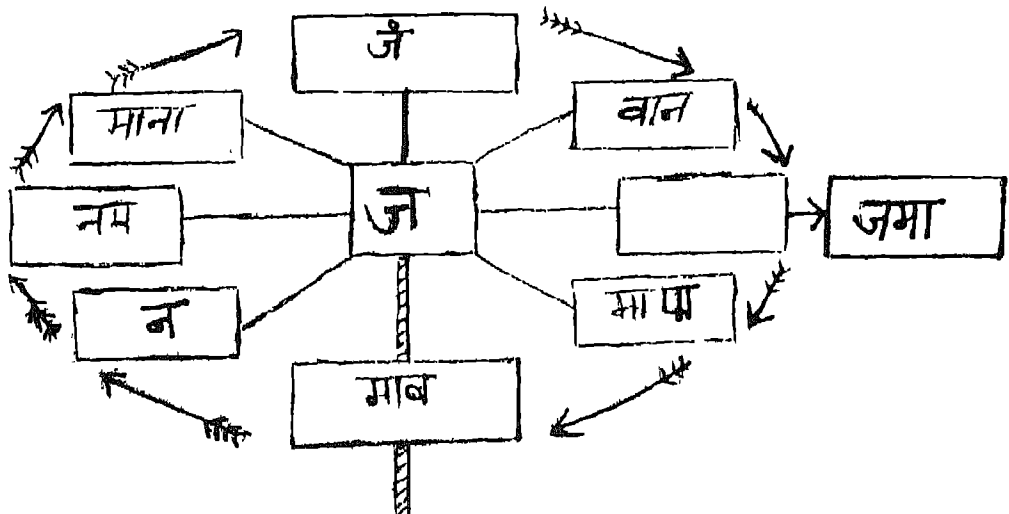
निर्माण सामग्री— गत्ते के टुकड़े (जिन पर लिखा था— ज, ज, वान, मा, माया, भाव, न, नम, माना, आदि) सरकण्डे, गोद व कागज के टुकड़े।

नोट— बच्चे प्रारभ मे इस खेल को समझ नहीं सके। अध्यापक ने पूरी तत्परता से बच्चो को कई बार सिखाया तो बच्चे आश्वस्त से हो उठे और खेल-खेल मे आशिक रूप से "शब्द चक्र" चला कर शब्द बनाना सीखने लगे।

इसके पश्चात् सुनियोजित ढग से मनोरंजक व कचे-गोलियो का (संख्या-बोधक) खेल खिलाया व गृह-कार्य के रूप में भिन्न-भिन्न प्रकार के चेहरो वाले चित्र इकट्ठे करने को कहा।

प्रोजेक्ट की उपलब्धियां

- छात्रो ने अध्यापक के साथ मिल कर काम किया, जिससे दोनो पक्षो मे आपसी विश्वास उत्पन्न हुआ।
- रेखाचित्रो को बनाना सीखकर बच्चों ने जीवन से जुड़े पहलुओं को चित्राकन में देखा और समझा।
- स्थानीय नकारा वस्तुओं के महत्व को जाना और उपयोग किया।
- बच्चो ने प्रतियोगिताओं के महत्व व उनकी कार्यशैली को समझा।

अधिगम प्रतिफल

गतिविधियों के नाम	विद्यार्थियों के अधिगम प्रतिफल	पाठ्यक्रम अध्ययन विधि	अन्य विवरण
अण्डा व डण्डा आधारित चित्र एव रेखाचित्र	बच्चों मे कलात्मक विकास की वृद्धि	नई अध्ययन पद्धति	बच्चो ने रेखाचित्र बनाने मे रुचि ली और चित्र भी बनाए।
बालगीत कहानी घटनाओ का विबवरण	बच्चों में तर्क शक्ति एव भाषा लेखन कौशल में विकास हुआ	बच्चों मे मौखिक अभिव्यक्ति को बल मिला।	बच्चे स्थानीय परिवेश से काफी हद तक परिचित हुए।
शैक्षिक खेल	बच्चो में खेल की भावना का विकास	खेल-खेल मे शिक्षा	सहयोग की भावना मे विकास।

- "करके सीखने" के आनन्द को बच्चो ने करके सीखा।
- बच्चो मे जिज्ञासा शक्ति का विकास हुआ।
- बच्चो में रचनात्मक कार्यकलापों के विपय मे आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ।
- बच्चो मे छिपी प्रतिभा को उभरने का अवसर मिला।
- बच्चो मे छिपी प्रतिभा को भरने का अवसर मिला।
- छात्र केन्द्रित शिक्षा का व्यावहारिक ज्ञान बच्चो ने प्रोजेक्ट मे आत्मसात् भागीदारी निभाकर समझा/जाना।
- अभिभावको से व्यक्तिगत सम्पर्क कर अध्यापक ने अच्छा अनुभव अर्जित किया। नवचार अध्यापक को लगा कि यदि अध्यापक विद्यालय मे अपनाए जाने वाले कार्यकलापों मे समुदाय की उचित भागीदारी सुनिश्चित कर ले तो अध्यापक अपने खोए हुए सम्मान को पुन. प्राप्त कर सकता है।
- अध्यापक सफलता की हर ऊंचाई को छू सकता है।

निष्कर्ष

"बिना बस्ते के शिक्षा" की अध्ययन पद्धति से अन्वेषक ने अनुभव किया कि गतिविधियो पर आधारित शिक्षा एक जीवन उपयोगी एवं व्यावहारिक शिक्षा है।

"अण्डा व डण्डा" जैसी सरल व बिना लागत की ऐसी रचनात्मक शिक्षण पद्धति लगी कि ऐसी ही (अन्य) कुछ और पद्धतियो का विकास कर अध्यापक वर्ग यदि उन्हे कार्यान्यन कर दिखाये तो एक ओर जहा बस्ते का भार बच्चे पर से हटाया जा सकता है, वही दूसरी ओर वह स्वय भी अपने कर्तव्य का निष्ठा से पालन कर सकता है।

अध्यापक ने यह भी अनुभव किया कि साहित्यिक कार्यकलापो व आसपास मे बिखरी नाकारा वस्तुओं को सजोकर बनाई गई शिक्षण सामग्री के उपयोग से बच्चो ने जहा निर्धारित न्यूनतम अधिगत स्तर के मापदण्डों से पार पाया, वहीं दूसरी ओर जीवन को ही कला स्नेही बनाने मे नई दिशा प्रदान की।

सुझाव

यह प्रयोगात्मक (प्रोजेक्ट) कक्षा 1 से 5 तक सभी प्राथमिक कक्षाओ में सफल हो सकता है। यदि सरकार (शिक्षा विभाग) ऐसे प्रयोग एव पद्धतियो को उचित महत्व देते हुए अध्यापको, मुख्याध्यापको एवं विद्यालयों को यथासम्भव सहायता और प्रोत्साहन दे।

डी.पी ई.पी. जैसे भारी भरकम बजट वाले सात वर्षीय शैक्षिक कार्यक्रम इस प्रोजेक्ट को स्वीकृत कर कार्यान्वित किया जाए तो डी.पी.ईपी. कार्यक्रम अपने सभी (चारों) उद्देश्यो को अधिकांश रूप मे प्राप्त कर सकता है।

प्रोजेक्ट की शैक्षिक उपादेयता

नोट– "बिना बस्ते के शिक्षा" का कार्यान्वयन पूर्णतया विद्यालय मे किया। इसकी शैक्षिक उपादेयता निम्न प्रकार से है।

- प्रोजेक्ट के सभी कार्यकलाप "करके सीखने" के थे। जिसमे बच्चो को रटने की पद्धति से छुटकारा मिला।
- "अण्डा व डण्डा" रेखाचित्रो को बनाने से बच्चो मे सृजनात्मकता का विकास हुआ।
- बच्चो के स्वभाव मे जिज्ञासा, आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास जैसे गुणो का समावेश हुआ।
- सामूहिक रूप से कार्य करने से बच्चों में आपसी तालमेल व सहयोग की भावना का विकास हुआ।
- अधिगम सामग्री द्वारा करवाए गए रोचक अधिगम अनुभव बच्चो में शैक्षिक गुणवत्ता की नीव मजबूत करने मे उपयोगी रहे। □□

राजकीय प्राथमिक पाठशाला
बुपनिया, जिला रोहतक
हरियाणा

अधिगम प्रतिफल

गतिविधियों के नाम	विद्यार्थियों के अधिगम प्रतिफल	पाठ्यक्रम अध्ययन विधि	अन्य विवरण
अण्डा व डण्डा आधारित चित्र एव रेखाचित्र	बच्चो मे कलात्मक विकास की वृद्धि	नई अध्ययन पद्धति	बच्चो ने रेखाचित्र बनाने में रुचि ली और चित्र भी बनाए।
बालगीत कहानी घटनाओ का विववरण	बच्चो मे तर्क शक्ति एवं भाषा लेखन कौशल मे विकास हुआ	बच्चों मे मोखिक अभिव्यक्ति को बल मिला।	बच्चे स्थानीय परिवेश से काफी हद तक परिचित हुए।
शैक्षिक खेल	बच्चो मे खेल की भावना का विकास	खेल-खेल मे शिक्षा	सहयोग की भावना मे विकाम।

- "करके सीखने" के आनन्द को बच्चों ने करके सीखा।
- बच्चो मे जिज्ञासा शक्ति का विकास हुआ।
- बच्चो मे रचनात्मक कार्यकलापो के विषय में आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ।
- बच्चो में छिपी प्रतिभा को उभरने का अवसर मिला।
- बच्चो मे छिपी प्रतिभा को भरने का अवसर मिला।
- छात्र केन्द्रित शिक्षा का व्यावहारिक ज्ञान बच्चो ने प्रोजेक्ट मे आत्मसात् भागीदारी निभाकर समझा/जाना।
- अभिभावको से व्यक्तिगत सम्पर्क कर अध्यापक ने अच्छा अनुभव अर्जित किया। नवाचार अध्यापक को लगा कि यदि अध्यापक विद्यालय मे अपनाए जाने वाले कार्यकलापों में समुदाय की उचित भागीदारी सुनिश्चित कर ले तो अध्यापक अपने खोए हुए सम्मान को पुन प्राप्त कर सकता है।
- अध्यापक सफलता की हर ऊचाई को छू सकता है।

निष्कर्ष

"बिना बस्ते के शिक्षा" की अध्ययन पद्धति से अन्वेषक ने अनुभव किया कि गतिविधियो पर आधारित शिक्षा एक जीवन उपयोगी एव व्यावहारिक शिक्षा है।

"अण्डा व डण्डा" जैसी सरल व बिना लागत की ऐसी रचनात्मक शिक्षण पद्धति लगी कि ऐसी ही (अन्य) कुछ और पद्धतियो का विकास कर अध्यापक वर्ग यदि उन्हें कार्यान्यन कर दिखाये तो एक ओर जहा बस्ते का भार बच्चे पर से हटाया जा सकता है, वही दूसरी ओर वह स्वय भी अपने कर्तव्य का निष्ठा से पालन कर सकता है।

अध्यापक ने यह भी अनुभव किया कि साहित्यिक कार्यकलापो व आसपास मे बिखरी नाकारा वस्तुओ को सजोकर बनाई गई शिक्षण सामग्री के उपयोग से बच्चो ने जहा निर्धारित न्यूनतम अधिगत स्तर के मापदण्डो से पार पाया, वही दूसरी ओर जीवन को ही कला स्नेही बनाने मे नई दिशा प्रदान की।

सुझाव

यह प्रयोगात्मक (प्रोजेक्ट) कक्षा 1 से 5 तक सभी प्राथमिक कक्षाओ में सफल हो सकता है। यदि सरकार (शिक्षा विभाग) ऐसे प्रयोग एव पद्धतियो को उचित महत्व देते हुए अध्यापको, मुख्याध्यापकों एवं विद्यालयो को यथासम्भव सहायता और प्रोत्साहन दे।

डी पी ई पी जैसे भारी भरकम बजट वाले सात वर्षीय शैक्षिक कार्यक्रम इस प्रोजेक्ट को स्वीकृत कर कार्यान्वित किया जाए तो डी पी.ईपी. कार्यक्रम अपने सभी (चारो) उद्देश्यो को अधिकाश रूप में प्राप्त कर सकता है।

प्रोजेक्ट की शैक्षिक उपादेयता

नोट- "बिना बस्ते के शिक्षा" का कार्यान्वयन पूर्णतया विद्यालय मे किया। इसकी शैक्षिक उपादेयता निम्न प्रकार से है।

- ☐ प्रोजेक्ट के सभी कार्यकलाप "करके सीखने" के थे। जिसमे बच्चो को रटने की पद्धति से छुटकारा मिला।
- ☐ "अण्डा व डण्डा" रेखाचित्रो को बनाने से बच्चों मे सृजनात्मकता का विकास हुआ।
- ☐ बच्चो के स्वभाव में जिज्ञासा, आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास जैसे गुणो का समावेश हुआ।
- ☐ सामूहिक रूप से कार्य करने से बच्चो मे आपसी तालमेल व सहयोग की भावना का विकास हुआ।
- ☐ अधिगम सामग्री द्वारा करवाए गए रोचक अधिगम अनुभव बच्चो मे शैक्षिक गुणवत्ता की नीव मजबूत करने मे उपयोगी रहे। ☐☐

राजकीय प्राथमिक पाठशाला
बुपनिया, जिला रोहतक
हरियाणा

मेरे विद्यालय आगमन के चन्द दिन

❑ रघुबीर सिंह

उपर्युक्त लेख में श्री रघुबीर सिंह ने विद्यालय में अपने प्रथम 6 दिनों के अनुभव को प्रस्तुत किया है। राजकीय प्राथमिक पाठशाला एक छोटे से अविकसित गांव में है। इस सृजनशील अध्यापक ने शिक्षा को अति मनोरंजक बनाया जिससे छात्र शिक्षा के प्रति आकर्षित हुए। शिक्षा को छात्रों के व्यक्तित्व विकास का साधन बनाया। इस लेख में अध्यापक ने निम्न युक्तियों व प्रयोगों का उपयोग किया जो छात्रों के विकास में सहायक सिद्ध हुए।

- **सब्जियों से चित्रकारी**
- **धागे से चित्रकारी**
- **रंगोली**

इन क्रियाओं में न केवल छात्रों को अपितु अभिभावकों तथा अन्य गांववासियों को भी सम्मिलित किया और उनका सहयोग लिया। इस कार्य को पूरा करने में कुछ समस्याओं का सामना भी करना पड़ा जिनका अध्यापक ने बड़ी कुशलता से समाधान किया। अध्यापक द्वारा अपनाई गई क्रियाएं अत्यधिक नवीन, सृजनात्मक व सरल हैं। इन क्रियाओं से बच्चों में सहयोग, एकाग्रता, सामाजिक व नैतिक व्यवहार, सुलेख और बोलचाल का भी विकास हुआ। अध्यापक व अभिभावकों को छात्रों के व्यक्तित्व विकास की दिशा मिली।

हर बच्चा स्वस्थ चित्त पैदा होता है किन्तु बाद मे विक्षिप्त हो जाता है क्यो? क्योंकि हम जाने-अनजाने मे ही उसे जन्म से शारीरिक व मानसिक रूप से पगु बनाना शुरू कर देते हैं। यह क्षति इतनी सूक्ष्म होती है कि इसे हम अपनी *किताबी आंखो से नही* देख पाते *अथवा व्यावसायिकता* का चश्मा चढ़ा होने के कारण इसे नजरअदाज कर देते हैं। इस विक्षिप्तता का प्रभाव हमारे जीवन में, हमारे व्यवहार में और हमारे अनेक सम्बन्धो मे दिखाई देता है। यह विक्षिप्तता हमारी जड़ो मे पहुंच गई है। हमे यह मालूम नहीं होता कि हमारा दुख-दर्द, हमारा द्वन्द्व, हमारी चिन्ता का मूल कारण क्या है?

इसका कारण है हमारे विकास मे असुंतलन होना, हमारे जीवन में सतुलन खो गया है जहा सतुलन खो जाता है वहा जीवन उदास हो जाता है, रुग्ण हो जाता है। इस असतुलन का मुख्य कारण है बुद्धि। हम बच्चो को गणित, विज्ञान, तर्क व बुद्धि ही सिखा रहे हैं जिससे शिक्षा बच्चो के जीवन को पूर्णता नही देती। इसका अर्थ यह नही कि हमे गणित, विज्ञान व तर्क आधारित शिक्षा नही देनी चाहिए। बच्चों को निश्चित ही तर्क में प्रशिक्षित करना है, गणित मे प्रशिक्षित करना है, विज्ञान मे प्रशिक्षित करना है ताकि उनका मस्तिष्क साफ सुथरा हो, प्रतिभाशाली हो, सक्षम हो तथा उनकी प्रतिभा बढे।

बच्चो को पशुओ की भांति नही छोड देना है उन्हें प्रशिक्षित करना है ताकि ये मनुष्य की सारी चालाकी को जाने लेकिन इतना ही किया तो एक असुतलित व्यक्तित्व पैदा होगा। बुद्धि तो प्रखर हो जायेगी मगर हृदय वीणा सूनी रह जायेगी। प्रेम, सत्य, शान्ति, अहिसा, भाईचारा सद्भाव नहीं पनप पायेगा और ऐसा हुआ भी है कि अकेली गणित, विज्ञान व तर्क पर आधारित शिक्षा से पगु, लकवा खाए पैरालाइज्ड बच्चे पैदा हो रहे है। जीवन मे पूर्णत का अभाव है, समग्रता नहीं है जिन्दगी एक लगडी दौ बन गई है। चूकि और लोग भी लगड़े हैं इसलिए पत नही चलता। हमारी शिक्षा ऐसा समाज निर्मित कर रही जो ऐसे वृक्ष की तरह है जिसके पास जड़े नहीं है, ह

बस बाहर और ऊपर की तरफ जा रहे है। भीतर व अदर जाने का कोई उपाय नही, इसलिए जरा-सा हवा का झोका आए तो घबरा जाता है। अगर हमारे पास गहरी पाताल को छूती हुई जडे होती है तो हम जीवन मे आनन्दपूर्वक विकास करते है। एक अर्थ यह बुद्धि के विपरीत है क्यो कि जड़ व तना दोनो की दिशाए विपरीत है, लेकिन एक अर्थ मे जडो के ऊपर ही वृक्ष का सारा फैलाव खड़ा है, विपरीत नही है।

आकाश मे फैलाव दो यानी बुद्धि, तर्क, विज्ञान व गणित आधारित शिक्षा मगर उसके साथ-साथ पाताल मे समाई मजबूत हृदय आधारित प्रेम, आनन्द, शाति व सद्भाव रूपी जडे भी दे। यदि दोनो मे सही सतुलन दे सके क्योकि सतुलन बहुत बड़ी बात है। अगर हम यह सतुलन बना पाए तो सही अर्थो मे एक शिक्षक, माता-पिता का कर्तव्य पूरा करते है। सही अर्थो मे बच्चे को एक नया जन्म देते है वरना बच्चा गणित, विज्ञान व तर्क की एक तरफा शिक्षा से समाज मे पद, प्रतिष्ठा, धन-सम्पदा तो पा जायेगा मगर आनद, शाति व सद्भाव से चूक जाएगा। इसलिए बच्चे का मस्तिष्क भी निखरे, साथ-साथ हृदय मे भी प्रकाश आए। बच्चे का बाहर व भीतर संतुलित विकास हो।

एक सुन्दर कविता के जन्म के साथ-साथ एक सुदर कवि का भी जन्म होता है। जब एक मूर्तिकार मूर्ति को सुन्दर बनाता है तो मूर्ति ही सुन्दर नही बनती, उसके साथ-साथ मूर्तिकार भी सुन्दर बन जाता है क्योकि बिना सतुलित हुए सौन्दर्य को जन्म देना असम्भव है। अगर हम सच्चे अर्थ मे शिक्षक, पिता व समाजसेवक है तो एक सतुलित विद्यार्थी का विकास हमारे समाज की जिन्दगी को बदल देगा क्योकि एक अच्छे सतुलित विद्यार्थी के निर्माण की चेष्टा में हम स्वय बदल जाएगे।

विद्यालय परिवेश

एक व्यक्ति जब अपनी योग्यता के बल पर कोई कार्य करना चाहता है या नई सफलता हासिल करता है, नई नौकरी प्राप्त करता है तो शुरू-शुरू मे उसे अपने कार्यो को कार्यावित करने मे अनेक मुश्किलों का सामना करना पडता है। यह बात सर्वमान्य है और इसमे कोई दो राय नही है। ऐसी मुश्किलो के दौर से अन्वेषक गुजरा जब एक प्राथमिक अध्यापक के रूप मे अपना कार्यभार सभाला। उनकी नियुक्ति एक ऐसे स्कूल मे हुई जिसमे विद्यार्थियो की सख्या 105 और मात्र एक अध्यापक कार्यरत था। यह बात असभव सी लगती है पर वास्तविकता यही थी। राजकीय प्राथमिक पाठशाला एक छोटे से, शिक्षा क्षेत्र मे अत्यन्त पिछड़े गाव मे स्थित है। विद्यालय प्रवेश के दूसरे दिन उनका साथी अध्यापक विद्यालय कार्यो व वोट निर्माण कार्य मे व्यस्त होने के कारण विद्यालय मे सप्ताह भर न आ सका। ऐसे मे मुझे अकेले ही विद्यालय का सचालन करना पडा और मेरा सरकारी विद्यालयों में कार्यकलाप देखने का यह पहला अनुभव था पर फिर भी उन्होने कार्य को अच्छे ढग से करने का प्रयास किया। पहले दिन मै वहा की काफी समस्याओं व अभावो से अवगत हुआ और विचार बनाया कि विद्यालय की इन सभी समस्याओ को पूरा करने का प्रयास करूंगा। मैने जिन समस्याओ और अभावो को देखा वे हैं—

अध्यापक द्वारा समस्या / अभाव की सूची का निमार्ण

- ☐ विद्यालय नियमित समय पर प्रारम्भ न होना।
- ☐ असमय प्रार्थना, विद्यार्थियो का कद के अनुसार लाइनों में खड़े न होना, एक साथ मिलकर प्रार्थना न बोलना, राष्ट्रीय गान से अनभिज्ञ होना।
- ☐ सर्दी के मौसम के बावजूद गर्म कपडे न होना व काफी संख्या मे बच्चो का नगे पाव स्कूल आना।
- ☐ उपस्थिति बहुत कम, रोल नं ज्ञात नही, लडकियों की संख्या कम।
- ☐ उदासी से भरा कैद जैसा वातावरण।
- ☐ दयनीय शिक्षा स्तर।
- ☐ असुन्दर लेख।
- ☐ प्राइवेट विद्यालयो की तरफ बच्चों का झुकाव।
- ☐ शिक्षण साधनो का अभाव।

पहला दिन

पहले दिन बच्चो से उनके नाम, पिता का नाम व कार्य,

परिवार मे सदस्यो की सख्या, ग्रामीण परिवेश व विद्यालय सम्बन्धी गतिविधियों की जानकारी ली व उनसे बडे कोमल व मित्रभाव मे वातचीत की ताकि बच्चों के मन मे कोई भय भावना न रहे व अपनी हरेक बात उत्साह के साथ बताएं। बच्चों से जानकारी लेने के बाद बच्चो को कुछ चुटकुले, हास्य कविताए आदि सुनाकर विद्यालय के प्रति बच्चो का रुझान पैदा किया व प्रेमपूर्वक अपनत्व का भाव दिखाते हुए उन्हे भी कुछ सुनाने के लिए प्रेरित किया। बच्चो मे हिचकिचाहट थी। बच्चो से वातचीत की व बातो-बातो मे उनकी शिक्षा के प्रति लगन व रुझान को भांप लिया।

दोपहर के बाद, बच्चो को खेलने की अनुमति दी और पता चला कि पहले कभी उन्हे ऐसी अनुमति नही मिली। वे काफी समय खेले और खेलने के बाद जब उन्हे कक्षा मे बिठाया तो देखा कि बच्चों के चेहरे पर प्रसन्नता के भाव थे। उनके मासूम चेहरो पर खुशी साफ झलक रही थी। न जाने क्यों उन्होने अपने मन ही मन महसूस किया कि उनके हृदय मे सम्मान व अपार श्रद्धा थी जिसे वे अपने तरीके से व्यक्त कर रहे थे। उस समय इन बच्चो के सहमे-सहमे अनजान भय से उदास चेहरे याद आने लगे तथा उनके भोले-भाले मासूम चेहरों को देखकर उनके मन मे मेरे लिए कुछ कर गुजरने के भाव उत्पन्न हुए। लगा मानो इन बच्चों की शुद्ध आत्मा, प्रतिभा व उनके हृदय मे उत्पन्न नवीन जिज्ञासाए अपने विकास के लिए अथाह सागर की असख्य लहरो की तरह हिलोरे मार रही है। उनके चेहरे के भावो को पढ़कर भगवान से प्रार्थना की कि वह इतनी शक्ति दे कि इन मासूम अधखिले फूलो को शिक्षा रूपी बहार से पूर्णरूप से विकसित कर सके। इन भावो को अपने मन मे समेट कर देखा कि बच्चे कुछ सुनने-सुनाने के जिज्ञासु है इस प्रकार बच्चो के साथ सारा दिन चुटकुलो, कहानियों, कविताओ मे विताया। कविता, कहानी बड़े सरल ढंग से अपनी सरल भाषा में सुनाई जिसे बच्चे आसानी से समझ सके और उनमे भी कुछ कहने का साहस पैदा हो सके। उनका थोड़ा मनोरजन रेखाचित्रों द्वारा भी किया जैसे तीन को उल्टा लिखकर हाथी, जोकर गुडिया, हसता, आम, रोता बैगन, कुल्फी, बिल्ली, गुब्बारा, पतंग इत्यादि से मनोरजन किया व थोड़ा चित्रकला का ज्ञान दिया जिससे बच्चे आश्चर्य व आनन्द से भर गए। वे अपनी स्लेटों, कॉपियो आदि पर बडे उत्साह व खुशीपूर्वक चित्र बना रहे थे। इस प्रकार विद्यालय मे पहला दिन बिताया। उस दिन कुछ ऐसा अनुभव हो रहा था मानो आज से परिवार व स्वय की जिम्मेदारियो से अलग एक और जिम्मेदारी कधों पर आ गई है और वह है समाज के असख्य बच्चों की प्रतिभा के विकास मे योगदान। उस दिन लगा कि उनकी सालो से प्राप्त की गई शिक्षा का उद्देश्य व औचित्य यही है कि वह अपने प्रयासों से उन असख्य प्रतिभाओ का विकास करे जो उन्हे बार-बार पुकारती प्रतीत होती है।

दूसरा दिन

दूसरे दिन मै एक नये उत्साह के साथ स्कूल मे समय पर उपस्थित हुआ। पहले दिन से प्रभावित होकर बच्चे भी सख्या मे कुछ ज्यादा थे व उनमे एक नया उत्साह भी साफ दिखाई दे रहा था। प्रातः प्रार्थना व दैनिक उपस्थिति के पश्चात् पाचवी कक्षा के पाच वडे बच्चो व विद्यालय के चपरासी को भेजकर गांव के तालाब से मिट्टी मंगवाकर उसे अच्छी तरह कुटवाकर उसमे अपने साथ लाये सामान– गुड़, मेथी, पिसे हुए इमली के बीज व सरसो के तेल को निम्न अनुपात मे लिया–

मिट्टी	-	20 किलोग्राम
सरसो का तेल	-	150 ग्राम
गुड	-	1 किलोग्राम
मेथी	-	1 किलोग्राम
सरसो	-	1 किलोग्राम

इमली के 500 ग्राम बीज मिलवाकर उसे भिगो दिया।

विद्यालय के प्रांगण मे काफी रद्दी कागज थे तथा अन्य अखबारी रद्दी को भी मटके मे ठूस कर पानी डाल दिया। बच्चे भी इस कार्य को उत्साह के साथ कर रहे थे। उनके मन मे जानने के लिए यह जिज्ञासा थी कि यह सब क्या हो रहा है। जब तक ये कार्य चल रहा था शेष बच्चो ने रोजाना की तरह सुलेख अपनी तख्ती पर लिखना शुरू कर रखा था।

सभी बच्चों की पहली से पांचवी तक तख्ती का निरीक्षण किया व सूक्ष्म रूप से उनकी गलतियो व सुलेख सम्बन्धी त्रुटियो का अध्ययन किया उसमें प्रत्येक कक्षा के काफी बच्चो को जिनका किसी हद तक अच्छा सुलेख था बहुत अच्छा लिखा। जिससे बच्चों मे उत्साह पैदा हुआ।

यह कार्य भी उनके लिए नवीन था। बच्चो के सुलेख मे काफी सुधार होने लगा था। उनके विचार मे शिक्षा मे अच्छे लेख का होना जरूरी है क्योकि अच्छा सुलेख प्रभावकारी होता है। गन्दी लिखाई अधूरी पढाई है। इन बातों का ध्यान रखते हुए बच्चो को सामूहिक रूप से सुलेख के सूक्ष्म भेदो की जानकारी दी। जैसे अक्षर से अक्षर के बीच व शब्द से शब्द के बीच की जगह, वर्ण की बनावट, कलम का खत, चलाने व पकडने का ढग, बैठने का ढग आदि का व्यावहारिक ज्ञान उन्हे दिया। अध्यापक ने तख्ती पर स्वयं अपने हाथ से ऊपर की लाइन लिखी। नीचे चार लाइने बच्चे लिखते थे। उनके प्रयास व प्रेम ने सुलेख मे अप्रत्याशित सुधार किए। उन्होने बच्चो की काली स्याही मे चीनी मिलवा दी जिससे चमक बढ़ी। रोजाना हेतु लिखने के लिए ट्रेसिग पेपर पर सुलेख साचा बनाकर काम आरभ किया। बच्चो मे आज भी लगन तथा और अधिक सीखने की जिज्ञासा थी। उन्होने अनुभव किया कि यदि प्रेम से इन बच्चो को सिखाया जाए तो यह अच्छी तरह सीख सकते है।

ऐसा लगता था मानो बच्चो मे भी प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा हो गई है। प्रत्येक यह चाहता है कि उसका सुलेख दूसरे से अच्छा या सबसे अच्छा हो। बच्चों की इस तरह की प्रवृत्ति को देखकर तो समझ मे आ रहा था कि वे मासूम प्रतिस्पर्धा शब्द से अभी अनभिज्ञ है। फिर भी वे अपनी खुशी को अपने चेहरो के भावो से प्रकट कर रहे थे। उसके उपरात पुन. थोडा शिक्षण कार्य, हसी-चुटकुलों, कहानी-किस्सों, रेखाचित्रो और खेलकूद से बच्चो का मनोरजन किया। इस प्रकार एक नये उत्साह के साथ विद्यालय मे अध्यापक ने आज भी बच्चो मे अपने प्रति प्रेम देखा।

तीसरा दिन

आज सुबह अन्य दैनिक कार्यो के पश्चात् कल भिगोई मिट्टी को मथकर पहले उसकी जाच की। उसके बाद सभी बच्चो को थोडी-थोडी मिट्टी दे दी और कहा कि बच्चो इस मिट्टी से तुम इच्छा से जो बना सको, बनाओ। आज जो कुछ भी बनाना चाहो आप इसके लिए स्वतंत्र हो। कुछ बच्चे तो तभी बनाने लगे और कुछ देखने व सोचने लगे। हर एक कोई अच्छी चीज बनाकर प्रशंसा का पात्र बनना चाहता था। आधी छुट्टी होने तक बच्चो ने जैसे चूल्हा, चक्की, साप, चिडिया, बैलगाड़ी, हल और ग्रामीण परिवेश से जुडी अनेक वस्तुए आदि अपनी योग्यतानुसार बनाई। छोटे-छोटे हाथो से बने हुए इन खिलौनो मे उनका बचपन झलक रहा था। प्रत्येक कक्षा के बच्चों के ये नमूने अलग-अलग रखवा दिये। बच्चे जैसे भी बनाना चाहें उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इस प्रकार सैंकड़ों की सख्या मे बच्चे खिलौने बनाकर अध्यापक के पास लाए। लडकियों ने तो काफी अच्छे पशु-पक्षी व मानव-आकृतियां बनाई। 10-15 ऐसे नमूने बने जो सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर वास्तव मे कला के उत्कृष्ट नमूने प्रतीत होते थे। उन्हें छाया मे कमरे के अन्दर रखवाकर सूखने दिया। शेष बची मिट्टी को बच्चों से एक इच मोटी परत मे बिछवा कर त्रिभुज, वृत्त, आयत, वर्ग आदि स्लेट, चॉक के डिब्बे व गोल बोतल, डिब्बो आदि की सहायता से कटवा लिए। इन्हे भी सूखने के लिए रख दिया। आज बच्चे पहले, दूसरे दिन से भी अधिक प्रसन्न थे। आज बच्चे स्वय बनाकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे। जैसे कोई चित्रकार, मूर्तिकार, कवि, लेखक अपनी रचना रचकर प्रसन्नता अनुभव करता है। आज का दिन इतनी व्यस्तता से बीता कि पता ही नही चला। हर दिन एक नई आकांक्षा, नवीन इच्छाओं के साथ बड़ी प्रसन्नता के माहौल से गुजर रहा था।

चौथा दिन

आज चौथे दिन भी दैनिक कार्यो से निवृत्त होकर पहले वाले दिन किए गए कार्य को आज के दिन मे शामिल किया। बच्चो ने कल जो नमूने बनाए थे उन पर एक बार फिर कार्य आरम्भ हुआ। बच्चों द्वारा बनाए गए प्रत्येक नमूने के नीचे उनका नाम व कक्षा लिखकर अलग-अलग मेजो पर कक्षानुसार सजा दिया गया। गाव से उपले मंगवाकर हमने त्रिभुज, आयत, वृत्त आदि व अन्य आकृतियों को आग मे पकने हेतु गड्ढे मे आग लगाकर बीच मे रख दिया।

फिर बच्चो द्वारा बनाई गई आकृतियों से ही उन्हे दिखाकर जीव-जन्तु, घर-परिवार, कृषि यन्त्र व कृषि उपकरणो का अध्ययन कराया। यह प्रथम कक्षा के लिए तो बहुत उपयोगी शिक्षण सामग्री बन गई थी। इसके बाद विभिन्न रग जैसे पीला, पीली मिट्टी से या हल्दी से लाल

रंग, लाल स्याही, नीला रंग, काला रंग बच्चो की काली स्याही आदि से बनाए, उनमे ग्लिसरीन व चीनी मिला दी जिसस चमक बढ़ गई। इसके अतिरिक्त बच्चो को कई पेंटिंग सिखाई जो निम्न है–

सब्जियों से पेंटिंग– अध्यापक ने भिण्डी, तोरी, घीया, प्याज, आलू आदि कई सब्जिया ली। इस पेंटिंग मे कोई भी सब्जी ले सकते है। भिण्डी या करेले का बीच से काटकर इस्तेमाल किया जबकि तोरी, आलू आदि पर डिजाइन चाकू से पहले बनायें। उन्हे रंग म डुबोया और सफेद कागज पर मोहर की तरह ठप्पे लगाने गए। जिससे अपने आप अनेक सुन्दर आकृतिया बनने लगीं।

कीप में डालकर रंगोली बनाना– अध्यापक ने तेल डालने की कीप को छत मे रस्सी के सहारे बाध कर लटका दिया। कीप के नीचे एक साफ बड़ा कागज रख दिया। कीप को एकदम सूखे रेत से भरकर कागज के एक सिरे पर ले जाकर छोड दिया। जैसे-जैसे कीप चलती गई उसमें से रेत रिसता गया और अत्यन्त सुन्दर रगोली बन गई।

धागे से पेंटिंग– एक साधारण धागा लेकर रग मे डुबो दिया। फिर एक कागज पर रख दिया तथा कागज को बीच से मोड़कर उसके ऊपर एक कॉपी रख दी। फिर धागे के सिरे पकड कर उन्हे बाहर निकाल दिया। कापी हटाकर देखा कि कागज पर दो सुन्दर डिजाइन बने हुए है। इस तरह कई रंग बदल-बदल कर नये-नये डिजाइन बनाए। एक साथ दो से ज्यादा रगो का इस्तेमाल करके भी कई डिजाइन बनाए।

पांचवा दिन

आज अध्यापक फिर एक नये उत्साह और कार्य करने के उद्देश्य से विद्यालय में उपस्थित हुआ। आज पाचवी कक्षा ली तथा बच्चो को मिट्टी से बनी व आग मे पहले से पकाई गई विभिन्न आकृतियो जैसे— त्रिभुज, वर्ग, आयत तथा वृत्त आदि से क्षेत्रफल के सवालो व रेखागणित का अध्ययन कराया। बच्चो को इन आकृतियो से भिन्न-भिन्न कलाकृतिया व चित्र बनाकर दिखाए और बच्चो को भी बनाने के लिए कहा। इन आकृतियों को एक-दूसरे के दाए-बाए, ऊपर-नीचे रखकर भिन्न-भिन्न चीजो के चित्र बनाकर बच्चो को उनके बारे मे जानकारी दी। त्रिभुज, वर्ग, आयत, वृत्त आदि से अनेक चित्र बनाए। बच्चे सीखने और कुछ नया बनाने मे बडे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। इन बातो से दो बातो की जानकारी हुई— एक तो बच्चो को त्रिभुज, वृत्त, वर्ग आदि क बारे मे जानकारी हुई तो दूसरी तरफ इन्ही का प्रयोग करके उन्होंने अनेक चित्र बनाने भी सीखे। ये सब सिखाकर मैने उनका मनोरजन किया। खासकर चित्रकला का कार्य बच्चो के लिए नवीनता लिए हुए था। इन चित्रो के अतिरिक्त बच्चो को हिन्दी के अक्षर बनाने सिखाए।

बच्चे कला के प्रति काफी जिज्ञासु थे और यह स्वाभाविक भी था क्योंकि कोई कला ऐसी नहीं जो जिज्ञासा उत्पन्न न करे। ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को कोई कला अवश्य दी है पर कोई उसका समुचित विकास करता है और कोई नही। कई तो अवसर की तलाश करते-करते अपनी प्रतिभा को अपने अन्दर ही दफन करके रह जाते है पर बच्चों को यह सब सिखाकर उनको अपनी कला विकसित करने का पूरा अवसर दिया ताकि उनका बहुमुखी विकास हो सके। आज का दिन अधिक व्यस्तता से बीता। बच्चो मे लगन को देखकर अध्यापक प्रसन्न थे। इस प्रकार खुशीपूर्वक आज का दिन भी बीत गया।

छठा दिन

आज अध्यापक का विद्यालय मे छठा दिन था। बच्चो से उनका सम्बन्ध इतना बढ गया कि जैसे वे बहुत समय से वहा अध्यापक हो। वे सभी शिक्षक की राह देखते प्रतीत होते थे। जैसे ही उन्होंने कक्षा मे प्रवेश किया तो बच्चो मे एक नया उत्साह था और उनके मासूम और चिन्तामुक्त चेहरे पर उनके प्रति अपार श्रद्धा व सम्मान था। अध्यापक ने अपना कार्य आरम्भ किया और देखा कि बच्चो के सुलेख, व्यवहार, बोलचाल, व्यवहार, एक-दूसरे के साथ मिलकर कार्य करने की भावना, सहयोग आदि की भावना मे काफी वृद्धि हुई। उनकी आज्ञा वे बडी खुशी से मानते थे व विद्यालय अनुशासन का नमूना बन गया। अध्यापक ने बच्चो की मदद से विद्यालय मे चार्ट भी बनाए जिसमें अखबार व पत्रिकाओ से किसी खिलाडी का चित्र, कहीं से कुत्ता, बिल्ली, चूहा, शेर इत्यादि काटकर उनको चार्ट पर क्रम से चिपकाया। बच्चों को इनके बारे में बताया व उनसे इनके बारे मे अनेक प्रश्न पूछे। बच्चे सभी कार्यो से भिन्न व उत्सुकता पैदा करने वाले इस कार्य को बडी

लग्न से कर रहे थे। अध्यापक जिस लगन से नए कार्य को सिखा रहा था। बच्चो में भी सीखने की पूरी लगन दिखाई दे रही थी। इस प्रकार प्रत्येक दिन उनको और बच्चो को अलविदा कहता जा रहा था।

इस प्रकार वह लगातार बच्चो से घुलमिल कर कभी खेल-खेल मे, कभी कला, सगीत, नृत्य या नाट्य विभिन्न विधाओ के प्रयोग से शिक्षा देने लगा। इसी बीच साथी अध्यापक के अतिरिक्त विद्यालय मे एक और मेहनती एवं नव नियुक्त अध्यापक ने कार्यभार सम्भाला।

प्रदर्शनी व बाल मेला

अध्यापक ने विद्यालय मे मुख्याध्यापक, साथी अध्यापक, बच्चो के अभिभावको तथा ग्राम पचायत के सहयोग से एक प्रदर्शनी व बाल मेले का आयोजन किया जिसमे बच्चो की मिट्टी, रग व कागज अथवा अन्य सामग्री से बनाई गई शिक्षाप्रद कृतिया लगाई गई जिनके ऊपर बच्चो के नाम व कक्षा लिखी हुई थी। इसके अतिरिक्त बच्चो की सुलेख प्रतियोगिता व सास्कृतिक कार्यक्रम भी रखा गया। बहुत से बच्चों ने इन सभी गतिविधियो मे बढ़-चढकर भाग लिया। कबड्डी, खो-खो, सामूहिक दौड का भी आयोजन किया गया। कार्यक्रम के अंत मे सभी प्रतिभशाली व उत्साही छात्रो को पचायत की तरफ से पारितोषिक भी दिया गया। बाल मेले की रिपोर्ट शिक्षा अधिकारी को भेजी गई। जिसकी अत्यन्त सराहना की गई।

समस्याएं

इस दौरान अध्यापक को कुछ समस्याओ का सामना भी करना पड़ा जो निम्न थी—

- ☐ प्रारम्भ मे बच्चों के अभिभावको की तरफ से शिकायतें आई कि बच्चा केवल चित्रकला, मूर्तिकला अथवा सगीत नृत्य के कार्यकलापों मे व्यस्त रहता है। अत· अभिभावक कार्यशैली से पढ़ाई मे नुकसान होने का अदेशा रखते थे।
- ☐ शिक्षा व इसके महत्व से अनभिज्ञ होने के कारण ग्रामवासियो मे सहयोग की कमी होना।
- ☐ किसी भी समस्या को हल करने या कोई नया कार्य शुरू करने के लिए वित्त का अभाव होना।

उपलब्धियां

अध्यापक की लगन परिश्रम व सतत् प्रयास से कुछ उपलब्धिया भी प्राप्त हुई जो निम्न है—

- ☐ बच्चो की कल्पना शक्ति, एकाग्रता व सृजनात्मकता का विकास हुआ।
- ☐ अध्यापक, बच्चों तथा अभिभावको के बीच आपस की दूरी कम हुई व आपसी तालमेल बढ़ा।
- ☐ सामाजिक परिवेश व पर्यावरण की जानकारी हुई।
- ☐ सहयोग, प्रेम, भाईचारा, आनन्द, उत्साह व स्फूर्ति का संचार दिखाई देने लगा।
- ☐ सकोच व झिझक दूर हुई व बच्चो को अभिव्यक्ति के अवसर उपलब्ध हुए।
- ☐ नामांकन बढ़ा।
- ☐ लड़कियो की सख्या में वृद्धि हुई।
- ☐ विद्यालय के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ।
- ☐ बच्चो में पढ़ाई के प्रति ललक व नई-नई बातें जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई।
- ☐ बच्चो मे अध्यापकों के प्रति आदर सत्कार की भावना जागृत हुई।

निष्कर्ष

अध्यापक हमेशा विद्यार्थी रहता है उसमे सीखने-सिखाने की प्रवृत्ति हमेशा बनी रहती है। उपरोक्त कार्यक्रमों से बच्चो के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास हुआ। इसमे कुछ बच्चो ने अध्यापक से सीखा, कुछ अध्यापक ने उनसे सीखा। उन्हें पूर्ण विश्वास है यदि हम बच्चों को ललित कलाओ व खेल के माध्यम से शिक्षा दे और बच्चो की प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक कार्य को मनोवैज्ञानिक रूप से जानने का प्रयास करें तो हमारी शिक्षा प्रत्येक बच्चे के सर्वागीण विकास करने के लिए तथा उसे एक अच्छा नागरिक बनाने मे अच्छे ढग से अपनी भूमिका निभा पायेगी। ☐☐

राजकीय प्राथमिक विद्यालय
खेरे गोंडवाल, तहसील नरवाना
जिला जींद, हरियाणा

प्राथमिक स्तर पर चित्रकथा द्वारा अध्यापन– एक प्रयोग

☐ एम. एस. भारद्वाज

☐ सीमा शुक्ला

☐ मुकेश प्रधान

शिक्षा के प्रसार म मुख्य बाधाओं मे से एक उसका दुरूह एव अरूचिकर होना भी है। सुप्रसिद्ध लेखक थामस आर. ब्लाक के अनुसार इसे एकाकी शिक्षा पद्धति अर्थात् बायें मस्तिष्क के सापेक्ष शिक्षण कह सकते हैं। एक वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार हमारे दायें मस्तिष्क की स्मृति-दक्षता एवं क्षमता बायें मस्तिष्क से कई गुनी अधिक होती है। यहां ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि हमारा दाया मस्तिष्क मूलत. दृष्टि सवेदन पर अवलबित होता है।

अत. अब समय आ गया है कि शिक्षा को दायें मस्तिष्क के भी सापेक्ष बनाया जाए। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए जिले मे प्राथमिक शालाओ मे हिन्दी भाषा के लम्बे एव दुरूह पाठो को कॉमिक्स मे बदलने की योजना बनाई गई है। इस नवाचार के अतर्गत कक्षा 4 की भाषा (बाल भारती) की पुस्तक के तीन पाठो को कॉमिक्स के रूप मे तैयार किया गया है। इस तुलनात्मक अध्ययन हेतु जिले की दस प्राथमिक शालाओ को चयनित कर, इनमे आधे छात्रों को कॉमिक्स रूप में तथा शेष आधे छात्रो को पाठ्यपुस्तक के द्वारा अध्यापन करने का निर्णय लिया गया है।

इस क्षेत्र परीक्षण में शिक्षण कार्य दोनों ही विधाओं के तुलनात्मक स्तर का आंकलन भी समुचित प्रकार से हो सकेगा। इस कॉमिक्स पुस्तक को तैयार करने का आधार पाठ्यपुस्तको मे समाविष्ट पाठों के मूल कथानक के साथ-साथ उन पाठो के अत मे दिए गए प्रश्न भी होगे, ताकि वे शिक्षण की मानक परिभाषा को भी पूर्ण कर सके इस अध्ययन से प्राप्त परिणामो से शासन को भी अवगत कराया जायेगा ताकि इसकी उपयोगिता को और अधिक निर्धारित किया जा सके।

प्राथमिक स्तर पर चित्रकथा द्वारा अध्यापन का प्रयोग श्री भारद्वाज, श्रीमती सीमा शुक्ला और श्री मुकेश प्रधान ने राजीव गांधी प्राथमिक शिक्षा मिशन नामक संस्थान में किया। यह संस्था धार, मध्य प्रदेश में स्थित है। चित्रकथा हमारे देश की एक पुरानी अध्ययन- अध्यापन विधि है। ऐसा देखा गया है कि छात्र चित्रकथा बहुत मन लगाकर पढ़ते हैं। प्रचलित भाषा में चित्रकथा का नाम कॉमिक्स है। इन अध्यापकों ने हिन्दी बाल भारती नामक पुस्तक के पाठों को चित्रकथा में रूपान्तरित किया और इस विधि द्वारा इन पाठों का अध्ययन-अध्यापन संदर्भित कक्षाओं में किया। अध्ययन-अध्यापन विधि की वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाते हुए अन्य प्रचलित विधियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया। प्रचलित वैज्ञानिक, प्रायोगिक और नियंत्रण समूह से कक्षा के छात्रों को दो भागों में बांटा। प्रायोगिक समूह में चित्रकथा के माध्यम से अध्ययन- अध्यापन किया और नियंत्रित कक्षा में प्रचलित अध्ययन- अध्यापन विधि अपनाई। उनके इस तुलनात्मक अध्ययन के परिणाम सराहनीय हैं। इस आलेख में उनके इस कार्य की विस्तृत जानकारी दी गई है।

उद्देश्य

- ☐ शैक्षणिक नवाचार की दृष्टि से धार जिले मे प्राथमि कक्षाओ मे हिन्दी बाल भारती को कॉमिव (चित्रकथा) के माध्यम से अध्यापन कराए जाने लिए एक अध्ययन करना।
- ☐ यह पता लगाना कि क्या चित्रकथा के माध्यम

विद्यार्थी पाठ्य-वस्तु को आसानी से ग्रहण करते है अथवा नही?

- ☐ यह ज्ञात करना कि क्या चित्रकथा के माध्यम से पाठ/अध्याय की निर्धारित विषय-वस्तु को मानको के अनुरूप सम्प्रेषित किया जा सकता है।
- ☐ विद्यार्थियो में चित्रकथा के माध्यम से सीखने की रुचि ज्ञात करना।
- ☐ इस तथ्य को तुलनात्मक रूप से ज्ञात करना कि निर्धारित पाठ्यपुस्तक तथा चित्रकथा मे से कौन-सी पुस्तक अधिक सहजगामी है और कौन-सी बोझिल है?
- ☐ इन तथ्यो का पता लगाना कि क्या चित्रकथाओ के माध्यम से विद्यार्थियो के न्यूनतम अधिगम स्तर को बनाए रखते हुए विषय-वस्तु उस तक सम्प्रेषित की जा सकती है।
- ☐ दक्षताए प्राप्त करने मे चित्रकथा के माध्यम से अध्यापन किस सीमा तक उपयोगी हो सकता है।
- ☐ यह ज्ञात करना कि चित्रकथा के माध्यम से अध्यापन अधिक सरल व बोधगम्य है अथवा पाठ्यपुस्तक के माध्यम से?

लक्ष्य

उपरोक्त वर्णित उद्देश्यो के अनुरूप अध्ययन हेतु निम्नानुसार लक्ष्य निर्धारित किए गए है—

- ☐ उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति हेतु कक्षा 4 की बाल भारती की चयनित कहानियो को चित्रकथा मे रूपान्तरित कर अध्ययन किया जाए।
- ☐ अध्ययन हेतु जिले की नगरीय एव ग्रामीण क्षेत्रो की प्राथमिक शालाओं का समान रूप से चयन किया जाए।
- ☐ अध्ययन हेतु चयनित शालाओ के कक्षा 4 मे अध्यापन करने वाले शिक्षको को चित्रकथा के माध्यम से पढने का प्रशिक्षण देना।
- ☐ चित्रकथा तैयार करने हेतु शिक्षको को समरूप मे चित्रो के निर्धारित आउट लाइन्स तैयार करवाना।
- ☐ कक्षा की बाल भारती से कहानियो के चित्रकथा मे रूपान्तरण हेतु चार कहानियो का चयन करना।
- ☐ अध्ययन हेतु एक और दल तैयार करना।
- ☐ चित्रकथा के माध्यम से अध्यापन के पश्चात् मूल्याकन द्वारा उपलब्धि ज्ञात करना।
- ☐ चित्रकथाओं में पाठ्यपुस्तक के अनुरूप पाठ/अध्याय मे डाले गए नए शब्द / शब्दार्थ को यथावत रखते हुए सवाद तैयार करना।
- ☐ कहानी मे आए नवीन एव कठिन शब्दों का अर्थ मूल कहानी के रूप मे तैयार करना।
- ☐ पाठ्यपुस्तक मे कहानियो के अत मे वर्णित प्रश्नोत्तरी का अर्थ छात्रो के मूल्याकन हेतु चित्रकथा मे उपयोग करना।
- ☐ चित्रकथा के माध्यम से अध्यापन उपयोगी है अथवा नहीं इस पर पाठको एव शिक्षको के विचार ज्ञात करना।
- ☐ शिक्षण को चित्रकथा के माध्यम से मनोरजक व रुचिपूर्ण बनाया जा सके उस अनुरूप चित्रकथा तैयार करना।

अध्ययन का क्षेत्र एवं विस्तार

अध्ययन हेतु धार जिले के विभिन्न विकासखण्डो की 8 प्राथमिक शालाओ का चयन किया गया।

शालाओं के चयन मे इस बात का ध्यान रखा गया है कि कुल चयनित 8 शालाओं मे 4 नगरीय एवं 4 ग्रामीण क्षेत्रो की शालाएं समान रूप से सम्मिलित की जाए। इसी प्रकार प्रबध की दृष्टि से भी यह तथ्य नजर मे रखा गया है कि जिले मे प्रबंधकीय दृष्टि से शिक्षा विभाग एवं आदिम जाति कल्याण विभाग को समान रूप से प्रतिनिधित्व मिल सके। इस दृष्टि से दोनो विभागों की तीन-तीन शालाओं का चयन किया गया। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र में सचालित दो शालाओ का भी चयन किया गया। इस तरह प्रबधन की दृष्टि से शिक्षा विभाग आ जा क. विभाग तथा निजी क्षेत्रों की शालाओ को सम्मिलित किया गया।

चयनित 8 प्राथमिक शालाओ की कक्षा चौथी की

कुल संख्या 310 है जिनमें 169 बालक व 141 बालिकाएं हैं, अध्ययन हेतु इन शालाओं में चयनित विद्यार्थियों को दो समूहों में संख्यानुसार विभाजित करके अध्ययन किया गया है।

अध्ययन हेतु चयनित कहानियां कक्षा चार की हिन्दी पाठ्यपुस्तक बाल भारती की निम्नानुसार तीन कहानियों का चयन किया गया है-

1. [illegible],
2. आँखों का मोल (संकलित),
3. बीमारी के कीटाणु (निबंध)।

उपरोक्त तीन चयनित कथाओं में दो कहानिया तथा एक निबंध था। इनके चयन का आधार मुख्यतः यह रखा गया कि इन्हें आसानी से चित्रकथाओं में बोधगम्य तरीके से परिवर्तित किया जा सके। यह भी ध्यान रखा गया कि इन कहानियों के माध्यम से सहज सम्प्रेषणीयता बनी रहे। चयनित कहानियों का चित्रकथाओं में रूपान्तर दो सहायक शिक्षकों के द्वारा किया गया। चित्रकथाओं में प्रस्तुत संवाद पाठ्यपुस्तक में दर्शित संवाद के रूप में रखे गए। तथा यह ध्यान रखा गया कि उस पाठ में जो नए शब्दों, वाक्यों आदि का प्रयोग हो रहा है तथा जो कठिन शब्द पाठ में आए हैं, वे यथावत चित्रकथा में भी बने रहे।

इस आधार पर तैयार चित्रकथाएं अध्ययन एवं क्षेत्र परीक्षण की दृष्टि से मुद्रित करवाई गई।

अध्ययन विधियां

अध्ययन की विधियो के रूप में निम्नानुसार दो तरह की प्रश्नावलियां विकसित की गई—

इस प्रश्नावली मे उन विन्दुओं से संबंधित प्रश्नो को समाविष्ट किया गया जो शिक्षक व पालक दोनो की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, जिनमें प्रमुखतः चित्रकथा के माध्यम से अध्ययन मे—

- ☐ बालको की रुचि,
- ☐ चित्रकथा द्वारा अध्यापन की व्यावसायिक कठिनाईयां,
- ☐ चित्रकथा की उपयोगिता,
- ☐ चित्रकथा की कमिया एवं संभावित सुधार,
- ☐ चित्रकथा व पाठ्यपुस्तक की तुलनात्मक ग्राह्यता/अधिगमनीयता प्रश्नावली के बालकों की रुचि से संबंधित प्रश्नो पर छात्रो की प्रतिक्रिया प्राप्त की गई।

बालकों से संबंधित शैक्षणिक प्रश्नावली– यह प्रश्नावली विद्यार्थियों से संबंधित प्रश्नावली है, जिसमे चित्रकथा के माध्यम से बच्चों को जो पाठ पढ़ाए गए उन पाठों से बच्चे क्या सीखे। इस बात का मूल्याकन किया जाना तय किया गया। इस दृष्टि से तीन तरह की मूल्यांकन प्रश्नावलिया पृथक तैयार की गई। जिनमें उन पढ़ाए गए पाठो से संबंधित रिक्त स्थानो की पूर्ति, सत्य/असत्य चुनिए, जोड़ी मिलाकर मिलाओ, वाक्यो में प्रयोग, कठिन शब्दो का अर्थ तथा प्रश्नोत्तर का समावेश किया गया। इन प्रश्नावलियों के द्वारा विद्यार्थियो के मूल्याकन का लक्ष्य रखा गया।

शिक्षकों का प्रशिक्षण– चित्रकथा के माध्यम से अध्यापन हेतु चयनित 8 प्राथमिक शालाओं की कक्षा चार में अध्यापन करने वाले शिक्षको को जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान मे प्रशिक्षण दिया गया जिसमें— (1) चित्रकथा के माध्यम से कैसे अध्यापन करना है। (2) कैसे कक्षा को दो समूहो मे विभाजित करना है। (3) कैसे छात्रो की उपलब्धियों का आकलन व मूल्याकन करना है। (4) कैसे पाठकों से प्रश्नावलियां भरवाना है तथा (5) कैसे पाठ्यपुस्तक व चित्रकथा के माध्यम से अध्यापन व उपलब्धियो का तुलनात्मक विवरण तैयार करना है, विषयो को सम्मिलित किया गया।

क्षेत्र परीक्षण हेतु विद्यार्थियों का समूह विभाजन

अध्ययन हेतु कक्षा में प्रदर्शित विद्यार्थियों की संख्या के मान से दो समूहो में विभाजित किया गया। एक समूह को चित्रकथाओं के माध्यम से तथा दूसरे समूह को पाठ्यपुस्तक के माध्यम से अध्यापन कराने का लक्ष्य रखा गया। इस तरह चयनित आठों प्राथमिक शालाओं मे प्रत्येक मे कक्षा चार को दो समूहों में विभाजित किया। समूह विभाजन में कक्षा के विद्यार्थियों की संख्या के नाम से आधा-आधा बांटा गया। एक समूह को निर्धारित दिन में पाठ्यपुस्तक के द्वारा उसी पाठ को पढ़ाया गया जबकि उसी दिन दूसरे समूह को चित्रकथा के माध्यम से उसी पाठ को पढाया गया।

अध्यापन की विश्वसनीयता को बनाए रखने के लिए एक समूह को पढाते वक्त दूसरे समूह को कक्षा के बाहर खेलने भेज दिया ताकि एक समूह के अधिगम पर दूसरे समूह के अध्यापन का प्रभाव न पडे और विश्वसनीय परिणाम प्राप्त किए जा सकें। विभाजित समूहो का विद्यार्थी बार अभिलेख एक पजी मे सधारित किया गया।

तीन अध्ययनकर्ताओ को अध्यापन आरभ करने से पूर्व उन्हे आबंटित पाठशाला मे तीन से चार बार भेजा गया। तदुपरान्त जब अध्ययन कार्य आरभ हुआ तब सतत् मॉनीटरिंग, परिवेक्षण एव मार्गदर्शन हेतु तीनो अध्ययनकर्ताओ को सतत् भ्रमणशील रखा गया तथा अध्यापन के दौरान उन्हे किसी न किसी शाला मे उपस्थित रखा गया। अध्ययनकर्ताओं द्वारा चित्रकथा व पाठ्यपुस्तक के माध्यम से अध्यापन के दौरान किसी न किसी शाला में उपस्थित रहकर एक प्रेक्षक के रूप मे यह अवलोकन किया गया कि विद्यार्थियो की रुचि, भाव-भगिमा तथा विषय-वस्तु की ग्राह्यता किस रूप में प्रदर्शित हो रही है। पाठ्यपुस्तक वाले समूह तथा चित्रकथा से अध्ययन करने वाले समूह दोनो का तुलनात्मक रूप से अवलोकन इसके अध्ययनकर्ताओं द्वारा जारी किया जाता रहा।

चित्रकथा के माध्यम से अध्यापन

चित्रकथाओं के माध्यम से अध्यापन कार्य करवाया गया। अध्यापन के समक्ष कक्षा को जिन दो समूहो मे विभक्त किया गया था, उनमे एक समूह को चित्रकथा से और दूसरे समूह को निर्धारित पाठ्यपुस्तक से एक ही दिन मे एक ही पाठ का अध्ययन करवाया गया। उसमे यह ध्यान रखा गया कि दोनों समूहो को एक साथ अध्यापन करवाया जाए। इस दृष्टि से पूर्ववर्ती कालखण्ड मे चयनित आधे विद्यार्थियो को चित्रकथा के माध्यम से अध्यापन करवाया गया तथा शेष विद्यार्थियों को इस समय कक्षा से बाहर अन्य गतिविधियो जैसे— खेलकूद, अन्य कक्षा मे समूह शिक्षा, देश के राजनैतिक मानचित्र पर शहर पहचानना या ऐसी ही अन्य गतिविधियो मे संलग्न रखते हुए पाठ्यपुस्तको के माध्यम से जाने वाले समूह को अध्यापन कराया गया।

अध्यापन मे यह दृष्टिगत रखा गया कि एक दिन मे दोनो समूहों को एक ही पाठ का अध्यापन करवाया जाए तथा इस हेतु समान रूप से समय का विभाजन भी रखा गया। अध्यापन हेतु समान समय रखते हुए यह भी देखा गया कि समान समय मे समान पाठ्य-वस्तु के अध्यापन मे चित्रकथा तथा पाठ्यपुस्तक दोनो मे से किसे जल्दी व आसानी से उपयुक्त ढग से सप्रेषित किया जा सकता है। इस आधार पर औसत एक पाठ के अध्ययन-अध्यापन मे कुल 13 कालखण्ड दिए गए।

अध्यापन में कठिन शब्द व शब्दार्थ

चित्रकथा एव पाठ्यपुस्तक दोनो के अध्यापन मे समान रूप से एक जैसे कठिन शब्दो के अर्थ उनके वाक्यो मे प्रयोग, पर्यायवाची शब्द, शब्द युग्म बनाना व कठिन शब्दों को वार-बार लिखवाने का कार्य साथ ही साथ किया गया।

अन्य शैक्षणिक गतिविधियां– पाठ्यपुस्तक एव चित्रकथा के समूहो से समान रूप से मौखिक प्रश्न पूछे गए तथा बच्चो को समान रूप से चित्रकथा/ पाठ्यपुस्तक से वाक्यो का वाचन एव इतना ही नही शुद्ध लेखन भी समान रूप से करवाया गया। शब्द कार्डो का मिलान करवाना व क्रम से जमाना आदि गतिविधियां करवाई गई। इस तरह अध्यापन के साथ-साथ चित्रकथा के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन का क्षेत्र परीक्षण किया गया।

प्रश्नावलियों का विश्लेषण

अध्ययन हेतु निर्मित प्रश्नावलियो पर लगभग 57 पालको तथा सभी पाठशालाओ के शिक्षको से प्रतिक्रियाएं प्राप्त की गई। प्रश्नावली के बालको से सबधित प्रश्नो पर छात्रो की प्रतिक्रियाए भी प्राप्त की गई जिससे उनकी अभिरुचि भी ज्ञात की जा सके। इसके अतिरिक्त गाव के अन्य लोगो से सपर्क किया तथा शालाओं में अध्ययन कार्य के दौरान स्वय उपस्थित रहकर अवलोकन द्वारा अनुभव प्राप्त किए गए।

इस प्रकार प्रतिक्रियाएं व विश्लेषण कर निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया।

चित्रकथा पालक की दृष्टि में– 80.81 प्रतिशत पालकों के अनुसार

- ☐ बच्चों में चित्रों, रंगों के प्रति सहज रुझान होता है। अतः वे चित्रकथा के द्वारा ही पढ़ना पसंद करते है।
- ☐ बच्चों को सुनी व पढ़ी चीजों की अपेक्षा देखी हुई चीजें अधिक जल्दी याद हो जाती है और उन्हें संबंधित प्रश्न रटने नहीं पड़ते। अतः चित्रकथा द्वारा अध्यापन उनकी रटने की प्रवृत्ति को कम करता है व ज्ञान पक्का होता है।
- ☐ चित्रकथा बालकों मे चित्रकथा के प्रति स्वाभाविक रुचि जागृत करती है और बच्चे पढने के साथ-साथ उसके चित्र बनाने का भी प्रयास करते हैं।

61.36 प्रतिशत पालकों के अनुसार

- ☐ हिन्दी की पूरी पाठ्यपुस्तक चित्रकथा के रूप में विकसित की जानी चाहिए, अन्य कठिन विषय जैसे गणित, विज्ञान आदि को भी चित्रकथा के रूप मे विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। ताकि बच्चे इन विषयो को आसानी से सीख सके व भय को दूर करके बच्चो में इन विषयों के प्रति रुचि जागृत की जा सकें।
- ☐ चित्रकथा को यदि और आकर्षक बनाया जा सके तो यह छोटी कक्षाओ के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी।

79.31 प्रतिशत पालकों के अनुसार

- ☐ पाठ्यपुस्तक के पाठ लम्बे व नीरस होते हैं, जबकि चित्रकथा रोचक व आकर्षक होते हैं। इस कारण चित्रकथा से ही आसानी से ग्रहण करते है।

वहीं इसके विपरीत लगभग 19 प्रतिशत पालकों के अनुसार

- ☐ ग्रामीण इलाकों के बच्चो के लिए चित्रकथा बिल्कुल नई है, इस कारण उन्हे समझने मे कठिनाई होती है।
- ☐ चित्रकथाए बच्चो के मानसिक विकास को बाधित करती हैं क्योकि मानसिक विकास के लिए सोचना आवश्यक है और चित्रकथाओ में हर चीज स्पष्ट होने के कारण वे उन्हें सोचने के अवसर प्रदान नही करती हैं।

20-22 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार

- ☐ चित्रकथाओं को पढाना एक कला है। इसके लिए पहले स्वय चित्रो के भाव समझने पड़ते है और यह आवश्यक नही है कि सभी पालक चित्रों के भाव समझ सके।
- ☐ चित्रकथाओं को बच्चा सिर्फ एक या दो बार पढेगा। फिर वह चित्र देखकर ही अन्दाजा लगा लेगा कि यह चित्र सवाद से सबधित है। साथ ही चित्रकथा मे चित्र अधिक सवाद कम है अतः बच्चे पढ़ने मे कमजोर रह जाएगे।

12-13 प्रतिशत पालकों के अनुसार

- ☐ चित्रो वाली पुस्तके पढने से अन्य पुस्तकें जिनमे चित्र नही हैं उन्हें समझने में परेशानी होगी।
- ☐ चित्रकथाओ को बच्चे शिक्षक की सहायता के बिना भी समझ सकते है अत छात्रों व शिक्षको के संबध कमजोर होगे।
- ☐ लगभग 36-38 प्रतिशत पालकों के अनुसार चित्र कथाए भाषा शिक्षण के उद्देश्यों को पूर्ण नहीं करती— अन्य विषयों को चित्रकथाओ के माध्यम से नही पढ़ाया जा सकता।

10 प्रतिशत पालकों के अनुसार

- ☐ पाठ्यपुस्तक में कम से कम एक बार पढना अनिवार्य है।
- ☐ बच्चा पाठ्यपुस्तक से आसानी से ग्रहण करेगा।
- ☐ बच्चा पाठ्यपुस्तक से पढने मे एक बार मे समझ लेता है जबकि चित्रकथा से पढ़ने में अधिक समय लगता है। अत बच्चे चित्रकथा पढ़ने में परेशानी का अनुभव करते है।

6.89 प्रतिशत पालकों के अनुसार

- ☐ यदि बच्चा पढने मे सक्षम है और शिक्षक योग्य है तो दोनो पुस्तके उपयोगी है अन्यथा कोई नहीं।

चित्रकथा शिक्षकों की दृष्टि में

पक्ष

लगभग 71 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार

- ☐ विद्यार्थी चित्रो के प्रति आकर्षित होते है तथा चित्रो द्वारा किसी भी बालक को आसानी से समझाया जा सकता है, इस कारण बच्चे चित्रकथा द्वारा पढना

ज्यादा पसद करते है।

- ☐ विधि सरल होने के कारण शिक्षक को कोई कठिनाई नही आती।
- ☐ विद्यार्थी स्वय ही चित्र देखकर पढ़ने का प्रयास करते हैं। अत' जो बच्चे ठीक से पढ नही पाते वे भी पाठ्य-वस्तु को चित्रों के माध्यम से सुगमता से समझ लेते है।
- ☐ पूरी पुस्तक को ही चित्रकथा मे परिवर्तित कर दिया जाए।

लगभग 85 प्रतिशक शिक्षकों के अनुसार

- ☐ इस प्रविधि द्वारा अन्य विषय विशेषकर विज्ञान, सामाजिक विज्ञान व भूगोल भी पढाए जा सकते है।
- ☐ चूंकि बच्चे आखो देखी चीजे अधिक जल्दी याद कर लेते है। अत' चित्रकथा को आसानी से समझ लेते है

लगभग 28 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार

- ☐ चित्रकथा भाषा शिक्षण के उद्देश्यो को पूर्ण करती है, क्योकि बच्चे एक बार में पाठ्य-वस्तु को अच्छी तरह समझ लेते है व सबधित प्रश्नो के उत्तर भी बिना रटे दे पाते है।

विपक्ष

लगभग 28 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार

- ☐ चित्रकथा मे चित्र व अक्षर छोटे होते है व उन्हे पढ़ने मे अधिक समय लगता है। अत' बच्चे पाठ्यपुस्तक से पढना अधिक पसद करते है।
- ☐ बच्चे व्याकरण मे कमजोर रह जाते हैं।

लगभग 71 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार

- ☐ चित्रकथाए भाषा शिक्षण के उद्देश्य को पूर्ण नही करती है, इसके लिए गीत, कहानी, कविता या खेलो द्वारा उद्देश्य पूर्ति के प्रयास किए जाने चाहिए।
- ☐ भाषा ज्ञान के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी को पढने के लिए अधिक सामग्री व अवसर मिले जबकि चित्रकथा मे चित्र अधिक होते है और शब्द कम।

14 प्रतिशत शिक्षकों के अनुसार

- ☐ दोनो ही पुस्तको को सरल अथवा कठिन होना पूरी तरह शिक्षक की योग्यता पर निर्भर करता है।

चित्रकथा विद्यार्थियों की दृष्टि में

अध्ययन हेतु चयनित सभी आठो शालाओं मे से मात्र एक शाला (प्रा.वि.क्र. 10 धार) से सभी विद्यार्थियो ने चित्रकथा के प्रति अरुचि प्रदर्शित की जिसके मुख्यत दो कारण स्पष्ट हुए।

- ☐ शिक्षको की स्वय की अरुचि।
- ☐ चित्रकथा मे चित्रों व अक्षरों की अस्पष्टता।

शेष सातो शालाओ मे छात्रो ने चित्रकथा को पसद किया तथा अन्य विषयो को भी चित्रकथा द्वारा पढने की इच्छा व्यक्त की तथा वे छात्र जिन्हें पाठ्यपुस्तक द्वारा अध्ययन करवाया जा रहा था उन्होंने भी चित्रकथा द्वारा अध्ययन करने की इच्छा व्यक्त की।

निष्कर्ष/समग्र परिणाम

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट है कि लगभग 71.41 प्रतिशत पालको, 83.02 प्रतिशत शिक्षको व बालको द्वारा चित्रकथा को सराहा गया है व जिन शिक्षको या पालकों ने चित्रकथा का विरोध करते हुए जो तर्क दिए गए है उनमे से अधिकाश को पूरी तरह दूर किया जा सकता है।

साथ ही हर सिक्के के दो पहलू होते हैं, चित्रकथा द्वारा अध्यापन में भी कुछ लाभ के साथ दोष हो सकते है, किन्तु इन दोषो की संख्या काफी कम है और उन्हे कुछ हद तक दूर किया जाना सभव है।

अतः यदि चित्रकथा मे वाछित सुधार कर दिया जाए तो यह शिक्षा को बच्चो की रुचि के अनुसार बनाने की दिशा मे एक सफल प्रयास सिद्ध हो सकता है। ❑❑

राजीव गांधी प्राथमिक शिक्षा मिशन
धार, मध्य प्रदेश

अधिक संख्या वाली कक्षा के संचालन की समस्या का अध्ययन एवं समाधान

❒ उषा उपाध्याय

शिक्षिका ने लगातार प्रयास से यह कार्य बहुत [illegible] भूमिका निभाया है। उन्होंने गृह कार्य को इस तरह बनाया कि छात्र भी इसमें भाग ले सके तथा वह स्वेच्छा से पढ़ें तथा अपने आप से गलतियों को पहचानें तथा उनको सुधारने का प्रयत्न करें।

कक्षा में छात्राओं की संख्या अधिक होने से अध्यापिका के लिए अकेले सारा कार्य करना कठिन हो गया था। इसलिए उन्होंने सारी पहले बालिकाओं को 60 की संख्या के समूह में 8 भागों में बाटा तथा प्रत्येक भाग में बारी-बारी से सभी को समूह का प्रतिनिधि बनाया। प्रतिनिधि के रूप में उस छात्रा को पहले अपनी कॉपी की अध्यापिका से जांच करानी होती और उसमे सुधार करके भाग की अन्य बालिकाओं को एकत्र करके उनको जाचने का कार्य उस प्रतिनिधि का होता।

इसमे अध्यापिका का कार्य भी आसान हो गया और छात्रा को शिक्षिका के रूप मे कार्य करने का अवसर मिला तथा उन्हे उस पाठ या कार्य की अच्छी तरह समझ हुई तथा वे अपनी तथा अपने और दोस्तो की गलतियो को अपने आप से पहचान सकी जिससे उनमे आत्मविश्वास बढा।

गृह-कार्य को कराने के लिए अध्यापिका ने ऐसी विषय-वस्तु का चयन किया जिससे पर्याप्त प्रोत्साहन के साथ-साथ विषय-वस्तु की पुनरावृत्ति भी हो सके।

इस तरह अध्यापिका ने जो भी कार्य कराया उसमे छात्रों को सम्मिलित किया तथा इस प्रकार कराया कि वह बाल केन्द्रित हो तथा छात्र स्वेच्छा से सीखें। इस प्रकार अध्यापिका के अनुसार विद्यालय मे विभिन्न गतिविधियो को कराने से शिक्षकों का भार भी कम होगा [illegible] में आत्मज्ञान होगा।

समस्या का चयन

विद्यार्थी शिक्षण पढ़ने में अच्छा हो, इसके लिए आवश्यक है कि वह स्वेच्छा से सीखे-पढ़े और स्वेच्छा से सीखने, पढ़ने के लिए आवश्यक है—

श्रीमती उषा उपाध्याय मध्य प्रदेश के एक विद्यालय में शिक्षिका के रूप में अध्यापन का कार्य बहुत ही कुशलतापूर्वक कर रही हैं। शिक्षिका ने प्रस्तुत लेख में अधिक संख्या वाली कक्षा के निरीक्षण की समस्या का अध्ययन एवं समाधान तथा उसके आधार पर विकसित की जा सकने वाली न्यूनतम अधिगम स्तर की दक्षताओं की पहचान के लिये अपने विद्यालय में किए गए प्रयोगों का प्रस्तुतीकरण किया है। प्रस्तुत लेख में शिक्षिका ने मनोविज्ञान की ओर अपनी विशेष रुचि दिखाई है और यह प्रयत्न किया है कि जो भी इस लेख को पढ़े वह भी छात्र के मनोविज्ञान को समझें और उसको ध्यान में रखकर ही अध्ययन-अध्यापन का कार्य करें। उनके अनुसार विद्यालयों में, विद्यालय कार्य को सुचारू रूप से चलाने वाले अध्यापकों, प्रधानाचार्यो तथा अन्य अध्ययन कार्य में सम्मिलित लोगों को चाहिए कि वे अध्ययन कार्य इस तरह से करवाएँ कि विद्यार्थी स्वेच्छा से करें। अध्ययन- अध्यापन कार्य करते समय शिक्षकों को चाहिए कि वह छात्रों को आत्मिक व्यवस्था तथा उनकी रुचि को ध्यान में रखें जिससे छात्र अध्ययन- अध्यापन कार्य का आनंद उठा सकें।

- उसे जो सिखाया जा रहा है, वह उसके लिए बोधगम्य तथा रोचक हो, और
- उसकी आत्मिक शक्तिया उपयुक्त अवस्था मे हो।

विद्यार्थी को जो सिखाया पढाया जा रहा है, वह उसके लिए बोधगम्य और रोचक तभी होगा जब उसे ऐसी बाते न बताए जिन्हे वह समझ नही सकता और उसे वह न बताए जो वह अध्यापक रो भी बेहतर जानता हो। आमतौर पर वर्तमान परिवेश मे विद्यार्थियो को हर तरह की परिभाषाओ, वर्गीकरणो और सामान्य नियमो से जूझना होता है। सभी पाठ्यपुस्तके सूत्रो, परिभाषाओ, कोटियो और नियमों से भरी होती है। शिक्षको की मजबूरी होती है कि वे विद्यार्थियो को ज्यादा पढने तथा पढे हुए को समझने और अपने दिमाग से ज्यादा लिखने को बाध्य करे। उसने जो कुछ लिखा है उसे जाचे, सही करे और उसकी प्रगति की जानकारी से उसके पालक को परिचित कराए। शिक्षक के लिए जो सबसे आसान विधि होती है वह है गृह-कार्य देना। इससे पालक को पता चल जाता है कि शाला मे क्या कुछ कराया जा रहा है। गृह-कार्य से एक लाभ यह भी होता है कि जो बात बालक के दिमाग मे कक्षाजन्य परिस्थितियो मे स्पष्ट नही हुई है वह उसी विषय-वस्तु से जुडे गृह-कार्य करने पर सरलता से स्पष्ट एव बोधगम्य हो जाती है।

अब बात उठती है दूसरे बिन्दू की, जिसमे विद्यार्थी की आत्मिक शक्तियां उपयुक्त अवस्था मे हो इसके लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी जहा पढ रहा है वहा उसके लिए नये, अनजान विषय और लोग न हो। वह अपने अध्यापक या अध्यापिका से शरमाये नही। उसे यह भी डर न हो कि उसे गृह-कार्य मे प्रदान किए गए कार्य को न कर पाने की स्थिति मे सजा मिलेगी या उसका उपहास किया जायेगा। गृह-कार्य देते समय अन्य विषयो के लिए दिए गए गृह-कार्य का भी ध्यान रखा जाये जिससे बालक का दिमाग थके नही। हालाकि शिक्षक के लिए यह पता लगाना बडा कठिन है कि कितनी उम्र मे कितने घण्टे के अध्ययन के बाद विद्यार्थी का दिमाग थक जाता है। लेकिन कुशल अध्यापक अगर ध्यान से देखेगा तो उसे थकावट के लक्षण दिखाई दे सकते है। कहने का तात्पर्य यह है कि गृह-कार्य और विद्यार्थी की क्षमता के बीच सतुलन होना अत्यत आवश्यक है अर्थात् गृह-कार्य न बहुत ज्यादा हो और न ही बहुत कम, न ही कठिन हो और न ही आसान। गृह-कार्य विद्यार्थी को ऐसा देना होगा जिससे हर पाठ उसे पढ़ाई मे आगे की ओर बढाया हुआ कदम जैसा लगे। गृह-कार्य के लिए विद्यार्थी जितना स्वाध्याय करेगा जितने सवाल के जवाबो को हल करेगा उतना ही सीखना उसके लिए आसान होगा।

उपर्युक्त बिन्दुओ से गृह-कार्य की महत्ता प्रदर्शित होती है। लेकिन उसकी सार्थकता तभी मानी जाएगी जब दिए गए गृह-कार्य को सही ढग से जाचा एव परखा जाएगा। आमतौर पर शहरी विद्यालयो की यह समस्या होती है कि एक-एक कक्षा मे 50 से अधिक बच्चो को प्रवेश दे दिया जाता है जिससे शिक्षक या शिक्षिका प्रत्येक बालक की शैक्षिक प्रगति का ध्यान व्यक्तिगत रूप से रख पाने मे असमर्थ होती है। विशेषकर शहरी क्षेत्रो मे स्वयसेवी सस्थाओ द्वारा संचालित शालाओं मे यह समस्या अधिक पाई जाती है क्योकि सचालक शाला के संचालन मे कम से कम व्यय करने का प्रयत्न करते है। इसलिए इन विद्यालयो की शिक्षक-शिक्षिकाओ को अन्य शासकीय विद्यालयो की तुलना में अधिक श्रम करना होता है। जिसमे गृह-कार्य को अधिक विश्वसनीय ढग से जाचने या परखने की समस्या भी होती है। एक ओर पीरियड का बोझ तो दूसरी ओर गृह-कार्य को व्यवस्थित जाचने का। इसलिए कई बार अतिरिक्त कार्यों के कारण उन्हे गृह-कार्य की कापिया अपने घर पर ले जाकर भी जाचनी पडती है। विशेषकर यह समस्या महिला शिक्षिकाओं के साथ अधिक होती है जबकि उन पर घर के कार्यो का अतिरिक्त दबाव सदैव बना रहता है। ऐसी परिस्थिति मे उनके लिए यह सम्भव नही होता कि वे कक्षा के सभी बालको के गृह-कार्य को जाच सके। इधर शाला में भी उनको वड़ी मुश्किल से एकाध पीरियड ही खाली मिल पाता है। अतः क्रियानुसधान के लिए जो विषय चुना गया है उसे निम्नानुसार परिभाषित किया गया।

नवाचार का शीर्षक

[illegible] वाली कक्षा मे गृह कार्य के निरीक्षण की समस्या का अध्ययन एव समाधान तथा उसके आधार पर निर्धारित की जा सकने वाली न्यूनतम अधिगम स्तर की दक्षताओं की पहचान।

नवाचार का उद्देश्य

- ☐ बालकों को स्वमूल्यांकन के लिए प्रेरित करना।
- ☐ बालको को दिए जाने वाले गृह-कार्य परीक्षण मे सहयोग प्राप्त करना।
- ☐ बालकों को एक-दूसरे को समझने का अवसर प्रदान करना।
- ☐ बालकों को उन कारणों को समझने में आत्मनिर्भर बनाना जिससे वे महसूस कर सके कि उनके अन्य साथियों को उनसे नम्बर अधिक क्यो मिलते है।
- ☐ शिक्षक प्रभावी तरीके से प्रत्येक छात्र के गृह-कार्यो का निरीक्षण कर सके।
- ☐ निदानात्मक व उपचारात्मक शिक्षण का आयोजन योजनाबद्ध तरीके से करने मे समर्थ हो सके।
- ☐ बड़ी कक्षा को दिए जाने वाले गृह-कार्य के निरीक्षण के बोझ को कम करना।

प्रयोग पद्धति की रूपरेखा तैयार करने तथा उसके परीक्षण के प्रति दृष्टिकोण

- ☐ प्रयोग हेतु कक्षा 3 की बालिकाओ को चुना गया।
- ☐ इस कक्षा की दर्ज सख्या 48 बालिकाओं की रही।
- ☐ गृह-कार्य को सिर्फ हिन्दी विषय तक सीमित किया गया।
- ☐ प्राथमिक तौर पर कक्षा की छात्राओ को 6-6 बालिकाओ के आठ समूहो मे विभाजित किया गया।
- ☐ प्रत्येक ग्रुप में से एक बालिका को ग्रुप का प्रतिनिधि इस प्रकार बनाया गया कि सप्ताह के छ· दिनों मे ग्रुप की प्रत्येक बालिका को प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करने का अवसर मिल सके।
- ☐ बालिकाओ को स्पष्ट निर्देश प्रदान किए गए कि प्रतिदिन के लिए निर्धारित बालिका उसके गृह-कार्य की कॉपी जाचने के लिए शिक्षिका को देगी तथा वह शेष ग्रुप की बालिकाओ की कॉपिया एकत्रित करके अपने पास रखेगी।
- ☐ शिक्षिका द्वारा उसकी कॉपी जाचने के पश्चात् वह उसकी स्वय की गलतियों को सुधारेगी। तत्पश्चात् अन्य बालिकाओ की कॉपी वह शिक्षिका द्वारा जाची गई कॉपी के आधार पर जाचेगी। जाचने मे आने वाली समस्या के लिए शिक्षिका से समय-समय पर मार्गदर्शन भी लेगी।
- ☐ जांची गई कॉपी को अपने ग्रुप की बालिकाओ को वापस वितरित करना।
- ☐ शिक्षिका के पास आने वाली गृह-कार्य की कॉपियों मे किए गए पिछले गृह-कार्य एव छात्राओ द्वारा किए गए मूल्यांकन का सरसरी तौर पर निरीक्षण।

गृह-कार्य के लिए विषय-वस्तु का चयन–जैसा विदित है कि प्रस्तुत नवाचार में गृह-कार्य द्वारा शिक्षण प्रक्रिया को अधिक महत्वपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है। इसलिए यह आवश्यक है कि विषय-वस्तु का चुनाव उपयुक्त हो जिससे शिक्षण को पर्याप्त फीडबैक मिलने के साथ-साथ विषय-वस्तु की पुनरावृत्ति भी हो सके। अत विषय-वस्तु के चुनाव के लिए एन.सी.ई.आर.टी द्वारा कक्षा 3 हेतु न्यूनतम अधिगम स्तर पर आधारित शिक्षक मार्गदर्शिका को मानक रूप में माना गया तथा उस पुस्तिका को स्थानीय डाइट के सहयोग से प्राप्त किया गया। उक्त पुस्तक में हिंदी से सबधित क्रियाकलापों एव मूल्यांकन को गृह-कार्य के लिए उपयुक्त मानकर चुना गया। अधिकाश प्रश्नो का चुनाव भी उक्त पुस्तिका से ही किया गया। चयनित प्रत्येक दक्षता एव उपदक्षता पाठ्यक्रम के निश्चित उद्देश्य तथा अपेक्षित अधिगम प्रतिफल का प्रतिनिधित्व करती है। इन अपेक्षित अधिगम प्रतिफलों को ध्यान मे रखकर उपर्युक्त प्रभावी, मनोरंजन शिक्षण एव अधिगम कार्य विधि अपनाई गई है ताकि बालिकाएं व्यक्तिगत सामूहिक रूप से प्रेक्षण, अन्वेषण, विश्लेषण, व्याख्या, स्वमूल्यांकन करने में समर्थ हो सकेगी।

क्रियात्मक परिकल्पना

- ☐ बालक/बालिकाओ को एक-दूसरे की गलतियो को निकालने में आनन्द का अनुभव होता है।
- ☐ बालिकाए शिक्षकीय कार्य को करने में गर्व महसूस करती है।

- किसी दक्षता को प्राप्त करने मे उसके अन्तर्गत की गई क्रियाए महत्वपूर्ण होती है।
- दक्षताओ का पूरी तरह से विकास होने पर ही कहा जा सकेगा कि बालिकाओ ने न्यूनतम अधिगम स्तर प्राप्त कर लिया हैं।

गृह-कार्य का उचित मूल्यांकन–प्रत्येक बालिका ने क्या-क्या और कितना सीखा है इसकी जांच का अवसर शिक्षिका सहित प्रत्येक बालिका को भी मिलने के अवसर प्राप्त होगे। मूल्याकन से शिक्षिका उपचारात्मक एव निदानात्मक शिक्षण व्यवस्था करने मे समर्थ हो सकेगी।

विषय का प्रभावकारी एवं महत्वपूर्ण प्रदर्शन तथा निर्माण

- विषय-वस्तु पर आधारित कुल 8 चयनित दक्षताओं का विकास किया गया।
- गृह-कार्य की प्रक्रिया से ही कुल 7 दक्षताओ का बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के विकास सम्भव हो सका।
- सम्पादित प्रयोग के दौरान कुल 15 दक्षताओ का विकास हो सका।
- उपर्युक्त दक्षताओ के विकास मे गृह-कार्य सहायक सिद्ध हो गया।

आंकड़ों का संकलन, अवलोकन और प्रक्रियन

प्रयोग अवधि : 1 नवम्बर, 1995 से 31 दिसम्बर, 1995
कक्षा : तीसरी
बालिकाओं की सख्या : 48
तैयार किए गए ग्रुपो की सख्या : 8
प्रत्येक ग्रुप में बालिकाओ की संख्या : 6
प्रदत्त गृह-कार्यो की सख्या : 15
गृह-कार्य देने हेतु विषय-वस्तु : न्यूनतम अधिगम स्तर पर आधारित दक्षताओ से चयनित
गृह-कार्य हेतु चयनित दक्षताए (परिशिष्ट मे उल्लेखित है) : 3.3.1, 3 3.2, 4.3.1, 4.3.3, 5 3 1, 6.3.1, 7.3.1, 9.3.1
गृह-कार्य के लिए चयनित प्रश्न : शिक्षक मार्गदर्शिका कक्षा-3 (एन सी ई.आर.टी)

सारणी

		अधिगम पूर्ति के शीर्ष बिन्दु		
		अवलोकन	**प्रक्रियन**	**विषय-वस्तु**
1	दक्षता	3.3 1	3.3 1	3 3 2
	क्रमाक	3 3.2	3 3.2	3.3.2
		4.3.2	4.3.3	4.3 3
		5.3 1	5.3.1	5.3 1
		—	6.3.1	6 3.1
		7 3 1	7.3 1	7 3 1
		6.3.1	6.3.1	6.3 1
		9 3 1	9 3.1	9 3 1

प्रक्रिया के दौरान विकसित दक्षताए 1 3 3, 2 3 1, 2 3 3, 2.3 4, 4 3 2, 5 3.2, 8.3.2।

परिणाम और उपलब्धियां

- ☐ [illegible] के बीच गृह कार्य प्रदान करने [illegible] गृह कार्य [illegible] करने मे समर्थ रही।
- ☐ गृह कार्यों का निरीक्षण प्रत्येक बालिका द्वारा किया जाना मूल्याकन का [illegible] रूप है जिसमे बालिकाओ का पास फेल होना मुख्य प्रयोजन नहीं है बल्कि गतिविधि मे भाग लेने को महत्वपूर्ण बनाया गया है।
- ☐ इस प्रकार के मूल्याकन से बालिकाओं के मन से चिन्ता, घबराहट आदि को दूर किया है।
- ☐ प्रत्येक बालिका द्वारा जाचने के दौरान एक-एक प्रश्न को 5-6 बार ध्यान से पढ़े जाने के कारण विषय-वस्तु अधिक हृदयगम्य हुई।
- ☐ प्रत्येक बालिका ने उसके द्वारा किए जाने वाले गृह-कार्य को अधिक सावधानी से सम्पादित किया क्योंकि वह अपनी साथी बालिका से कमजोर नहीं दिखना चाहती थी।
- ☐ शिक्षिका को गृह-कार्य के जाचने के बोझ से मुक्ति प्राप्त हो सकी।
- ☐ गृह-कार्य जाचने की प्रक्रिया बाल केन्द्रित गतिविधियो के अनुरूप होने से अन्त तक बालिकाओ के लिए रुचिकर एवं उत्साहवर्धक रही।
- ☐ शिक्षिका गृह-कार्य मे आने वाली कठिनाइयों की ठीक प्रकार से पहचान करने योग्य बन सकी।
- ☐ बालिकाए अपनी सहपाठियो की तुलना मे स्वय की स्थिति को स्वतत्रतापूर्वक आक सकी।
- ☐ शिक्षिका स्वय भी बालिकाओ की क्षमताए एवं उपलब्धि के आकलन मे समर्थ रही।
- ☐ उक्त गतिविधि ने कुछ दक्षताओ का विकास बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के सम्भव कर दिखाया।

आधार सामग्री दस्तावेज/ टेस्ट का प्रयोग–आधार सामग्री [illegible] मे प्रयोग के दौरान बालिकाओ द्वारा स्वय की गृह कार्य की कॉपियो का उपयोग किया गया। चूंकि इनका उपयोग बालिकाओं के द्वारा आगामी परीक्षा के दौरान किया जाना था अतः इन्हें आलेख के साथ सलग्न करना सम्भव नहीं था। परीक्षा उपरान्त इन कॉपियों को भविष्य मे प्रदर्शित करने हेतु सुरक्षित रखा जा सकेगा।

पद्धति या प्रयोग के शैक्षिक प्रयोजन–प्रयोग के लिए जिस पद्धति का उपयोग किया गया वह बाल केन्द्रित होने के साथ-साथ स्वत एव सतत् समग्र मूल्याकन को प्रदर्शित करती है। शैक्षिक प्रयोजन मे आज जिसकी नितात आवश्यकता है।

प्राप्त परिणामों की परियोज्यता

- ☐ प्राप्त परिणाम उन समस्त शालाओ तथा शिक्षकों के लिए उपयोगी है जिनकी कक्षाओ में दर्ज छात्र सख्याओ का दबाव अधिक है।
- ☐ परिणाम स्वतः द्वारा सपादित एव सतत्, समग्र मूल्याकन के परिप्रेक्ष्य अधिक प्रभावी हैं। जिनका विकास वर्तमान सदर्भ मे बस्ते का बोझ कम करने के लिए उपयोगी है।
- ☐ प्रस्तुत प्रयोग, बालिकाओ की सहभागिता में वृद्धि के कारण बाल केन्द्रित पद्धतियो से अधिक निकट है।
- ☐ उपर्युक्त प्रयोग समस्याओ से ग्रसित समस्त शालाओ एव अध्यापको द्वारा बिना किसी अतिरिक्त धनराशि के संपादित किया जा सकता है।

नवाचार पद्धति के कार्यान्वयन में लागत की प्रभावकारिता–प्रयोग पठन-पाठन की अवधि मे ही सम्पादित किया गया है जिससे प्रयोग सचालन मे किसी प्रकार का अतिरिक्त व्यय न तो संस्था को और न ही प्रायोज्यकर्ता शिक्षिका को वहन करना पड़ा है। जो कुछ व्यय हुआ है वह रिपोर्ट लेखन हेतु स्टेशनरी तथा उसके टकण से ही सबधित है। ☐☐

कैम्ब्रिज विद्यालय
सेठी नगर, उज्जैन

साध, बोध एवं उपाय द्वारा छात्रों की उपस्थिति दर, शैक्षिक और नैतिक विकास में सुधार

❑ दत्तात्रय नारायण प्रभु

श्री दत्तात्रय नारायण प्रभु एक प्राथमिक स्कूल के अध्यापक हैं। उन्होंने साध, बोध एवं उपाय द्वारा ग्रामीण स्कूल के छात्रों की उपस्थिति दर में वृद्धि की और इसके साथ-साथ ही उन्होंने छात्रों के शैक्षिक व नैतिक विकास में भी सुधार किया। इन्होंने छात्रों की गैर-हाजिरी के कारण ढूंढ़े और उसी के अनुरूप शिक्षा योजना बनाई। इस प्रक्रिया में अध्यापक ने तन्मयता से विद्यार्थियों और उनके पालकों से बातचीत की, विद्यालय के निकटतम समाज को बच्चों को स्कूल भेजने की प्रेरणा दी। अभिभावकों को शिक्षा में आस्था दिलाई और उन्हें शिक्षा से नाता जोड़ने की प्रेरणा दी। शिक्षा को रोचक बनाने के लिए समाज में उपलब्ध शैक्षणिक सुविधाओं, वस्तुओं, रीति-रिवाजों का प्रयोग किया जिसके परिणामस्वरूप छात्रों का शिक्षा के प्रति आत्मविश्वास जागृत हुआ और वह नियमित रूप से विद्यालयों में आने लगे। आपने छात्रों में नैतिक मूल्यों के विकास के लिए विभिन्न उपक्रम बनाए जैसे परिसर से पहचान, संस्कारों से लेन-देन, घरों के साथ शिक्षा को जोड़ना और भिन्न साधनों से राष्ट्रीय भावना को जगाना आदि। इस सबसे छात्रों में राष्ट्रीय एकता, अच्छा रहन-सहन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, परिवार व समाज की ओर आदर आदि नैतिक मूल्यों का विकास हुआ।

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना मे विद्यार्थियो को कृतिद्वार शिक्षा देने पर अधिक जोर दिया गया है। विद्यार्थियो का सर्वागीण विकास तथा पढाई मे रुचि होना अधिक जरूरी है। अगर हम थोडा ध्यान से देखे तो एक बात समझ मे आती है कि जो विद्यार्थी शुरू मे होते है, यह आवश्यक नही है कि वे आखिर तक स्कूल में आते रहें। (कक्षा 5 से 7 तक) गैर-हाजिरी बढ जाती है तथा विद्यार्थी स्कूल छोड देते है तथा ऐसे विद्यार्थियो को सामाजिक अनिष्टाये अपनी ओर आकर्षित करती है। निरक्षरता का प्रमाण बढ जाता है। (शासन दोबारा इस ओर ध्यान दे रहा है)

इस पर कोई उपाय है क्या? हा, कठोर परिश्रम की आवश्यकता है। अन्वेषक ने अपने शालेय जीवन मे प्रयोग किया है। अनुपस्थिति का शोध लेते-लेते उनका नैतिक विकास भी अन्वेषक ने किया है। सुसस्कारित शिक्षा महान अभ्यासक भारत के प्रख्यात शिक्षाविद् डा. सर्वपल्ली के शिक्षा सबधी विचार बहुत मूल्यवान है। उनकी व्याख्या इस प्रकार है— इन्सान का केवल बौद्धिक विकास ही शिक्षा नही है। उसके मन को सुसस्कारित करना असली शिक्षा है।

नवउपक्रम की जरूरत क्यों है?

श्री समर्थ रामदास स्वामी जी का एक वचन स्मरणीय है

करने से होता है, पहले करना चाहिए
यत्न को देव जान, अतर मे धर लो।

इसी युक्ति से प्रेरणा लेकर कार्य करने की ठान ली। स्कूल मे जो बच्चे दाखिल होते हैं, उनमे अधिकाश गैर-हाजिर रहते है। गैर-हाजिर प्रमुखत कक्षा एक से कक्षा चार मे अधिकतर होते है। इस वस्तु-स्थिति को नकार नही सकते। प्रमाण अधिक / कम होता है इतना ही कह सकते है। अधिकतर गैर-हाजिरी दलित समाज व ग्रामीण क्षेत्रो में अधिक पाई जाती है। इन गैर-हाजिरियो

का परिणाम स्कूल छोड़ देना होता है। बच्चा निरक्षर रह जाता है। मोटे तौर पर कहा जाए तो बच्चों की गैर-हाजिरी प्रगति में एक बहुत बड़ी अड़चन है। अनियमितता भी एक अड़चन है। अगर सारे विद्यार्थी हाजिर हों तो शिक्षक को भी खुशी होती है और वह अपना अध्यापन कार्य विशेष रुचि के साथ करता है।

प्रकल्प की मर्यादा व समस्या

अन्वेषक ने अपनी कक्षा के बच्चों की जानकारी इकट्ठी करनी शुरू की। इस सन्दर्भ में सबसे पहला प्रश्न था बच्चे दाखिला क्यों नहीं लेते? अगर लेते हैं तो नियमित रूप से उपस्थित क्यों नहीं रहते? इनके उत्तर खोजे जाने पर नीचे दी गई बाते सामने आई–

- ☐ पालक दरिद्रता तथा निरक्षरता से घिरे हुए है।
- ☐ खेती करने वाले पालक बच्चों से खेत में काम लेते हैं।
- ☐ दलित, आदिवासी रोज लकड़ी बेचने बाहर जाते हैं तो बड़े बच्चे अपने छोटे भाई, बहन की देखभाल करते हैं।
- ☐ भर पेट रोटी, कपड़ा आदि की कमी होने के कारण बच्चे दाखिला नही लेते और अगर लेते भी हैं तो प्रतिदिन स्कूल नही आ पाते।
- ☐ इसके अतिरिक्त स्कूल के आसपास की वस्तुए बिखरी हुई होती है। यह सारी बाते ध्यान मे आई। इसलिए गैर-हाजिरी कम हो तथा बच्चो को नैतिक शिक्षा किस प्रकार की दी जाये इसका विचार अन्वेषक करने लगा। सबसे पहले जिस गाव मे वह काम करता था उसका परिसर देखा। गैर-हाजिरी किस तरह कम की जा सकती है, उस पर क्या उपाय, योजना बनाई जाए इस पर वह विचार करने लगा।

प्रकल्प का स्कूल और समस्या

स्कूल– माडयाची वाडी, ता. कुडाल जि. सिधुदुर्ग (महाराष्ट्र) इस स्कूल में उसने अपने बच्चों पर जो कक्षा 3 और 4 मे पढ़ते थे उन पर यह प्रकल्प लागू किया। सख्या अनुक्रम से 17 और 21 थी। कुल मिलाकर 38 बच्चे थे।

समस्या– समय जून 97 से नवम्बर 98 तक सबसे पहले बच्चे अनियमितता से क्यों आते है? विद्यार्थियो से बातचीत की।

गैर-हाजिरी के मुख्य कारण

- ☐ घर के काम की वजह से गैर-हाजिर होना। (घर के काम जैसे पानी भरना, छोटे बच्चों को सभालना, घर-घर दूध पहुचाना, आटा पिसवाना आदि) अधिकतर यह समस्या लड़कियो के साथ है।
- ☐ स्कूल के लिए देर होने की वजह से विद्यार्थियों मे आलस आ जाता है।
- ☐ स्कूल जा रहा हू कहकर बीच रास्ते में कही खेलने वाले विद्यार्थी।
- ☐ देरी से सोकर उठने वाले विद्यार्थी।
- ☐ तबीयत ठीक न होने पर गैर-हाजिर होने वाले विद्यार्थी।
- ☐ बहाने मारने वाले विद्यार्थी।
- ☐ मदबुद्धि के विद्यार्थी जो स्कूल में आने से कतराते है।

उपर्युक्त कारण सामने आए। इन सबको सुधार कर विद्यार्थियो का नैतिक मूल्य पर आधारित सर्वागीण विकास कैसे किया जाए इस पर विचार किया। मुख्याध्यापक ने कक्षा 3 और 4 देकर उत्साह दिलाया।

प्रकल्प की प्रत्यक्ष कार्यवाही

- ☐ सबसे पहले जो बच्चे पास थे, उनकी एक नोट बुक बनाई। गैर-हाजिर रहने वाले बच्चों के नाम के आगे कुछ चिह्न बनाया। सबसे पहले हाजिर बच्चों को लेकर गैर-हाजिर बच्चों के घर गया। उनके घरवालों की पूछताछ की। हर घर में गया। कोई संकोच मन में आने नहीं दिया। विद्यादान महादान है। यह सब कहते हुए बीच-बीच में बच्चों को बिस्कुट, टॉफी, मुरमुरे बाटने का प्रयोग किया। (यह काम केवल दो महीने किया।)
- ☐ इसके अलावा जिन घरों मे बच्चे अपने से छोटो को सभालते थे उनसे कहा, उन्हे भी साथ ही

स्कूल ले आए, यह सहूलियत कुछ दिनो के लिए दी, जिससे हाजिरी बढ गई।

- स्कूल शुरू होने के बाद महीना/डेढ महीना शुरू-शुरू मे खेल, खाने, कहानिया इस उपक्रम पर आधारित बिताया। कुछ पालक कहने लगे कि खेती के काम के लिये उनके बच्चे को घर पर रखना ठीक रहता है। उन्हे विश्वास देकर समझाया, आप अपने बच्चो को स्कूल अवश्य भेजिए। अगर आप कहें तो स्कूल से उनकी जल्दी छुट्टी हो जाएगी। यह उपक्रम भी कुछ दिनो के लिए चलाया। जिससे जो बच्चे हमेशा गैर-हाजिर होते थे, वे भी स्कूल आने लगे। शुरू-शुरू मे जल्दी छुट्टी देनी पड़ी। लेकिन जब स्कूल मे अच्छा लगने लगा तो सब कुछ ठीक हो गया।
- बच्चो के पालको की भी स्कूल के बारे मे आस्था होनी चाहिए। स्कूल जाकर हमारा बच्चा तरक्की करेगा, ऐसा उनका विश्वास होना चाहिए। इसके लिए स्कूल के आसपास रहने वाले बीमार पालक और बच्चो की पूछताछ की। कभी-कभी उन्हें दवाइया भी लाकर दी। अध्यापक की इस बात से पालको का विश्वास बढा। साथ ही स्कूल के लिये आस्था का भी निर्माण हुआ।
- जो करे मनोरजन बच्चो का,
  प्रभु से नाता जुडे उसका।

  अपने गुरुजी के उस सुवचन की याद आई। स्कूल मे आने वाले विद्यार्थी खुश होने चाहिए। इसलिये समय-समय पर उन्हे अध्यापक घुमाने ले गया। जिससे आसपास के परिसर से परिचय हो गया तथा स्कूल मे आने का उत्साह बढ़ गया।
- उपस्थिति के लिए परिसर की महिलाओं की स्कूल के प्रति आस्था होना आवश्यक है। क्योकि बच्चो की ओर महिलाओ का ही अधिक ध्यान होता है। गाव की महिलाओ को इकट्ठा कर महिला मडल की स्थापना की। स्कूल मे हल्दी-कुकुम तथा रगोलिया डालना आदि का आयोजन किया। महिलाओ ने उसमे भाग लिया। समय देख कर महिलाओ को उनके बच्चो को स्कूल मे दाखिल करने को कहा। जिसके परिणामस्वरूप हाजिरी वढ़ गई।

अगर हम ध्यान से गौर करे तो बात समझ में आती है कि गैर-हाजिरी दो प्रकार की होती है।

- हमेशा गैर-हाजिर
- बार-बार गैर-हाजिर।

दूसरे नम्बर वाले बच्चो की प्रगति धीमी होती है। वे पीछे रह जाते है, जिससे उनका आत्मविश्वास कम हो जाता है। इसलिये ये बच्चे बार-बार गैर-हाजिर रहते है। कभी-कभी तो स्कूल भी छोड देते हैं। पहले प्रकार के बच्चो को सुधारने के तरीकों का उल्लेख हो चुका है। अब दूसरे प्रकार के बच्चो को कैसे सुधारा जाए इस पर विचार करते है। ऐसे बच्चों की सूची बनाई। उनकी तरफ अधिक ध्यान दिया। कक्षा मे अध्यापक ने 5-5 बच्चो के ग्रुप बनाये। उन ग्रुपो मे ऐसे बच्चो को शामिल किया। ग्रुप में रहकर उन्हे पढ़ाई करने की आदत डाली। जिससे उनमे थोडा-थोडा सुधार आने लगा। गैर-हाजिरी धीरे-धीरे कम हुई। स्कूल एक अच्छी और अलग जगह हो, ऐसी भावना मन मे आई।

इन सबके बावजूद कक्षा मे कुछ शरारती बच्चे होते है। उन पर कुछ छोटी-छोटी जिम्मेदारिया डाली। जिससे बच्चो में आत्मविश्वास जाग उठा, वे समझने लगे कि गुरुजी का हम पर कितना विश्वास है। उन्हें खुशी हुई। हमे काम के लिए कहते है यह सोचकर बच्चे खुश हुए। इस बात का उन्हे अभिमान भी था। काम थे— पीरियड मे हाजिरी लगानी, सफाई की बारी तय करना, गृह-पाठ जाचना, कक्षा खोलना। सोचने में यह काम छोटे हैं, लेकिन इनसे बच्चो में अनुशासन की भावना जगती है। प्रार्थना के समय इन बच्चो की सराहना की। प्रेरणा प्राप्त कर गैर-हाजिरी कम हो गई। उन्हे स्कूल अच्छा लगने लगा। बच्चे स्कूल में नियम से आने लगे। अब इन बच्चो को अच्छे सस्कार दिए जाएं इस पर अन्वेषक विचार करने लगा।

नैतिक मूल्यों का विकास— बनाया गया उपक्रम

आज जब हम देश की स्थिति को देखते हैं तो चारों

[illegible], ईमानदारी, [illegible], राष्ट्रीय भावना का [illegible] होता है। इसलिए [illegible] और इन्हें संस्कारों की जरूरत है। अच्छे नागरिक बनने के लिए अच्छे संस्कारों की आवश्यकता होती है। इसलिए शिक्षक का शिक्षा में [illegible] होना चाहिए। इस बारे में [illegible] कहा है "शरीर, मन और आत्मा का विकास मानव की संस्कृति है। इसलिए शिक्षा के साथ अच्छे संस्कार का होना अनिवार्य है। इसलिए नीचे दिए गए उपक्रम चलाए।

परिसर से पहचान

जिस परिसर में रहते है, उसी बारे में मन में आस्था होनी चाहिए तथा इस आस्था को बढ़ते रहना चाहिए। इसलिए बच्चों को स्कूल के आसपास का परिसर दिखाया। आसपास की खेती, बाग-बगीचे, ग्राम पंचायत का कार्यालय, मंदिर आदि के विषय में बताया। आसपास के कारीगर जैसे सर्राफ, कुम्हार, चर्मकार, बढ़ई आदि के बारे में जानकारी दी। बच्चों को अपने आसपास का भौगोलिक ज्ञान हो गया। परिसर के लिए आत्मीयता जगी।

संस्कारों का लेन-देन

अगर हम देखे तो विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावनाओ की कमी है। पढाई के साथ-साथ यह होना भी आवश्यक है। इसके लिये नीचे दिया गया उपक्रम चलाया।

अलग-थलग उपक्रम–घरों से ही शुरुआत करनी थी, इसलिए विद्यार्थियो को बताया कि जब वे कल स्कूल आयें तो पहले नहा-धोकर, घर के सभी बड़ों को प्रणाम करके आयें और ऐसा रोज करे। बच्चे वैसा करने लगे। इन सबका परिणाम यह हुआ कि पालक भी-गुरुजनो का आदर करने लगे। स्कूल की जरूरते पूरी करने के लिए इस उपक्रम से काफी सहायता मिली।

राष्ट्रीय भावना को जगाना–बच्चों के मन में देश के प्रति प्रेम होना चाहिए। सामने बैठे हुए बच्चे हमारे ही भाई-बंधु हैं, वे मेरे है, मै उनका हूं इस तरह से सिखाया। 3 और 4 बच्चो ने अंधनिधि के लिए 125 रुपए जमा किए। ध्वज निधि के लिए 60 रुपए जमा किए। बहुत खुशी हुई। शिक्षा मे इन्सानियत जागृत होनी चाहिए।

जीवन में अनुशासन का बहुत महत्व है। रहन-सहन साफ, सुथरा होना चाहिए। इन सारी बातों को प्रेमपूर्वक बताना शुरू किया। साथ ही वृक्षारोपण के बारे में बताया। बच्चों ने अपने [illegible] पर 200 वृक्ष लगाए। बच्चे संस्कारक्षम बन गए।

देखा जाय तो मानवता प्राप्त करने के लिए ही शिक्षा होती है। शिक्षा से इन्सान बनता है। हमारे पास जो बच्चे आते है वे राष्ट्र की धरोहर है। हमे अपना कार्य करते रहना चाहिए।

शिक्षक की भूमिका सशोधक की होनी चाहिए। जो परिस्थितिया है उन पर मात करके इन्सान बनने चाहिए। इस बात मे कोई सन्देह नही है। यह स्कूल ग्रामीण भाग मे है, जिद पकड़ी तथा उसका परिणाम अच्छा ही निकला।

उल्लेखनीय बातें

बच्चो की गैर-हाजिरी सुधर गई। साथ ही उन्हे अच्छे संस्कार भी मिले। पालक वर्ग का ध्यान स्कूल की तरफ गया। स्कूल के लिए आस्था और आदर का निर्माण हुआ। पालकों का सहयोग अच्छा रहा। नैतिक और शैक्षणिक जरूरते पूरी करने के लिए पालकों ने सहायता प्रदान की। 10,000 रुपए की निधि जमा की तथा 30 हजार का शैक्षणिक सामान शासन ने दिया।

हमे अपना कार्य करने रहना चाहिए।
श्री रामदास स्वामी कहते है
कष्ट के बिना फल नहीं।
कष्ट के बिना राज्य नहीं।।
करे बगैर कुछ भी साध्य नही होता है।।।

निष्कर्ष

- बच्चो की गैर-हाजिरी कम हुई।
- उपस्थिति 100% रहने लगी।
- स्कूल के लिए और गुरुजनों के लिए आदर निर्माण हुआ, जिससे शैक्षणिक विकास हुआ।
- परिवार और समाज के बड़ो के प्रति आदर निर्माण हुआ।

- राष्ट्रीय एकात्मकता, सर्वधर्म स्वभाव, अच्छा रहन-सहन, समय सूचकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि नैतिक मूल्य बढ़े।

आखिर मे अन्वेषक अध्यापक ने इतना ही कहा कि सुख-सुविधा में कमी होने के बावजूद वह इस ग्रामीण इलाके मे कार्य करता रहा। उसे खुशी तो मिली ही साथ ही समाधान भी मिला।

प्रयत्नो, चिंतन और प्रयोगशील प्रयोग से गैर-हाजिरी की समस्या का समाधान हो जाता है। इस प्रयोग मे समय-समय पर मुख्याध्यापक से सलाह मिली। साथ ही शिक्षण अधिकारी की सहायता भी प्राप्त हुई। सब की सहायता से ही ऐसा उपक्रम लागू हो सका। ❑❑

जिला परिषद् प्राथमिक विद्यालय
नेहरु माडयायी वाडी
ता. कुडाल, जिला सिंधुदुर्ग
महाराष्ट्र

अध्यापक शिक्षा में अभिनव प्रयोग और पद्धतियां

□ आशा सेट कक्कड़

[illegible]

[illegible] पाया कि ये बच्चे [illegible] में विशेष रुचि रखते हैं, [illegible] चित्र बनाने [illegible] आदि के [illegible] में [illegible] इन [illegible] के [illegible] में [illegible] करते हुए [illegible] कला, [illegible], [illegible], [illegible] कला, [illegible], सामग्री, खिलौने आदि बनाने का प्रशिक्षण बहुत आसानी से दिया जा सकता है। इससे न केवल यह विशेष रुचि दिखाएंगे वरन् इस माध्यम से इनकी मानसिक एकाग्रता, हाथों की उंगलियों के विशिष्ट चालन आदि का भी प्रशिक्षण दिया जा सकता है। साथ ही साथ बच्चों में सामाजिकता का विकास सहयोग भावना का विकास रचनात्मकता, सौन्दर्यानुभूति का विकास लयात्मकता का विकास भी किया जा सकता है। इसके साथ ही बच्चों में आत्मविश्वास कुछ कर सकने का संतोष भी विकसित किया जा सकता है।

इन बच्चों में चूंकि पारिवारिक स्तर पर भावनात्मक संयोजन ठीक प्रकार से नहीं होता। अत: कुछेक बच्चों में मानसिक व्याधियां व्याप्त हो जाती हैं। बच्चे मंदबुद्धि न होते हुए भी पढ़ाई में विशेष ध्यान नहीं दे पाते। इन बच्चों को अध्यापिका का भावनात्मक लगाव उन्हें विद्यालय की ओर आकर्षित करता है। जब बच्चे अध्यापिका से

श्रीमती आशा सेट कक्कड़ दिल्ली में एक प्राथमिक विद्यालय में अध्यापिका हैं। अपने अध्ययन-अध्यापन काल में उन्होंने अध्यापन कार्य को रोचक बनाने के लिए बहुत से अभिनव प्रयोग और पद्धतियों को अपनाया। उनको अपने इन अभिनव विधियों और प्रयोगों से अत्यंत मानसिक प्रोत्साहन मिला। इनके आलेख में फ्रायबाल व्योगोट्स्क (Vyogotsky) मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का भी प्रयोग किया। व्योगोट्स्क का विश्वास है कि छात्र की शिक्षा में उसका पारिवारिक व सांस्कृतिक वातावरण एक अहम् भूमिका निभाता है। समाज एक माध्यम है जिसके द्वारा छात्र में भाषा, कला व अन्य संस्कृतियों, मूल्यों का विकास होता है। अन्वेषक ने सुचारू रूप से इन विचारों का अध्ययन-अध्यापन कार्य में प्रयोग किया है। इन्होंने कक्षा में प्रतिभाशाली, मानसिक असमानियोजित छात्र, मंदबुद्धि छात्र और स्नायुगत कमजोरी वाले छात्रों की भी पहचान की और इन छात्रों को उनकी योग्यता अनुसार शिक्षा प्रदान करने का नियोजन किया। छात्रों को प्राथमिक चिकित्सा द्वारा शरीर की कार्य प्रणाली की शिक्षा दी। छात्रों की हकलाहट का उचित हल निकाला, शब्दों का बैंक बनाने का प्रोत्साहन छात्रों को दिया और पर्यावरण में उपलब्ध सामग्री को भाषा विकास में प्रयोग किया। सामाजिक ज्ञान, गणित, पर्यावरण ज्ञान की पुस्तकों की क्लिष्ट इकाइयों को पर्यावरण अध्ययन द्वारा सरल बनाया और चित्रकला द्वारा छात्रों के लेख को सुधारा।

समायोजन स्थापित कर लेते है तो न केवल कम बोलने वाले बल्कि मदबुद्धि कहलाने वाले बच्चे भी सामान्य स्तर पर आ जाते है। एक दार्शनिक विचार है कि "बालक की आत्मा शुद्ध, कोमल व सपूर्ण होती है, उसमे अपनी आतरिक शक्ति व कौशल पूर्णत. विद्यमान होते है। अध्यापक को केवल उसकी सृजनात्मक व रचनात्मक शक्तियो का विकास करना है, उन्हे आधार व सहारा देना है। बालक सवेदनशील होता है, उसकी सवेदनशीलता को उचित दिशा देना ही शिक्षक का कार्य है।"

एक अन्य समस्या है कि कुछ छात्र असाधारण रूप से प्रतिभाशाली होते है। उनकी कल्पनाशीलता बहुत उच्च व सवेदनशील स्थिति की सीमा पार कर जाती है। वह या तो उद्दड हो जाते है या अत्यधिक अंतर्मुखी और दोनो ही *स्थितियों मे असामाजिक से हो जाते है।* सामाजिक समायोजन ठीक प्रकार से न होने के कारण वह अपनी प्रतिभा का सही उपयोग नही कर पाते। ऐसे छात्रों को उनके खोल से बाहर निकाल कर उन्हे अपने से कम बुद्धि वाले छात्रो के साथ समायोजन व उचित व्यवहार व बुद्धि का रचनात्मक चिंतन करने के योग्य बनाना व भावनात्मक सतुलन देना भी एक अध्यापक का कौशल है। शिक्षिका के अपने अनुभव के अनुसार ऐसे बच्चो को यदि विवेकपूर्ण ढंग से समझाकर कर्तव्याभिमुख बनाया जाए, उनके मूडीपन को जागरूकता में बदला जाए तो उनकी बुद्धि व भावनाओ का सतुलित विकास हो सकता है। ऐसी स्थिति में अध्यापक के बुद्धि कौशल की परीक्षा होती है।

डिसलेक्सिया– कुछ छात्रो के मानसिक असमायोजन के कारण डिसलेक्सिया अर्थात् शब्दो व अक्षरो का उल्टा रूप बनाने की प्रवृत्ति होती है। वह कोड आदि लिखते है। ऐसी स्थिति मे अध्यापक को धैर्य नही खोना चाहिए। यह मानसिक कमजोरी न होकर स्नायुगत कमजोरी भी हो सकती है। बालक के माता-पिता को समझाकर उसे उचित मात्रा में विटामिन ए व डी युक्त भोजन देकर तथा रेत पर उगलियो द्वारा बार-बार वही बाहरी अक्षर लिखवाना व मिटवाना अक्षर का सही रूप बनाने मे सहायक होता है।

मंदबुद्धि बच्चों का मनोबल उठाना– प्रकृति का वरदान है कि यदि एक व्यक्ति एक रूप मे अक्षम है तो वह अन्य रूपो मे सक्षम होता है। सामान्य या सामान्य से कुछ कम बुद्धि वाले बच्चो मे अगर अनकल समय मे यह विश्वास जाग जाए कि वह भी कुछ कर सकते है तो भले ही पढाई में वह कुछ पीछे रहे पर सामाजिक तौर पर विकसित हो सकते है जैसे– (1) बागवानी (2) कक्षा की सजावट (3) सामान की देखभाल (4) आहार वितरण आदि। इन कार्यो मे बहुत रुचि लेते है।

प्राथमिक चिकित्सा द्वारा शरीर की कार्य प्रणाली की शिक्षा– प्राथमिक चिकित्सा की ट्रेनिग कक्षा 3 से 5 तक देकर उन्हे न केवल इस कार्य मे पारगत किया जा सकता है वरन् उन्हे *शरीर की कार्यप्रणाली* के विषय जैसे– नाडी सस्थान, पाचन सस्थान आदि के विषय मे भी बताया जा सकता है।

भाषा– कुछ छात्राए बोलने मे हकलाती है जिनमें से 90% मनोवैज्ञानिक दबाव के कारणो से ऐसा करती है। अत स्नेह, धैर्य से उनकी हकलाहट का उचित हल निकाला जा सकता है। गलत रूप से उच्चारित शब्द का बार-बार उच्चारण उससे मिलते-जुलते अक्षर विन्यास के शब्दों का प्रयोग। परन्तु यह प्रयोग इस प्रकार हो कि छात्राओ को बोझ न महसूस हो।

शब्दों का बैंक

छात्राओ को शब्दों का बैक बनाने के लिए प्रतिदिन प्रोत्साहित करे। जैसे उन्हे कहें कि यदि वे प्रतिदिन दो शब्द भी नए सीख ले तो उनके अक्षर कोश मे प्रतिवर्ष दुगुने शब्द जमा हो सकते है।

पहली कक्षा में– बच्चे अक्षर व मात्राए सीखने मे बहुत समय लगाते हैं। ऐसी स्थिति मे यदि फर्श पर मात्राए व अक्षरों के गत्ते या प्लास्टिक के कटे हुए प्रतिरूप बिछा दिए जाए तो बच्चे न केवल अक्षर व मात्राए सीख सकेगे बल्कि छोटे-छोटे शब्द भी बना सकेगे। शब्दो की अत्याक्षरी, ग्रुप में शब्दो का निर्माण आदि खेल कराए जा सकते है। यह क्रिया किसी भी भाषा पर लागू हो सकती है। इसी प्रकार एक ही शब्द से मिलते हुए शब्द गाकर भी बताए जा सकते है। अग्रेजी में शिक्षिका ने बच्चो को वर्णमाला गाकर सिखाई जो इस प्रकार है–

कविताएं कहानियां सुनाना– छात्राओ को विभिन्न विषय जैसे– मा, घर, द्वार, इन्द्रधनुष आदि पर स्वय कविताए व कहानिया लिखने को प्रोत्साहिन किया जा सकता है।

सामाजिक ज्ञान– सामाजिक ज्ञान का अध्यापन करते हुए मैने पाया कि अगर छात्राओ को कहानी के रूप मे चित्रों

come little girls come to me
I'll teach you A B C , A B C.D E F.
D.E F G H I J.K L , I J K L M.N.
O P ; L M N O P Q R S.T , Q R S T.
U V.W , U V W.X Y.Z ,
X.Y.Z butter on your bread
butter on your bread.
Eat, it daring go to your bed

न मॉडलों की सहायता से पढ़ाया जाए, इतिहास के पाठ नाटक रूप मे कक्षा में मंचित करवाए जाए तथा बड़े-बड़े प्रश्नों से वस्तुपरक प्रश्नों का अभ्यास कराया जाए तो छात्रों को इन विषयो मे भी आनन्द आता है। वह कुछ समय में बड़े या कुछ लम्बे प्रश्नो के उत्तर भी याद करने लगते है।

पर्यावरण अध्ययन– बच्चों से बगीचे में फूल, सब्जिया, क्यारिया बनाकर उगवाई जाए तो आधा विज्ञान तो वह स्वय ही सीख लेंगे। क्योंकि वहा पक्षी भी होंगे, उनके घोंसले, अंडे आदि नेवले व गिलहरी इन सभी का वह स्वयं ही अध्ययन कर सकेंगे। मिट्टी, कीटाणु, रोगाणु उनके लिए अपरिचित नही रह सकेगे। स्वच्छता का भी उन्हें यहीं पाठ पढ़ाया जा सकता है। सूर्य, धरती, ठोस, द्रव, गैस व सभी पर्यावरण से ही सीख लेंगे। प्रयोग करने व करवाने मे बच्चे न केवल रुचि लेते है वल्कि उत्साहित भी होते हैं। अत: प्रत्येक रूप मे वच्चों का सहयोग मिलता है।

सामान्य ज्ञान– छात्रो से विशेषत: तीसरी से पाचवी तक के छात्रो से यदि यह पूछा जाए कि उन्होंने टेलीविजन पर समाचारो में क्या देखा उनसे समाचार-पत्रों की कटिंग आदि को एकत्र करवाया जाए और उनकी फाइले वनवाई जाएं तो उनका सामान्य ज्ञान स्वतः ही वढ़ जाता है।

गणित– गणित के लिए हमारे नगर निगम के विद्यालयों में शिक्षा विभाग द्वारा विभिन्न खेल भेजे जाते है। उनके द्वारा तथा फर्श पर लिखे गए अकों की पहचान से विभिन्न पहेलियों द्वारा और समूह बनाकर सवाल पूछना आदि छात्रो का ध्यान इस विषय के प्रति आकर्षित कर सकता है।

वस्तुत. हमारे सामने आने वाले बच्चे भी नए-नए प्रयोग करने के क्षितिज दिखाते हैं। उनमे अपार सभावनाए होती है, और कव आप उनके साथ मिलकर कोई नई पद्धति या किसी नए प्रयोग की ओर अभिमुख हो जाएं आप स्वय नही जानते। गणित मे आप 8, 9 व 19 का पहाड़ा देखे तो इसमें भी मनोरंजन है जैसे–

8 × 1 = 8 (8)	9 × 1 = 9 (9)	19 × 1 = 19 (10)
8 × 2 = 16 (7)	9 × 2 = 18 (9)	19 × 2 = 38 (11)
8 × 3 = 24 (6)	9 × 3 = 27 (9)	19 × 3 = 57 (12)
8 × 4 = 32 (5)	9 × 4 = 36 (9)	19 × 4 = 76 (13)
8 × 5 = 40 (4)	9 × 5 = 45 (9)	19 × 5 = 95 (14)
8 × 6 = 48 (3)	9 × 6 = 54 (9)	19 × 6 = 114 (15)
8 × 7 = 56 (2)	9 × 7 = 63 (9)	19 × 7 = 133 (16)
8 × 8 = 64 (1)	9 × 8 = 72 (9)	19 × 8 = 152 (17)
8 × 9 = 72 (9)	9 × 9 = 81 (9)	19 × 9 = 171 (18)
8 × 10 = 80 (8)	9 × 10 = 90 (9)	19 × 10 = 190 (19)

इस प्रकार गणित को भी रोचक बनाया जा सकता है। बच्चो से ज्यामितीय आकार से गेद, फूलदान टोकरी आदि कलात्मक वस्तुएं वनवाकर उन्हे ज्यामितीय ज्ञान कराया जा सकता हे। जैसे– वृत्ताकार टुकडो से गेंद, शकू व टोपी आदि।

इस प्रकार शिक्षा में अध्यापक के पास अभिनव प्रयोगो व पद्धतियो का विकास करने का अवसर सदैव उपलब्ध रहता है।

चित्रकला

छात्राओ को अकों के माध्यम से साधारण चित्रो से पहली कक्षा मे कार्य शुरू कराया जैसे आठ अंक से उन्हे कई चित्र बनवाए गए।

उन्हे कविताओ द्वारा भी चित्र कला व मूर्ति कला की ओर आकर्षित किया जैसे–

यमुना किनारे की गीली मिट्टी, उठाई एक कुम्हारे ने
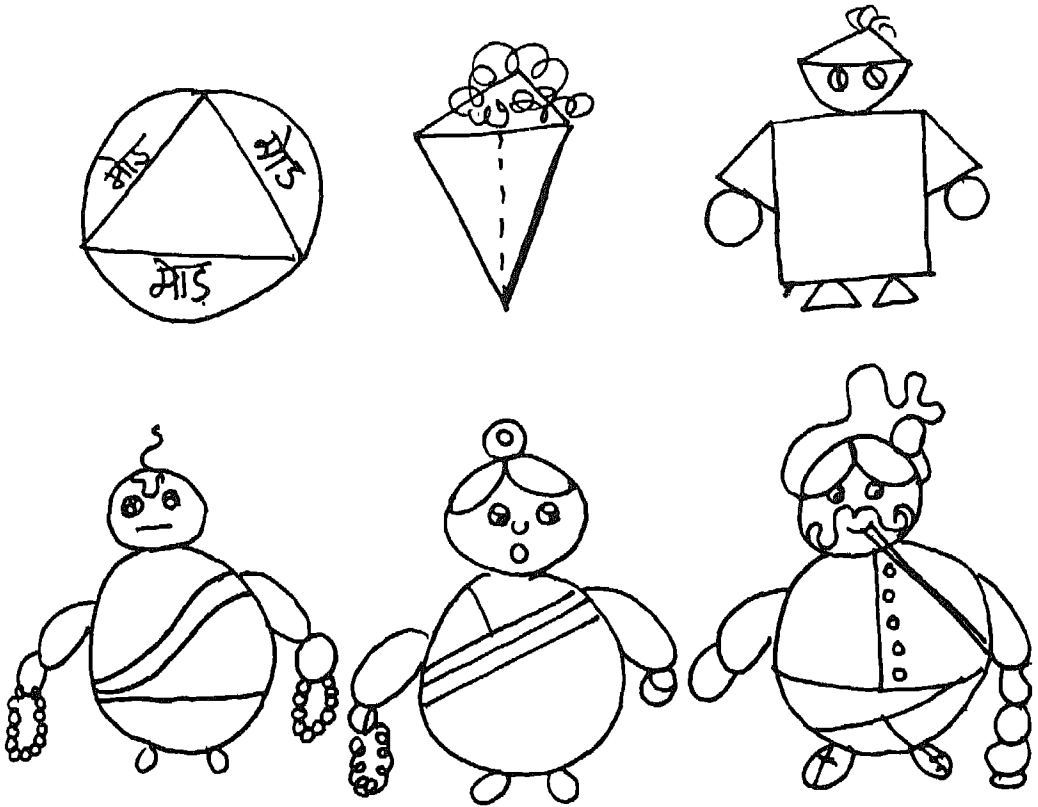
घर पर लाया कूटा, गूंधा उसको फिर कुम्हार ने,
चाक पर डाला उसे घुमाया,
ढाला एक आकार मे
भट्टी मे उसे तपाया,
रग कर लाया फिर बाजारी में,
नन्हीं गुडिया तुमने देखा और खरीदा सजाया बड़े प्यार से,

छात्राओ के बनाए कार्डो, फूलो, मिट्टी के खिलौनो आदि की प्रदर्शनी व बिक्री का भी आयोजन करवाया जा सकता है।

शिक्षा जगत तो एक फलक है एक केनवस जिसे अध्यापक अपनी रचनात्मक सृजनशीलता से भर सकता है। अपने नन्हे बच्चो की सहायता से वह हर दिन एक नया क्षितिज, एक नई मजिल छू सकता है। ❑❑

नगर निगम प्राइमरी आदर्श विद्यालय
ईदगाह रोड, दिल्ली

बाल वाटिका कला निकेतन

□ नंद लाल जाटव

श्री नंद लाल जाटव एक प्राथमिक विद्यालय में शिक्षण कार्य करते हैं। इस लेख में उन्होंने प्रयत्न किया है कि कैसे अध्ययन कार्य को विकास की ओर ले जाया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने शिक्षा की ऐतिहासिक भूमिका में यह बताया है कि पहले शिक्षा खुले प्राकृतिक वातावरण में प्रदान की जाती थी। जिससे बहुत सी प्राकृतिक बाधायें व समस्यायें आने से शिक्षण कार्य रुक जाता था। इसलिए शाला निर्माण की जरूरत और साधनों के अनुरूप कच्ची या पक्की शाला का निर्माण हुआ और रंगों से चित्रकारी द्वारा सजाया गया। अन्वेषक का यह मानना है कि विद्यालय प्रांगण में बाग-बगीचा होना चाहिए जिसकी शुरुआत अध्यापक से हो और तदनन्तर में इस कार्य में बालकों को भागीदार बनाना चाहिए। उनका कहना है कि शुरुआत के काम जैसे पौधे का रोपना, सींचना आदि का कार्य स्वयं अध्यापक से हो और बाद में बालकों का सक्रिय सहयोग हो। इस लेख में शाला प्रांगण, स्थान, मैदान तथा बगीचे के अतिरिक्त विद्यालय कार्यक्रम कैसे आरंभ करना चाहिए या क्या कार्यक्रम होने चाहिए जिससे बालक मन लगाकर पढ़ सकें और विद्यालय आने में रुचि दिखाएं। प्रातः प्रार्थना सभा से विद्यालय का आरंभ हो जिसमें सरस्वती वंदना व अन्य प्रेरणादायक गीत सम्मिलित हों। शिक्षक को खेल आदि से अध्ययन-अध्यापन कार्य शुरू करना चाहिए जिससे बालक अध्यापक को अपना मित्र समझें तथा विद्यालय में प्रसन्नतापूर्वक आएं।

शिक्षा [illegible] पूर्ण शिक्षक [illegible]

सृष्टि का निर्माण धीरे धीरे हुआ। पृथ्वी पर जनसंख्या बढ़ने के साथ एक दूसरे से बातचीत करने के लिए भाषा की जरूरत पड़ी होगी। उस समय की भाषा सांकेतिक रही होगी। यह सब कार्य किसी बुद्धिमान मानव का रहा होगा जिसने सांकेतिक भाषा, बोलचाल की भाषा व लिखने की भाषा बनाई होगी और उसे प्रयोग के रूप में समाज एवं परिवार में पैदा हुए बाल बालिकाओं तथा अन्य इन्सानों पर किया होगा। इसी क्रमिक व्यवस्था के अन्तर्गत जो थोड़ा समझदार व्यक्ति होगा उसको लोगों द्वारा छोटे बालकों या इन्सानों को एक स्थान पर बैठाकर शिक्षक के रूप में पढ़ाने व लिखाने का काम सौंप दिया जाना यानि शिक्षण का विकास होने लगा।

शिक्षा प्रणाली का विकास

शिक्षा को प्रसारित करने के लिए शिक्षकों को किस चीज की जरूरत पड़ी? सर्वप्रथम विद्यालय पेड़ो के नीचे लगाकर अध्यापन कार्य किया जाता था। लेकिन कालान्तर में परिवर्तन एवं विकास होना आवश्यक हो गया। खुले स्थान पर पाठशाला लगाने में कई परेशानिया आती थीं तथा प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए मानव को टापरी या घर (मकान) बनाने की जरूरत पड़ी। ठीक उसी प्रकार शिक्षा ग्रहण करने आए बालचरों के लिए भी घर की आवश्यकता महसूस हुई। फिर बुद्धिजीवियों ने छोटा-मोटा घर बनाकर उसमें विद्यार्थियो को बैठने की व्यवस्था की और आने वाले समय मे परिवर्तन आया एवं शाला भवन बनाए गए।

शिक्षण कार्य प्रारंभ करने से पूर्व शिक्षक को शाला वातावरण आकर्षक बनाना होगा। आकर्षक बनाने के

लिए सहायक सामग्री की आवश्यकता होती है। शाला को आकर्षक बनाने के लिए देश, काल, स्थिति एव पर्यावरण का पूरा ध्यान रखना होगा, उदाहरण के तौर पर यहां शालीय वातावरण को आकर्षक बनाने के लिए निम्नलिखित का ध्यान रखना होगा।

भवन विहीन शाला– भवन विहीन शाला को निम्नाकित द्वारा आकर्षक बनाया जा सकता है–

शाला प्रागंण का सीमांकन– शाला प्रागण का सीमाकन अति आवश्यक है। चाहे वह तिकोन, चौकोर, पचकोण, षटकोण या वृताकार किसी भी प्रकार का हो, जगह का सीमाकन हो जाने से जगह आकर्षक बन जाती है। बडे बालको से सफाई करवाई जाए। अगर बडे बालक उपलब्ध न हो या नई शाला हो तो शिक्षक एक बार सफाई एव सीमाकन करे। बाद मे बालको से गुरुजी सफाई आदि करा सकते है।

शाला प्रांगण के सीमांकन के बाद चारो ओर पेड-पौधे लगाना अति आवश्यक है, यह कार्य शिक्षक स्वय करे। पेड पौधो की बाड लगवाना जरूरी है। जिससे पेड़-पौधे उखड़ न सके। प्रागण की लिपाई-पुताई माह मे पहले तथा तीसरे रविवार या अवकाश के समय होनी जरूरी है।

शिक्षक के बैठने का स्थान समुचित जगह पर हो। यदि कुर्सी न हो तो क्षेत्र के अनुसार कोई ऊचा टीला या ईट-पत्थर या गीली मिट्टी से ऊची जगह बना ले। शिक्षक का ऊचा स्थान क्यो बनाया जाता है? इसका एक ही कारण है कि वह भी छात्रो पर नजर रख सकता है तथा अध्ययन कार्य सुचारू रूप से अनवरत जारी रख सकता है।

भवन सहित विद्यालय– भवन सहित विद्यालय दो प्रकार के होते है।

- ☐ कच्चे शाला भवन
- ☐ पक्के शाला भवन

कच्चे शाला भवन– जहा पर कच्चे शाला भवन का निर्माण करना हो वहा पर सस्ती सहायक सामग्री से कच्चा भवन बनाना चाहिए। सस्ते रग आदि भी काम मे लेने चाहिए तथा चित्राकन कार्य द्वारा आकर्षक बनाए।

पक्के शाला भवन– पक्के शाला भवन बनाने के लिए भी सस्ती दर की सामग्री द्वारा शाला भवन का निर्माण साज-सज्जा के साथ करे तथा कच्चे भवन मे चित्रांकन के लिए जो सुझाव दिए गए है उनके अनुसार ही पक्के भवन मे चित्राकन किया जा सकता है।

जन सम्पर्क– भवन विहीन शाला से लेकर अध्यापन कार्य करने के उपरात तक जन सम्पर्क करना जरूरी है। जन सम्पर्क से विद्यालय सबधी अनेक समस्याए आसानी से हल हो जाती है तथा सारे काम बन जाते है।

खेल का मैदान– शाला मे खेल का मैदान अति आवश्यक है। अगर खेल का मैदान नही हो तो शाला भवन मे खेलो के अनुसार खेल के मैदान का सीमाकन कर बच्चों का अध्यापन कार्य जारी रखा जाए। खेल का मैदान ऐसा हो कि शिक्षा से जुडा हो तथा बच्चा खेल-खेल मे शिक्षा प्राप्त कर सके तथा अध्यापन से जुडे खेल जैसे चकरी चलाना, बोर्ड मोर्ड, एक-एक, दो-दो व्यायाम कसरत, परेड, रेल का खेल तथा नाटक आदि करवाए जा सकते है।

शिक्षा समिति– शाला मे अध्यापन कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिए शिक्षा समिति की आवश्यकता होती है जो कि शाला संचालन मे आई हुई दिक्कतो का समाधान कर सके। शिक्षा समिति चुनाव द्वारा गठित की जानी चाहिए यह समिति सुझाव तो देगी ही साथ ही पालक एव शिक्षक के बीच समन्वय रखने का दायित्व भी निभाएगी।

शिक्षा सत्र प्रारम्भ होने से पूर्व शिक्षक को जन सम्पर्क कर के गाव वालो की सभा का आयोजन करना होगा तथा समझाना पड़ेगा कि दो दिन बाद शाला खुल जाएगी, बालको को पढ़ने जरूर भेजे। पढाई के लाभ बताना जरूरी है जैसी भी सहमति हो वैसा ही प्रस्ताव लिखकर सबके हस्ताक्षर करा लेने चाहिए।

भर्ती अभियान– बच्चो को भर्ती करने के लिए कम से कम 9-10 दिन तक का समय रखना चाहिए। भर्ती की उम्र कम से कम 6 वर्ष रखनी चाहिए। अध्यापन कार्य, कहानी, गीत, छोटे-छोटे अभिनव से प्रारम्भ करना चाहिए जिससे बालक/ बालिका यह नही समझ पाए कि पढाई प्रारम्भ हो चुकी है।

शिक्षकों का दायित्व– शिक्षण कार्य प्रारम्भ करने से पहले शिक्षको के दायित्व।

वेशभूषा– [illegible]

[illegible]

● [illegible]

● [illegible] चाहिए।

● [illegible] बालक को [illegible] ऐसा लगे कि [illegible]

● शाला में किसी प्रकार की कोई कमी नजर आती है तो शिक्षक को अधिकार होना चाहिए कि वह उन [illegible] परेशानी का निराकरण करे।

● अगर उन [illegible] से समस्या हल नहीं होती तब सरपंच, ग्राम पंचायत के सदस्य, गाव के मुखिया या स्थानीय अधिकारी से शाला की कमियों को लिखकर अवगत करा सकता है और खुद की परेशानी जैसे रहन-सहन सम्बन्धी परेशानी का अन्य कार्यकर्ताओं से निराकरण करा सकता है।

शिक्षक की साज-सज्जा– नाखून कटे हो, बाल न अधिक छोटे और न अधिक बड़े हों, प्रियभाषी हो, न्यायप्रिय हो, तुरन्त निर्णय करने की क्षमता हो यानी व्यक्तित्व प्रभावशाली हो, चाल-चलन उत्तम हो, शारीरिक दृष्टि से निरोग हो।

बालोद्यान में शिक्षक– शिक्षक एक माली है माली का *अर्थ होता है बाग को सींचने वाला।*

हम किसी काम को करे तो हमे वैसा ही बनना पड़ेगा। जैसे मिट्टी का कार्य करने वाला जब तक मिट्टी मे नही रहेगा तब तक वह मिट्टी के कोई काम मे सफलता प्राप्त नही कर सकता। इसलिये जैसा काम हो वैसा ही इसान को बनना पड़ेगा। मजदूर मिट्टी की ईट, बर्तन नही बना सकता है। जब वह सब प्रकार से मिट्टी मे खुद नही मिल जाता तब तक उनको ज्ञान नहीं दे सकता। अत: शिक्षक को बालक सरीखा बनना पड़ेगा।

शिक्षक बालकों के बीच– सर्वप्रथम राष्ट्रीय गीत के बोल एक-एक करके लय व ताल के हिसाब से बोलकर अनुकरण वाचन कराना। इस प्रकार 4-6 दिन मे राष्ट्रीय गीत बोलना आ जायेगा। साथ ही सावधान व विश्राम का ज्ञान दिया जाए।

राष्ट्रीय गीत के बाद परमपिता परमात्मा की वन्दना, सरस्वती वन्दना मे 15 मिनट का समय पर्याप्त है।

शिक्षण पद्धति

☐ प्राथमिक स्तर पर उस क्षेत्र की भाषा में अध्यापन कार्य करना चाहिए जहा विद्यालय स्थित है। बालक/बालिका के शारीरिक के साथ मानसिक विकास कितना है इस बात का आकलन अध्यापक मनोवैज्ञानिक तरीके से खोज कर तथा वातावरण, त्यौहार, खाना-पीना, रग, त्यौहार आदि का ध्यान रखकर सस्ती सहायक सामग्री का चयन कर अध्यापन करे।

☐ पहले आप अनुकरण वाचन कराए। अनुकरण *वाचन तब तक कराएं जब तक बालक/ बालिका उस* पाठ को कठस्थ न कर ले।

☐ अनुकरण वाचन साहित्यिक स्तर से शुरू करे।

☐ अनुकरण वाचन का कोई क्रम नहीं है, जैसे स्वर के बाद व्यजन आता है लेकिन ऐसा नहीं है। अनुकरण वाचन मे बिना क्रम के पठनीय सामग्री जैसे प्रार्थना, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, देश-विदेश वातावरण व त्यौहार, समीक्षा, भजन, कविता, लोकभजन, लोकगीत कथा-कहानी आदि द्वारा कराया जा सकता है।

अगले दिन गुरुजी बालको की उपस्थिति लेने के लिए पहले सिखाएंगे कि जिस बालक का नाम मै बोलूगा तो *वह बालक कहेगा उपस्थित गुरुजी या यस सर।* यस सर शब्द अंग्रेजी भाषा का है जिसका अर्थ होता है "हा श्रीमान" यानी उपस्थिति का सूचक या उपस्थित श्रीमान जी।

शाला में बालक उपस्थिति के पश्चात् बच्चों का मनोबल बढ़ाने के लिए किसी भी खेल की प्रस्तावना से अध्यापन शुरू करना चाहिए।

उदाहरण

गुरु– बच्चों हम लम्बी यात्रा किन-किन साधनो से करते है।

शिष्य– साइकिल से।

गुरु– परन्तु यह साधन हमे देर से पहुंचाएगा और *थकान भी होगी।*

शिष्य– ट्रेक्टर से।

गुरु– यह भी देर से पहुचाएगा।

शिष्य– रेल से।

गुरु- यहा आज हम रेल का खेल खेलेगे। आओ हम रेल का खेल खेले।

पहले शिक्षक रेल के खेल के लिए आगे आए तथा स्वयं रेल का इन्जन वनें। फिर वालको से कहे कि रेल मे बैठने के लिए नाम बताते जाओ और मेरे पीछे से एक के पीछे एक जुडते जाओ। इस प्रकार से सभी लडको की रेल बन जायेगी।

रेल से सफर करने की गति—

स्थायी— रेल चली भाई रेल चली।

नाम बताओ सीटी बजाओ।। रेल चली—

जिस बालक का स्टेशन आ जाए वह वही पर उतर जाए।।

ऐसे ही खेल खेलेगे, रोज़ पढने आएगे।

इस प्रकार रेल मे कई यात्री हो जाएगे तथा रेल के डिव्बे बढ़ते जाएगे।

एक बडी रेल बन जाएगी। अपने वताए गए स्टेशन पर बाल यात्री उतरते जाए, रेल के डिव्बे कम होते जाएगे। रेल का खेल खत्म हो जाएगा।

शिक्षक इसी प्रकार खेलो का आयोजन करे जो शिक्षाप्रद हो, बच्चे बडी उत्सुकता से रोजाना स्कूल आएगे, स्कूल से कम से कम अनुपस्थित रहेगे।

लेखनकार्य– लेखनकार्य के लिए पहले हम स्लेट-पट्टी पर *केवल लाइन (रेखा) डलवाने का कार्य सिखाएगे तथा* इस प्रयास को हम तब तक कराते रहेंगे जब तक कि लाइन 50 प्रतिशत से ऊपर कार्य शुद्ध हो जाए।

लाइन या रेखा–

- सीधी रेखा ————————————
- बिन्दुकित रेखा ....

यह कार्य कम से कम तीन दिन तक चलाना चाहिए। रेखा कार्य पूरा होने पर अगले समय मे गोल घेरा बनाने का कार्य सिखाना चाहिए।

गोल घेरा बनाने के लिए हम एक गीत का अनुकरण करेगे तथा बालको को गीत गवाएगे।

स्थायी– चदा गोल, सूरज गोल सारी दुनिया गोल मटोल,
रोटी गोल, पूडी गोल, तवा गोल चकला गोल।
लड्डू गोल, पेडा गोल, रस गुल्ला है गोल मटोल।।
मम्मी जी की चूड़ी गोल, दीदी जी की बिन्दी गोल,
लालाजी की तोद गोल, मास्टर जी का चश्मा गोल।
चक्की गोल, चक्का गोल, बस का पहिया गोल मटोल,
अण्डा गोल, गेद गोल, रथ का पहिया गोल मटोल।।

गोल घेरा बनाने के लिये सर्वप्रथम शिक्षक को स्लेट पट्टी पर बनाकर बताना होगा, फिर बालको से बनाने के लिए कहे। और 50 प्रतिशत से ऊपर शुद्धि तक पूर्ण स्थान रखना चाहिए।

स्वर ज्ञान– स्वर ज्ञान मात्र इतना दें कि बालक बोलना सीख जाए। 50 प्रतिशत लिखना बोलना सीखने पर बिना मात्रा वाले तथा एक अक्षर वाले सार्थक शब्द सिखाने चाहिए। साथ ही उनके (अर्थ) बताते जाए जिससे बालक समझ जाए कि अमुक अक्षर (शब्द) का क्या अर्थ होता है?

पाठ प्रारम्भ– कक्षा 1 व 2 के विद्यार्थियो को पढ़ाने के लिए पाठ इस प्रकार प्रारभ करेगे।

उदाहरण– (भाषा) ज्ञान के साथ शिक्षक पाठो को गिनती के रूप मे बच्चो को सिखाता जाए।

पाठ – 1. आधा अक्षर लिखना सीखें

पाठ – 2. पूरा अक्षर लिखना सीखें–

उ उ उ उ उ उ उ उ

पाठ - 3. अक्षर पर डण्डा लगाना सीखें–

अ अ अ अ अ अ अ अ अ

पाठ - 4. अक्षर पर रेखा खींचना

आ आ आ आ आ आ आ आ

अनुदेश— ☐ कक्षा 1 के बालक के पास भी पेसिल आवश्यक है।

- गोल घेरो को बनाना भी सिखाए।
- अन्त में पेंसिल से अभ्यास पुस्तिका मे खाली स्थानो मे गोल घेरा बनाने का निर्देश दे।

☐ शिक्षक पाठ मे आये बिन्दुकित गोलों के ऊपर बच्चों से पेसिल फिरवाए।

☐ स्लेट पर स्वय शिक्षक गोल घेरा बनाकर बताएगा तथा बालक को समझाएगा कि वह भी गोल घेरे बनाए। यह कार्य तब तक करवाया जाए जब

[illegible]
[illegible] हो।

- इस प्रकार शिक्षक पूरे साल तक लगातार कार्य करता, तथा अनुकरण वाचन भी अति आवश्यक है ही।
- स्वर व व्यंजन का कार्य पूर्ण होने पर एक अक्षर या शब्द "सार्थक शब्द" को श्याम पट्टी या बालक की अभ्यास पुस्तिका पर लिखकर पढ़ना लिखना समझाए।
- व्यंजन के प्रत्येक वर्ण का पाठ अलग से अंकित हो।
- अन्त में स्वर एवं व्यंजन का एक ही पाठ का निर्माण करना।

पुनरावृत्ति– एक बार एक पाठ का ऐसा निर्माण करना है कि स्वर एवं व्यजन की मिलावट हो तथा बच्चों से पढ़वाए। जब तक एक बच्चा पढ़ना लिखना अच्छी तरह सीख न लें तब एक अक्षर का पाठ देना होगा।

बाल उद्यान का निर्माण– बाल उद्यान की जमीन को जोतकर, खोदकर, बोकर, सीचकर आदि कृषि की वैज्ञानिक तकनीक प्रयोग करने पर पूरा बगीचा फलने फूलने लगेगा और चारो ओर सुगन्ध प्रसारित करेगा। बच्चे उस चमन की सैर का आनन्द प्राप्त करेगे।

अब बालकों का चमन रूपी बगीचा लग चुका है और पौधे अकुरित होने लगे है। अब शिक्षक रूपी माली को बाल रूपी चमन को ज्ञान रूपी जल से सींचना होगा। तब बालक पढ लिखकर फलदार पौधे बनेंगे। एक तरह से निकुज बन जायेगा। हा यह बात जरूर है कि कोई कुआ खुदवाता है, पानी कोई पीता है। शिक्षक को त्याग की भावना से कर्त्तव्य परायण होकर कार्य करना ही पड़ेगा। पारिश्रमिक तो उतना नहीं मिलता जितना मिलना चाहिए। सबसे बड़ी प्राप्ति संतोप रूपी मीठा फल है।

बालक कक्षा 1-2 में अध्ययन करते समय से सुन्दर लेखा कार्य करवाना शुरू कर देना चाहिए।

शिक्षक क्रिया

प्रत्येक बालक की अभ्यास पुस्तिका पर शिक्षक स्वय प्रतिदिन अ, आ, इ, ई से लेकर क्ष, त्र, ज्ञ तक पृष्ठ की प्रथम पक्ति मे सुन्दर लिखेगा तथा बालक एक लाइन छोड़कर पूरा पृष्ठ भरकर लायेगा जब शिक्षक अ, अक्षर का पाठ दे तब बाई तरफ तिथि जरूरी लिखे। दूसरे दिन जाच करते समय भी हस्ताक्षर के नीचे तारीख अवश्य लिखी जाए।

बाल गीत कक्षा 1 के लिये

अ. अनार के दाने खाओ।
आ आम को चूसते जाओ।
इ. इमली की चटख खटाई।
ई ईख से बनी मिठाई।
उ. उल्लू को मार भगाओ।
ऊ ऊट पर तुम चढ जाओ।
ए. एड़ी पर वजन सम्भालो।
ऐ. ऐनक आखों मे लगाओ।
ओ ओखली से कूटो धान।
औ. औरत भारत की शान।
अ अगूर का प्यारा गुच्छा।
अः अः अहा कितना अच्छा।।
क. कबूतर करो पहचान,
ख. खरगोश को न करना हैरान
ग. गणेश की करो आरती
घ घर है मां रोज झाड़ती
च. चरखा की करो पहचान इससे भारत बना महान
छ. छाता को तभी लगाओ धूप वर्षा मे तन को बचाओ।
ज. जलेबी बासी मत खाना
झ झरना मे रोज नहाना
ट. टमाटर खाओगे लाल-लाल हो जाओगे।
ठ. ठगी मत करना सीखो।
ड डलिया बनाना सीखो
ढ. ढक्कन से चीजे ढकते रोज गुरु को करो नमस्ते।
त. तरुवर की बैठो छांव
थ थरमस से लेना काम
द दरवाजा खुला रहने दो।
ध. धनी बनो
न. नल से तुम जल भरने दो।
प. पहिया मत रोज घुमाओ
फ रोज नये फल खाओ।

ब. बकरी को कभी न मारो रोजाना उसको देना चारा
भ. भक्तो की करो पहचान
म. मछली को करो न हैरान
य यज्ञ करो यश पाओगे
र. रस्सी से रथ खीचोगे।
ल. लकडी की लकुट बनाओ
व. वन मे तुम वृक्ष लगाओ।
श. सीटी न कभी बजाते हैं
ष षट्कोण छः कोणों को बोध कराते।
स. सरोता सुपारी काटता
ह. हल से किसान खेत जोतता
ऋ ऋषि के छुओ पैर
अ. से व्यजन सीखे शब्द बनाओ
ङ से क्रमांक
ण से बाण बनाओ।
क्ष. क + श से बनता है
त्र त् + र से बनता है।
ज्ञ. से ज्ञानी बनाकर नाम करो
' घर जाकर शाला का काम करो

अगले दिन से अ, आ से लेकर अ, अ. तक कम से कम 8 दिन तक अनुकरण वाचन एव लिखना सिखाए। इसके बाद व्यजन क से लेकर ज्ञ तक का अध्यापन कार्य करवाए।

मात्राओं का ज्ञान देने के लिए शिक्षक को खादी के कपड़े या पाकिट बोर्ड बनाना होगा। जिसकी नाप 1½-2 मी. रग सफेद हो तथा शिक्षक समाख्या परियोजना मे समझाई विधि के अनुसार 4-5 के कार्ड 5 रंग के हों। उन पर अक, अक्षर, शब्द आदि लिखकर पाकिट बोर्ड पर दिखाकर बालको को समझाना, सर्वप्रथम बालक का नाम लिखकर समझाना जिससे कि बच्चे अपना नाम पहचान सकें तथा वे अपनी स्लेट या दीवार पर बनी पट्टी पर शुद्ध लिखकर सीख जाए।

नाम का पूर्ण ज्ञान होने पर बालक को बिना मात्रा के अक्षर, शब्द तथा वाक्य सिखाना चाहिए।

जब बालक बिना मात्रा के अक्षर, शब्द, वाक्य पहचान ले तथा लिखना, बोलकर पढ़ना सीख जाए तब कही मात्रिक ज्ञान का प्रारम्भ करना चाहिए।

उदाहरण

अभ्यास पुस्तिका का नमूना

अ अ अ अ अ अ अ अ अ
अ अ अ अ अ अ अ अ अ
अ अ अ अ अ अ अ अ अ

पृष्ठ 2

आ आ आ आ आ आ आ आ आ
आ आ आ आ आ आ आ आ आ

- इस क्रम में शिक्षक प्रतिदिन अध्यापन मे सुन्दर लेख का कार्य कराए।
- जब कक्षा 3-4 में बालक आ जाये तो प्रतिदिन पाठ पुस्तक के पृष्ठ से लेकर सत्र पूर्ण होने तक एक पृष्ठ अभ्यास पुस्तिका मे नकल करने के लिये प्रेरित करें।
- उपस्थिति लेने के बाद कमजोर छात्रो को बुलाकर प्रतिदिन पुस्तक पढवाया करे।
- कक्षा 1 या 2 के छात्रो को स्वर, व्यजन का ज्ञान देने के बाद उनकी अभ्यास पुस्तिका मे स्वय शिक्षक बिना मात्रा वाले एक अक्षर के शब्दो का पाठ बनाएगा।

उदाहरण– अभ्यास पुस्तिका का स्वरूप पृष्ठ 3

अ. नही
ब. क्या
न. नही
स. हित
ज. जानना

शिक्षक प्रत्येक छात्र को उक्त अक्षरों को ऊची-नीचे (तोड-फोड़कर) अलग-अलग पाठ बनाकर दें तथा प्रतिदिन याद करवाए।

बिना मात्रा के दो अक्षर वाले पाठ का निर्माण निम्न विधि से करे .

पृष्ठ 4

अब अन बन सभ भर रथ
धन नल खर रज जल कण सब
बस वक

पृष्ठ 5

[illegible]

[illegible]

- ये शिक्षक पाठ इस तरह से हैं कि छात्र के आसपास की जानी पहचानी वस्तुओं के नाम आ जाए।
- इस प्रकार से तीन, चार, पांच, छः और सात अक्षर मिलाकर पाठ बनाए।
- इसी प्रकार से मात्राओं तथा गिनतियों का ज्ञान कराया जाए।
- शिक्षक छात्रों के शुद्ध वाचन व शुद्ध लेख पर अवश्य ध्यान दें।
- मात्राओं का ज्ञान देते समय अगला पाठ बनाए, तो इस बात का अवश्य ध्यान दें कि पूर्व में बताई गई मात्राएं छूटने न पाए।

उदाहरण

पृष्ठ 6

आ की मात्रा वाला पाठक

आम आग आज काक पाठ नाग शाग
चाचा काका दाल दादा पाग घना मामा
हरा पारा झाग

पृष्ठ 7

ि की मात्रा वाला पाठ

किला जिला शिला मिला विदा जानि मानि
हानि खिला पिला दिशा लिखा शिला निशा
हिना नाभि कितने निभाया पियाला सिया निशा
निभाना

- जहा तक हो शिक्षक प्रत्येक पाठ के अन्त मे चार से आठ लाइन की तुकान्त कविता की रचना कर बच्चों को मुखाग्र याद करवाएं।
- कहानी वाले पाठ चित्रांकन द्वारा समझाए जा सकते है।
- प्रति शनिवार को बाल सभा का आयोजन किया जाए।
- बाल सभा मे पहेली, पाठ्यपुस्तक की कविता, लोक भजन, लोकगीत, लोकनृत्य, क्षेत्रीय सगीत, देश भक्ति गीत, चित्रकला, नाटक, प्रहलन, फैन्सी ड्रेस, कहानिया, लोक कथा आदि का आयोजन करें।
- साधारण तौर पर वाद्य यत्र हो तो उत्तम होगा। जैसे छोटी-मोटी ढोलक, बैन्जो, बासुरी, खजरी, मंजीरा, चिमटा, डमरू आदि। सस्ती कीमत की चीजे क्रय की जाए। ये वस्तुए ऐसी लिखी हे कि चाहे तो शिक्षक थोडा प्रयास एव जन सम्पर्क कर तैयार कर सकते हैं।
- वाद्य यंत्रो का धीरे-धीरे बच्चो को प्रशिक्षण दे तो छात्र कुछ ही समय मे कामयाब हो जाएंगे।

अब बाल रूपी उद्यान मे पानी लगने लगा। बगीचा बढ़ोतरी की ओर अग्रसर है शिक्षक का पूर्ण विश्वास है कि बाल उद्यान मे सुगन्धित फूल खिलेंगे और फलेगा भी।

शिक्षक पाठों की पुनरावृत्ति बार-बार कराते रहे तथा शिक्षक को पूर्ण अधिकार है कि जैसे भी अपनी तरकीब से अध्यापन कार्य कराए लेकिन उनके द्वारा किया हुआ कार्य सराहनीय एव कामयाब रहे। □□

शिक्षण संख्या परियोजना
दलमित्रा शाला
जाटव कन्या आश्रम
करशाम, मुरैना
मध्य प्रदेश

भाषा शिक्षण की प्राचीन एवं नवीन विधि से प्राप्त उपलब्धि का अध्ययन

❐ सुधा पाण्डेय

श्रीमती सुधा पाण्डेय जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, राजस्थान में अध्यापक प्रशिक्षण कार्य में संलग्न हैं। इन्होंने भाषा शिक्षण प्रशिक्षण में एक नवीन पद्धति को अपनाया है। जिससे अधिगम प्रक्रिया छात्रों के लिए सरल व सरस बन जाती है। यह सर्वमान्य है कि भाषा शिक्षण अधिगम का माध्यम है। सम्पूर्ण शिक्षण की आधारशिला भाषा शिक्षण में निहित है। स्वाभाविक रूप से भाषा शिक्षण की कौशलताएं बाल विकास से जुड़ी हुई हैं। अध्यापन दक्षताएं अध्यापन के प्रति शिक्षण के दृष्टिकोण से संबंधित होती हैं। शिक्षार्थी शिक्षण प्रक्रिया की धुरी है। सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना यह स्वाभाविक विकास अवस्थाओं के साथ जुड़ा हुआ है। अन्वेषिका ने भाषा प्रशिक्षण में इसी स्वाभाविक प्रक्रिया को अपनाया। छात्रों को कविता, कहानी, चित्रपट्ट से पहले सुनने व बोलने का अभ्यास कराया। सुनना, बोलना एक मौखिक अभिव्यक्ति है। शब्द कार्ड की सहायता से शब्दों को बोलना और उससे जुड़े हुए शब्दों की पहचान कराई। शब्द से वर्ण, शब्द कार्ड तथा वर्ण कार्ड की सहायता से *गतिविधि आधारित शिक्षण प्रारंभ कराया।* मौखिक अभिव्यक्ति के बाद लिपि चिह्नों की सहायता से वर्ण रचना की ओर प्रेरित किया। वर्णो की पूरी पहचान के बाद वर्णमाला क्रम सिखाया। वर्णो और मात्राओं की पहचान के बाद लिखना सिखाया जिससे छात्रों का ज्ञान स्थायी हो गया। इन चारों कौशलों को विकसित करने के पश्चात् पाठ्यपुस्तक के अध्यायों का अभ्यास करवाया। इस सब शिक्षण प्रशिक्षण विधि के विकास में कुछ भाषा खेल बनाए जिनका वर्णन शिक्षक ने अपने इस आलेख में किया है।

विद्यालय का शैक्षणिक वातावरण व अध्यापक का सक्रिय व्यवहार अधिगमकर्ताओ की क्षमताओ को बढाने व विकसित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखने के कौशलो को अधिगम प्रक्रिया के साथ जोडना आवश्यक है। सुनना और सुनकर अर्थ ग्रहण करने की क्रिया से ही पढ़ने की रुचि उद्दीप्त होती है जिससे शब्द भंडार मे विकास होता है। प्रस्तुत लेख मे इस नवीन शिक्षण विधि की बहुत सी महत्वपूर्ण विशेषताएं बताई है जो निम्नलिखित है—

- अधिगम प्रक्रिया ज्यादा महत्वपूर्ण है।
- कक्षा मे उत्साही व जिज्ञासु वातावरण का सृजन होता है।
- भाषाई कौशल बडी रुचि से प्राप्त किया जा सकता है।
- रुचिकर शिक्षण प्रक्रिया बालको को सीखने के प्रति स्वतः प्रेरित करती है।
- रटने व लिखने की आवृत्ति की मानसिक यत्रणा से मुक्ति दिलाती है।
- कक्षा कक्ष में शिक्षक व बालक के बीच सौहार्द्रपूर्ण वातावरण निर्माण में सहायक।
- बालक की सृजनात्मकता का विकास करती है।
- प्रत्येक अभ्यास के साथ पृष्ठ पोपण मिल जाने से सीखने की पारगति स्तर का पहुचना सहज हो जाता है।
- व्यक्तिगत एव सामूहिक शिक्षण के लिए समान उपयोगी।
- मौखिक अभिव्यक्ति का विकास होने से अतिरिक्त आरभ विश्वास का सचार।

- [illegible]
- [illegible]
- [illegible] की क्षमता का विकास।
- [illegible] का विकास।
- [illegible] में सीखना, याद करना और प्रश्न पूछना।
- [illegible] में सीखने की गति बढ़ना।
- मनोवैज्ञानिक [illegible] की अधिगम प्रक्रिया एक स्वयं प्रेरणा और स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को बढ़ावा देती है।

अन्वेषिका द्वारा बताई गई विशेषताएं और अध्ययन अध्यापन में प्रस्तुत अध्यापकों के लिए सुझाव भाषा शिक्षण में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पढ़ने की दक्षता विकास किसी भी विषय को गहराई से समझने में है। इस विधि के अध्यापकों का उच्चारण शुद्ध व उचित होना चाहिए जो कि बालकों के अधिगम को प्रभावित करता है। इस भाषा शिक्षण विधि के साथ स्वाभाविक रूप से छात्रों में सामाजिक विषयों के मूल्यों का भी विकास होता है साथ साथ ये चिन्तन प्रक्रिया को उत्तेजित व प्रभावित करती है।

परिचय

भाषा मानव की नैसर्गिक शक्ति है उसके ज्ञान, विवेक और भावो की उद्भाविका शक्ति है। जन्म के साथ परिवेशीय भाषा बालक सीख लेता है पर कक्षा स्तरानुसार उसके ज्ञान मे अभिवर्धन करने तथा प्रसंगानुसार प्रयोग करने के लिए उसे व्यवस्थित और क्रमबद्ध ज्ञान देने की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु क्रमानुसार भाषा शिक्षण कार्य को नवीन शिक्षण तकनीकों का विस्तार कर अधिगम सरल बनाने का प्रयास किया जा रहा है। शब्द रूपी ज्योति से प्रदीप्त संसार मे रचने बसने के लिए बालको को भाषा की पहली किरण से आत्मसात् करने की कला सिखाना भी कला है। विद्यार्थियो को विद्यालयों मे अच्छी और सार्थक शिक्षा मिले उनके सीखने का स्तर सुधरे और व्यक्तित्व के सभी आवश्यक गुणों का विकास हो इसके लिए शिक्षण अधिगम सस्थितियों का सृजन प्रभावी ढंग से किया जाना चाहिए। मातृभाषा के द्वारा बालक शीघ्रता और सरलता से नया ज्ञान प्राप्त कर लेता है और सीखने की क्रिया सरल और स्वाभाविक लगती है।

भाषा के सही शिक्षण से ही बालक का भावात्मक एवं बौद्धिक विकास सच्चे एव स्वाभाविक रूप मे सम्भव है। भाषा शिक्षण की प्राचीन विधि मे शिक्षण शिक्षक द्वारा की जाने वाली एकागी प्रक्रिया है जिसमे बालक मात्र श्रोता होता है। अत. नीरस, निष्क्रिय और एकागी शिक्षण के कारण बाल मन अधिगम के प्रति उत्साह नहीं बना पाता है।

आवश्यकता

सम्पूर्ण शिक्षा की आधारशिला पहली कक्षा मे भाषा शिक्षण है। शिक्षण के बाल मनोविज्ञान ने शिक्षा की दृष्टि को ही बदल दिया है। बालक की रुचि, क्षमता, योग्यता और आवश्यकता के अनुरूप शिक्षण प्रक्रिया को अपनाना स्वीकार किया है। हमारे विद्यालयो मे पहली कक्षा मे भाषा शिक्षण की दोहरी परिस्थितिया चल रही है। अध्यापक विधालय मे नव प्रविष्ट बालकों को परम्परागत तरीके से चली आ रही शिक्षण प्रक्रिया के अनुसार पहले लिखने और फिर रटने मे प्रवृत्त कर देते है तो शिक्षाविद् बाल मनोविज्ञान और पाठ्यपुस्तके भाषा के कौशलो के अनुसार सीखने के लिये प्रेरित कर रहे है इस असमजस की स्थिति मे बालको की सीखने की गति व स्तर निरन्तर प्रभावित होता रहता है। एक तरफ भाषा शिक्षण की पनपती नवीन विधि है तो दूसरी ओर अध्यापक की अपने समय की सीखी प्राचीन विधि से शिक्षण व्यवस्था ने यह सोचने के लिए प्रेरित कर दिया है क्रि कौन-सी विधि भाषा शिक्षण के लिए मनोवैज्ञानिक और प्रभावकारी है। किस विधि से बालक की भाषा सीखने की उपलब्धि प्रभावित हो रही है। कक्षा शिक्षण मे किस विधि को अपनाना चाहिए। इस शोध के द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि भाषा ज्ञान प्राप्त करने के लिए उद्धत उन नव प्रसूनो को कौन-सी विधि प्रभावित करती है? तथा उनके अधिगम को सरल व स्थायी बनाने

मे सहायक है। पहली कक्षा मे भाषा शिक्षण के दौरान बालक के अधिगम को स्वाभाविक बनाने वाले कारक कौन-कौन से है, इनका पता लगाना तथा भाषा शिक्षण की प्राचीन व नवीन विधि मे बालको की भाषायी दक्षता किस विधि से संपुष्ट होती है। उसको जानना तथा उसकी प्रतिपुष्टि के लिए क्या-क्या प्रयास किए जा सकते है। इसका अध्ययन करने हेतु यह प्रयास किया गया है।

उद्देश्य

- ☐ भाषा शिक्षण की प्राचीन व नवीन विधि की शिक्षण प्रक्रिया के अन्तर स्पष्ट करना।
- ☐ प्राचीन व नवीन शिक्षण विधियों द्वारा हो रही बालको की भाषायी उपलब्धि का अन्तर ज्ञात करना।
- ☐ भाषा शिक्षण की प्राचीन विधि के प्रति शिक्षकों व अभिभावको के रुझान के कारणो का पता लगाना।
- ☐ भाषा शिक्षण की नवीन विधि से बालको के भाषायी स्तर व रुचि को प्रभावित करने वाले कारको का पता लगाना।

प्रकल्पना

प्राचीन विधि की अपेक्षा नवीन विधि से भाषा शिक्षण करवाने पर बालको की उपलब्धि अधिक रहती है।

अध्ययन अवधि

यह शोध कार्य जुलाई 94 से प्रारभ कर मार्च 95 तक पहली कक्षा के बालको पर चलाया।

न्यादर्श चयन

समाविष्ट मे प्रत्येक अवयव का मापन करना प्रायः सभव नही है इसलिए अवयवो का एक न्यादर्श चयन किया जाता है तथा उसका-मापन किया जाता है तब समष्टि के बारे मे निष्कर्ष इस सूचना के आधार पर ही लिया जाता है। प्रस्तुत शोध में गढ़ी पचायत समिति लेब एरिया क्षेत्र के तीन प्राथमिक विद्यालयों के 80 बालक तथा 70 बालिकाए व 6 उच्च प्राथमिक विद्यालयो के 204 बालक व 52 बालिकाओ को सम्मिलित किया गया है।

सीमांकन

प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों मे जुलाई 94 मे पहली कक्षा मे प्रविष्ट 406 बालक, बालिकाओ व उन्हे पढाने वाले नौ भाषा शिक्षको को सम्मिलित किया गया है। इनके लिए शिक्षण अधिगम सस्थितियो का सृजन करते हुए उपलब्धि ज्ञात की गई।

विधि

यह शोध प्रयोगात्मक विधि के समानान्तर या समकक्ष समूह प्रयोग प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न किया गया।

उपकरण

प्रस्तुत शोध हेतु निम्नलिखित उपकरण तैयार किए—

- ☐ न्यूनतम स्तर निर्धारण-पूर्व जाच-पत्र
- ☐ प्रयोग उत्तर मूल्याकन पत्र
- ☐ साक्षात्कार अनुसूची
  (अध्यापकों, प्रधानाध्यापको व अभिभावकों से)
- ☐ व्यवहारगत परिवर्तन सूची।

क्रियान्विति

अन्वेषिका के अब तक के अध्ययनो की समीक्षा ने यह संकेत दिया है कि अध्यापन क्षमताएं अध्यापन के प्रति शिक्षक के दृष्टिकोण से सम्बन्धित होती है। एक अध्यापक जिसका अध्यापन के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण है वह निश्चित रूप से अध्यापन क्षमताओ के विकास के लिए उन्मुख होगा।

नवीन शिक्षण विधि के प्रति शिक्षकों मे रुझान पैदा करने व शोध की सफल क्रियान्विति हेतु चयनित विद्यालयों के भाषा शिक्षकों को 12 जुलाई तक भाषा शिक्षण की नवीन विधि का तीन दिवसीय प्रशिक्षण दिया गया। प्रत्येक विद्यालय को चित्र कार्ड, शब्द कार्ड, वर्ण कार्ड, कहानी कार्ड व गीत कविता युक्त भाषा मंजूषा दिया गया। चयनित विद्यालयों के पहली कक्षा में नव

[illegible]

प्रायोगिक वर्ग "अ"

[illegible] शिक्षण अधिगम प्रक्रिया [illegible] महत्त्वपूर्ण है। [illegible] प्रशिक्षणार्थियों द्वारा [illegible] व्यवहार के अवलोकन को [illegible] अनुकूल परिणाम पाने मे महत्त्वपूर्ण माना है। इसी क्रम मे संस्थान मे भाषा शिक्षण का प्रशिक्षण लिए अध्यापकों ने एक वर्ष "प्रायोगिक वर्ग" को नवीन विधि से भाषा शिक्षण दिया। कविता, कहानी, चित्र पठन से पहले सुनना, बोलना का अभ्यास दिया गया। मौखिक अभिव्यक्ति का अच्छा अभ्यास कराया गया। शब्द कार्ड की सहायता से शब्दो को बोलना और उनमे वर्ण की पहचान का अभ्यास पन्द्रह दिन तक करवाया गया। शब्द से वर्ण, शब्द कार्ड व वर्ण कार्ड की सहायता से गतिविधि आधारित शिक्षण का प्रारम्भ हुआ। चित्र मे शब्द की पहचान और पृथक से शब्दो का अभ्यास शब्द कार्ड की सहायता से शब्द और वर्ण की पहचान करवाई गई।

प्रथम दो माह तक पहचान, बोलने और पढ़ना सिखाने का अभ्यास कराने के वाद लिपि चिन्हो की सहायता से वर्ण रचना की ओर प्रेरित किया। अध्यापक का सक्रिय व्यवहार बड़ा प्रभावी रहा। इस क्रम से शिक्षण करवाने से वालकों की अधिगम रुचि और गति उत्साहवर्धक रही। वर्णो की पूर्ण पहचान हो जाने पर उन्हे इकाई परख के अनुसार वर्णमाला क्रम सिखाया गया। प्रारम्भिक दो माह तक ऐसे ही वर्णो व मात्राओं की पहचान के बाद लिखना सिखाने पर इनका ज्ञान स्थायी बन गया।

इसी शिक्षण विधि से पाठ्यपुस्तक के पात्रों का अध्यापन व अभ्यास करवाया गया जिसे वे स्वाभाविक गति से ग्रहण करते हुए आगे बढने लगे।

अध्यापक का जोश और उत्साह बालकों के जोश और उत्साह को बढ़ाना है जो उसकी उपलब्धि को प्रभावित करता है। इसके लिए, कुछ खेल बनाए गए ताकि बालक खेल-खेल मे नवीन जानकारी प्राप्त करता जाए।

- एक वृत्ताकार बोर्ड बनाया जिस पर बारह शब्द अलग अलग कॉलम मे लिखे। एक पर एक सकेत सूचक लगाया जिसे घुमाते हुए अध्यापक उस शब्द को पढ़ने के लिए प्रेरित करता जिसे देखकर बालक उस शब्द को पढता जाए, दूसरे तरीके मे अध्यापक शब्द बोले और बालक सकेत सूचक घुमाते हुए उस शब्द को इगित करें। इस तरह शब्दों व वर्णो की पहचान तथा पढने की प्रभावी प्रक्रिया अपनाई गई।
- गत्ते, थर्माकोल व टायर-ट्यूब से वर्णो की आकृति वनाने वाले लिपि चिह्न बनाए। प्रथम इन लिपि चिन्हो को छोड़कर वर्ण व शब्द बनाने का खेल फिर वैसी ही आकृतियों को स्लेट या अभ्यास पुस्तिका पर उभारने का अभ्यास दिया, कौन इन चिन्हो से ज्यादा से ज्यादा वर्ण और शब्द बना सकता है कि स्पर्धा मे सभी बालक सक्रिय और तत्पर बन गए।

नियंत्रित वर्ग "ब"

शिक्षकों का यह मानना है कि जिस तरह से हमने पढ़ना लिखना सीखा है। वह अच्छा तरीका है इससे बच्चो का ज्ञान पक्का होता है। इसलिए हमारे प्राचीन समय से यह विधि चली आ रही है। इसमे जैसे ही बालक विद्यालय में प्रविष्ट होता है शिक्षक उसे स्लेट पर अ आ इ ई वर्णमाला लेखन का अभ्यास कराता है। इसके बाद इसे पढ़ना और फिर वर्णो को जोड़कर शब्द बनाना। ऐसे ही पाठ पढ़ना सिखाया जाता है।

वर्ग "ब" को उन्ही शिक्षको ने परपरागत तरीके से पहले लिखना-पढ़ना और पढ़ने की प्रक्रिया से शिक्षण किया। अध्यापक के एकरस नियत्रित और व उदासीन शिक्षण व्यवहार ने बालकों के अधिगम को प्रभावित किया। अभिभावकों की इच्छा थी कि बच्चा स्लेट पर प्रतिदिन कुछ लिख लाए व लिखना सीखा है कि पूर्ति

शिक्षण की इस विधि से हो रही थी।

विद्यार्थियो की स्वेच्छा से सीखने की अपेक्षा शिक्षक छात्रो से यह अपेक्षा करते हैं कि वे पढना, लिखना सीखें क्योकि इन्हे सीखने को कहा गया है (ब्लेयर 1997)। पर अध्यापक द्वारा दिया गया काम उनकी रुचि और परिचित आवश्यकता के अनुरूप नही होता है तो वे सीखने से इन्कार कर देते है। बाध्यता मे पाया गया ज्ञान मस्तिष्क मे जमा नही रह सकता है। विद्यार्थियो से व्यक्तिगत सपर्क और प्रेरणात्मक परिस्थितिया ही उन्हे सीखने के लिए प्रेरित करती है।

प्रायोगिक वर्ग तथा नियत्रित वर्ग मे अन्वेपिका ने तुलना की। लेब एरिया के चयनित विद्यालयों मे जुलाई 94 मे प्रविष्ट बालक/बालिकाए इसमे सम्मिलित किए गए है। विद्यालयी वातावरण बालको को सीखने मे कितना सहयोग प्रदान करता है यह जानने के लिए ही नवीन सस्थितियों का सृजन किया गया। शोध मे प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयो का चयन किया जिसमे ग्रामीण और तहसील स्तर के विद्यालयो को सम्मिलित किया है। शोध कार्य पहली कक्षा मे प्रविष्ट होने वाले विभिन्न आयु स्तर के बच्चो पर किया।

इस शोध कार्य की तुलना करने के लिए साख्यिकी का प्रयोग किया। इस शोध कार्य का निष्कर्ष कुछ इस प्रकार से है।

प्रायोगिक वर्ग के छात्र शिक्षण अधिक गहराई से ग्रहण करते है नियत्रित वर्ग की तुलना मे। गतिविधि आधारित शिक्षण, रोचक शिक्षण व्यवहार और शिक्षण मे विविधता ने स्पष्ट किया कि आयु का सीखने की गति पर नकारात्मक प्रभाव नहीं होता है। प्रासगिक स्तर पर मनोवैज्ञानिक तरीके से दिया गया पठन व्यवहार बाल जिज्ञासा, रुचिपूर्ण व उत्साह को जगाने वाला पाया गया है। विविधता भरी शिक्षण सामग्री बालको की बौद्धिक क्षमता को उदीप्त करने, उनकी क्रिया शक्ति को अनुप्रणित करने और सक्रिय बनाने मे प्रभावी हो रही है।

प्रस्तुत शोध मे आयु-वर्ग के साथ जाति वर्गानुसार बालको की स्थिति व अधिगम प्रभावो का अध्ययन भी किया गया जिससे आकड़ो के विश्लेषण से यह पता लगता है कि किसी भी वर्ग समुदाय से सबधित बालक/ बालिकाएं हैं, यदि उन्हे समुचित शिक्षण विधि से अधिगम के अवसर मिलें तो उनकी दक्षता निश्चित ही बढती है। विद्यालय का शैक्षिक वातावरण और अध्यापक का सक्रिय व्यवहार अधिगमकर्ताओ की क्षमताओ को बढाने और विकसित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। इस बात को वेबर और कपूर (1973) ने अवलोकनो के द्वारा और अधिक पुष्ट बनाया है कि क्षमताओ का निर्धारण करने मे ज्ञान के मानदण्ड तथा परिणाम मानदण्ड की आवश्यकता होती है।

भाषागत अधिगम मे सामान्यत· भाषाई इकाई वाक्य, शब्द और वर्ण तक पहुचना बनी हुई है। सावधानीपूर्वक नियोजित चरणो के क्रम मे यह इकाई अधिक उपलब्धि प्रदान करती है। सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना के कौशलो के उनके उपकौशलों को शिक्षक द्वारा अधिगम-कर्ताओं के सामने भाषा कक्षा मे प्रस्तुत के साथ जुडी हुई है। अध्यापक का पहला और आवश्यक कर्तव्य है कि बालक को नए शब्दो का प्रयोग करते समय शुद्ध बोलने और लिखने की दक्षता तक लाना। डवीन और आइटेन ने वर्णन किया है कि ये प्रकरण का प्रस्तुतीकरण उनके क्रम और क्षेत्र का व्यवहार सभी शैक्षिक और भाषागत अनुमान के साथ-साथ हमारी तात्कालिक सीखने की प्रक्रिया पर निर्भर करती है।

शोध कार्य के अन्तर्गत यह अनुभव किया गया कि अच्छी शिक्षण अधिगम सस्थितिया किसी भी परिवेश से आने वाले बालक को प्रभावित करती है। यद्यपि अच्छे शैक्षिक परिवेश के बालको की अर्थ ग्रहण क्षमता बढ़ जाती है तथापि सामान्य परिवेश वाले बच्चे भी रुचिकर विधि से किए गए शिक्षण का सहज अधिगम कर लेते है। सामान्य और शैक्षिक वातावरण सहित बच्चो को कक्षा कक्ष का वातावरण और अधिक आकर्षित करता है। यह नवीनता के प्रति उद्यत होते हैं– जिससे उनकी सीखने की गति तीव्र हो जाती है। अध्यापक का मौखिक और अमौखिक व्यवहार शिक्षण सामग्री का उपयोग तथा विद्यार्थियो के वाछित उत्तरो का पुनर्बलन विद्यार्थियो और अध्यापक के साथ उनके अच्छे सबंधों का अहसास कराता है।

उम्र के अनुसार दोनो वर्गो के बालक समान रूप से चले। अ.ज.जा /अ जा वर्ग के व अन्य सभी वर्गो के बालको को भाषा ज्ञान की नवीन प्रविधि प्रभावित कर रही है।

अभिभावको की शैक्षिक व सामाजिक स्थिति दोनों

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आंकड़ों का विश्लेषण

- □ प्रायोगिक वर्ग का मध्यमान 16.30 व नियंत्रित वर्ग का मध्यमान 12 है। एस.डी. प्रायोगिक वर्ग की 18 है जबकि नियंत्रित वर्ग की 13.57 है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रायोगिक वर्ग की उपलब्धि अधिक है।
- □ टी-मूल्य 2.62 यह दर्शाता है कि दोनों वर्गों का मध्यमान अंतर विश्वसनीयता के .05 स्तर बना है।
- □ दो विद्यालयों के प्रयोगिक वर्ग के बालकों ने 80% उपलब्धि पाई। प्रयोगाधीन समूह के मापाक नियन्त्रित समूह के मापाक से सार्थक रूप से अधिक है अतः निष्कर्ष रूप मे कहना होगा कि भाषा शिक्षण की नवीन विधि का प्रभाव वाछनीय व्यवहारों पर पड़ा है।

नवीन शिक्षण विधि की विशेषताएं

- अधिगम प्रक्रिया ज्यादा महत्वपूर्ण है।
- कक्षा में उत्साह व जिज्ञासु वातावरण का सृजन होता है।
- भाषाई कौशल बड़ी रुचि से प्राप्त किया जा सकता है।
- रुचिकर शिक्षण प्रक्रिया बालको को सीखने के प्रति स्वतः प्रेरित करती है।
- पठन व लिखन की आवृत्ति की मानसिक यंत्रणा से मुक्ति दिलाती है।
- कक्षा कक्ष मे शिक्षक व बालक के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण निर्माण मे सहायक।
- बालक की सृजनात्मकता का विकास करती है।
- प्रत्येक अभ्यास के साथ पृष्ठ पोषण मिल जाने से सीखने की पारंगति स्तर तक पहुंचाना सहज हो जाता है।
- व्यक्तिगत एव सामूहिक शिक्षण के लिए समान उपयोगी।
- मौखिक अभिव्यक्ति का विकास होने से अतिरिक्त आत्म विश्वास का सचार।
- शिक्षण सामग्री की पर्याप्तता और उसका समुचित उपयोग।
- बालकों के स्तर व रुचि के अनुरूप।
- शिक्षक का दिशा बोधन और बालकों का आपस में व सामग्री से स्वय सीखने का उत्साह।
- चित्रों का भाषिक विश्लेषण करने की क्षमता का विकास।
- ध्यानपूर्वक सुनने की दक्षता का विकास।
- अवलोकन से सीखना, याद करना और प्रश्न पूछना।
- एकाग्रता बढ़ने से सीखने की गति बढ़ाना।
- मनोवैज्ञानिक तरीके की अधिगम प्रक्रिया एक स्वस्थ प्रेरणा और स्वतत्र अभिव्यक्ति को बढ़ावा देती है।

चयनित विद्यालयों की पहली कक्षा में भाषा शिक्षण कराने वाले शिक्षकों के शिक्षण विधि के बारे में अभिव्यक्ति सुझाव

- □ बालक देखकर पहचानने की क्रिया में अधिक सक्रिय रहता है। अत. विभिन्न कार्ड की सहायता से पहचान करवाना अधिगम को स्थायी और स्वाभाविक बनाने वाला है।
- □ बालको को रटना सिखाना ठीक नहीं है। पढ़ने की दक्षता आ जाने पर किसी भी तरह की पठन सामग्री को सहज ग्रहण कर लेते हैं।

- ☐ नवीन विधि से भाषा ज्ञान प्राप्त करने पर उसका आवश्यकतानुसार उपयोग कर लेना बालको के लिए स्वाभाविक क्रिया बन जाती है।
- ☐ बालको के व्यक्तिगत व्यवहार के साथ-साथ सामूहिक व्यवहार की दृष्टि से नवीन विधि ज्यादा प्रभावकारी रही है।
- ☐ नवीन विधि से बालक की जिज्ञासा प्रवृत्ति मे वृद्धि हुई है। बालक स्वाभाविक गति से पूछता हुआ सीखता है, रटने और मूक लिखने के बोझ से मुक्त होता है।
- ☐ बालको में प्रतिस्पर्धात्मक भावना का विकास हुआ है।
- ☐ बालको मे व्यवहारगत परिवर्तन परिलक्षित हुआ है।
    - कक्षा दक्ष व्यवहार मे नियमितता, उत्साह और सक्रियता दिखाई देती है।
    - अध्यापको के साथ एक साथी और जिज्ञासु शिष्य का भाव विकसित हुआ है।
- ☐ वस्तुत यह शिक्षण विधि अध्यापक के बोझ को हल्का करने वाली है।
- ☐ दक्षता आधारित इस शिक्षण प्रक्रिया ने उच्च कक्षाओ मे आने वाली भाषाई कमजोरी को दूर कर दिया है।

पूर्व मे जिन अध्यापकों का नवीन विधि के प्रति बिल्कुल नकारात्मक रवैया था। उनका मानना था कि अन्वेषक से अध्यापको द्वारा सिखाया गया भाषा शिक्षण का तरीका अच्छा है व इससे ज्ञान पक्का होता है साथ ही बालक को जो विधि सहज व स्वाभाविक लगे उसी का शिक्षण मे प्रयोग होना चाहिए। प्रयोगाधीन वर्ष के दौरान विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से बालकों के उत्साह मे वर्धन देखा तो इस सोच के शिक्षक भी नवीन विधि से स्वीकार करने लगे।

प्रधानाध्यापकों के नवीन शिक्षण विधि संबंधी अभिमत व सुझाव

- ☐ नवीन विधि से शिक्षण कराने मे अध्यापको व बालको मे निकटता के सबंध बनते है और इससे प्रक्रिया सहज हो जाती है।
- ☐ विद्यालय परिवेश मे सजीव वातावरण और नवीनता का माहौल बना है।
- ☐ इस विधि से शिक्षण कराने मे बालको की मौखिक अभिव्यक्ति सशक्त बनती है जो लिखित अभिव्यक्ति को आधार देती है।
- ☐ बालको के व्यवहारगत प्रतिफलो ने अभिभावको के उत्साह को बढ़ाया है।
- ☐ पठन अभ्यास हो जाने से आगे की कक्षाओं मे आने वाली वाचन सबधी कमजोरिया दूर हो जाएगी।
- ☐ यह विधि तभी सफल हो सकती है जब शिक्षक कक्षा कक्ष मे सक्रिय रहकर विभिन्न अधिगम स्थितियो का सृजन करने को तत्पर रहे।
- ☐ अधिगम सामग्री का निर्माण और उसका समुचित उपयोग इसकी प्रथम आवश्यकता है।
- ☐ मातृभाषा की अभिव्यक्ति की सहजता ने भाषा शिक्षण के रूपातरित स्वरूप को व्यापक बनाया है।
- ☐ नवीन विधि से भाषा शिक्षण प्रशिक्षण ने अध्यापको की सोच को नई दिशा दी है।
- ☐ भाषा शिक्षण के विविधता भरे शिक्षण से विद्यालय के अन्य अध्यापको ने कक्षाओ मे उत्साह व जिज्ञासा का वातावरण बनाया है।
- ☐ सभी विद्यालयो की पहली कक्षा मे भाषा शिक्षण इस नवीन विधि से पढ़ाया जाना चाहिए जिससे भाषा शिक्षण के प्रभावित परिणाम प्राप्त हो सकें।

अभिभावकों को अभिमत

लिखना सीखने से बालक की याददाश्त मजबूत होती है साथ ही आज बालक ने विद्यालय मे क्या पढा, का प्रमाण उसकी स्लेट पर लिखी हुई सामग्री है, में विश्वास करने वाले अभिभावको ने प्रारभ मे इस तरह के शिक्षण का बहुत विरोध किया। उनके अनुसार यह नवीन विधि तो अध्यापकों का पढ़ाने से बचने का तरीका है पर बालको के उत्साह ने व उनके सीखे हुए ज्ञान के स्थानातरित करने के कौशल से वे प्रभावित हुए। शिक्षित अभिभावको ने बालक के सामने समानातर परिस्थितियां रखकर उनकी दक्षता को जाचने का प्रयास किया तो

[illegible] के बाद बालकों की मौखिक अभिव्यक्ति [illegible] सामग्री के माध्यम से [illegible] में सम्पूर्ण होने [illegible] बालकों की [illegible] अभिभावकों के सहयोग का [illegible] अनुभव करने लगे कि–

- इस शोध से बालकों में रचनात्मकता का विकास हुआ है।
- बालकों के समय का पूरा उपयोग होता है व नवीनता के प्रति [illegible] सजग होता है।
- बालकों में पाठ्येतर सामग्री पढ़ने की दक्षता विकसित हुई है।

निष्कर्ष

- ☐ भाषा शिक्षण की प्राचीन व नवीन विधि का शिक्षण कराने पर बालकों के भाषाई व्यवहारगत प्रतिफलों में अन्तर पाया गया है।
- ☐ शोध आकड़ो के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो रहा है कि रोचक शिक्षण विधि किसी भी उम्र वर्ग और परिवेश के बालकों के अधिगम को प्रभावित करती है।
- ☐ शोध निष्कर्ष से प्राक्कल्पना सही बन रही है कि प्राचीन विधि की अपेक्षा नवीन विधि से भाषा शिक्षण कराने पर बालको की उपलब्धि अधिक रहती है।
- ☐ पूर्व जाच व उत्तर जाच मे प्रायोगिक वर्ग और नियंत्रित वर्ग को समान प्रश्न-पत्र दिए गए थे जिसके परिणामों की तुलना मे प्रायोगिक वर्ग अच्छी उपलब्धि पा गया। इस वर्ग ने नियंत्रित वर्ग की अपेक्षा वाक्य, शब्द वर्ग, पाठ पठन व रचना मे 90% पारगति प्राप्त कर ली है जबकि दूसरे वर्ग के 40% विद्यार्थी ही 50% स्तर पर पहुच पाए।
- ☐ उक्त जांच के दौरान यह बात स्पष्ट हुई कि अर्थग्रहण और ज्ञानोपयोगी प्रश्नो को प्रायोगिक वर्ग के बालको मे नियन्त्रित वर्ग की अपेक्षा बेहतर ढग से हल किया।
- ☐ शोध कार्य के दौरान यह अनुभव किया गया कि यदि वालक मे सुनने-बोलने और पढने की दक्षता विकसित हो जाती हे तो लिखने की दक्षता मे ज्यादा कठिनाई नही आती है।
- ☐ शब्द, वर्ण, कार्ड, कहानी, कविता, गीत बालक के शब्द भण्डार मे वृद्धि करते हैं तथा उसके अधिगम का सशक्त आधार बनते हैं।
- ☐ वर्णमाला के अनुसार वर्णो को लिखवाने और रटवाने से दबाव पूर्ण वातावरण बनता है। अनुकूल शिक्षण अधिगम सस्थितियों का सृजन कर बालक को देखने, सुनने और बोलने के अधिकाधिक अवसर प्रदान किए। जांच व पहचान ही सीखने की नीव है। इसी तरह के सीखे वर्णो को यह बाद मे क्रमवद्ध रूप मे पहचान लेता है।
- ☐ पहली कक्षा के बालक अपनी परिवेशीय वस्तुओं, गीतो और कविताओ में ज्यादा रुचि लेते है।
- ☐ अनुपयोगी सामग्री से अधिगम सामग्री बनाना जैसे– साईकल के टायर-ट्यूब, टूटी हवाई चप्पल, थर्माकोल व माचिस की डिबिया आदि से शब्दो व वर्णो की रचना करना तथा उन्हें बालको के अधिगम अभ्यास मे व्यवहारगत करना नवीन वातावरण सृजन का एक अग वन गया।

अध्यापक का शुद्ध उच्चारण और सही शिक्षण विधि वालको की अधिगम प्रेरणा को प्रभावित करती है। प्रतिदिन वर्णमाला के वर्णो का क्रम से व प्रथम से उसे अभ्यास देने की अपेक्षा चित्र कार्ड, शब्द कार्ड की सहायता से उनकी आकृति व उच्चारण से परिचित कराना उनकी स्मृति को ठोस आधार प्रदान करता है। वर्णो की पूर्ण पहचान हो जाने पर वे वर्णमाला क्रम मे भी सीख लेते है। अत यह स्पष्ट हो रहा है कि वर्णमाला क्रम से वर्णो की सीखने की अपेक्षा बालको को परिचित शब्दों से वर्णो की पहचान कराना अधिगम से सहायता कराना और स्वाभाविकता लाता है।

बालको के लिए सर्वोत्तम शिक्षण विधि यही मानी जाती है जिसमे उन्हें नए एव खेल के माध्यम से स्वतत्रतापूर्वक आत्मविकास के अवसर मिले। भाषा शिक्षण की नवीन विधि द्वारा बालको मे सीखने के प्रति रुचि, लगन व निष्ठा बनी रहती है और उनमें किसी प्रकार का प्रतिरोध या कुन्ठा पैदा नही होती है। शिक्षक

की संस्थितिकरण शिक्षण क्रियाओ को सरल स्वाभाविक बना देती है। अत नवीन विधि से भाषा शिक्षण करवाना शिक्षकों व बालको दोनो के लिए सुग्राह्य है। पढने और लिखने की शिक्षण प्रक्रिया का परस्पर घनिष्ठ सबध है। हिन्दी जैसी ध्वन्यात्मक भाषा के लिए दोनो कौशलो (पढना-लिखना) हेतु वर्ण परिचय आवश्यक है। पर मनोवैज्ञानिको के अनुसार बालक के लिए पढ़ना, लिखने की अपेक्षा सरल क्रिया है। अत' इसे पहले प्रारंभ किया जाए और बालकों की अक्षरो मे रुचि नही होती है वे सार्थक शब्दो के भाव आसानी से ग्रहण करते है इसलिए उन्हें शब्द द्वारा अक्षर ज्ञान व लेख कराना चाहिए। इस शिक्षण विधि मे बालकों की वैयक्तिक विभिन्नता, दोष, *शब्द भडार की अल्पता व लेखन की कमजोरी आदि* कमियो को इस तरह के शिक्षण व्यवहार से हल किया जा सकता है। शिक्षक इस विधि से अनेक अध्यायो की रचना कर शब्दो का विभिन्न परिस्थितियो मे प्रयोग करवा सकता है।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगो से सिद्ध हो रहा है कि भाषा का हमारी बुद्धि एव उसके विकास से अभिन्न सबध है। भाषा ही हमारी बुद्धि की क्रियाशीलता, कुशाग्रता एव प्रखरता का भी कारण सिद्ध होती है। क्योंकि यह चिन्तन क्रिया को सतत् उत्तेजित और प्रवाहित रखती है। मानव की इस अपरिचित शक्ति को जगाने और सशक्त बनाने वाली पीढी प्रारभिक स्तर पर भाषा शिक्षण की प्रक्रिया ही है। भाषा सीखना मानव की स्वाभाविक एव स्वत स्फूर्त शक्ति है इसी को सही दिशा देने का प्रयास भाषा शिक्षण मे करना है।

भाषा शिक्षण की सहज, स्वाभाविक, रोचक व नवीन विधि ने सुन्दर पाठ भूमि का निर्माण किया व वर्षो से चली आ रही वर्ण शिक्षण, रटन प्रवृत्ति को कमजोर बनाया। परंपरागत त्रासवादी, बाल विरोधी, अध्यापक केन्द्रित शिक्षण पद्धति के विपरीत प्रेमाभ्यास पर आधारित नए प्रकार का शिक्षण है। तनाव से मुक्त स्वछद वातावरण मे खेलने और काम करने का प्रेरक माहौल मिलता है। भाषा शिक्षण की प्रक्रिया मे अध्यापको के व्यवहार के साथ अभिभावको की विचारधारा को भी स्वीकार किया है कि घर में भी उन्हे माता-पिता से शिक्षण का वैसा ही व्यवहार मिले जो विद्यालय में मिलता है ताकि उनकी असमजस की स्थिति नहीं रहे। अधिगम स्वतत्रता, स्वनिर्माता, स्वानुशासन और सृजन की बुनियाद पर आधारित भाषा शिक्षण की यह नवीन विधि ज्यादा प्रभावशाली और रोचक सिद्ध हो रही है। बालको को सीखने के प्रति अभिप्रेरित करने, आकर्षित करने, उसकी रुचि और उत्सुकता को जागृत करने मे यह पद्धति प्रभावी रही है। *गीत अभिनव व खेल बालको की अधिगम क्षमता* को बढाते हैं।

बालको को उत्साह जनक व नवीन सस्थिति प्रदान करने वाला शिक्षक स्वयं नवोंन्मेषी दृष्टि से युक्त बना। शिक्षक, शिक्षा व शिक्षार्थी तीनो की क्रियाए प्रबल बनी। शिक्षक की शिक्षण क्षमताओं का वर्धन समूचे वातावरण को सरस और जीवत बनाने लगा।

प्रस्तुत प्रयोगात्मक व्यवहारो को प्रशिक्षण कार्यक्रमो मे नियमित रूप से बनाए रखने मे शिक्षको की भाषा शिक्षण की मानसिकता और आदतो मे बदलाव परिलक्षित होने लगा।

इस तरह के शिक्षण अधिगम व्यवहार मे अनुपयोगी और अल्पव्ययी सामग्री से शिक्षण सामग्री का निर्माण अध्यापक की रचनात्मक और सक्रियता का पोषण करता है। साथ ही बालक की भाषा अधिगम की रुचि उसके समग्र ज्ञानार्जन की आधारशिला व व्यक्तित्व निर्माण में सहायक बनती है।

आशा है भाषा शिक्षण के नवीन परिवेश मे पल्लवित होते नवकुसुमो की शोभा समूचे वातावरण को सुवासित कर देगी और पर्याप्त कण को अपने मे समा लेगी।

❑❑

जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान
गढ़ी, बांसवाड़ा, राजस्थान

प्राथमिक स्तर पर विभिन्न कार्यकलापों द्वारा पर्यावरण अध्ययन संवर्धन

☐ खमर ताज

बालकों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण उनके वातावरण, आस-पास, अपने परिवेश, अपनी संस्कृति, सभ्यता, घर के संस्कार, रीति-रिवाज आदि पर निर्भर करता है। यह तो मानी हुई बात है कि बच्चों की प्रथम शिक्षा उनके निकटस्थ परिवेश से ही प्रारंभ होती है। आधुनिक शिक्षा का पाठ्यक्रम भी इसी के आधार पर तैयार किया गया है जिससे बच्चों का सर्वांगीण विकास हो सके। ऐसे में बच्चों के लिए एक स्वच्छ, परिशुद्ध और आदर्श परिवेश देना हर उस व्यक्ति का कर्तव्य है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बच्चों के जीवन से संबंध रखते है। उन्हे हर ऐसी चीज, हर ऐसा अवसर प्रदान करना है जो बच्चों मे ज्ञान अर्जित करने की जिज्ञासा बढ़ाए।

आज के इस युग मे जब मानव अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं के लिए एक-दूसरे पर निर्भर है, वहा मानवीय संबंधों का महत्व बढ़ गया है। सामाजिक पर्यावरण अध्ययन आज के बालक को उचित जागृति प्रदान करता है।

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य तो मानव संसाधनों का विकास करना है। शिक्षा के द्वारा जहा बालक बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियो के अनुकूल अपने को ढालता है वही सामाजिक परिवर्तन में अपना योगदान भी करता है। बच्चे को बड़ा होकर भविष्य मे लोकतान्त्रिक समाज का, धर्मनिरपेक्ष समाज का उत्तरदायी नागरिक बनना है। इसीलिए बच्चो को प्राथमिक स्तर से ही इस बात का अनुभव करवा देना चाहिए कि वह अपने इस समाज से क्या ले रहा है, वह स्वय समाज को क्या देगा और उससे क्या अपेक्षा की जाती है।

प्राथमिक स्तर की शिक्षा सबसे महत्व की है क्योंकि इसी के द्वारा बच्चो के व्यक्तित्व, चरित्र, मनोवृत्ति, संस्कार, आदतो और कौशलों की नीव रखी जाती है। बचपन में सीखी गई अच्छी आदते उन्हे सदा सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती रहेगी।

प्रस्तुत आलेख में श्रीमती खमर ताज ने सामाजिक पर्यावरण की अत्यधिक रोचक विधि प्रस्तुत की है। यह विधि सरल, सरस व रुचिकर है। प्राथमिक स्तर पर सामाजिक पर्यावरण अध्ययन को एक मूर्त विषय माना गया है क्योंकि यह विषय मानव समाज और उसके परिवेश के साथ हर स्तर पर जुड़ा हुआ है। इस विषय में अपने परिवेश को, अपने समाज को, प्रकृति को और संसार को देखने, सुनने, पहचानने, छूने, अनुभव करने के अधिक अवसर हैं। इसीलिए यह विषय बच्चों की मानसिकता के बहुत निकट जा सकता है। यह विषय हमारी संस्कृति, सभ्यता, विज्ञान, इतिहास और वर्तमान सबके केन्द्र में है।

कक्षा तीन के बालको को सामाजिक पर्यावरण अध्ययन पढ़ाते हुए प्राथमिक अध्यापक ने अनुभव किया कि पहली बार पृथ्वी, ससार, महाद्वीपो एव अपने पूरे देश की मुख्य जानकारी महानगरो आदि की जानकारी प्राप्त करने और कुछ अवधारणाओ को सीखने मे काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बच्चो की इन कठिनाइयो को दूर करने के लिए, उनके अध्ययन कार्य को सरस, सरल और रुचिकर बनाने के लिए अध्यापक ने कुछ विकल्प, कुछ संभावनाओ और कुछ कार्यकलापो की आवश्यकताओ को महसूस किया और यह नवाचार इसी अहसास का परिणाम है। सामाजिक अध्ययन मूलत: और अतत: परिवेश के वास्तविक प्रेक्षणो पर आधारित है। बालक सहज रूप से ही अपने परिवेश से अन्त:क्रियाओ मे लगा रहता है। अपने प्रेक्षणो द्वारा अनेक अनुभव

प्राप्त करके अपनी जानकारी बढाता रहता है। बालको की इस जानकारी को एक दिशा देने के लिए, परस्पर असम्बद्ध प्रेक्षणों को सुव्यवस्थित व सगठित रूप देने के लिए बच्चो का मार्गदर्शन आवश्यक है इसी मार्गदर्शन को देने के लिए इस अध्यापिका ने इस नवाचार का परीक्षण किया है।

किसी अवधारणा को समझने के बालको के लिए ऐसे अवसर, ऐसे अनुभव रचे जाए जिनसे उन्हे अवधारणा से जूझने के अवसर मिल सके, समस्या का समाधान करने के अवसर मिलें और खोज करके प्रश्न पूछकर निष्कर्ष निकालने के योग्य बन सके।

एक पाठ को पढ़ाने के लिए अनेक तरीके और विधाए इस्तेमाल की जाए। कई विकल्प सभावनाएं, खेल और कार्यकलाप हो। सामग्री को अलग-अलग स्तर पर प्रस्तुत किया जाए ताकि विभिन्न रुचियों वाले तथा स्तर वाले बालक पढाए गए तथ्यो को भली-भाति समझ ले।

बच्चों की सीखने की सफलता और विषय मे उनकी रुचि अध्यापकों पर निर्भर होती है। शिक्षक की विषय मे रुचि या उदासीनता भी बच्चो के सीखने के ढग पर प्रभाव डालती है। शिक्षको का यह नैतिक कर्तव्य है कि वे इस विषय मे भरपूर रुचि दिखाए और बच्चो में भी इस महत्वपूर्ण विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करें।

सामाजिक पर्यावरण अध्ययन (सा.प अ.) एक महत्वपूर्ण विषय होते हुए भी उसे वह स्थान नही दिया जाता जो गणित या विज्ञान को दिया जाता है। माता-पिता भी अपने बच्चो के गणित और विज्ञान के अध्ययन मे रुचि लेते हैं। उन्हें ट्यूशन भी इन्ही विषयो में दिलाई जाती है। सा.प अ की पढाई के लिए बच्चो को पूर्ण रूप से विद्यालय की पढाई पर ही निर्भर होना पडता है। ऐसे मे सा प अ. के शिक्षको का उत्तरदायित्व और भी बढ जाता है। यह अध्यापको का नैतिक कर्तव्य है कि वह अपने छात्रो की भरपूर सहायता करे और उन्हे बिना किसी बाहरी सहायता के ही इस विषय को समझने के योग्य बनाए, यह अध्यापकों के लिए गर्व की बात होगी।

आज के इस दौर मे शिक्षा बाल केन्द्रित है। अब शिक्षक केवल जानकारी देने वाले यत्र नहीं रह गए हैं। अब उनकी भूमिका बदल गई है। अब वे जानकारी प्राप्त करने मे बच्चो के साथ एक सुविधादाता और दोस्त की भूमिका निभा रहे है।

सा प अ. के शिक्षक को निम्नलिखित उद्देश्यो का ध्यान रखना चाहिए।

- ☐ वे राष्ट्र के निर्माता है क्योकि वे कल के भावी नागरिको के निर्माण कार्य मे लगे हुए है।
- ☐ बच्चो को जिम्मेदार, सचेत और जागरूक नागरिक बनाना है।
- ☐ बच्चो को चितनशील बनाना है।
- ☐ बच्चो के चरित्र निर्माण का दायित्व भी उन्ही पर है।
- ☐ अपनी शिक्षा से, अपने मार्गदर्शन से ऐसे भावी नागरिको का निर्माण करे जो तर्कबुद्धि वाले, चितनशील, वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले समालोचक और सत्यनिष्ठ हो।
- ☐ बच्चो को अपने देश की सस्कृति, सभ्यता, लोकतत्र और धर्मनिरपेक्षता के स्वरूप का आदर करना और देश की रक्षा करना सिखाए।
- ☐ बच्चो को तर्कसंगत निरीक्षण करने का अवसर दें।
- ☐ बच्चों में सकारात्मक मनोवृत्तियो का विकास करे।
- ☐ बच्चों की जिज्ञासा बढाने के लिए उत्प्रेरित करें।
- ☐ बच्चो मे राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यो का विकास करे।
- ☐ आजकल आकाशवाणी और दूरदर्शन के माध्यम से बच्चों पर विभिन्न प्रकार की बमबारी हो रही है। हमे अपने बच्चों को चितनशील बनाना है ताकि वे सही और गलत, अच्छे और बुरे तथा उचित और अनुचित मे अतर कर सके।
- ☐ सा प.अ. का प्रमुख उद्देश्य बालको को अपने परिवेश, अपने देश, अपने ससार को सवार कर अधिक सुदर, परिशुद्ध बनाना है; अधिक सुखद बनाने के लिए प्रेरित करना है।
- ☐ पारस्परिक विश्वास और सद्भावना बढ़ाना है।
- ☐ सबसे बढकर बालकों मे नागरिकता, सामाजिकता,

देश-प्रेम की उद्दात भावनाओ को अंकुरित एव सपुष्ट करना है ताकि समय आने पर वे सक्रिय, उत्तरदायी, कल्याणकारी, सचेत, जानकार और जागरूक नागरिक के रूप मे सशक्त भूमिका निभा सके।

सामाजिक पर्यावरण अध्ययन पद्धति मे विषय और प्रक्रिया दोनो महत्वपूर्ण है। बच्चो की शिक्षा उनके खेल, मनोरंजन और खोज की दुनिया से अलग नही होनी चाहिए। यह आवश्यक है कि बच्चे अपने अध्ययन कार्य मे अभिरुचि ले और जिज्ञासु रूप से इसमे भाग ले। बच्चो की खोजने की प्रवृत्ति को बढावा दिया जाना चाहिए। परिवेश बच्चो के जीवन से कटा हुआ नही है वह उनके जीवन का एक अग है इसलिए उन्हे उसे खोजना है न कि पढना।

खोजबीन होती है अवलोकन से, समस्या समाधान से, तथ्यो की खोज से, आकृति बनाने से, वास्तविक घटनाओ के देखने से, कतरनो को जमाकर चित्र बनाने से, सामूहिक कार्यकलापो से और मानचित्र अध्ययन से। शिक्षको को अपने शिक्षण के लिए तैयारी करते समय ऊपर दिए गए उद्देश्यो की प्राप्ति का ध्यान रखते हुए अपनी पद्धति का चयन करना चाहिए।

उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयास

- ☐ कई तरह के कार्यकलाप दिए जाएं।
- ☐ जिससे बच्चो की समस्या समाधान की कुशलता बढ़े।
- ☐ इनमे सामूहिक क्रियाओं के लिए स्थान हो।
- ☐ बच्चों की मानसिक स्थिति और उनकी आवश्यकताओ का ध्यान रखा जाए।
- ☐ बच्चो के पूर्व ज्ञान के आधार पर इनका आयोजन किया जाए।
- ☐ इस बात का ध्यान रहे कि ये बच्चो को ज्ञात से अज्ञात की ओर परिचित से अपरिचित की ओर, प्रत्यक्ष से परोक्ष की ओर ले जाए।
- ☐ स्थानीय वातावरण का पूरी तरह से उपयोग करे।
- ☐ बच्चों को चारदीवारी से निकाल कर वास्तविक परिस्थितियो को अनुभव करने के अवसर दे।
- ☐ मानचित्र अध्ययन की ओर पर्याप्त ध्यान दें।
- ☐ इन कार्यकलापो से बच्चो का निरंतर मूल्याकन होता रहे और सुधार कार्य भी चलता रहे।

नवाचार की कार्यविधि

अध्यापिका ने अपने पठन-पाठन कार्य मे उपरोक्त सभी पद्धतियों का प्रयोग किया और सभी उद्देश्यो की प्राप्ति भी हुई है। बच्चो द्वारा सीखी गई अवधारणाओ और उनकी जानकारी मे वृद्धि हुई है। इस जानकारी को प्रबल करने के लिए, उनके प्रत्यास्मरण और मूल्याकन के लिए अध्यापक ने कुछ अभ्यास-पत्र तैयार किए और बच्चों से करवाए। जो अभ्यास-पत्र तैयार किए गए उनमे पर्यावरण, समाज, भूगोल, भारत देश, ससार, अपने महान नेताओ पर खेल, पहेलिया, शब्द पहेलिया, सही शब्द चुनना, खाली स्थान भरना, एक शब्द पहचानना, वर्गीकरण, विश्लेषण, सही जोड़े, मानचित्र कौशल, चित्र लगाना, चित्र बनाना आदि है। इन अभ्यास-पत्रो को बच्चो को समूह मे बैठाकर करवाए। कक्षा मे बच्चो को बैठने की विशेष व्यवस्था की गई। बच्चे समूह में चर्चा करके अध्यापक से चर्चा करके निष्कर्ष निकाले। अध्यापिका ने बच्चो की सहायता की। परिणामो की कक्षा मे चर्चा की गई। हर बच्चे ने इसमे बड़े उत्साह से भाग लिया। सीखी गई अवधारणाए प्रबल हुई। बच्चो को अपनी गलती स्वय सुधारने मे सहयोग दिया गया। बच्चो को विभिन्न जिम्मेदारिया निभाने के अवसर दिए गए। बच्चों मे आत्मविश्वास जागा।

उपलब्धियां

यह नवाचार पूर्ण रूप से सफल रहा और निम्नलिखित नतीजे निकले।

- ☐ बच्चे बडे उत्साह से प्रतिभागी बने।
- ☐ निरीक्षण व अवलोकन की दक्षता का विकास हुआ।
- ☐ बच्चे अध्ययन कार्य मे रुचि लेने लगे।
- ☐ कमजोर और सकोची बच्चे भी खुशी से प्रतिभागी बने।

- बच्चो की सृजनात्मक, रचनात्मक अभिव्यक्ति का विकास हुआ।
- पारस्परिक सद्‌भावना का विकास हुआ।
- साधारणता को तोडकर नयापन लाया गया जिससे बच्चो का मनोरजन हुआ।
- मिल-जुलकर काम करने के आनन्द से परिचित हुए और दूसरो के विचारो और भावनाओ का आदर करने लगे।
- बच्चो में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ।
- बच्चे अपने परिवेश, अपने पास-पड़ोस और समाज के प्रति जागरूक बने।
- बच्चो मे देश प्रेम की भावना जागी आदि-आदि।

इस तरह बच्चो मे ज्ञान रश्मि के सचार के लिए राष्ट्रीय एव मानवीय मूल्यों के विकास के लिए अभ्यास-पत्रों का मनोरजक तरीका अपनाया है। बच्चो ने इसमे बहुत रुचि दिखाई है। सभी अध्यापक थोड़े से परिश्रम और लगन से बच्चो का मार्गदर्शन करके उनके अध्ययन को सरल और रुचिकर बनाए। ❑❑

केन्द्रीय विद्यालय, हेब्बल
सदाशिव नगर, बंगलौर
कर्नाटक

सृजनशक्ति द्वारा विज्ञान प्रतिभा का विकास

❒ रमेचन्द्र साहू

व्यक्ति और समाज के विकास तथा वातावरण को सुन्दर बनाने के लिए विज्ञान को अधिकाधिक उपयोग मे लाने की आवश्यकता है। इस अनुपम कार्य मे अध्यापक का महत्वपूर्ण योगदान है। इसके लिए अध्यापक को चाहिए कि वह विज्ञान को कहानियो के द्वारा, निजी जीवन, वातावरण से जोडकर छात्रो को प्रकट करे जिससे वे विज्ञान को समझें, उसमे रुचि ले पाए न कि उन्हे केवल परीक्षा के लिए रट कर पास हो जाए या किताबी कीड़े बन जाए एव किताब के अलावा उसको अपने जीवन से जोड ही नहीं पाए। सर्वोच्च शिक्षण इन्द्रियो के क्रियाशील होने पर भी निर्भर करता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम ऐसे वातावरण का निर्माण करें जो इन इन्द्रियो को क्रियाशील होने मे मदद दे। इसके लिए प्राथमिक स्तर पर विज्ञान क्लब की स्थापना की जानी चाहिए जो वातावरण, लोगों तथा इस समाज की ओर अपना कर्तव्य समझे तथा इसके विकास के लिए काम करे।

शिक्षक समाज का मेरूदड है। सरकार को शिक्षक वर्ग को इस ओर क्रियाशील और उत्साहित करने के लिए प्रयास करना चाहिए और उन्हे संगठित करना चाहिए। नवीकरण धारणा के प्रति तथा नई शिक्षण पद्धति के तहत सृजनात्मक कार्य करने की शिक्षकों को पूर्ण स्वतत्रता होनी चाहिए। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के गुणात्मक विकास हेतु चिन्तनशील और सृजनात्मक शिक्षक समुदाय का निर्माण करना आवश्यक है। इसके लिए अनुकूल परिवेश की रचना और शिक्षको मे कर्म केन्द्रित गवेषणा का उदित होना अनिवार्य है। इस पृष्ठभूमि में शिक्षक का व्यक्तित्व एक विशिष्ट महत्व रखता है। यदि यह कहे कि शिक्षक स्वयं एक विद्यालय है तो अनुचित न होगा।

श्री रमेचन्द्र साहू एक आदर्श प्राइमरी स्कूल में अध्यापन कार्य करते हैं। प्रस्तुत लेख में इन्होंने विज्ञान प्रतिभा के विकास में इस बात पर विशेष बल दिया है कि विज्ञान को इस तरह से छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करें कि वह सरल और सरस प्रतीत हो और छात्र उसे अपनी रुचि से पढ़ें न कि एक विषय-वस्तु समझ कर। विज्ञान एक ऐसा विषय है जिसे आम जीवन से जोड़कर प्रकट करना चाहिए क्योंकि यह हमारे वातावरण से अलग नहीं है। इसके लिए अध्यापक का महत्वपूर्ण योगदान आवश्यक है।

यह अनुभव किया जा रहा है कि विज्ञान की अवनति हो रही है। यह बात किसी हद तक सत्य है। परन्तु इसका मूल कारण प्राथमिक स्तर पर ससाधनो की कमी है। अत' इन सभी बाधाओं को दूर करके नवीन परिकल्पित शिक्षा नीति का प्रयोग किया जाए तो निश्चित रूप से फलदायक होगी। यह विज्ञान की शिक्षा रुचिकर होगी। वर्तमान समाज में विज्ञान के अन्तर्गत व्यावसायिक शिक्षा को अधिक महत्व दिया जा रहा है। इसीलिए परिवर्तित समय के अनुरूप स्वय को बनाने के लिए विद्यार्थियों को अपने आप को प्रस्तुत करना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यालय स्तर पर विज्ञान के तथ्यों को समझना अति आवश्यक है। केवल श्यामपट्ट एव चॉक के द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति नही होगी। चीन की एक लोककथा के अनुसार—

अगर सुनता हूं तो भूल जाता हू
देखता हू तो याद रहता है।
करता हू तो समझ जाता हू।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अधिकांश इन्द्रिया करने से क्रियाशील हो जाती हैं। तभी सर्वोच्च शिक्षण सभव होता है। प्रत्येक विद्यालय का एक निर्दिष्ट पाठ्यक्रम

ओर पाठ्यपुस्तके होती है और उन्हे निर्दिष्ट समय मे पूरा किया जाता है। विभिन्न बुद्धिमता के स्तर के आधार पर विद्यार्थियो को एक निर्दिष्ट कार्यक्रम दिया जाता है। हमारे विद्यालय की व्यवस्था मे विद्यार्थियो की सृजनशक्ति एव बुद्धिमता के पूर्ण विकास के लिए अनुकूल वातावरण की व्यवस्था नही की गई है। एक सीमित समय मे इस तरह के वातावरण को पैदा करना सभव नहीं है। इसलिए विद्यालय मे प्राथमिक स्तर पर विज्ञान क्लब की स्थापना की जानी चाहिए और इस क्लब के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य होने चाहिए।

मुख्य उद्देश्य

- समाज कल्याण के लिए विज्ञान की भूमिका।
- विज्ञान के प्रयोगों से औद्योगिक कुशलताओ को बढावा देना।
- अन्तर्निहित सृजनशक्ति का विकास करना।
- छात्रो एव वयस्क व्यक्तियों की विचारधारा की आपस मे अन्तःक्रिया होना।
- अपने परिवेश को पहचानना और उसका सदुपयोग करना।
- विभिन्न वैज्ञानिक कुशलताओ का अर्जन करना और दैनिक जीवन मे उसका प्रयोग करना।
- नई वैज्ञानिक कुशलताओं के बारे में जानकारी होना।
- राज्य तथा देश मे होने वाले विभिन्न विज्ञान कार्यक्रमों मे सहभागी होना।
- विज्ञान की शिक्षा के लिए कम मूल्य वाले या मूल्य रहित उपकरणो का सृजन करना और उनके द्वारा शिक्षा देना। विज्ञान से संबंधित लघु कथाए तथा निबधो को लिखवाने का अवसर देना।

आगामी दशक मे मनुष्य के जीवन में बहुत सी समस्याए एव सुविधाओ के आने की सभावना है। इस नवीन परिवेश से लाभ उठाने के लिए एवं मानव ससाधनो के विकास के लिए नई योजनाए प्रस्तुत करनी चाहिए। आगामी पीढ़ी को समर्थ होना चाहिए। विज्ञान की शिक्षा से ही समाज की उन्नति सभव होगी। विज्ञान की प्रगति की दौड मे हमे कदम मिलाकर चलना चाहिए। विज्ञान की शिक्षा मे न्यूनतम अधिगम स्तर को पूरा नही किया जा रहा है। छात्र को विज्ञान की शिक्षा के प्रति आकर्षित किया जाना चाहिए। शिक्षक छात्र को बताए कि जो कुछ उसे विद्यालय मे पढ़ाया जा रहा है उसे अपने घर एव परिवेश मे किस तरह से प्रयोग करे। इसी के द्वारा हम विज्ञान की दौड़ मे अपने आपको अन्य के समकक्ष ला पाएगे।

आनन्ददायक विज्ञान शिक्षा

इससे विद्यार्थियों के मानसिक विकास, अधिक जानकारी के लिए तत्परता, जिज्ञासा तथा एकाग्रता बढेगी। बच्चे *साधारणतः चचल बुद्धि वाले, कौतुक प्रिय, कार्य करने* मे कुशल तथा अनुकरण करने वाले होते है। इन उपरोक्त नैसर्गिक गुणो को ध्यान मे रखते हुए अगर हम विज्ञान की शिक्षा दें तो बच्चे न केवल उसके प्रति आकर्षित होगे बल्कि हम उनकी गवेषण शक्ति को भी विकसित कर सकते है।

विज्ञान की विषय-वस्तु को आनन्ददायक एव सृजनात्मक किया जा सकता है इसमे सदेह नहीं है। विज्ञान की पुस्तकीय विषय-वस्तु को हम घर में प्रयोग नही कर सकते है। इसलिए हमे पुस्तको मे ऐसी विषय-वस्तु रखनी चाहिए जो कि परिवार तथा समाज के कल्याण मे प्रयोग हो सकती है।

इसके द्वारा विज्ञान को लोकप्रिय बनाया जा सकता है तथा यह समाज मे सभी वर्गो के लोगों के पास पहुंच सकता है। इसी को हम आनन्ददायक विज्ञान शिक्षा कहते है।

विज्ञान के परीक्षण के लिए जिन उपकरणो की आवश्यकता होती है वे प्राय स्कूल मे उपलब्ध नहीं है। शिक्षक इन सभी प्रयोगो का विवरण श्यामपट्ट एवं चॉक के द्वारा दे देते है। यह विद्यार्थियो मे किसी प्रकार की रुचि का विकास नही करता और वे कक्षा मे एकाग्रचित नही हो पाते। इस विधि से सरल प्रयोग भी बच्चे को बहुत कठिन प्रतीत होता है। अगर हम उपकरण उपलब्ध करवा पाए तो विज्ञान का शिक्षण निश्चय ही आनन्ददायक होगा तथा विद्यार्थी विज्ञान की तरफ

आकर्षित भी होगे। इसलिए ऐसे प्रयोगो को बच्चो के सामने प्रदर्शित किया जाना चाहिए, जो उनमे विज्ञान के प्रति रुचि जागृत करे तथा उसे परिवार के कार्यक्रमो के इस्तेमाल मे ला सके। विद्यार्थी विज्ञान सीखने के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य कर सकते है।

- खेलना।
- घर-परिवार में प्रयोग करना।
- विद्यालय मे शिक्षा के उपकरण बनाना।
- विज्ञान के प्रयोगों से औद्योगिक कुशलता का सृजन।
- अपने परिवेश से आवश्यक उपकरणो का संग्रह।
- समाज के लिए कल्याणकारी होना।
- सहकारी कार्य से प्रयोग करना।
- आसानी से सुलभ होने वाली शक्तियो का प्रयोग।
- मूल्यहीन या कम मूल्य वाली चीजो से उपकरणी का निर्माण करना।
- सरल औद्योगिक कुशलता द्वारा उपकरणो का निर्माण करना।
- स्वास्थ्य के लिए उपयोग एव प्रयोग करना।

प्रचलित शिक्षा के दोष

विद्यालय में किए गए सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि 40 विद्यार्थियो मे से केवल 10 ही शिक्षा के प्रति रुचि रखते है अर्थात् ये ही कक्षा के उत्तम छात्र हैं। इसके अलावा 10 छात्र ऐसे होते है जो कि कुजियो का सहारा लेते है। इन्हे हम मध्यम श्रेणी के छात्र कह सकते है। बाकी 20 छात्रो की शिक्षा के प्रति कोई रुचि नही होती है। वे किताब एव उत्तर-पुस्तिका को भी नहीं रखते है।

जो सर्वोत्तम श्रेणी के 10 छात्र है। उनके माता-पिता की सतर्क दृष्टि उन पर रहती है। उनके खेलने और घूमने इत्यादि मे अधिक समय नष्ट करने पर पाबदी होती है। उन्हे प्रेरित किया जाता है कि यदि अच्छे से पढाई नही की तो जीवन मे सफलता नही मिल सकेगी। इसलिए विद्यालय मे पढाई खत्म होने पर उनकी घर मे भी पढाई शुरू हो जाती है। किताबों को ठीक से याद कर लिया जाता है और परीक्षा मे अच्छे अक भी प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए अगर थर्मामीटर के बारे मे और उसके कार्य के बारे मे पूछा जाएगा तो सही-सही उत्तर दे देगे। लेकिन अगर उन्हे थर्मामीटर दिखा कर उसके बारे में प्रश्न पूछे जाए, तो वे सभी जानकारी देने मे असमर्थ होते है। वे केवल किताबी कीडे होते है। विज्ञान प्रगति की दौड़ मे विकासशील देशों मे जो पाठ्यक्रम प्रचलित है तथा बडी कक्षाओं मे जो पढाया जाता है वह आजकल अपने विद्यालयो मे छोटी कक्षाओ मे भी पढाया जाने लगा है। इससे बच्चो पर अधिक भार पडता है और छात्र निरुत्साहित हो जाते हैं।

विज्ञान के शिक्षण को लोकप्रिय, सृजनात्मक, व्यावसायिक तथा समाज कल्याण के लिए कैसे प्रयोग किया जाए, इस पर ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए। जैसे पिछले वर्ष उड़ीसा मे भीषण गर्मी की वजह से बहुत अधिक लोगों की मृत्यु हो गई थी। इसे विज्ञान के द्वारा कैसे रोका जा सकता है एव विज्ञान की इसमे क्या भूमिका हो सकती है तथा समाज के सभी वर्गो के लोगो के पास विज्ञान को कैसे पहुचाया जा सकता है। इसके लिए प्रयास होने आवश्यक है। इसी को हम सृजन शक्ति द्वारा विद्यार्थियों की विज्ञान प्रतिभा विकास कह सकते है। ❑❑

आदर्श प्राइमरी स्कूल
रामपुर, जिला मायागढ़
उड़ीसा

बहुस्तरीय शिक्षण-स्थितियों से उपजा एक प्रयोग

□ मुकेश मालवीय

हम सभी इस महत्वपूर्ण वात से सहमत है कि शाला मे बच्चे आपस में एक-दूसरे से पढ़ना लिखना संबंधी बहुत कुछ सीख लेते है। यदि विद्यालय मे एक-दूसरे को सिखाने की सस्कृति को बढ़ावा दिया जाए तो यह अत्यन्त उपयोगी होगा। परन्तु स्कूल के नियम इस सस्कृति को पनपने नही देते। जैसे– हर कक्षा के बच्चों का अलग बैठना, आपस में बातचीत पर प्रतिवध, अनुशासन का खौफ आदि। विद्यालयो मे प्रचलित इन नियमो के विपरीत सबसे पहले बच्चो को मिला-जुला कर बैठाना चालू किया, कक्षा का प्रतिबंध लगभग हटा दिया। अब बच्चे ऐसे समूह मे बैठते जिनमे कुछ पढ़ना जानने वाले, कुछ पढना नही जानने वाले, कुछ रुक-रुककर पढने वाले, पहली से पाचवी तक के बच्चे एक समूह में रह सकते थे। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि हर गतिविधि के लिए एक ऐसा समूह हो जिसमे कुछ बच्चे बिल्कुल शुरुआती, कुछ बच्चे सीखने की प्रक्रिया में और कुछ सीखे हुए बच्चे शामिल हों।

दूसरा प्रयास बच्चो पर शिक्षकीय नियत्रण को कम करना। बच्चों की अध्यापक पर निर्भरता को कम से कम किया, स्कूल सचालन मे सफाई, बच्चो को लाना, दलिया बनवाना, तोलना, गुड, तेल खरीदना और हिसाब भी रखना–बच्चों के आपसी झगडे का निपटारा जैसे व्यवस्थागत मसलो को लेकर शैक्षणिक मसले जैसे–कौन-से बच्चे पढ़ना नही सीख रहे है वो किन बच्चों से पढ़ना सीखेगें, जोड-घटा के सवालो के लिए कौन-से बच्चो का समूह काम करेगा। आसपास के पर्यावरण का अवलोकन करने कौन-सा समूह जाएगा, यह तय करना बच्चो की जिम्मेदारी थी, शिक्षक को कुछ दिन बच्चों के साथ जरूर इस व्यवस्था के लिए जुटकर काम करना पड़ा।

इस पूरे अनुभव से यह समझ मे आया कि बच्चो की जो अलग-अलग शैक्षणिक समझ है वह तो आपस मे बंट रही थी। इसमें थोड़ी-बहुत वढ़ोत्तरी भी हो रही थी पर इस स्तर को और भी बढ़ाने के लिए कोई अन्य स्रोत (शिक्षक) का होना अनिवार्य लगा। इस हेतु अन्वेषक ने पाठ्यपुस्तकों के अलग तरह से इस्तेमाल पर ध्यान दिया। पाठ्यपुस्तके अगर शिक्षक के विकल्प के रूप में वनाई जाए तो शिक्षक की अनिवार्यता को कम किया जा सकता है।

यह लेख लेखक के एक दशक के अध्यापन अनुभव पर आधारित है। अन्वेषक इस अवधारणा के पक्षधर हैं कि शाला में बच्चे आपस में एक-दूसरे से पढ़ना-लिखना संबंधी बहुत कुछ सीख लेते हैं। यदि विद्यालय में एक-दूसरे को सिखाने की संस्कृति को बढ़ावा दिया जाए तो यह अत्यंत उपयोगी होगा।

जिस प्रचलित तरीके से स्कूलो मे पढना सिखाया जाता है वह तरीका बहुत लम्बे समय तक पढ़ने को अर्थ प्रदान नही करता। बच्चे यह नहीं समझ पाते कि जो बाते पढ़ रहे है वह उनके लिए या उनसे ही कुछ कह रही हैं। और दूसरी बात यह कि पाठ्यपुस्तको मे जो भाषा इस्तेमाल होती है वह बच्चो के लिए सर्वथा अपरिचित होती है। सदर्भित शाला मे जहां गोड़ी भाषी बच्चे हैं वहा ये एक अजूबी ही चीज है।

बच्चों को यह विश्वास ही नही है कि वे जो बोल रहे है उसे ही लिखा व पढ़ा जा सकता है। इसके लिए ऐसे कई कदम उठाए जिसमे बोली गई बात को लिखना व पढ़ना होता है। पहले तो बच्चो को वर्णमाला रटवाने जैसे काम बद किए गए। अब उनकी ही बात या उनकी याद की हुई कविता/प्रचलित गीत बोर्ड पर लिखी जाती और फिर उनमे शब्दों की पहचान जैसी गतिविधि होती। एक जैसे ध्वनि वाले शब्दो को इकट्ठा करना, उनको

पहचानना, एक ही शब्द जो अलग-अलग जगह लिखा हो उसे ढूंढ़ना आदि। इस पूरी प्रक्रिया मे बच्चो की खुद की समझ को इस्तेमाल करने की कोशिश की गई। इसके बाद उन बच्चो के साथ जो अटक-अटक कर पढ और लिख लेते थे, अपनी बात जो वे दोस्तो या परिवार मे करते थे या कहना चाहते थे उसे लिखकर व्यक्त करने को कहा। इसके लिए कई तरह की गतिविधि की गई।

प्रतिदिन की डायरी– अपने दिन भर के अनुभव जो उन्होने देखा और सुना हो उसे रोज लिखकर लाना होता था। फिर उस डायरी को पढने की शुरुआत की, डायरी पढवाने से अन्वेषक को दो-तीन बात समझ मे आई। एक तो जिनकी डायरी पढने मे नहीं आ रही थी वे अन्य बच्चो की तरह इसे पढ रहे थे, दूसरे मात्राओ की गलती वाले शब्द बच्चे वैसे ही पढ़ते फिर उसे सुधारकर पढ़ते थे और तीसरी बात बच्चे अपने लिखे हुए को पढ़ते समय एक अटपटापन महसूस करते। उन्हे यह अहसास हुआ कि जैसे वे बोलते हैं वैसा लिखा हुआ नहीं है क्योकि लेखन मे उनका लहजा व बोलचाल का तरीका कैसे लिखा जा सकता है।

स्वतंत्र लेखन– किसी भी ऐसे विषय पर बच्चो को लगभग एक पेज लिखना होता जो उनके आसपास का हो जैसे— त्यौहार, बाजार, सरपंच, पल्स पोलियो, गर्मी की छुट्टी आदि। इन विषयों पर बच्चे जो भी लिखते उसे पढा जाता और चर्चा की जाती कि इस विषय पर और क्या-क्या लिखा जा सकता था।

चित्रों पर लेखन– बच्चों को कुछ चित्र दिए जाते और उन चित्रो पर उनकी कल्पनाओ के बारे मे लिखना होता।

अखबार निकालना– बच्चो की डायरी मे मोहल्ले की खबरे प्रायः होती थी। इससे अखबार निकालने का विचार आया। इन सारी खबरो को अलग-अलग पेज पर लिखा जाता और उसे एक बडी कार्ड शीट पर चिपकाकर स्कूल मे लगा दिया जाता। कविताओ के लिए चित्र बनाना, बाल पुस्तकालय की किताब पढना और इन किताबो पर अपने अनुभव लिखकर व्यक्त करना जैसे काम भी हुए।

पैराग्राफ पर सवाल- जवाब– बच्चों को कुछ लिखित अंश दिए जाते जिन पर कुछ सवाल होते थे। इन सवालो के जवाब बच्चों को इस अश मे ढूंढकर लिखित रूप से देने होते इसके लिए पैराग्राफ को ध्यान से पढना जरूरी होता।

इन सारी प्रक्रियाओं से पाठ्यपुस्तको को बिना शिक्षक की मदद से पढने और समझने मे काफी मदद मिली। पाठ्यपुस्तको का काफी हिस्सा बच्चे स्वय एवं आपसी चर्चा से हल कर लेते थे। उक्त अनुभव से बच्चो के सीखने-सिखाने मे एक अलग तरह की गति आई।

शीर्षक– मिसफिट मास्टर

रघुबीर सिंह ''रावल''

हमारे देश में पिछली किसी भी सदी से ज्यादा विद्यालय, विश्वविद्यालय उपलब्ध होने के बावजूद पिछली सदियो से ज्यादा अशाति, दुख, पीडा तथा अथाह विध्वंसक सामग्री का भंडार है, इसकी जिम्मेदार है हमारी वर्तमान शिक्षा। शिक्षा मे बदलाव लाना होगा। शिक्षा मे बदलाव कौन लाएगा? आखिर कौन है वह भागीरथ जो शिक्षा मे क्रांति (बदलाव) रूपी गगा को पृथ्वी पर लाने मे समर्थ है? निर्विवाद रूप से उक्त प्रश्न के जवाब मे सबकी निगाहे "शिक्षक" पर जाती हैं।

"अब सिर-फिरे, बेबाक, मुहफट, सृजनशील व समर्थ शिक्षको की आवश्यकता आन पडी है" इसी प्रकार के शिक्षको को मै नाम देता हू— "मिसफिट मास्टर"।

बदलना होगा उन पुस्तकों को जिनमे पुरानी पीढी, नई पीढी को शिक्षा के नाम पर अपनी ईर्ष्याए, द्वेष, वैमनस्य, शत्रुता और अपना अहकार अध्यापक के माध्यम से वसीयत मे दे दी जाती है।

शिक्षा बाल केन्द्रित हो। सीखने-सिखाने का सिद्धान्त नम्रता आधारित हो। यह तभी सम्भव है जब अध्यापक अपना ओढा हुआ सम्मान त्याग कर मनुष्य के जीवन मे फूल खिलाएगा।

"घर से मदिर है बहुत दूर, चलो यू कर ले।
किसी रोते हुए बच्चे को हसाया जाए।।"

प्रयास-सुधार

इस दिशा मे सर्वप्रथम प्रयोगकर्ता ने मुख्य शिक्षक महोदय को अपनी "चौथी कक्षा" की दयनीय स्थिति से अवगत कराकर उनके अनुभवो का लाभ उठाने का प्रयास किया।

इस पर उन्होंने बताया "सरकार अर्थात् जो सरक-सरक कर चले" निराशावश मैने काफी कमजोर बच्चो के नाम काटने व बच्चो का कक्षा स्तर घटाने की बात कक्षा को कही। प्रतिक्रियास्वरूप काफी सख्या मे बच्चो ने पाठशाला मे आना बंद कर दिया, जबकि छात्र घर से स्कूल के लिए आते अवश्य थे। मुझे बच्चो के अशिक्षित रहने को बाध्य होने का पश्चाताप हुआ। अन्तत. मैने छात्रो के लिए कार्य योजना बनाकर खेल-खेल मे, समूह शिक्षण-विधि द्वारा सहायक शिक्षण सामग्री का प्रयोग करते हुए आनददायक शिक्षा देने का निर्णय लिया। पहली कक्षा से चौथी तक का शैक्षिक कार्य क्रमश चरणो मे पूरा करना निश्चित हुआ। प्रत्येक चरण को दो महीनो मे पूरा करना तय किया गया।

नूतन नियम निर्धारण– मैने छात्रो के साथ मिल-वैठकर कुछ नियम निर्धारित किए। जैसे प्रात. अध्यापक को कक्षा प्रवेश के समय खडे हो कर "जयहिन्द" बन्द कराकर इसके स्थान पर पाच मिनट तक हसना व ताली बजाना, छात्रो को "शरारत" करने पर कोई पाबन्दी नही, वशर्ते किसी की शाति व स्वतत्रता भग न हो। सत्य बोलने पर प्रोत्साहन, पिटाई प्रथा बद आदि।

उपलब्धियां

- छात्रो के शैक्षिक स्तर मे वृद्धि।
- छात्रो में आत्मविश्वास, प्रेम बढा तथा हीन भावना घटी।
- सफाई, खेल, कला मे रुझान।
- स्कूल का वातावरण आनदमय हुआ।

समस्याएं

- अभिभावको व अधिकारियो का रूखापन।
- पठन-पाठन सामग्री का अभाव।
- असंगत वातावरण।
- छात्रों की कम उपस्थिति इत्यादि।

निष्कर्ष– मनुष्य जीवन की चिन्तामय स्थिति मे सुधार लाने हेतु शिक्षा में क्राति लाना आवश्यक है। इसके लिए "अध्यापक ही एक मात्र वह 'भागीरथ है जो शिक्षा मे क्राति रूपी गगा को पृथ्वी पर ला सके।"

शीर्षक– विद्यालयी शिक्षा में नवाचार

आलेख का सारांश–श्री राम कुमार शर्मा

आधुनिक शिक्षा का क्षेत्र अव केवल कला शिक्षण तक ही सीमित नही रह गया है। कक्षा में पठन करने के पश्चात् विद्यार्थियो के व्यवहार मे क्या बदलाव आता है? इसका अध्ययन करने की महती आवश्यकता है। शिक्षक एव शिक्षण पद्धति का भी यही उद्देश्य है कि शिक्षण प्रक्रिया के बाद छात्रो की योग्यता मे विस्तार हो तथा अपने व्यवहार में वांछित बदलाव ला सके।

कक्षा शिक्षण मे अन्य विषयो की अपेक्षा भाषा-शिक्षण का प्रभाव व्यवहार पर ज्यादा होता है। इस प्रकार से भाषा शिक्षण को व्यवहार परिवर्तन एव योग्यता-विस्तार का मुख्य आधार माना गया है। कक्षा मे जिन पाठो का पठन कराए जाने के बाद विद्यार्थियो पर उसका क्या असर होता है? इसे देखना परम् आवश्यक है। तभी शिक्षण-बिदु तक छात्र के मन मस्तिष्क को ले जाया जा सकता है। केवल पढ़कर ज्यों का त्यो रख देने से कार्य एव उद्देश्य पूर्ण नही होगा। अत. शिक्षण एवं नवाचार पद्धति को लागू करने के पीछे यही लक्ष्य रहा है कि योग्यता-विस्तार के लिए बालकों को कक्षा से बाहर ले जाना तथा संदर्भित पाठ के अनुसार ज्ञान मे वृद्धि तथा जानकारी को बढाने और व्यवहार में लाने के लिए स्वयं खोज करने एवं जिज्ञासा को शात करने के लिए उचित माध्यम का चुनाव कर सके।

इस प्रकार से प्रयोगाधीन विद्यार्थियो द्वारा प्रत्येक पाठ को पढने के पश्चात् अपनी योग्यता मे विस्तार हेतु दैनिक समाचार-पत्रों, अन्य पत्र-पत्रिकाओ, पुरानी पुस्तको, पालकों एव अन्य साधनो का उपयोग किया जाता है। इस तरह वे अपनी जिज्ञासा को प्रथमत' पूरी तो करते ही हैं वहीं दूसरी ओर समुचित परिवर्तन अपने व्यवहार मे भी कर पाते है। क्योंकि सृजनात्मकता एव क्रियाशील होने से स्वयमेव व्यवहार मे बदलाव आने लगता है।

कक्षा शिक्षण मे जब तक बालको के द्वारा बताए गए बिंदुओ पर अपना ध्यान केन्द्रित नही करते हैं, तब तक उनकी योग्यता मे विस्तार नही होता है। पाठ को पढ़ाने के पीछे जिन लक्ष्यो की प्राप्ति अपेक्षित है, यदि उस दिशा मे कदम नहीं रखा गया तो वाछित लाभ नही होगा। अत इसी बात को ध्यान में रखकर यह प्रयास किया गया है कि पाठन के बाद विद्यार्थी स्वस्फूर्त रूप से वाछित लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए क्रियाशील हो जाएं। शिक्षा, समाज एव देश के उद्देश्यों की समझ उनमे आ जाए। उनका व्यवहार ऐसा हो कि उन्हे वाछित स्नेह एव सम्मान प्राप्त हो तथा शिक्षित करने मे जो व्यक्ति लगे है उनको भी अहसास हो जाए कि हमारी मेहनत भी सार्थक हो रही है।

अतः विद्यालयी शिक्षा में इस नवाचार पद्धति को प्रयुक्त करने के पीछे यही उद्देश्य रहा है कि विद्यार्थियो मे स्वत शैक्षणिक उद्देश्यो को प्राप्त करने की ललक पैदा हो जाए, तथा नहीं के बराबर खर्च पर भी (पुरानी पुस्तको, सामग्रियो, पत्र-पत्रिकाओ, समाचार-पत्रों) अपनी योग्यता मे विस्तार कर सकें। साथ ही कक्षा मे बताई बातो एव सकेतों को बाहर की दुनिया मे तलाश कर सके, इस तरह वे शैक्षिक खोज मे लगे रहेगे, तो उनमे व्यवहारशीलता कार्यकुशलता एवं मस्तिष्क उत्तरोत्तर विकसित होता रहेगा। शिक्षक, बालक, पालक, एव अन्य उत्तम नागरिकों मे निरतर सपर्क बना रहेगा। इस प्रकार से भाषा-शिक्षा को आधार बनाकर विद्यार्थियों की योग्यता मे वाछित विस्तार किया जा सकता है। ❑❑

राजकीय प्राथमिक शाला
पावर झण्डा विकास खण्ड शाहपुर
बैतूल, मध्य प्रदेश

विद्यालयी शिक्षा की समस्याओं का अभिनव प्रयोगों द्वारा निवारण

❒ अल्का जैन

मानव जीवन मे शिक्षा का विशेष महत्व है। प्रत्येक व्यक्ति शिशु के रूप मे कुछ पाश्विक प्रवृतिया लेकर इस असहाय विश्व मे जन्म लेता है। शिक्षा के माध्यम से ही उन पाश्विक प्रवृत्तियों का शोधन और परिमार्जन होता है और वह मनुष्य बनता है।

महाराजा भृर्तहरि ने ठीक ही लिखा है–

"विद्याविहीन नर पशु समान"

शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करती है। शिक्षा जीवन पर्यन्त तक चलने वाली प्रक्रिया है। मानव, प्रतिक्षण अपने आसपास के वातावरण से कुछ न कुछ सीखता ही रहता है फिर हमारे सामने यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि विद्यार्थी शिक्षा की क्या आवश्यकता है। विद्यालय मे शिक्षक बालक को वही शिक्षा देता है जो बालक और समाज के उन्नयन के लिए आवश्यक है। इस प्रकार की शिक्षा से बालको के पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ व्यवहार की आदतो के बाद चिन्तन और दृष्टिकोण को स्थायी रूप से परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है। विद्यालय वह स्थान है जहां बच्चे सोच- विचार कर कार्य करना आरभ करते हैं। हा व्यवहार तथा ज्ञान, रुचियां, मनोवृत्तिया, पसद तथा नापसद उन वस्तुओ, व्यक्तियों तथा मुद्दो एवं समस्याओ के प्रति बनती है जिनके साथ उनको जीवन मे काम आने की सभावना होती है।

इस प्रकार विद्यालय से उत्तीर्ण होकर निकलने वाले बच्चो की विशेषताओ का गठन इस बात पर निर्भर करता है कि पाठ्यचर्या में किस प्रकार के निवेश निर्धारित किए गए और उनको विद्यालय मे किस प्रकार इस्तेमाल किया गया। विद्यालयो को अधिगम अनुभवो का आयोजन इस प्रकार करना चाहिए कि बच्चे वाछित सज्ञानात्मक और असज्ञानात्मक विशेषताओ का अर्जन सतुलित ढंग से कर सके। जैसा कि अकसर कहा जाता है, हमारे विद्यालय के क्रियाकलापो मे सज्ञानात्मक तत्व हावी हो जाते हैं और असज्ञानात्मक लक्ष्यो पर ध्यान नहीं दिया जाता। यह आवश्यक है कि उन अधिगम अनुभवो के आयोजन का सुनियोजित प्रयास किया जाए जिनसे बच्चो मे असज्ञानात्मक क्षेत्र के न्यूनतम प्रतिफलो की सम्प्राप्ति में संदेह न रहे।

प्रस्तुत लेख श्रीमती अल्का जैन द्वारा लिखित है जो एक विद्यालय में अध्यापन का कार्य करती हैं। उनके विचार से कक्षा में हर प्रकार के छात्र होते हैं। किसी को पाठ जल्दी समझ में आ जाता है तो कोई उससे अधिक समय लेता है। छात्र की समझ में न आने का कारण स्वयं छात्र ही नहीं होता अपितु उसके बहुत से कारण हैं– जिनमें पाठ्यक्रम अधिक होना, बोझिल होना, अध्यापन रुचिकर न होना आदि। प्रस्तुत लेख में शिक्षिका ने ऐसी समस्याओं के निवारण के लिए कुछ सुझाव दिए हैं जो छात्रों को विद्यालय की ओर आकर्षित करने में सफल सिद्ध हो सकते हैं। उनके मतानुसार शिक्षक सबसे पहले छात्र के मनोविज्ञान को समझे, स्वयं को एक आदर्श व्यक्ति के रूप में बच्चों के समक्ष प्रकट करे, शिक्षण को वातावरण से जोड़कर तथा उसमें खेलों, चित्रों, कार्ड, चार्ट आदि का उपयोग करे।

बच्चे समय, निष्ठा, स्वच्छता, सेवाभावना, सहकारिता आदि के गुण काफी सीमा तक अनौपचारिक रूप से विद्यालय के निकट परिवेश से सीखते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यालय के विभिन्न क्रियाकलापो तथा

भौतिक व्यवस्था के आयोजन व रख-रखाव के तरीको में इन गुणो की स्पष्ट झलक हो।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि बच्चे भावात्मक गुणो को मुख्य रूप से बड़ों के व्यवहार को देखकर और अनुकरण करके सीखते है। शिक्षक चाहे-अनचाहे एक आदर्श नमूना होता है जिसका प्रारभिक अवस्था मे छात्र अनुकरण करने के लिए प्रवृत्त होते है। इसलिए प्रत्येक शिक्षक का इस विषय मे गभीर उत्तरदायित्व हो जाता है कि व्यक्ति के रूप मे उसकी प्रवृत्ति कैसी है और वह किन मनोवृत्तियो, कार्य की आदतो तथा जीवन शैलियो को अपने व्यवहार मे प्रकट करता है। शिक्षक को केवल ज्ञान और कौशल सिखाने वाले के रूप मे ही नही बल्कि कक्षा के अदर और बाहर के व्यक्तिगत व्यवहार द्वारा बच्चो के लिए प्रवृत्तियो के प्रवर्तक के रूप मे भी देखा जाना चाहिए।

कक्षा शिक्षण की किसी व्यूह रचना या विधि के प्रयोग से छात्रो की व्यक्तिगत भिन्नता के कारण अधिगम सुविधाए प्रदान करना सभव नहीं है। आदिकाल से यह शिक्षण अधिगम की प्रमुख समस्या रही है। इसके अतिरिक्त जो छात्रो के लिए पाठ्यपुस्तके हैं, उनका दोष यह है कि उनमे छात्रों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए किसी विधि को प्रयुक्त नहीं किया जाता। दूसरे पाठ्य-वस्तु के तत्वों की व्यवस्था तार्किक ढग से की जाती है। जिससे छात्रो को सीखने मे कम सुविधा मिलती है। जबकि पाठ्य-वस्तु के तत्वो की व्यवस्था कम मनोवैज्ञानिक ढग से होनी चाहिए एव उसमे सुधारात्मक शिक्षण व्यवस्था प्रदान की जानी चाहिए जिससे छात्रों को पाठ्य-वस्तु को बोधगम्य करने मे अधिक सुविधा हो सके।

इसके अतिरिक्त इस बात की ओर भी प्राय ध्यान आकर्षित किया जाता है कि अपेक्षित अधिगम प्रतिफल विशेषकर प्रारभिक शिक्षा के शुरू के दिनो मे शिक्षार्थी के परिपक्वता स्तर पर आधारित प्रतीत नही होते। पूर्व प्राथमिक स्तरीय पाठ्यचर्या मे पाई जाने वाली इस उच्चाकाक्षा को अब दिन-प्रतिदिन उत्तरोत्तर अधिगम की श्रेष्ठता के लिए अहितकर और समता के लक्ष्य के लिए भयावह माना जा रहा है। बोझिल पाठ्यक्रम द्वारा प्राय शिक्षक को अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया को पूरा करना इतना अधिक महवपूर्ण हो जाता है कि कक्षा मे सभी बच्चो की सीखने की गति की अवहेलना होती है। शिक्षक पिछडे बच्चो, उपचारी शिक्षण प्रयोग, अनवेषण, निरीक्षण या कार्यकलाप आधारित अधिगम की उपेक्षा के लिए बाध्य हो जाता है। पढ़ाने की पारस्परिक पाठ्यपुस्तक एव व्याख्यान पद्धति जो कि पाठ्यक्रम को शीघ्र पूरा करने का एक तरीका है, श्रेष्ठ विकल्प बन जाता है। जिसके परिणामस्वरूप छात्र पाठ को रटने के लिए विवश हो जाते है। जिससे उन्हे किसी प्रकार की आनन्दानुभूति नहीं होती। इसका नतीजा यह होता है कि अधिकाश सरकारी और नगरपालिका के विद्यालयों के बच्चे पाच वर्ष व्यतीत करने के उपरान्त भी पाठ्यपुस्तकों को मुश्किल से ही पढ पाते है। यह एक आधारभूत सत्य है।

छात्रो की इन्ही कठिनाइयो को दृष्टिगत रखते हुए विद्यालयी शिक्षा मे कुछ ऐसे आधारभूत परिवर्तन करने होंगे, जो छात्रो को, सीखने मे सरलता प्रदान कर सके। वर्तमान शिक्षा जो छात्रो को सिर्फ बस्ते का एक बोझ प्रतीत होती है, वह इतनी व्यवहारिक व बोधगम्य बन सके जिससे छात्र स्वत. गति के अनुसार सीख सकें। इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक मनोविज्ञान का ज्ञाता हो, जिससे वह छात्रों की मानसिक स्थिति को पहचान कर उसके अनुरूप ही शिक्षा प्रदान करने मे सफल हो सके। अध्यापक बच्चो को प्रारभ से ही ज्ञान दे, जो व्यवहारिक हो। अध्यापक यह ध्यान रखें कि बच्चों को जो भी सिखाए उसे बच्चो के आसपास के वातावरण से सबंधित करके सिखाए। यदि बच्चों की प्रारभिक नीव मजबूत होगी, तो उस पर खडा होने वाला महल भी मजबूत होगा।

चार दक्षताए (सुनना, बोलना, पढना, लिखना) भाषा के सर्वविदित चार कौशलों से संबद्ध है। ये आधारभूत दक्षताए हैं। नवीन और प्रभावी भाषा अधिगम के सदर्भ मे इन चारो का विकास आवश्यक है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जिस प्रकार सुनना व पढ़ना एक-दूसरे से सबद्ध है, उसी प्रकार पढना और लिखना, सुनना और

बोलना भी एक-दूसरे से जुड़े हुए है। इसी प्रकार सभी दक्षताएं एक-दूसरे से जुडी हुई है। अध्यापक को इन दक्षताओं के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए विभिन्न दक्षताओ के बीच इनके रोचक एव सक्रिय सबंधो को स्पष्ट करना पडेगा। बच्चों को पढ़ाते समय एक अध्यापक के साथ ही उसे अभिभावक, मित्र व सखा का रोल भी अदा करना चाहिए।

के जी. (किंडर गार्डन) का अर्थ है, बच्चो का बगीचा। बालक किंडर गार्डन मे अपने मनपसद के खेल खेलता है। खेल-खेल मे ही छोटी-छोटी बातो को सीखता है। यह ज्ञान उसको प्राथमिक शिक्षा के अध्ययन हेतु आधार प्रदान करता है। यहा पर कुछ भी थोपा हुआ नही होता है। लेकिन वर्तमान में के जी. का अर्थ परिवर्तित होता जा रहा है, यहा वह सब पढाने का प्रयास किया जाता है जो सरकारी विद्यालयो मे पहली कक्षा मे पढाया जाता है जबकि के. जी. के बच्चो की आयु बहुत कम होती है। ऐसी स्थिति मे बच्चो को निर्धारित पाठ्यक्रम इस प्रकार रोचक ढग से पूरा करवाया जाए ताकि उन्हे भार स्वरूप प्रतीत न हो।

के.जी मे बच्चा जब प्रवेश लेता है, तब वह एक नाजुक कली की भाति होता है। अत उस समय उसे किताबी ज्ञान देना अहितकर होता है। ऐसे समय में उसे खिलौने के माध्यम से विद्यालय के प्रति आकर्षित किया जाता है। विद्यालय प्रवेश के समय बच्चे इतने छोटे होते हे कि स्कूल नाम से ही उन्हे रोना आता है। अत प्रथम दो महीने तो सिर्फ खेलने का कार्य ही बालक करता है। उसी समय खेल-खेल मे बच्चा वाहनो, सब्जियो, फलो की पहचान सीख लेता है। जब बच्चा अप्रत्यक्ष रूप से सीखता है तो उसके नाम से पुकारता है और वह ज्ञान स्थायी हो जाता है। यह बच्चा अप्रत्यक्ष रूप से सीखता है। अत उसे ज्ञात भी नही हो पाता कि उसे पढ़ाया जा रहा है। इसी समय बच्चे को दैनिक कार्यो जैसे Good Morning करना, पानी व शौच के लिए पूछना आदि से अवगत कराया जाता है। जब बच्चा विद्यालय के प्रति आकर्षित हो जाता है तब उसे थोड़ा-थोड़ा अक्षर ज्ञान करवाया जाता है।

बच्चो को लिखना सिखाने से पहले बोलना सीखना आवश्यक है। अत आरभ में मौखिक अक्षर ज्ञान भी खिलौने के माध्यम से कराते है। पहली बार जब मैंने ब्लैक बोर्ड पर "अ" लिखकर बुलवाया तो बच्चो का इस ओर रुझान कम था। लेकिन बाद में उन्हें "अ" "आ" के चित्र वाले चार्ट से सिखाने का प्रयास किया तो बच्चे अधिक आकर्षित हुए। अब बच्चे बहुत ही जल्दी चार्ट को देखकर हिन्दी या अगेजी के अक्षर पहचान लेते है। क्योकि उनमे चित्र साथ मे रहते है। लेकिन जब अक्षरो को अलग से ब्लैक बोर्ड पर लिखकर पूछा गया तो 20 प्रतिशत छात्र ही सही अक्षर की पहचान कर पाये। तब मैने हिन्दी व अग्रेजी वर्णमाला को बनावट के प्लास्टिक के खिलौनों का प्रयोग करने का फैसला किया। सर्वप्रथम इसका प्रयोग मैने अपने तीन वर्षीय बालक पर किया। उन खिलौनो के माध्यम से वह बहुत जल्दी अक्षर पहचान करने लगा। तब मैं उन खिलौनो को विद्यालय ले गई और जैसे ही खिलौने की थैली खोली, तो बच्चों की खुशी का पार न था। पहले दिन प्रथम पांच अक्षर बच्चो की पहचान करने के लिए दिए गए। अगले दिन पांच अक्षरों के साथ पाच नए अक्षर पहचान करवाए गए। यह क्रम निरतर ज्ञान को सीखने में रुचि लेने के साथ ही अक्षर पहचान करने मे पारंगत हो गए। धीरे-धीरे वे अक्षरो को जोड़कर दो अक्षरो व तीन अक्षरों के शब्द भी बनाने लग गए। 10 प्रतिशत छात्रों को अक्षर पहचान करने मे थोडा अधिक समय लगा। लेकिन वे भी कुछ समय मे अक्षर पहचान करने लगे। यह प्रयोग हिन्दी व अग्रेजी दोनो अक्षरों के लिए किया गया।

जब बच्चो को अक्षर पहचान हो गई तब बारी आई लिखाने की। अब बच्चा भी कक्षा के वातावरण से परिचित हो गया था। वह लिखने मे रुचि लेने लगा। लिखना सिखाने से पहले बच्चों को ड्राइग सिखाना चाहिए। बहुत से लोगों का मानना है कि छोटे बच्चो के लिए ड्राइग विषय रखना फालतू की फिजूलखर्ची है लेकिन मैं तो इस विषय को आवश्यक ही नही वरन् अति आवश्यक मानती हू। यदि बच्चा आडी-टेढ़ी लाइन खींचता है तो एक स्थिति ऐसी आती है जब हम देखते है कि बच्चा

आड़ी-टेढी लाइनो से ही गणित व अंग्रेजी के कई अक्षर बनाना सीख गया है। इसके अलावा रगो को पकड़ने से बच्चा पैसिल पकडना भी सीख गया है। जो बच्चे थोडे कमजोर प्रतीत हुए उन्हे हिन्दी, गणित व अग्रेजी के अक्षर ही रगो से बनाने के लिए कहा गया। बच्चे रगों के प्रति अधिक आकर्षित होते हैं अत वे जल्दी ही कामयाबी की ओर बढने लगे।

बच्चों को वर्णमाला के अक्षर लाईन से अर्थात् A, B, C, D न सिखाकर सरल से कठिन शिक्षण सूत्र का प्रयोग करते हुए पहले I, L, E, F, T अक्षर सिखाए, इसी प्रकार हिन्दी में प, फ, न, व, ब अक्षर सिखाए। फिर क्रम से कठिन अक्षरो की तरफ बच्चो को बढाया गया। बच्चे विद्यालय में अपनी वर्कबुक में लिखते है। बच्चो को जो अक्षर विद्यालय मे सिखाया जाता है वही अक्षर कॉपी मे एक पेज पर सेट करके दिया जाता है। ताकि वह बच्चा उस अक्षर को जब घर पर भी लिखेगा तो वह अच्छा लिखने मे सफल हो सकता है।

प्रारभ मे एक-दो बार बच्चो को हाथ पकडकर लिखवाया गया ताकि बच्चा हाथ घुमाना सीख सके। 75 प्रतिशत से अधिक बच्चे धीरे-धीर स्वयं लिखने लगे। लेकिन 25 प्रतिशत ऐसे भी छात्र हैं जो अब भी कम लिख पाते हैं। इनमें से अधिकाश वे छात्र हैं जो 4 वर्ष से कम आयु के है।

बच्चो को जो भी अक्षर वर्कबुक मे लिखवाते हैं, उससे पहले वही अक्षर ब्लैक बोर्ड पर रग विरंगी चॉक से लिखते है एवं उसका सही उच्चारण भी करवाते है ताकि वच्चे के दिमाग मे वह फिट हो जाता है कि उसने किस अक्षर का लिखा है। जब बच्चे सभी अक्षरों को लिखना पहचानना सीख जाते है तब उन्हे दो व तीन अक्षरो को जोडकर शव्द बनाने सिखाए गए। बच्चे बिना मात्राओं के शब्द पढकर किताब पढ़ने लग गए।

इसी प्रकार अग्रेजी मे बच्चों को बड़ी A, B, C, D के बाद छोटी a, b, c, d लिखवाने का प्रयास करवाया गया। बच्चा A, a एक साथ लिखता है ताकि दोनों अक्षरो की उसे पहचान रहे कि दोनो ही A है।

अग्रेजी के Sound voice सिखाए गए। जैसे पहले A साउण्ड के शब्द Map, Cap, Rat सिखाए गए। उसके बाद अन्य साउण्ड वाले शब्द सिखाए गए।

हिन्दी व अंग्रेजी मे कविता पाठ प्रमुख होता है। बच्चों की कविता बोलने में वैसे भी अधिक रुचि होती है, फिर जब कविता यदि action के साथ व उसी हाव भाव से बुलवाई जाए तो कविता मे चार चांद लग जाते है। बच्चे अध्यापिका के साथ मीठी-मीठी आवाज मे सस्वर कविता पाठ करते है। कविता पाठ के साथ-साथ जैसे ही हाव-भाव प्रदर्शित करते है तो वहा एक सुखद माहौल की अनुभूति होती है। कभी-कभी कविता पाठ को Music के साथ करवाया जाता है। बच्चों को माइक पर बोलने का मौका दिया जाता है। जिससे वच्चो की छिपी हुई प्रतिभा उजागर होती है। जो बच्चे आज छोटे-छोटे स्टेज पर बोलने का साहस कर रहे है, हम उनकी प्रतिभा को और अधिक बढ़ावा देकर उन्हें बडे स्टेज पर कार्यक्रम करने हेतु तैयार करने का प्रयास करते है।

गणित की गिनती बच्चो को जल्दी याद हो जाती है। हमारा प्रयास यह नहीं होता कि बच्चों को रटा दें बल्कि हम चाहते है कि बच्चो को जो भी सिखाए वह धीरे-धीरे किन्तु स्थायी ज्ञान हो, उसमे बच्चा अपने दिमाग का प्रयोग करे। हम बच्चो को फिसलपट्टी पर बैठा कर 1 से 5 तक गिनती बोलते हुए नीचे आने के लिए कहते है। इस परीक्षण से यह पाया कि बच्चा यह जान रहा है कि अब उन्होंने 5 बोला है, और अब मुझे नीचे फिसलना है। उसी तरह गिनती बोलते हुए दौड़ने के लिए कहते है।

बच्चों को गिनती के अक्षरो की बनावट के खिलौने खेलने के लिए दिए गए। इसी तरह बच्चो को रोज गिनती वोलते समय उन्ही नम्बरो को ब्लैक बोर्ड पर लिख देती हू। बच्चे गिनती बोलते समय अपनी नजर संकेतक (सख्याक) की ओर रखते है कि किस नम्बर पर संकेतक है, यह नम्बर किस-किस अंक से बना है जैसे— 1 इससे बच्चे सख्या पहचान कर उसे आसानी से लिख लेते है।

कुछ बच्चे तो गणित मे सख्याओ से जोड़ना सीख जाते है किन्तु मदबुद्धि बालक धीरे-धीरे सीख पाते हैं

इसके लिए अन्वेषिका ने रग-बिरगे मनके लिए और उनकी मालाए बनाई। बच्चो को अब उन्हे गिनने के लिए कहा गया। साथ ही मनको के रंगो की पहचान भी कराती रही। सफलता उनके हाथ लगी। बच्चे गिनने के साथ रगों को भी पहचानने लगे।

बच्चे जब लाइन में खडे होते हैं तब उनसे पूछा कि आपके आगे और पीछे कौन खडा है, इसी तरह आप तीनों के बीच मे कौन है। बच्चे अपने दोस्तो के नाम आसानी से बता देते है। बच्चे यह आसानी से समझ गए कि दी हुई सख्या से पहली सख्या क्या है, बाद की संख्या क्या है तथा पहली और बाद की सख्या के बीच की संख्या क्या है। अब बच्चों को नम्बर दे दिए गए। बच्चे अपने आगे पीछे वाले नम्बर आसानी से बताने लगे तब इसका प्रयोग गणित में After, Between, Before मे किया गया। बच्चो को पहले 1 से 10 नम्बर की सख्याओ के After, Between, Before सिखाया। अध्यापिका ने अपने इस प्रयोग मे पाया कि यदि बच्चो को सीधे ही बोर्ड पर After, Between, Before करने के लिए कहती तो शायद 50 प्रतिशत छात्र भी सही नहीं कर पाते और प्रयोग का नतीजा यह निकला कि 99 प्रतिशत छात्र अब After, Between, Before के सवालो को आसानी से हल कर लेते है।

इसी प्रकार के जी मे बच्चो को किताब से Picture Indentity करने के साथ-साथ अधिक से अधिक उन वस्तुओं को प्रत्यक्ष मे दिखाने का प्रयास करती है ताकि बच्चे केवल किताब के चित्रो के नाम रटने तक ही अपने आपको सीमित नही रख सके। जैसे Clothes we wear में एक लड़के और लडकी को आगे खडा करके उनके कपड़ों के बारे मे बताया जाता है। बाकी बच्चे आगे खडे बच्चों के इशारो को देखकर स्वयं भी अपने कपडो को छूते है जैसे Tie, shoe, socks, pant, shirts etc. इसी तरह Parts of the body में भी बच्चे body के एक हिस्से का नाम बोलते हुए अध्यापिका को देखकर अपने अगो को स्पर्श करते है। Things we do मे बच्चों को Action करने के लिए कहा जाता है जैसे Dance, eat, drink, read etc. बच्चो को इस तरह पढ़ने मे बहुत आनद आता है जो बच्चे हमेशा चुपचाप बैठे दिखाई देते है वे भी उछल-उछल कर Dance, eat, action करते पाए गए है। जानवरो के बारे में हम लकडी के खिलौने से जानकारी प्रदान करते है क्योकि पालतू जानवर तो देखने को मिल जाते हैं। किन्तु जगली जानवर तथा पक्षी देखने मे कम मिलते हैं। चूकि अन्वेषिका का विद्यालय ऐसे स्थान पर है जहा चिडियाघर नही है। अत. बच्चो का यह ज्ञान अधूरा रह जाता है। जिन स्थानों पर चिड़ियाघर की व्यवस्था हो वहा बच्चो को वर्ष मे एक-दो बार वहां अवश्य ले जाना चाहिए।

बच्चों को अक्षर ज्ञान देना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनमे नैतिकता के गुणों का विकास करना भी आवश्यक है क्योकि एक कहावत है कि

यदि धन गया तो कुछ नही गया,
यदि स्वास्थ्य गया तो बहुत कुछ गया।
और यदि चरित्र गया तो सब कुछ गया।

के. जी. के बच्चे इतने छोटे होते है कि यदि उन्हे भाषण के माध्यम से कोई बात बताई जाए तो वह उनके सिर के ऊपर से निकल जाएगी। अतः अध्यापिका ने इसके लिए कहानी विधि का प्रयोग किया। बच्चे जानवरो, राजा-रानियों, परियो की कहानी सुनने के शौकीन होते हैं। अतः उन्हें कहानी के माध्यम से ही अच्छी-अच्छी बाते बताने का प्रयास किया। बच्चो को पार्क व सड़क पर ले जाकर उसी तरह का वातावरण तैयार किया गया। जिससे बालक अपने आप को समस्याग्रस्त अनुभव करें और उसका निदान ढूढ सके। ऐसे समय मे उन्हें बरती जाने वाली सावधानियों से अवगत करवाया गया।

प्रत्येक महीने के अंतिम सप्ताह मे बच्चो की लिखित व मौखिक परीक्षा ली जाती है। ताकि बच्चो की वास्तविक स्थिति का पता चल सके और उसी के अनुसार निदानात्मक उपायो को ढूढ कर प्रयोग मे लाया जा सके। जो बच्चे ज्यादा कमजोर होते है, उनके अभिभावको को सूचित कर दिया जाता है ताकि वे भी इस ओर अपना ध्यान आकर्षित कर सके।

प्रथम स्तर के प्रत्येक शिक्षा कार्यक्रम मे विभिन्न

निर्धारित पाठ्यक्रम क्रियाओ के अतिरिक्त अनेक पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है जैसे– खेलकूद, अभिनय, कविता पाठ, सगीत आदि। ये क्रियाए निर्धारित पाठ्यचर्या निवेशो पर काम करने के बधन के बिना मुक्त तथा सहज सदर्भ मे विभिन्न व्यक्तिगत एव सामाजिक गुणो के विकास के लिए प्रचुर अवसर प्रदान करती है। यह हर्ष की बात है कि पूर्व-प्राथमिक स्तर पर बच्चो के सर्वागीण विकास की सम्प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओ में छुपी संभावनाओ को हम अधिक बल देते है।

अध्यापक वर्ग यदि नवीन प्रयासो, प्रयोगो व पद्धतियो के अनुसार बालको को पढाने का प्रयास करता है तो इससे अध्यापक को सिर्फ आनद का ही अनुभव नहीं होता बल्कि उसका मस्तिष्क भी विकसित होता है। अध्यापक के मस्तिष्क में नए-नए विचार जन्म लेते है जो अनजाने मे ही नये अविष्कार बन जाते है, जिससे सिर्फ विद्यार्थी वर्ग ही लाभान्वित नहीं होता अपितु अप्रत्यक्ष रूप से समाज, देश और विश्व भी लाभान्वित होता है।

बच्चा एक कच्ची मिट्टी के घडे के समान होता है। जिसको ढालने का कार्य अध्यापक, अभिभावक या समाज का होता है, किन्तु इसमे सबसे अधिक योगदान अध्यापक का होता है। बच्चा बचपन मे जिन सस्कारों, आदतों एव व्यवहारो को सीखता है, वह चिरस्थायी रूप ग्रहण कर लेते है। समय-समय पर वह उन्ही सस्कारो का प्रदर्शन करता है, जो उसने अपने बचपन मे सीखे है। अतः बच्चे की विद्यालयी शिक्षा जीवन मे एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसलिए विद्यालयी शिक्षा इस प्रकार से सुनियोजित होनी चाहिए कि बच्चा भविष्य मे एक सुनागरिक बन सके।

भावात्मक क्षेत्र के अधिगम प्रतिफलो का सीधा सबध औपचारिक प्रक्रिया द्वारा प्रदान किए जाने वाले पाठ्यक्रम अनुभवो के किसी भी समुच्चय विशेप से नही जोडा जा सकता है। इन ग्रुपों का विकास विद्यालय के अंदर और उसके बाहर के अनौपचारिक अनुभवो द्वारा निरतर होता रहता है। इस अनौपचारिक अधिगम की प्रक्रिया मे घर में अभिभावको और समाज की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। एक आदर्श व्यवस्था में घर, समुदाय और विद्यालय को एक परिपूरक और परस्पर पुनर्बलन की भूमिका निभानी चाहिए। इस दिशा में हमारा प्रयास यही रहता है कि हम इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनकी अधिकाधिक पारस्परिक क्रिया मे सहायक हो।

विद्यालय अधिगम के इस पहलू को बढ़ावा देने के लिए अभिभावको तथा समुदाय का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना है। उदाहरण के लिए अभिभावक, अध्यापक सघ इस सदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अधिगम के असज्ञानात्मक पहलुओ पर उचित बल देने हेतु शैक्षिक कार्यक्रमो को सुचारू बनाने मे क्षेत्र के अभिभावको / शिक्षकों और शिक्षा प्रशासको के बीच पारस्परिक क्रिया बहुत लाभदायक सिद्ध होती है। इन प्रयासों के बहुआयामी होने की आवश्यकता है। ऐसा होने से विद्यालय जो प्रयास उस लोक स्वभाव (इथास) को बनाने के लिए कर रहा है, जिससे अधिगम के असज्ञानात्मक प्रतिफलो पर अतिशय बल देने की प्रचलित पद के स्थान पर भी पहलुओ पर सतुलित बल दिया जाता है उनका (प्रयासों) पुनर्वलन होगा।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज मे जन्म लेता है। अत· उसका समाज के प्रति भी एक उत्तरदायित्व होता है। आज का बच्चा कल का नागरिक है। यदि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा बालक की अच्छी होगी तो बालक का भविष्य मे हमेशा सही मार्ग पर प्रदर्शित होगा। बच्चे यदि सुनागरिक होगे, तो उससे परिवार, समाज और देश का कल्याण होगा। अध्यापक को देखकर बच्चे मे भी सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है। भारत एक विकासशील देश है। इसे विकसित देशो की श्रेणी मे लाने का कार्य सृजनात्मक बच्चे ही कर सकते हैं। अत· इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि बच्चों की पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।

यदि यह सोचा जाए कि इन नवाचारों या प्रयोगो को लागू करने मे लागत अधिक आएगी और इनकी ओर ध्यान न दिया जाए तो यह हमारा भ्रम होगा, क्योकि वर्तमान मे जो भी लागत आएगी उसका प्रतिफल हमे

भविष्य मे मिलेगा और वह लागत भी बहुत न्यून है। मै सोचती हू कि ऐसे विद्यालय जहा खिलौने या प्रयोग सबधी सामग्री का अभाव है, वहा पर भी अध्यापक चाहे तो बहुत कम पैसा व्यय करके स्वय भी सामग्री जुटा सकता है। अध्यापक जब यह देखेगा कि उसका विद्यार्थी निरंतर उन्नति करता हुआ भविष्य मे एक डॉक्टर, इजीनियर बन गया है तो उसे जो खुशी होगी, उसका अनुमान लगाना भी कठिन है। इन प्रयोगों का सबसे बडा प्रतिफल हमे यह मिलेगा कि इससे अमूल्य समय की बचत होगी। बच्चा कम समय मे अधिक ज्ञान प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

ऊपर लिखित सभी पद्धतियों का प्रयोग मैने अपनी कक्षा शिक्षण के दौरान किया। मैंने पाया कि जो बालक विद्यालय प्रवेश के समय विद्यालय आने से भी कतराते थे आज वे भी हसते हुए विद्यालय आते है एव पढ़ाई भी मन लगाकर करते है। मेरी कक्षा मे 35 बच्चे है सभी लगभग 4 से 5 वर्ष की आयु के हैं। उनमें से 80 प्रतिशत होशियार, 12 प्रतिशत सामान्य व 8 प्रतिशत मदबुद्धि के है। मेरा प्रयास सामान्य व मदबुद्धि के बच्चो की प्रगति की ओर अधिक रहता है। वर्ष के अत तक कम बुद्धि वाले बच्चे भी सामान्य बच्चो के बराबर सीख लेते है। मैने जो भी प्रयोग किए और वर्ष के प्रारभ मे इन परिणामो, प्रयोगो के परिणामो के प्रति जो अनुमान लगाया था उसमे अनुमान से अधिक सफलता दिखाई दे रही है। मुझे आशा है कि मेरी कक्षा का परिणाम सौ प्रतिशत रहेगा। ☐☐

न्यू लुक सैन्ट्रल स्कूल
बांसवाड़ा, राजस्थान

फार्म 4

(नियम 8 देखिए)

प्राइमरी शिक्षक

1.	प्रकाशन स्थान	नई दिल्ली
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3	मुद्रक का नाम	रोहित मल्होत्रा दीपक प्रिंटर्स एव पब्लिशर्स
	(क्या भारत का नागरिक है?)	हा
	(यदि विदेशी है तो मूल देश का पता)	लागू नही होता
	पता	6/269 डूगर मौहल्ला पाडव रोड, शहादरा, दिल्ली-32
4.	प्रकाशक का नाम	पूरन चन्द
	(क्या भारत का नागरिक है?)	हां
	(यदि विदेशी है तो मूल देश का पता)	लागू नही होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविद मार्ग नई दिल्ली 110 016
5.	अकादमिक मुख्य संपादक का नाम	पूरन चन्द
	(क्या भारत का नागरिक है?)	हा
	(यदि विदेशी है तो मूल देश का पता)	लागू नही होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविद मार्ग नई दिल्ली 110 016
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हो तथा समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग नई दिल्ली 110 016 (मानव संसाधन विकास मंत्रालय की स्वायत्त संस्था)

मैं, पूरन चन्द अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग एतद् द्वारा घोषित करता हू कि मेरी अधिकतम जानकारी एव विश्वास के अनुसार ऊपर लिखे विवरण सत्य है।

पूरन चन्द

प्रकाशक

प्राइमरी शिक्षक त्रैमासिक पत्रिका के इच्छुक पाठकों एवं लेखकों के नाम संदेश

'प्राइमरी शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक ऐसी महत्वपूर्ण पत्रिका है जो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे हो रहे अनेक प्रयोगो, अनुसधानों तथा अन्य गतिविधियों को पाठकों तक पहुंचाने का सुगम माध्यम है। इस पत्रिका का प्रकाशन विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदो, शिक्षको, शिक्षक-प्रशिक्षको तथा पाठ्यक्रम निर्माताओ को समर्पित है। इसके प्रत्येक सस्करण में ऐसे नवीनतम लेखो को विशेष स्थान दिया जाता है जो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे शैक्षिक नीतियो से सबधित हो, गुणात्मक सुधार की दिशा मे उल्लेखनीय प्रयोग हो, अधिगम को सुरुचिपूर्ण तथा ग्राह्य बनाने हेतु निजी अनुभव या शोध कार्य हो, विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के विवरण तथा पाठको के लिए उपयोगी अन्य विषयो पर अलकृत लेख हो।

इस पत्रिका के सुचारू रूप से प्रकाशन, प्रचार एव प्रसार के लिए पाठको तथा लेखको का सहयोग अनिवार्य है। इस सदर्भ मे आपसे निवेदन है कि इस पत्रिका के स्थायी सदस्य के रूप मे स्वय अथवा अपने सस्थान विद्यालय को पजीकृत करवाने का कष्ट करे। यह पत्रिका शैक्षिक उपयोगिता की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। अत. परिषद् इसे मूल लागत से बहुत ही कम कीमत पर पाठको को उपलब्ध कराती है। इसका वार्षिक चदा केवल 16 रु. है और प्रति कापी का मूल्य मात्र 4 रु. है। आशा है आप इस दिशा मे शीघ्र ही निर्णय कर संस्थान अथवा निजी वार्षिक सदस्यता के लिए कार्यवाही करेंगे। वार्षिक सदस्यता शुल्क-पत्र के लिए अपना पत्र स्वनामाकित लिफाफा सहित बिजनेस मैनेजर, प्रकाशन प्रभाग (एन. सी. ई. आर. टी.) श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली–16 को भेज सकते हैं। अन्य जानकारी के लिए 'अकादमिक सपादक' प्राइमरी शिक्षक से सपर्क कर सकते है। इस पत्रिका के लिए विशिष्ट लेखकों के लेख सहर्ष स्वीकार किए जाते है तथा उनके प्रकाशन के उपरांत समुचित पारितोषिक देने की भी व्यवस्था है।

कृपया अपने लेख निम्न पते पर भेजे :

अकादमिक संपादक,–प्राइमरी शिक्षक
प्रकाशन प्रभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली–110 016

प्राथमिक शिक्षक

जुलाई 2001

'प्राइमरी शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षको और संबद्ध प्रशासकों तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबधित जानकारियां पहुंचाना, उन्हें कक्षा मे प्रयोग मे लाई जा सकने वाली सार्थक व संबद्ध सामग्री प्रदान करना और देश भर के विभिन्न केंद्रो मे चल रहे पाठ्यक्रमो और कार्यक्रमो आदि के बारे में समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा-जगत में होने वाली गतिविधियों पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मंच प्रदान करती है। पत्रिका में प्रकाशित लेखो में व्यक्त किए गए विचार लेखको के अपने विचार भी हो सकते हैं। यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक चितन में परिषद् की नीतियों को ही प्रस्तुत किया गया हो।

पूरन चन्द *प्रधान अकादमिक संपादक*
रामेश्वर दयाल शर्मा *अकादमिक संपादक*

प्रकाशन सहयोग

राजकुमार गुप्त *संपादक* **कल्याण बैनर्जी** *उत्पादन अधिकारी*

मूल्य एक प्रति : 4 रुपये वार्षिक : 16 रुपये

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष · 26 | अक 3 | जुलाई 2001

इस अंक में

संपादक की कलम से

शाला और समुदाय एक दूसरे के अपरिहार्य है। इनके निकट संबंध के बारे मे गांधी जी ने भी विशेष बल दिया। उनका मत था कि यदि हम चाहते है कि शिक्षा एक नई सामाजिक व्यवस्था बनाने की भूमिका अदा करे तो समाज व शाला में निकटता होना आवश्यक है। बच्चों को दी जा रही शिक्षा में उन्हें अपनापन महसूस हो तथा शिक्षा में भागीदारी निभाने के लिए वे आगे आये, शिक्षा प्रणाली की सार्थकता इस रूप में प्रदर्शित होनी चाहिए। आज जब सभी बच्चो को शाला में लाने के अनेक प्रयास हो रहे हैं, ऐसे समय में इस करीबी संबंध की आवश्यकता और भी महत्वपूर्ण हो गई है। समुदाय को अपने बच्चो को शाला मे भेजने के लिए उत्प्रेरित करने के साथ-साथ शिक्षा को स्थानीय समुदाय की जरूरतों एवं उनकी जीवनशैली से जोड़ना भी आवश्यक है। हाल में किए गए पचायती राज्य व्यवस्था अधिनियम से इस दिशा में आशाजनक सुधार हो रहा है। शाला की गतिविधियों में सहयोग देने और मौके पर ही निगरानी की सुविधा के रूप में समुदाय की भूमिका, विशेषतौर पर ग्राम शिक्षा समितियो, मातृ समूहों आदि की भूमिका अधिक सक्रिय बन रही है। जब हम शिक्षा का अर्थ बच्चे का समग्र विकास मानते हैं तो फिर बच्चे के परिवेश के अन्य लोग भी उतने ही महत्वपूर्ण हो जाते हैं जितने कि शिक्षक। अत' बच्चा क्योंकि एक परिवार, एक समुदाय, एक मौहल्ले मे रहता है इसलिए बच्चे को शिक्षित करने में केवल शिक्षक ही नही बल्कि अभिभावक, समुदाय, विद्यालय व शिक्षा से सीधे या परोक्ष रूप से जुडी सस्थाओं व कर्मिको का भी सम्मिलित दायित्व है। बच्चे के अन्दर की संभावनाओं को साकार करने के लिए इन सभी का शैक्षिक क्रियाकलापों में सक्रिय सहयोग आवश्यक है। शाला और समुदाय की सहभागिता सुनिश्चित करने पर नामांकन व ठहराव के सार्वजनीकरण एवं गुणवत्ता आधारित शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को सुगमता पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। ❑❑
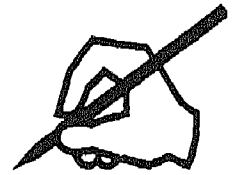
ग्रामीण बाल-शिक्षा जगत में तराबाई मोडक

एक अभिनव प्रयोग

❒ आशा शर्मा

बच्चे किसी भी देश की सर्वाधिक महत्वूपर्ण सम्पत्ति होते हैं इन्हीं के उचित विकास पर देश का विकास निर्भर होता है। बच्चों के हित में किया जाने वाला व्यय वस्तुतः देश के भविष्य पर किया जाने वाला व्यय है। समाज के संसाधनों में बच्चे पहली प्राथमिकता होने चाहिए। बच्चों को पुष्पित एवं पल्लवित होने के पर्याप्त अवसर सुलभ हों तथा इसके साथ ही ग्रामीण परिवेश के अनुरूप उनकी शिक्षा व्यवस्था का निर्धारण हो। इसी उद्देश्य एवं संकल्प को लेकर भारत की माण्टेसरी कही जाने वाली ताराबाई मोडक ने ग्रामीण-क्षेत्रों के बाल-शिक्षा जगत में कार्य करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले बालकों की शिक्षा हेतु अनेक सफल अभिनव प्रयोग किए और उनके इन प्रयोगों से "ग्राम बाल-शिक्षा की संकल्पना" को एक निश्चित स्वरूप मूर्तरूप में प्राप्त हो सका। ग्रामीण बाल-शिक्षा जगत में ताराबाई मोडक द्वारा जो विभिन्न प्रयोग किए गए, उन अभिनव प्रयोगों की कार्यप्रणाली एवं उनकी उपयोगिता और प्रासंगिकता को प्रस्तुत आलेख में उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

ग्रामीण परिवेश में बाल-शिक्षा पर विभिन्न अभिनव प्रयोग

नूतन बाल-शिक्षण संघ कार्यकर्ताओ का सम्मेलन भावनगर में सन् 1940 में हुआ। इस सम्मेलन मे यह विचार-विमर्श हुआ कि बाल-शिक्षा का प्रसार ग्रामीण क्षेत्रो में भी होना चाहिए और इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर ग्रामीण क्षेत्र में बाल-शिक्षा के विकास हेतु विशेष प्रयोग प्रारम्भ किए गए। परन्तु इस दिशा मे ताराबाई मोडक को गांधीजी से बाल-शिक्षा के विकास हेतु जो सुझाव प्राप्त हुए, उनसे उन्हें इस क्षेत्र मे कार्य करने के लिए एक सुनिश्चित मार्गदर्शन मिला। इस सन्दर्भ मे गाधीजी का सुझाव था कि– "ग्रामीण बाल-शिक्षा के लिए आर्थिक प्रश्न इतना महत्वपूर्ण नही है। राष्ट्र की उन्नति के लिए बाल-शिक्षा मे करोडो रुपए खर्च होगे, और यह करना ही पड़ेगा। किन्तु बाल-शिक्षा मे शास्त्रीय दृष्टि अधिक महत्वपूर्ण है। माण्टेसरी पद्धति अपनानी है तो उसे अपने देश की परिस्थिति के अनुरूप बनाना होगा। इस प्रणाली के तत्व अधिक महत्वपूर्ण हैं। माण्टेसरी शिक्षण साधन सामग्री गाव में ही, वह भी गावो मे उपलब्ध वस्तुओ से ग्रामीण कारीगरों से बनवानी चाहिए। ग्रामीण बालको को पेट भर भोजन नहीं मिलता, अतः उनके लिए कम खर्चे में पूरक आहार देने की व्यवस्था भी होनी चहिए।"

गांधीजी के उपर्युक्त सुझाव से ताराबाई मोडक को ग्रामीण क्षेत्रों में बाल-शिक्षा कार्य के सम्पादन में एक दिशा मिली। इसी दिशा को उन्होने बाल-शिक्षा व्यवस्था हेतु विभिन्न केन्द्रों की स्थापना की। ग्रामीण बाल-शिक्षा प्रसारण के विभिन्न केन्द्र वर्गीकृत रूप मे निम्नांकित हैं–

बोर्डी में ग्रामीण बाल-शिक्षा केन्द्र

राष्ट्रपिता बापू द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन से अभिप्रेरित होकर ताराबाई ने ग्रामीण बाल-शिक्षा कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने समुद्र किनारे स्थित ठाणे जिले में नैसर्गिक वातावरण मे बोर्डी ग्राम का चयन किया तथा 1945 में यहां पर बाल-शिक्षा केन्द्र का उद्घाटन किया। ताराबाई के इस कार्य के सम्पादन में नूतन बाल-शिक्षण संघ के कार्यकर्ताओं
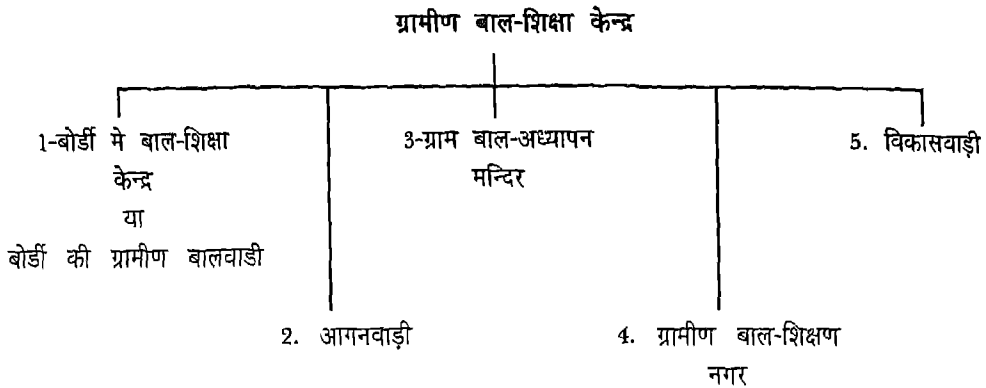
ने भी अपनी सहभागिता दी। पुणे के एक प्रसिद्ध विद्यालय मे कार्यरत योग्य शिक्षिका अनुताई वाघ बोर्डी के बाल-शिक्षा केन्द्र मे कार्य करने के लिए आयी। ताराबाई के सहयोगी कार्यकर्ताओ में अनुताई वाघ का योगदान भी ग्रामीण बाल-शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण है।

बोर्डी की ग्रामीण बालवाड़ी और उसकी समस्याएं

जब बोर्डी में बाल-शिक्षा केन्द्र प्रारम्भ हुआ तब वहां की बालवाड़ी में अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी, जो निम्नांकित हैं–
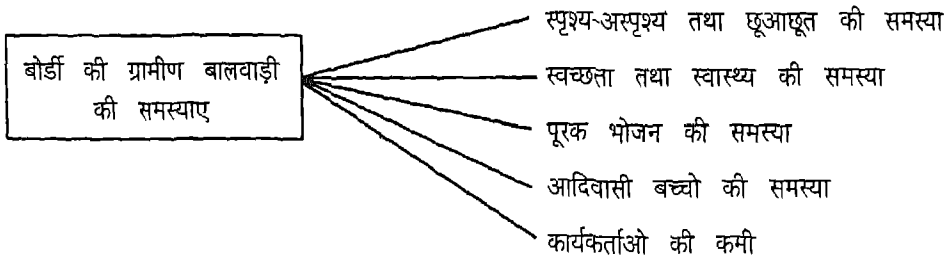
बोर्ड़ी की ग्रामीण बालवाड़ी में विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रम

शहरी बालकों की अपेक्षा ग्रामीण बालकों का परिवेश बिल्कुल अलग होता है। यही कारण है कि उनकी अभिवृद्धि और विकास में भी अन्तर पाया जाता है। अत. इन्ही बिन्दुओ को ध्यान में रखकर बोर्ड़ी के ग्रामीण बालवाड़ी में एक स्वस्थ कार्यप्रणाली का निर्धारण किया गया। इस कार्यप्रणाली के अन्तर्गत ऐसे कार्यक्रम रखे गए जो बालकों के बेहतर विकास में सहायक सिद्ध हों। ये कार्यक्रम अगले पृष्ठ पर दर्शाए गए है।

(अ) स्वच्छता तथा स्वास्थ्य की शिक्षा—बालकों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए बालवाड़ी के कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वच्छता तथा स्वास्थ्य को विशेष महत्व दिया गया। दैनन्दिनी कार्यक्रम के अन्तर्गत सर्वप्रथम बालकों के लिए हाथ-पैर धोने की व्यवस्था थी। नाक पोंछने के लिए प्रत्येक बालक के लिए अलग कपड़ा रखा गया था। बालों को स्वच्छ रखना, उन्हें संवारना, बालों में जुएं तथा शरीर पर खुजली के लिए दवा लगायी जाती थी। बालवाड़ी में स्नान करने तथा कपड़े धोने की भी व्यवस्था थी। हर बालक के लिए दो जोड़े कपड़े तथा अंग पोंछने के लिए तौलिया था। साबुन तथा उबलते हुए पानी में वाशिंग सोड़ा डालकर तथा उसमें कपड़े डुबोकर बालक स्वयं धोते थे। अतः स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के अन्तर्गत शारीरिक
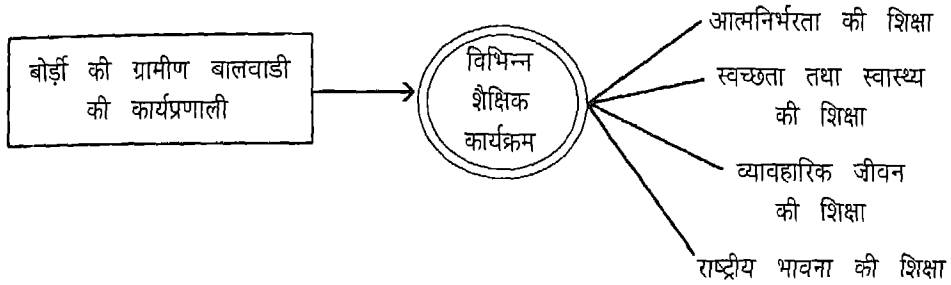
स्वास्थ्य व स्वच्छता को विशेष महत्व दिया गया। "स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है।" इस परिकल्पना को लेकर ही उक्त कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित की गई।

(ब) आत्मनिर्भरता की शिक्षा–बालक स्वयं आत्मनिर्भर बन सके, यह इस कार्यक्रम का शैक्षिक उद्देश्य था। बालक स्वय अपने छोटे-छोटे कार्यो को करना सीख सकें इसका विशेष ध्यान रखा जाता था। अपने कपड़े पहचानने के लिए कपड़ो पर रंगीन धागे से अलग-अलग निशान बनाने के लिए कुछ कलाकारी भी सिखाई गई। कक्षा की सफाई कर, सामूहिक प्रार्थना होने के पश्चात् कक्षा कार्य प्रारम्भ किया जाता था। कक्षा कार्य में जीवन व्यवहार, इन्द्रिय-विकास तथा हस्त व्यवसाय का काम था, जिसमे मिट्टी के काम को प्रमुख स्थान था। कुम्हार जैसे मिट्टी तैयार करता है, वैसे ही बालक स्वयं मिट्टी तैयार कर उसकी विविध वस्तुए बनाते थे। उसे सुखाकर, रंगकर, कभी-कभी भट्टी मे भी पकाते थे। कागज पर चित्र बनाना, कपास से रूई निकालकर उनसे पूनिया तैयार कर सूत कातना, हाथ से कुछ सिलाई का काम करना, टोकरियां या चटाई बुनना, रंगोली, फूल, पत्तियां, बीज, शंख, सीप आदि से सुशोभित करना आदि हस्त व्यवसाय के कार्य साप्ताहिक कार्यक्रम में अवश्य रखते थे।

(स) व्यावहारिक जीवन की शिक्षा–इस शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम के अन्तर्गत गीत, कहानी, नाटक, अभिनय, बिना साधनो के खेल तथा बागवानी जैसे मेहनत के काम भी रहते थे। बागवानी में कुछ उत्पादन हो, ऐसा प्रयास किया जाता था। कुएं से पानी निकालने के अभ्यास के लिए बड़े ड्रम या कनस्तर मे रखे हुए पानी से रस्सी तथा छोटी सी बाल्टी से पानी खींचने का अनुभव बालक लेते थे। मिट्टी से ईटे तैयार करना, जमीन लीपना, पोंछा लगाना, क्यारियां बनाना आदि कार्यक्रमो के साथ भ्रमण का भी कार्यक्रम रहता था। विशेषत: नदी, तालाब या समुद्र से मछलिया पकड़ना बच्चों को अधिक पसन्द था। मछलियां बालवाड़ी में रखी जाती थी।

(द) राष्ट्रीय भावना की शिक्षा–बालकों में राष्ट्रीय भावना का संचार करने के लिए बालवाडी मे विभिन्न राष्ट्रीय पर्व तथा कस्तूरबा दिन मनाया जाता था। बालवाडी का कार्यक्रम देखने के लिए सभी अभिभावक तथा ग्रामवासियों को आमन्त्रित किया जाता था। सभी कार्यक्रम खुले मैदान में, छाया मे होते थे। सभी ग्रामवासी इन कार्यक्रमों को आसानी से देख सकते थे।

ग्रामीण बालकों में पाई जाने वाली विशेषताएं

ताराबाई मोडक ने अपने विभिन्न अभिनव प्रयोगो एवं ग्रामीण बालवाडी में आयोजित विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रमों के अवलोकन एवं उनके द्वारा प्राप्त अनुभवों से बालकों मे निम्नाकित विशेषताओं को पाया–

- लिखने, पढ़ने तथा गणित के अध्ययन में ग्रामीण बालकों की रुचि, शहरी बालकों की अपेक्षा कम पाई गई।
- प्राकृतिक जानकारी तथा सामान्य ज्ञान में ग्रामीण बालकों का स्तर शहरी बालकों की अपेक्षा श्रेष्ठतर पाया गया।

- ☐ ग्रामीण बालकों की मानसिक आयु का स्तर लगभग शहरी बालकों की भांति पाया गया।
- ☐ ग्रामीण बालक बचपन से ही घर के कार्यो में हाथ बांटते हैं। इसलिए वे घरेलू कार्यो मे अधिक कुशल रहते हैं। तथा शहरी बालकों की अपेक्षा स्वय अपने कार्यो को करने में वह अधिक आत्मनिर्भर पाए जाते हैं।

आंगनवाड़ी

जब यह पाया गया कि गाव की बालवाड़ी मे वनवासी बालक नही आते, तब उन्ही के छोटे समूहों मे जाकर, किसी घर के आंगन मे ही बालवाडी चलाने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। यह आंगनवाड़ी मकान के आंगन, बरामदा, खुला मैदान या वृक्ष की छाया मे सुविधानुसार कही पर भी लगती थी। वर्षा ऋतु मे किसी मन्दिर या मकान के अहाते या ढके हुए बरामदे मे चलती थी। यह सुबह या शाम एक या दो घण्टे लगती थी। प्रतिदिन जगह की सफाई, शारीरिक स्वच्छता, प्रार्थना, गीत, खेल, कहानी, समूह परिचर्चा तथा सप्ताह में कभी-कभी हस्त व्यवसाय आदि के कार्यक्रम रहते थे। बडे बच्चों को अंक तथा अक्षर-परिचय कराया जाता था। अंक ज्ञान तथा अक्षर ज्ञान के लिए स्थानीय उपलब्ध वस्तुओं का ही उपयोग करते थे।

इन आगनवाड़ियों का विशेष उपयोग अध्यापन-मन्दिर के प्रशिक्षणार्थियों का समूह बनाकर उन्हें एक आंगनवाड़ी चलाने का काम सौपा जाता था। इरा कार्यक्रम की पूरी रूपरेखा तैयार करने का काम प्रशिक्षणार्थियों से करवाकर, उन्हें तीन माह तक आंगनवाडी चलाने का अनुभव दिया जाता था। इस कार्य को चलाने के लिए सायंकाल 5 से 7 बजे तक का समय निर्धारित किया गया था। आगनवाडी के संचालन मे जो कुछ समस्याएं उत्पन्न होती थीं, वे प्रशिक्षणार्थी स्वय हल करते थे। इन समस्याओ के समाधान में अध्यापक का मार्गदर्शन समय-समय पर इन प्रशिक्षणार्थियो को प्राप्त होता था। कार्यक्रम सफलतापूर्वक चले तथा इसका लाभ समस्त बच्चे प्राप्त कर सके, इसके लिए प्रशिक्षणार्थी स्थानीय लोगों के साथ मिल-जुल कर तथा उनका इस कार्यक्रम के संचालन में सहयोग प्राप्त कर काम करते थे। इस दिशा मे यह एक सफल एव नया प्रयोग था।

ग्राम बाल-अध्यापन मन्दिर

बोर्डी मे ही बालवाडी प्रशिक्षण वर्ग के लिए अध्यापन-मन्दिर प्रारम्भ हुआ। प्रथम तीन मास का ही पाठ्यक्रम था। इसमे प्रत्यक्ष रूप में बालवाडी चलाने का अनुभव प्रशिक्षणार्थियों को प्राप्त होता था। इसका प्रशिक्षण काल एक वर्ष का था। इसके लिए अखिल भारतीय स्तर पर बंगाल, उड़ीसा, केरल, उत्तर प्रदेश, मध्य-भारत, गुजरात एवं सौराष्ट्र से प्रशिक्षणार्थी आते थे। शिक्षण का माध्यम हिन्दी था, किन्तु बालवाडी में बालको की भाषा मराठी या गुजराती थी। अतः कक्षा शिक्षण में बाधा उत्पन्न होने लगी। तब कस्तूरबा ट्रस्ट के द्वारा प्रत्येक प्रदेश में प्रशिक्षण वर्ग की अलग व्यवस्था की गई। फिर भी 1955 तक ग्राम सेविका तथा बाल सेविका प्रशिक्षण के लिए यहां महिलाएं आती थी। यहा तीन माह आंगनवाडी चलाने का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता था तथा स्वयं शिक्षण साधन सामग्री बनाने की शिक्षा मिलने से यहां के प्रशिक्षित विद्यार्थी अपने स्थान पर जाकर उस दिशा मे अच्छा कार्य करते थे। ऐसा इनके कार्यो को देखकर अनुभव हुआ।

ग्रामीण बाल-शिक्षण नगर

बोर्डी में 1950 में ग्रामीण बाल-शिक्षण नगर आयोजित किया गया था, जिनमें पास के गांवों के तथा बोर्डी के समाज सेवक और अन्य सस्थाओ का सहयोग था। इस ग्रामीण बाल-शिक्षण नगर की साज-सज्जा स्थानीय वस्तुओं से ही ग्रामीण शैली के अनुरूप की गई। इस बाल-शिक्षण नगर का उद्घाटन फइटण की रानी सौ. निबालकर ने किया। इस कार्यक्रम के अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा कि– "ताराबाई अपने देश की माण्टेसरी है। उन्होंने बाल-शिक्षा में प्रयोग कर अपने देश की परिस्थिति के अनुसार क्या करना चाहिए, यह प्रत्यक्ष कर दिखाया। बाल शिक्षा के साथ माताओ को शिक्षा देना भी आवश्यक है।"

इस ग्रामीण बाल-शिक्षा नगर में बालकों के विकास हेतु विभिन्न विभाग स्थापित किए गए। यह विभाग निम्नलिखित नामो से संचालित किए जाते थे--

इन विभागो मे बालक स्वय कार्य करते थे। शैक्षणिक प्रदर्शनी का आयोजन भी किया गया, जिससे नागरिकों ने तथा अभिभावकों ने इस शिक्षा-पद्धति की विशेषताओ को जाना एवं समझा। छोटे शिशुओं का वैद्यकीय निरीक्षण

हुआ। जन सामान्य के लिए व्याख्यानमाला तथा बच्चों के लिए शैक्षणिक-चलचित्र का भी आयोजन समाविष्ट था। अत उपर्युक्त कार्यप्रणाली के विवेचन से यह सुस्पष्ट है कि ग्रामीण बाल-शिक्षा के प्रचार-प्रसार मे ताराबाई

का यह प्रयोग बाल-शिक्षा के क्षेत्र मे एक नए आयाम को प्रस्तुत करता है।

विकासवाड़ी

विकास की संकल्पना तथा उद्देश्य—आंगनवाडी में जब 3-4 साल के ग्रामीण एव वनवासी बालक आते थे, तब उनके साथ 3-7 वर्ष के बालक भी अपने छोटे 1-2 साल के भाई-बहनों को गोद मे लेकर आते थे। वास्तव मे 6-7 साल के बालको के लिए गांव में प्राथमिक विद्यालय भी अलग चलता था। परन्तु घर में माता-पिता खेत मे या अन्यत्र मजदूरी करने जाते थे, तब ऐसी स्थिति में छोटे बच्चों की देखभाल करने का दायित्व बड़े बच्चों पर आता था। अतः इसी वस्तुस्थिति को देखते हुए झूलाघर, बालवाड़ी तथा प्राथमिक शाला एक साथ संयुक्त रीति से चलाने की व्यवस्था की गई और इसका नाम 'विकासवाड़ी' रखा गया। बोर्डी मे "विकासवाड़ी-योजना" की शुरुआत हुई।

ताराबाई के द्वारा किए गए इस अभिनव प्रयोग से ऐसे बच्चो को बहुत लाभ हुआ जो शिक्षा प्राप्त करने से वचित रह जाते थे। वनवासी बालको का भाषा-विकास घर के वातावरण में नही हो पाता था। अतः प्राथमिक स्तर पर वे भाषा मे पीछे थे। किन्तु झूलाघर तथा बालवाड़ी के गीत, कहानी, नाटक, बातचीत आदि कार्यक्रमो के माध्यम से वनवासी बालको को भाषा समृद्धि की दृष्टि से बहुत लाभ हुआ। प्राथमिक विद्यालय में उनका स्तर अन्य शहरी बालकों जैसा रहा। प्राथमिक कक्षा के बालक अपने छोटे भाई बहनो को झूलाघर या बालवाड़ी मे छोड़कर, अपनी पढाई लगन से निश्चिंत होकर करते थे। इसलिए उनकी पढाई में काफी प्रगति दिखाई दी। ताराबाई का यह प्रयोग बाल-शिक्षा के क्षेत्र में काफी सफल रहा।

कोसवाड़ की विकासवाड़ी में प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम—सन् 1956 मे बोर्डी मे ग्राम बाल-शिक्षा संस्थान कोसवाड के वनवासी क्षेत्रो मे स्थानान्तरित हुआ। इसी समय भारत सरकार ने विकासवाड़ी योजना को द्वितीय पंचवर्षीय योजना में स्थान दिया था क्योंकि वनवासी क्षेत्र में **झूलाघर + बालवाड़ी + प्राथमिक शाला = विकासवाड़ी** (संयुक्त रूप) चलाना ही अधिक उपयुक्त पाया गया। इसके लिए वनवासी लोक जीवन के अनुरूप पाठ्यक्रम का निर्माण तथा विकासवाडी में कार्य करने वाले शिक्षको को अलग प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पर भी विचार किया गया। तभी ताराबई ने माण्टेसरी तथा बुनियादी-शिक्षण पद्धति का समन्वय कर ग्राम बाल-शिक्षा केन्द्र से कोसवाड़ मे विकासवाड़ी शिक्षकों के लिए अलग वर्ग प्रारम्भ किया।

विकासवाडी की प्राथमिक शिक्षा में सुधार हेतु विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमो की व्यवस्था की गई। इन शैक्षिक कार्यक्रमो की अवधारणा को इस प्रकार वर्गीकृत रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

उपर्युक्त विन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए शैक्षिक
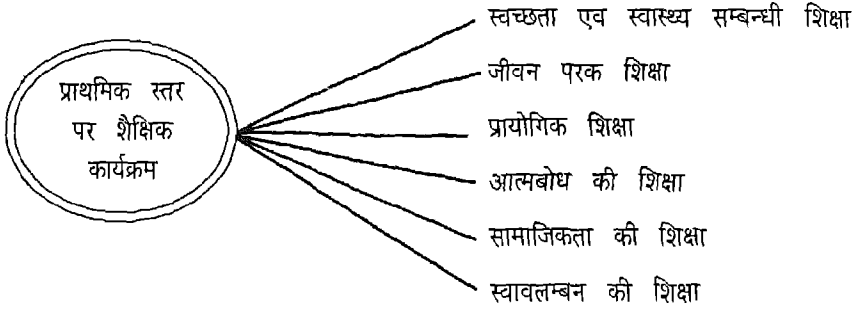
कार्यक्रम की संरचना को मूर्तरूप देने का प्रयास किया गया ताकि बालक का सर्वागीण विकास सम्भव हो सके और वह आत्मनिर्भर बनकर समाजोपयोगी नागरिक बन सके। अतः यह स्पष्ट होता है कि ताराबाई मोडक की 'विकासवाड़ी' की स्थापना का उद्देश्य अत्यन्त व्यापक था। अपने इस प्रयोग से उन्होंने जो निष्कर्ष प्राप्त किया, वह निम्नलिखित रूप में वर्णित है–

- ग्रामीण क्षेत्र मे प्रत्येक स्थान की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवेश को ध्यान में रखकर ही प्राथमिक विद्यालय का पाठ्यक्रम तैयार करनी उपयुक्त होगा।
- वनवासी बालको को अक ज्ञान की शिक्षा विलम्ब से प्रारम्भ करनी चाहिए।
- विषयों की प्रगति का मूल्यांकन, प्रत्यक्ष कार्य तथा मौखिक शिक्षा द्वारा करना चाहिए।
- पाठ्यक्रम मे नैसर्गिक परिवेश के अनुकूल वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, पदार्थ विज्ञान, सृष्टि निरीक्षण आदि का ज्ञान समाविष्ट होना चाहिए।
- बालको मे यंत्रो के विषय में रुचि दिखाई देती है। अतः घड़ी तथा साइकिल सुधारना ये काम विद्यालय में सिखाए जा सकते हैं।
- सगीत, नाटक, अभिनय तथा अन्य सास्कृतिक कार्यक्रमो को भी पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचनात्मक बिन्दुओ से यह सुस्पष्ट है कि ग्रामीण एव वनवासी क्षेत्रों में ताराबाई और उनके सहयोगियो ने बाल-शिक्षा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होने ग्रामीण एवं वनवासी बच्चो की सामाजिक, आर्थिक,भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखते हुए, वहां के अनुकूल शिक्षा-व्यवस्था का निर्धारण कर बाल-शिक्षण जगत में एक नूतन आयाम प्रस्तुत किया है। अतः यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि इस दिशा मे उनके द्वारा स्थापित बाल-शिक्षण की सकल्पना एव कार्यप्रणाली ग्रामीण तथा वनवासी बाल-शिक्षा जगत मे एक अभिनव प्रयोग है। वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि भारत के प्रत्येक गांव में यह शिक्षा पहुचकर अपने मूर्तरूप को प्राप्त कर सके। ❑❑

प्रवक्ता
शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी
चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
नयागांव, चित्रकूट, (सतना), मध्य प्रदेश

पाठ-योजना निर्माण एवं कार्यान्वयन

❐ जयदेव डबास

पाठ-योजना निर्माण क्या है?

पाठ-योजना मे उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कक्षा मे सम्पन्न की जाने वाली सभी क्रियाओं को उचित क्रम से लिखा जाता है। इस योजना को वास्तविक शिक्षण कार्य करने से पूर्व तैयार करना आवश्यक होता है जिसमें शिक्षण कार्य को सफल एवं प्रभावशाली बनाने के लिए निश्चित उद्देश्यो को दृष्टि में रखते हुए, निश्चित पाठ्य-वस्तु को, निश्चित शिक्षण विधि द्वारा, उपयुक्त साधनो की सहायता से निर्धारित समय के अन्दर समाप्त करने की योजना बनाई जाती है। पाठ-योजना के निर्माण मे इस बात का निर्धारण किया जाता है कि शिक्षक पाठ को पढ़ाते समय किन-किन शिक्षण विधियो तथा किन-किन साधनो का उपयोग करके पाठ को पढ़ाएगा।

डा के. पी पाण्डेय के अनुसार 'शिक्षण से पूर्व कार्य विश्लेषण, उद्देश्य निरूपण एवं शैक्षिक युक्तियों तथा रचना कौशलों के चुनाव पर आधारित वह रूपरेखा पाठ-योजना कहलाती है जो अधिगम लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपेक्षित शिक्षक-शिक्षार्थी क्रियाओं सक्रियाओ को परिकल्पित करती है।

पाठ-योजना निर्माण क्यों?

शिक्षण मे पाठ-योजना का उतना महत्व है जितना कुम्हार के लिए चाक का, बढई के लिए उसके औजारों का। विना योजना के पाठ उसी प्रकार है जैसे माझी के बिना नाव। जिस प्रकार कोई भी योजना पूरी कार्य-प्रणाली का आधार होती है उसी प्रकार पाठ-योजना भी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का आधार होती है।

यदि कोई शिक्षक पाठ-योजना के बिना, अर्थात् बिना तैयारी के कक्षा मे जाता है तो इससे अधिक घातक कुछ नही हो सकता। वह छात्रो के साथ-साथ स्वय को भी हानि पहुंचाता है। कम अनुभवी शिक्षकों तथा प्रशिक्षणार्थियो के लिए तो यह उपयोगी ही नही अपितु अनिवार्य भी है। इससे समय तथा श्रम की बचत होती है। बिना योजना का पाठ थाली के बैंगन के समान है। अत· पाठ-योजना शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अग है। इसके अभाव में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया निरर्थक है।

बिना योजना के पाठ पढ़ाना उसी प्रकार है जैसे मांझी के बिना नाव खेना। पाठ-योजना शिक्षण से पूर्व कार्य विश्लेषण, उद्देश्य निरूपण एवं शैक्षिक युक्तियों, रचना कौशलों के चुनाव पर आधारित वह रूपरेखा है जो अधिगम लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपेक्षित शिक्षक-शिक्षार्थी क्रियाओं-संक्रियाओं को परिकल्पित करती है।

पाठ-योजना शिक्षक का मार्गदर्शन करती है। यह शिक्षक की तर्क, कल्पना एवं चितन शक्ति का विकास करती है। यह कार्य सम्पन्न करने की स्पष्ट रूपरेखा है। यह शिक्षण की पूर्व अवस्था से सवंधित होती है। शिक्षक को कक्षा मे जाने से पूर्व ही पढाए जाने वाले पाठ को तैयार करना होता है। तथा पाठ के कठिन तथ्यो को स्पष्ट करना होता है। विषय पर पूर्ण अधिकार होने से अध्यापन में सुगमता होती है। इस तैयारी में पाठ-योजना प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती है। पाठ-योजना निर्माण की प्रक्रिया मे छात्रो के पूर्व-ज्ञान तथा मानसिक योग्यता का अनुमान लगाया जाता है। जिससे बालकों के मानसिक स्तर के अनुरूप सामग्री का चयन करने में सहायता मिलती है। पाठ-योजना निर्माण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाठ के पूरा होने में कितना समय लगेगा। इससे समय की बचत होती है तथा थोड़े समय में ज्यादा काम किया जा सकता है। योजना निर्माण करते समय पाठ के सभी बिंदुओं के लिए समय निर्धारित करने में सहायता मिलती है तथा अनावश्यक बातों से बचा जा सकता है। यह बालकों को पढ़ने के लिए तैयार करने

में सहायक होती है। इससे शिक्षक का कार्य-क्षेत्र स्पष्ट हो जाता है।

पाठ-योजना निर्माण से विषय-वस्तु से संबद्ध उद्देश्यो का निर्धारण तथा उद्देश्यो के अनुरूप पाठ्य-वस्तु के चयन में सहायता मिलती है जिससे शिक्षण प्रक्रिया सोद्देश्य बन जाती है। शिक्षक उद्देश्यों के अनुरूप विषय-वस्तु को व्यवस्थित कर लेता है। वह न तो उद्देश्य से भटकता है और न ही उद्देश्यरहित होता है तथा समुचित गति से उद्देश्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होता हुआ उसे सुगमता से पूरा कर लेता है। योजना-बद्ध तरीके से पढ़ाते समय उद्देश्यों पर ध्यान केन्द्रित रखने मे सफलता मिलती है।

प्रत्येक विषय तथा उपविषय के शिक्षण की कई-कई विधिया होती हैं। यदि अध्यापन से पूर्व पाठ-योजना का निर्माण किया जाए तो विषय-वस्तु, बच्चो के आयु-वर्ग, उनके मानसिक स्तर, उनकी सख्या तथा उपलब्ध सामग्री के बारे मे विचार करके सर्वाधिक उपयुक्त शिक्षण विधि का चयन कर सकता है तथा पढाते समय उसका सही ढ़ग से प्रयोग कर सकता है। इससे शिक्षण-अधिगम में सरलता व स्वाभाविकता आ जाती है। छात्रो को क्रियाशील बनाने और पाठ के विकास मे उनके सहयोग की सभावनाए बढ़ जाती है जिससे शिक्षण प्रभावपूर्ण हो जाता है तथा शिक्षण में सुगमता आ जाती है। पाठ-योजना के माध्यम से शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पूर्व-नियोजित करने तथा उपयुक्त क्रियाकलापों के चयन मे सहायता मिलती है। पाठ की विभिन्न गतिविधियो के लिए अलग-अलग समय निर्धारित किया जा सकता है। छात्रो की सहभागिता निर्धारित करने में सहायता मिलती है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि किस गतिविधि में कितने बच्चो को किस रूप में सम्मिलित करना है तथा कितने बच्चो के कितने समूह बनाने हैं। पाठ के किसी अंश के छूट जाने या ओझल हो जाने की आशंका भी नहीं रहती साथ ही अनावश्यक अशों का समावेश भी नही हो पाता। इससे पाठ को उचित दिशा मिलती है तथा शिक्षक भ्रमित नहीं होता। पाठ-योजना बनी हो तो शिक्षण-बिन्दुओं को व्यवस्थित क्रम से पढ़ाया जा सकता है। इससे शिक्षण को प्रभावशाली व रुचिकर बनाने मे सहायता मिलती है। कक्षा मे सीखने का वातावरण बना रहता है तथा शिक्षण प्रक्रिया में निखार आ जाता है। यह पुनरावृति तथा अभ्यास कार्य की उचित व्यवस्था करने का अवसर प्रदान करती है।

पाठ-योजना के निर्माण से शिक्षक को यह सोचने का अवसर मिल जाता है कि पाठ में किस सहायक सामग्री का किस समय उपयोग किया जाना है तथा उसके अनुरूप शिक्षण सामग्री को तैयार किया जा सकता है। इससे श्यामपट्ट के प्रयोग का स्थल तथा उसकी योजना का निर्माण किया जा सकता है।

पाठ-योजना निर्माण से, उद्देश्य पूरे हुए है या नही, इसके मूल्यांकन का अवसर मिलता रहता है। उद्देश्यो के अतिरिक्त शिक्षण विधियों, शिक्षार्थियो तथा स्वय शिक्षकों का मूल्याकन करने मे मदद मिलती है।

पाठ-योजना का निर्माण करके पढ़ाने से अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न नही होती यदि आशंका हो तो उसका योजना बनाते समय अनुमान लगाया जा सकता है जिससे उसका समाधान सुगम हो जाता है। यह छात्र तथा अध्यापक दोनो के व्यवहार को नियत्रित करती है। इससे अध्यापक मे आत्मविश्वास की भावना विकसित होती है जो अध्यापन को प्रभावशाली बनाने में सहायक होती है। इससे शिक्षक की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

पाठ-योजना निर्माण कैसे ?

पाठ-योजना साधन है, साध्य नही। सभी विषयों तथा एक ही विषय के विभिन्न उप-विषयो के लिए कोई एक निश्चित पाठ-योजना सभव नही है फिर भी कुछ सामान्य बाते है जिन पर यहां चर्चा की जा सकती है। पाठ-योजनाएं बनाने की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं।

सबसे अधिक प्रचलन 'हरबर्ट उपागम' पर आधारित पाठ-योजनाओं का है। ये पाठ-योजनाए पाठ्य-वस्तु केन्द्रित होती है। जिनमें विद्यार्थियो की रुचियो, अभिवृत्तियों, योग्यताओं एव अधिगम स्तर पर ध्यान न देकर विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया जाता है। दूसरी प्रकार की पाठ-योजनाएं 'मोरीसन के इकाई उपागम' पर आधारित हैं। इस उपागम के अनुसार विषय को एक

पूर्ण इकाई मानकर उसे विभिन्न उप-इकाइयो मे विभाजित कर प्रत्येक उप-इकाई की पृथक्-पृथक् पाठ-योजनाएं निर्मित की जाती हैं। तीसरी प्रकार की पाठ-योजनाए 'ब्लूम के मूल्याकन उपागम' के आधार पर निर्मित की जाती हैं। ब्लूम शिक्षण उद्देश्य, अधिगम अनुभव एवं मूल्याकन को शिक्षा की त्रिपद् क्रियाएं मानकर, पाठ-योजना मे व्यवहारगत उद्देश्यों के निर्धारण को पाठ-योजना का सबसे महत्वपूर्ण भाग स्वीकार करते हैं। इस उपागम पर आधारित पाठ-योजनाओ में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया तथा शिक्षक-छात्र अत क्रियाओं पर विशेष ध्यान रखा जाता है। यहाँ जिस प्रकार की पाठ-योजनाओ को दर्शाया गया है वह इन सभी उपागमो का मिला-जुला रूप है। पाठ-योजना के इस प्रारूप मे स्थान और समय की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है। पाठ योजना के अंग हैं–

- सामान्य जानकारी
- उद्देश्य
- सहायक सामग्री
- पूर्व-ज्ञान
- प्रस्तावना
- उद्देश्य कथन
- प्रस्तुतीकरण
- पुनरावृत्ति/मूल्यांकन
- गृह-कार्य

पाठ-योजना के उपर्युक्त अगों और उपांगों के विषय मे संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है–

सामान्य जानकारी

सामान्य जानकारी के अंतर्गत पाठ-योजना के प्रारंभ में ये बातें दी जानी चाहिए–

नाम/अनुक्रमांक	तिथि
कक्षा	विभाग
औसत आयु	छात्रों की सख्या
विषय	उप-विषय/शीर्षक
कालाश	अवधि

पाठ-योजना के प्रारभ में यह जानकारी अत्यत आवश्यक है। नाम/अनुक्रमांक लिखने से देखने वाले को छात्र की अनुपस्थिति मे भी यह ज्ञात हो जाता है कि यह पाठ-योजना किस छात्र की है। तिथि के उल्लेख से यह जानकारी रहती है कि किस कक्षा को किस दिन कौन-सा पाठ पढ़ाया गया। कक्षा का उल्लेख करना भी आवश्यक है। विद्यालयो मे एक ही कक्षा के कई-कई विभाग होते हैं उस स्थिति में विभाग लिखना भी जरूरी हो जाता है। औसत आयु छात्रो के सामान्य बौद्धिक स्तर का ज्ञान कराती है। इससे उनकी रुचि तथा व्यवहार आदि का अनुमान लगाने में मदद मिलती है। प्रौढ़-शिक्षा विद्यालयों, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों आदि के छात्रों की औसत आयु औपचारिक शिक्षा के छात्रों से भिन्न होती है। औसत आयु का उल्लेख उनकी आयु के अनुरूप *गतिविधियां प्रस्तावित करने मे सहायक होता है।* छात्रों की संख्या की जानकारी से उनके बैठने की व्यवस्था, क्रियात्मक कार्य कराते समय छात्रों के समूह बनाने, आवश्यक सामग्री जुटाने, प्रश्न-पत्र आदि के वितरण में सहायता मिलती है। विषय लिखने से शिक्षक अपने कार्यक्षेत्र के प्रति सचेत रहता है तथा पर्यवेक्षक को मूल्यांकन करने मे मदद मिलती है। उप-विषय लिखकर शिक्षक अपने कार्य की सीमाओं को अभिव्यक्त करता है। इससे कालांश विशेष के लिए निर्धारित अश का ज्ञान होता है तथा निरीक्षण में भी सुगमता होती है। कालाश व उसकी अवधि लिखने से पाठ की समय-सीमा का ध्यान रहता है। पाठ को निश्चित समय-सीमा में समाप्त करने में मदद मिलती है। समय-योजना का निर्माण किया जा सकता है। समय के अनुरूप विषय-वस्तु का चयन किया जा सकता है। जब शिक्षक कक्षा में जाए तो उसे अपने नाम के अतिरिक्त सारी सामान्य जानकारी, पाठ प्रारंभ करने से पहले, श्यामपट्ट पर भी लिखनी चाहिए। उप-विषय उद्देश्य कथन के बाद ही लिखा जाए। सामान्य जानकारी का क्रम थोड़ा-बहुत बदला जा सकता है।

उद्देश्य

सामान्यतः पाठ के दो प्रकार के उद्देश्य निश्चित किए जाते हैं– सामान्य तथा विशिष्ट। कोई भी विशिष्ट उद्देश्य सामान्य बनाया जा सकता है और सामान्य उद्देश्य विशिष्ट। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि अध्यापन और मूल्याकन के समय उस दिन उस बिन्दु पर अधिक

बल देना है। विशिष्ट उद्देश्य उस दिन/कालाश के मुख्य शिक्षण बिन्दु होगे। ये विशिष्ट उद्देश्य कालांश विशेष के लिए चुने गए उप-विषय से संबंधित भी होंगे।

उद्देश्य लेखन की दो विधियां प्रचलित हैं– उद्देश्य लेखन की सामान्य विधि तथा व्यवहारगत उद्देश्य लेखन विधि। सामान्य विधि मे शिक्षक का बल किसी सूचना को शिक्षार्थी तक पहुंचाना मात्र लगता है। इस विधि मे अध्यापक का पक्ष सक्रिय रहता है परन्तु अध्यापन प्रक्रिया में छात्र का योगदान अपेक्षाकृत कम रहता है। व्यवहारगत उद्देश्य इससे प्रभावी कदम है। इसमें पाठ के अन्त में प्राप्त ज्ञान के मूल्याकन पर अधिक बल है। यह विधि उन विषयों में अधिक सफल है जिनमें छात्र पहले क्रियात्मक कार्य करता है तथा पुन उसका प्रदर्शन भी कर सकता है। व्यवहारगत रूप से उद्देश्य लिखने की विधि उत्तम है किन्तु भाषा के अनुभूति आदि पक्षों पर इसे लागू करने कठिनाई आती है।

उद्देश्य लेखन में पर्याप्त सूझ-बूझ तथा सावधानी की आवश्यकता है। पाठ के लिए निर्धारित उद्देश्य स्पष्ट तथा व्यावहारिक होने चाहिए। उद्देश्यों की भाषा स्पष्ट हो। वे विषय-वस्तु के अनुरूप हों। यह भी ध्यान रखा जाए कि वे छात्रों के स्तर के अनुरूप हों तथा प्राप्य हों।

सहायक सामग्री

सहायक सामग्री अध्यापक के लिए महत्वपूर्ण शस्त्र है। प्राथमिक कक्षाओं मे इसका सर्वाधिक महत्व है। उत्तरोत्तर कक्षाओं मे इसका उपयोग कम होता जाता है। श्यामपट्ट, चॉक, झाड़न आदि के अतिरिक्त कम खर्चीली, वातावरण मे उपलब्ध सहायक सामग्री का उपयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त पाठ्यपुस्तक मे दिए गए चित्र, उनका परिवर्तित रूप, मॉडल आदि भी काम में लाए जा सकते है।

सहायक सामग्री का समुचित आकार हो जिसे कक्षा में पीछे बैठे हुए बच्चे भी देख सके। वह विषय-वस्तु को स्पष्ट करने में सहायक हो। सहायक सामग्री में स्वाभाविकता हो न कि बनावटीपन। वह स्वनिर्मित तथा मौलिक हो। उसका उचित समय पर उपयोग किया जाए, प्रयोजन पूरा होने पर उसे तुरन्त हटा लिया जाए तथा अनावश्यक रूप से समावेश न किया जाए। पाठ में प्रयोग मे लाई जाने वाली सहायक सामग्री का इस कॉलम मे न केवल उल्लेख करें अपितु उसका सक्षिप्त विवरण भी दें तथा पाठ मे जहा भी इसका प्रयोग करे वहा भी लिखे कि अमुक सहायक सामग्री का उपयोग करते हुए इस शिक्षण बिन्दु को स्पष्ट किया जाएगा।

पूर्व-ज्ञान

शिक्षक के लिए छात्र के पूर्व-ज्ञान की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। पूर्व-ज्ञान की जानकारी के अभाव मे सुनियोजित पठन सामग्री भी असफल हो सकती है। पूर्व-ज्ञान तथा वर्तमान ज्ञान का अन्योन्याश्रित संबध होता है। इससे विषय प्रवेश तथा पाठ को रोचक बनाने मे सहायता मिलती है। पाठ-योजना मे पूर्व-ज्ञान से नवीन ज्ञान को जोड़ने का कार्य किया जाता है। जब तक कोई ज्ञान पूर्व-ज्ञान से नहीं जुड़ेगा व्यर्थ रहेगा। उदाहरण के लिए किसी बालक को 'विधु' का अर्थ बतलाना है और उसे बतला दिया जाए 'इन्दु', 'शशांक', 'उडुपति' तो वह व्यर्थ है जब तक उसे किसी ऐसे शब्द से न जोडा जाए जिससे बालक परिचित है। अत. किसी कक्षा को पढ़ाने से पहले उसके पूर्व-ज्ञान का अनुमान होना अनिवार्य है। जब शिक्षक पहले-पहल किसी कक्षा को पढ़ाने जाता है तो उसका पूर्व-ज्ञान का अनुमान गलत भी सिद्ध हो सकता है। अतः ऐसी स्थिति मे चिन्तित होने की आवश्यकता नही।

प्रस्तावना

प्रस्तावना का अर्थ है– भूमिका, आमुख, आंरभ, प्राक्कथन। प्रस्तावना पाठ-योजना की तैयारी का सोपान है। नवीन ज्ञान देने से पहने यह जरूरी है कि छात्र उसे ग्रहण करने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो। प्रस्तावना मे शिक्षक पूर्व-ज्ञान के आधार पर नवीन ज्ञान ग्रहण करने के लिए छात्रों में उत्सुकता जागृत करता है। कुछ लोग 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'पूर्व-ज्ञान परीक्षा' शब्द

का प्रयोग करते है।

प्रस्तावना का नियोजन करते समय शिक्षक को छात्रों के पूर्व-ज्ञान, छात्रों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने वाले तत्व तथा पाठ के उद्देश्यो का ध्यान मे रखना होता है। विचारणीय विषय है कि प्रस्तावना की आवश्यकता क्यो पड़ी? वास्तव में पढना अधिक रुचिकर कार्य नही है। बालक क्यो पढ़े ? उसे क्या मिलता है पढने से? पठन मे रुचि उत्पन्न करने के लिए प्रस्तावना के माध्यम से बच्चो से बात की जाती है। उनसे कुछ प्रश्न पूछे जाते है जिससे उनको यह नहीं लगता कि कोई पढाई की बात हो रही है। ये प्रश्न उनके पूर्व-ज्ञान से संबधित तथा रुचिकर होते हैं। प्रश्न पूछते-पूछते उनको वहां ले जाना होता है जो पाठ पढ़ाना है, अर्थात् शाबाश, बहुत अच्छा, यह आता है, यह भी आता है, यह भी आता है, अच्छा, यह नही आता, चलो आज इसी की चर्चा करते है।

प्रस्तावना मे कुछ सावधानी की आवश्यकता है। प्रस्तावना न बहुत लम्बी हो और न ही बहुत छोटी। प्रस्तावना के प्रश्न छात्रो के बौद्धिक स्तर के अनुरूप हो तथा नीरस न हो। ये प्रश्न पाठ के उद्देश्य-कथन की ओर ले जाने वाले हो। अन्तिम प्रश्न समस्यात्मक हो तो अधिक उपयुक्त रहता है। प्रस्तोवना के प्रश्न एवं उत्तर भी साथ-साथ दिए जाए या नहीं ? इस विषय में यह कहना है कि यदि उत्तर के अभाव मे अगले प्रश्न का औचित्य प्रतीत न होता हो तो उत्तर अवश्य दिया जाए अन्यथा उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं। प्रस्तावना को उपयोगी बनाने के लिए इसमें श्यामपट्ट तथा सहायक सामग्री का प्रयोग भी किया जा सकता है।

उद्देश्य कथन

प्रस्तावना के प्रश्न पूछते समय जब शिक्षक यह अनुभव करे कि पाठ मे दी जाने वाली जानकारी से अधिकांश छात्र अनभिज्ञ है और वे वास्तव मे उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उत्सुक है तो शिक्षक तुरन्त 'उद्देश्य कथन' करे कि आज हम इसी विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रस्तावना का अन्तिम प्रश्न समस्यात्मक होगा तो स्वभावतः उद्देश्य कथन का महत्व बढ जाएगा। छात्रो को यह आभास भी न हो कि प्रस्तावना तथा उद्देश्य कथन के बीच कोई दूरी है। उद्देश्य कथन के उपरान्त ही श्यामपट्ट पर पाठ का शीर्षक लिखे तथा पुस्तक आदि खोलने के निर्देश भी इसी अवसर पर दें।

प्रस्तुतीकरण

प्रस्तुतीकरण पाठ-योजना का सबसे प्रमुख भाग है। इसी चरण में शिक्षक पाठ का विकास करता है। पाठ के विकास की प्रक्रिया के बारे में शिक्षक को स्वयं स्पष्ट होना चाहिए। प्रस्तुतीकरण में पाठ के विकास हेतु निम्नलिखित कॉलम बनाए जाने चाहिए–

विषयवस्तु / शिक्षण बिन्दु	अध्यापक क्रिया	छात्र क्रिया	श्यामपट्ट कार्य

विषय-वस्तु / शिक्षण बिन्दु–'विषय-वस्तु तथा शिक्षण बिन्दु' मे थोड़ी भिन्नता है। जहां पढाई जाने वाली सामग्री को कुछ बिन्दुओ के रूप में गिना जा सकता हो वहा शिक्षण बिन्दु शब्द का प्रयोग करें। गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन आदि विषयो तथा भाषा के व्याकरण, निबन्ध-लेखन आदि के लिए शिक्षण बिन्दु का प्रयोग करें तथा भाषा के गद्य, कविता आदि के पाठो के लिए विषय-वस्तु का प्रयोग उचित है। विषय-वस्तु / शिक्षण बिन्दुओं का चयन करने मे यह ध्यान रखें कि वह नियत समय के लिए पर्याप्त हो, अर्थात् न कम हो न अधिक। वह छात्रों के पूर्व-ज्ञान तथा मानसिक स्तर के अनुरूप, ज्ञानवर्धक तथा निर्दिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने वाली हो। विषय-वस्तु को उचित सोपानों एव शिक्षण बिन्दुओ मे बाटा जाए। प्रत्येक उद्देश्य को लेकर कम से कम एक शिक्षण बिन्दु अवश्य बनाया जाए। विषय-वस्तु पाठयक्रम के अनुरूप और स्पष्ट हो तथा उसमे भ्रामक तथ्य न हों।

अध्यापक क्रिया–शिक्षक को पूरे पाठ में जो कुछ करना है उसका 'अध्यापक क्रिया' के कॉलम मे उल्लेख करना अपेक्षित है। उसे यहां यह लिखना होता है कि पाठ में उसे कब और कितना कार्य करना है। यही शिक्षण

बिन्दुओं की व्याख्या करनी होती है तथा छात्रों को निर्देश देने होते है। शिक्षक यहां शिक्षण विधियों का उल्लेख भी कर सकता है। यदि पूरे पाठ के अध्यापन में एक विधि का प्रयोग किया जाए तो प्रस्तुतीकरण के प्रारभ मे ही लिख दिया जाए कि पाठ अमुक विधि से पढ़ाया जाएगा और पाठ के अलग-अलग अश को अलग-अलग विधि से पढ़ाना हो तो यथास्थान विधि का उल्लेख किया जाए। शिक्षक प्रत्येक सोपान के बाद बोध प्रश्न भी पूछे। यहां ऐसे प्रयास करे जिससे सभी छात्र पाठ में रुचि ले। बच्चों से विभिन्न प्रकार की गतिविधियां करवाए तथा बच्चो के सहयोग से पाठ को आगे बढ़ाएं।

छात्र क्रिया–छात्र क्रिया के अंतर्गत इस बात का स्पष्ट उल्लेख हो कि विद्यार्थी को कब और कितना कार्य करना है। अध्यापक क्रिया और छात्र क्रिया का परस्पर तालमेल होना अनिवार्य है। छात्र शिक्षक के निर्देशों का पालन करते है। इन्हीं निर्देशो के पालन मे उनकी मानसिक प्रक्रियाएं होती रहती है जिनके माध्यम से बालक के व्यवहार मे परिवर्तन आता है। बालक के व्यवहार में वाछित परिवर्तन करना ही शिक्षण का उद्देश्य है। बालकेन्द्रित शिक्षा पर आजकल अधिक बल दिया जाता है अत· पाठ के विकास में बच्चो का जितना अधिक से अधिक सहयोग लिया जाए उतना ही अच्छा समझा जाता है।

श्यामपट्ट कार्य–श्यामपट्ट शिक्षक का सबसे महत्वपूर्ण सहायक है। शिक्षक इसका उपयोग अवश्य करे। श्यामपट्ट कार्य की योजना का निर्माण करे तथा योजना का निर्माण करे तथा योजना के अनुरूप काम करे। श्यामपट्ट कार्य की योजना के लिए पाठ-योजना की कॉपी के बिना लाइन के पृष्ठ का उपयोग करें। इस कॉलम मे प्रत्येक शिक्षण बिन्दु के सामने उससे संबंधित श्यामपट्ट कार्य का उल्लेख करे। श्यामपट्ट के लेख का आकार ऐसा हो जो कक्षा में सभी बच्चों को दिखाई पड़े। श्यामपट्ट पर लिखा लेख सुंदर हो तथा उसमें वर्तनी की अशुद्धिया न हो। श्यामपट्ट पर लिखते समय बच्चो की तरफ पीठ न करें तथा बोलकर लिखें। पढ़ाते समय प्रमुख बिंदुओ को श्यामपट्ट पर अवश्य लिखें।

कुछ विद्वान् श्यामपट्ट कार्य के स्थान पर 'मूल्याकन कार्य' का कॉलम बनाने की बात कहते है तथा श्यामपट्ट कार्य को अध्यापक क्रिया और छात्र क्रिया मे ही लिखने की सलाह देते हैं। इनके अनुसार सतत् तथा व्यापक मूल्यांकन अनिवार्य है।

पुनरावृत्ति / मूल्यांकन

पाठ समाप्त होने पर पाठ पर आधारित पुनरावृत्ति के प्रश्न किए जाते है। महत्वपूर्ण प्रश्नो को पुनरावृत्ति में स्थान अवश्य मिलना चाहिए। पुनरावृत्ति के प्रश्न शिक्षको की अध्यापन पद्धति तथा विद्यार्थियों की ग्रहणशीलता दोनो ही का मूल्याकन करते है। पुनरावृत्ति से पूर्व खड आवृति भी कराई जा सकती है। पाठ के लिए निर्धारित उद्देश्यो का मूल्याकन अनिवार्य है। मूल्याकन मौखिक या लिखित दोनो प्रकार का हो सकता हैं। सोपान के अंत में खड आवृति के प्रश्न तथा पाठ की पुनरावृत्ति के प्रश्न दोनों ही मूल्याकन का अंग है। इसके लिए शिक्षक चार-पाच मिनट की अवधि का प्रश्न-पत्र भी बना सकता है।

गृह-कार्य

जो कक्षा मे पढ़े गए पाठ से सम्बद्ध हो तथा जिसे शिक्षक वच्चो को घर से करके लाने के लिए दे, गृह-कार्य है। पढ़े हुए पाठ को घर पर पढना, लिखना, परिवार के सदस्यों को सुनाना, कोई क्रियात्मक कार्य करना आदि कक्षा के स्तर के अनुरूप गृह-कार्य दिया जा सकता है। गृह-कार्य बोझिल न होकर रुचिकर, मनोरजक तथा विकासात्मक हो।

कुछ विद्वान गृह-कार्य देना ठीक नही मानते उनकी मान्यता है कि गृह-कार्य के कारण बालक का पारिवारिक व सामाजिक विकास नही हो पाता। इसके विपरीत कुछ विद्वानो के अनुसार गृह-कार्य देने से शिक्षण-क्रम व्यवस्थित चलता है। आज की विद्यालयी प्रणाली में गृह-कार्य देना अनिवार्य है। गृह-कार्य के साथ ही पाठ-योजना का निर्माण तथा उसका कार्यान्वयन पूरा हो जाता है। उपर्युक्त सोपानो के अतिरिक्त कुछ सामान्य बातें है जिन पर

भी पाठ-योजना निर्माण तथा उसके कार्यान्वयन के समय ध्यान देने की आवश्यकता है।

कुछ अन्य ध्यान देने योग्य बातें

पाठ-योजना निर्माण तथा उसके कार्यान्वयन की प्रक्रिया के माध्यम से शिक्षण बिन्दुओं की अध्यापन अभ्यास रूपी प्रयोगशाला मे शल्यक्रिया की जाती है। जिस पाठ को शिक्षक पढ़ाएं पहले उसकी शिक्षण विधियों का अध्ययन करें। पाठ को योजना के अनुसार ही पढ़ाए। ऐसे प्रयास करें कि सभी छात्र पाठ में रुचि ले। कक्षा मे अनुशासन बनाए रखे। शरारती बच्चों से व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना कर निपटे। कमजोर बच्चो की ओर विशेष ध्यान दें।

शिक्षक को एक कालाश मे 40-50 मिनट पढाना पड़ता है। इस अवधि मे उसे पाठ-योजना की विभिन्न प्रक्रियाओ से गुजरना पड़ता है। शिक्षक को उद्देश्यो की प्राप्ति तथा अपनी सुविधा के अनुसार समय का विभाजन कर लेना चाहिए। पाठ-योजना के समय विभाजन को या तो पाठ-योजना के प्रस्तावना आदि चरणो के समक्ष लिखा जा सकता है या पाठ-योजना की समाप्ति पर।

शिक्षक को पूरे पाठ मे बहुत से प्रश्न पूछने पड़ते है। प्रश्न पूछने मे सावधानी की आवश्यकता है। प्रश्न न तो अधिक लम्बे हों और न ही अधिक छोटे। उत्तर हॉ, नही मे स्वीकार न करे। प्रश्न सारी कक्षा से पूछे फिर एक बच्चे से उसका उत्तर देने के लिए कहे। सामूहिक उत्तर स्वीकार न करे। ठीक उत्तर देने पर छात्रो को प्रोत्साहित करें हतोत्साहित न करे।

अध्यापक की भाषा शुद्ध व परिमार्जित हो। अध्यापक का उच्चारण भी शुद्ध हो तथा प्रान्तीय प्रभाव से मुक्त हो। स्वर न अधिक धीमा और न अधिक तेज हो। बोलने की गति न अधिक तेज और न ही अधिक मन्द हो। शब्दावली का प्रयोग कक्षा के स्तर के अनुरूप हो। भावाभिव्यक्ति स्पष्ट हो। बोलने में स्वाभाविकता हो असभ्य या डाटने-फटकारने की भाषा का प्रयोग न करें।

अध्यापक को शिक्षकोपयोगी वेशभूषा धारण करनी चाहिए। उसका बोलने का ढ़ग प्रभावशाली हो, कक्षा मे चलने-फिरने का समुचित ढग हो। छात्रो के प्रति नम्र व्यवहार हो।

शिक्षक कक्षा मे जाकर, योजना के अनुसार पाठ पढाना प्रारंभ करने से पहले कक्षा की सामान्य व्यवस्था की जाच करे। सबसे पहले यह देखे कि बच्चो के बैठने की उचित व्यवस्था है या नही, यदि नही तो सर्वप्रथम बैठने की समुचित व्यवस्था करे। सहायक सामग्री तथा श्यामपट्ट आदि को ऐसे रखें जिसे सभी बच्चे उन्हे देख सकें। कक्षा की स्वच्छता और प्रकाश व्यवस्था की ओर ध्यान दे। खिडकिया तथा दरवाजे खुले रखे। बच्चो की स्वच्छता का ध्यान भी रखे।

इस प्रकार एक सुव्यवस्थित कक्षा-कक्ष मे सुनियोजित पाठ-योजना को सुन्दर ढंग से कार्यान्वित करके शिक्षक सुगमता से शिक्षण उद्देश्यों को पूरा कर सकता है। ❑❑

मण्डलीय शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान
राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली

बालक के बौद्धिक विकास में कहानी का उपयोग

□ सर्वेन्द्र विक्रम सिंह

मौखिक सस्कृतियो मे सीखना अनिवार्यत. किसी प्रसंग मे घटित होता है न कि किसी खास पृष्ठभूमि में। लिखित शब्द जहां अमूर्तता और सामान्यीकरण पर ज्यादा बल देते है वही मौखिक शब्द भागीदारी और प्रदर्शन पर बल देता है। इसलिए बच्चो के शब्द वयस्को की तुलना मे कम कटे-बंटे नजर हाते हैं।

बच्चे जव पहली बार स्कूल आते हैं, तब तक वे भाषा के उपयोग से अच्छी तरह परिचित हो चुके होते है। वे भाषा का मौखिक उपयोग जानते है, जितना सोचते हैं, बोल, बता लेते है, दूसरो को समझाने की कोशिश करते हैं और जो कुछ वे बोलते है वह व्याकरण के हिसाव से बिल्कुल सही होता है। वे अपनी कल्पना की उड़ान मे कहानिया गढ लेते है, गीत, कविताएं सुना लेते है। प्रश्न यह है कि यही बच्चे जब स्कूल मे आते हैं तो उनकी चपलता बंद क्यो हो जाती है? उनका भाषा-विकास जैसे ठहर-सा जाता है। यह कैसे हो जाता है कि भाषा सीखने, भाषा के साथ खिलवाड़, जो वे अभी तक घर मे करते रहे थे, उसे भूल जाते है।

कक्षा के अलावा घर की भी स्थिति बहुत उत्साहजनक नही दिखती । हज़ारो साल पुरानी मौखिक परंपरा से जो कहानियां बड़े बुजुर्गो के माध्यम से, सुनने-सुनाने की परपरा से चलकर आयी थी वे अब बीते जमाने की बाते होकर रह गयी हैं। दादी-नानी से कहानियां सुनना अब सिर्फ किताबों में पढ़ने की बाते रह गयी हैं। संयुक्त परिवार टूटे है तो इसका खामियाजा भी सबसे ज्यादा बच्चे ही भुगतेगे। भावनात्मक स्तर पर और भाषाई स्तर पर भी। जो मां बाप सक्षम है वे कई बार कोशिश भी करते है और पत्रिकाओं, किताबो से कहानियां सुनाने के चक्कर में कही के नही रहते, न कहानी का आनन्द, न सुनने का। यह देखना होगा कि सभी कहानियां, सुनाने लायक नहीं होती हैं। इसके अलावा शहरी और ग्रामीण बच्चो की पसंद मे भी अंतर है, सामाजिक, आर्थिक स्थिति से भी इस पर असर पड़ता है। दूसरी जो दिक्कत है वह यह कि हम लोक साहित्य को बाल साहित्य मानकर कहानियो के चुनाव मे गड़बड़ कर बैठते है। वच्चे की आयु और रुचि का ध्यान रखे बगैर इस बात का निश्चय कर पाना कठिन है कि बच्चे कौन-सी कहानी सुनना पसंद करेगे, कौन-सी नापसद करेगे।

बच्चों को कहानी सुनाने का उद्देश्य भाषा कौशल के साथ-साथ सार्थक संवाद के लिए धैर्य से सुनने का कौशल भी विकसित करना है। कहानी द्वारा कल्पना करने और सुने हुए दृश्य की छवि मन में बनाने तथा मनसिक छवियों को दुबारा सुना सकने की क्षमता विकसित होती है। इनका उपयोग कक्षा और परिवार दोनों ही स्थितियों में बच्चे के बौद्धिक विकास में सहायक होता है।

यहां अभी शहरी और खाते-पीते घरो के बच्चो के बारे मे बात नहीं की जा रही है, बल्कि उन हजारों. लाखों बच्चों की बात शुरू की जा रही है जो गावो की प्राथमिक शालाओं में पढना लिखना सीखने आते है और अक्सर वहां टिक नहीं पाते, पढ़ने का आनंद उनके लिए दूर की वात होती है और पढ़ाई का एक चक्र पूरा कर लेने के बाद भी वे भाषा पर अधिकार नहीं कर पाते जिससे आगे चलकर वे भाषा के कौशल सीख सके, अच्छे पाठक बन सके। इन बच्चो के लिए किताब पढने का मतलब है याददाश्त के सहारे किताब के पन्नों पर लिखी बात (अगर यह कविता है तो ज्यादा आसान होगा) को ज्यों का त्यों सुना देने की कोशिश करते रहना। लेकिन न तो वे शब्द पहचान पाते हैं और न ही उसका अर्थ समझ पाते हैं। अगर उन्हें उंगली

रखकर वाक्य पढने को कहा जाए तो यह तथ्य उजागर हो जाता है कि वे शब्द को हिज्जे करके पढ़ने की आदत के कारण शब्द भी नही समझ पाते, वाक्य का अर्थ तो दूर की बात है। कोई बात अगर तीन-चार वाक्यों में समझाई गई हो तो इसे समझना बहुत ही मुश्किल साबित होता है। यह बहुत गंभीर मामला लगता है लेकिन ज्यादा भयावह लगेगा अगर हम यह ध्यान दे कि ये बच्चे किताबों की दुनिया, कहानियों और छपे हुए शब्दों की दुनिया से अपने सहज स्वाभाविक आकर्षण के बावजूद पढ़ना लिखना जारी नहीं रख पाते। अक्षरों की दुनिया पहेली की तरह अततः अनसुलझी रह जाती है।

बच्चों को शुरुआती वर्षों मे भाषा सिखाने का मतलब क्या है? सामानयतः यह माना जाता है कि भाषा सिखाना माने समझकर पढ़ना लिखना, अपनी बात कह पाना, दूसरो की बात समझ पाना और अततः अपनी बात लिखकर व्यक्त कर पाना। प्राथमिक शालाओं में भाषा के शिक्षक की मान्यता इसे एक विषय की तरह रहती है वैसा ही विषय जैसे गणित, विज्ञान। भाषा की किताब पढ़ने-पढ़ाने का मतलब होता है किताब मे दी गई कविताओ, कहानियों, निबंधों, जीवनियों पर आधरित प्रश्नों के उत्तरों को याद कर लेना। यहां जोर लिपि, वर्तनी पर रहता है। यहां इस बात पर चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है कि जो पाठ भाषा की किताबों में बच्चो के लिए चुनकर रखे जाते हैं, उनकी भाषा और स्तर कैसा है, बच्चों के अनुभव और परिवेश से उनका जुड़ाव कैसा है? यह कहना ही पर्याप्त होगा कि ज्यादातर पाठ ऐसे नही होते जिन्हें पढने में मजा आए। लेकिन भाषा कुछ भी सीखने-सिखाने का आधार है, महज एक विषय भर नही है। इस दृष्टिकोण के नितान्त अभाव के चलते स्कूल भाषा से खिलवाड़, उसमें डूबने उतराने, रस लेने, अहसास करने और आत्मसात् कर पाने की कोई गुंजाइश बच्चे को नही देता। यह बात ग्रामीण बच्चो के लिए है उतनी ही शहरी और संपन्न बच्चों के लिए भी है। भाषा सिखाना दरअसल सोचने और विचार करने के ढांचों के क्रमशः विकास के साथ संभव होता है। सारा सिखाना अमूर्तता की ओर बढ़ने की एक धीमी और जटिल प्रक्रिया पर आधारित होता है। पढ़ी हुई बात को ठीक तरह से समझने के लिए विश्लेषण, संश्लेषण, तुलना, कल्पना, क्रम की पहचान, सामान्यीकरण जैसी कितनी ही क्षमताओं का उपयोग करना पड़ता है। भाषा भी इसी तरह सीखी जाती है।

यह देखना उपयोगी होगा कि कक्षा की दुनिया में आकर बच्चे अपनी स्वाभाविक, खेलवृत्ति भूल जाते हैं। कक्षा में एक तरह की नीरस, मशीनी और थका देने वाली प्रक्रिया चलती रहती है जिसमें कुछ जरूरी किताबों और कायदों का पूरी धार्मिकता के साथ पालन अनिवार्य समझा जाता है। इस प्रक्रिया मे थोड़े बहुत बदलाव से इसे आसान और मजेदार भी बनाया जा सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जाती। अगर बहुत ज्यादा की अपेक्षा न की जाए तो भी एक आसान तरीका है– बच्चो को कहानियां सुनाना। यह सवाल हो सकता है कि बच्चे के लिए कहानी का क्या अर्थ है? कहानी के साथ अंतःक्रिया करते हुए, सुनते हुए वह कौन-सी प्रक्रिया है जिससे बच्चा गुजरता है?

बच्चे अक्सर बड़ो से बातचीत करने में, देखी हुई घटना का विवरण प्रस्तुत करने के लिए बहुत उत्सुक रहते हैं कि कोई घटना कैसे घटित हुई। वे सुनी हुई कहानी को सुनाना चाहते है, अगर इसके लिए धैर्य और अवसर प्रदर्शित किया जाए। लेकिन प्रायः ऐसा नहीं होता, घर में भी, स्कूल में भी। कहानी सुनाने की प्रक्रिया में कहानी ठीक-ठीक वही नहीं रहती जो बच्चे को सुनाई गई हो। बच्चे किसी कहानी को सुनने के दौरान उसके कथ्य को अपने जीवन से जोड़ते चलते हैं। कहानी के कथ्य के संदर्भ में अपने अनुभवों की जांच-परख करने के साथ-साथ अपनी ओर से भी कुछ जोड़ते चलते हैं। अपनी ओर से यही जोड़ना-घटाना कहनी को बच्चे की अपनी कहानी बनाता है। कहना न होगा, बच्चा कहानी को सुनने, समझने के दौरान अपने जीवन के तनावों और संघर्षों से जोड़कर अपनी भावानात्मक जरूरतों के हिसाब से बदलाव भी करता है।

एक अच्छे कथानक और अब 'इसके बाद क्या होगा' की उत्तेजना उत्सुकता वाली कहानी सुनाने का बच्चों

पर जादुई असर होता है, इससे शायद ही किसी को इन्कार हो। दरअसल कहानी अपना काम कैसे करती है, यह देखना दिलचस्प होगा। कहानी सुनते समय ध्यान उसमे वर्णित घटनाओं और पात्रो पर केन्द्रित रहता है। बयान की जा रही घटना अगर पहले से देखी हुई न हो तो हम कल्पना से उसे गढ लेते हैं अनदेखे चरित्रो की भी छवि मन मे बना लेते है। स्थान, देश, काल की समझ भले ही सीमित हो कहानी के अनुरूप हम उसे अपने मन में आसानी से बिठा लेते हैं।

कहानी सुनाते समय अनुभव या कल्पना के आधार पर जिस तरह का विवरण प्रस्तुत करना होता है तथा श्रोता का ध्यान भी अपनी तरफ खीचे रखना होता है, दोनों ही बातें भाषा के कुशल उपयोग पर निर्भर करती हैं। कहानिया सुनने के अनुभव हमें भाषा के ये कौशल अनायास सिखा देते है।

बच्चों को कहानी सुनाने का उद्देश्य सिर्फ उनका मनोरजन करना या उन्हें शिक्षा देना भर नही है। यह इससे कहीं ज्यादा है। कहानियां अच्छी तरह, ध्यान- से सुनने की क्षमता पैदा करती है। सुनने का धैर्य पैदा करती है। एक असहिष्णु समय में जहां किसी को किसी की सुनने की परवाह नहीं है, इतना अधिक टोकाटाकी, हस्तक्षेप और अधैर्य है, वहा सार्थक संवाद के लिए धैर्य से सुनने का कौशल या रवैया विकसित करना बेहद जरूरी है। यह आदत जीवन के शुरुआती दौर में ही अच्छी तरह डाली जा सकती है ताकि जीवन भर चलने वाली आदत बन सके।

कहानियां सुनाना एक तरह की प्रदर्शनकारी गतिविधि है, जिसमे दुतरफा सवाद कायम रहता है। कहांनी बच्चो में उत्सुकता और अधिक सुनने, जानने की माग पैदा करती है। कल्पना करने और सुने हुए दृश्य की छवि मन मे बनाने, फिर मानसिक छवियो को दुबारा सुना सकते की क्षमता देती है। बच्चे सुनी हुई घटनाओ, चरित्रो, स्थानो को अपने मन मे जगह देते है और इससे उनका रोल-मॉडल विकसित होता है। वे कल्पना की दुनिया को वास्तविक दुनिया से जोडकर देखते हैं और इस तरह अपने आसपास को अच्छी तरह समझने की कोशिश करते है। वे घटनाओ और चरित्रो को जोड पाते हैं, अलग करते हैं और अपने अनुभवो से मिलान करते हैं।

कहानी सुनाने से बच्चे अनुमान लगाना, अंदाजा लगाना सीखते है। जब वे किसी कहानी को कई बार सुन लेते हैं तो वे सफलतापूर्वक अंदाजा लगा लेते हैं कि आगे क्या आने वाला है। अनुमान सही साबित होने पर उन्हे जो खुशी होती है, बच्चे के लिए वह दुलर्भ क्षण होता है। यही नहीं, बच्चे 'पढना' सीखते है और पढ़ना सीखने मे अनुमान लगाने की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

अंदाज लगाने की यही क्षमता आगे चलकर गणित और विज्ञान सीखने में भी मदद करती है। कहानियां बच्चे की दुनिया को फैलाती है, वह दुनिया जो मन मस्तिष्क मे बसी है, जिसका निर्माण दिन-प्रतिदिन और सीखने-सिखाने के दौरान लगातार होता है कहानियां इसमें इस तरह मददगार होती है कि वे उन जगहों, स्थितियो, चरित्रों के बारे मे बताती है जिनसे जीवन मे अभी तक सामना न हुआ हो। और यह सब पढ़ना लिखना सीख सकने के पहले भी सभव है, सिर्फ सुनकर और सुनाकर। कहानियो से मिलने वाले अनुभव को बच्चे अपने अनुसार एक बनावट में ढालकर रखते है जो जीवन और आसपास को देखने के उनके नजरिए पर निर्भर होता है।

कहानी बच्चों की भाषा संपदा को विस्तार देती है, नये-नये शब्दो का अर्थ बताती है। शब्दों का उपयोग जहां एक तरफ हम दुनिया भर की चीजों को अलग-अलग नाम देने में करते हैं वहीं दूसरी तरफ शब्दों की मदद से अपने अनुभव दूसरों से बांटने का भी काम करते हैं। इसलिए कहानियां सुनने का जितना अधिक अवसर मिलेगा, शब्द संसार उतना ही विकसित और समृद्ध होता जाएगा। इस तरह कुछ भी पाठ-सामग्री है वह परिचित होने का आभास देती है और शब्दों को हिज्जे करके पढ़ने की जरूरत खत्म होती जाती है। एक कुशल पाठक के लिए ये कारगर औजार साबित होते है क्योकि इससे पढ़ने मे गति आती है।

कहानी सुनाना ऐसी मौखिक प्रस्तुति है जिसमे रचनात्मकता की पर्याप्त गुजाइश बनी रहती है। किसी

कहानी को सुनाते समय उसमे थोडे-बहुत बदलाव, सुनने वालों को ध्यान मे रखकर सुनाने की गति में बदलाव संभव होता है। कोई कहानी जो मानसिक पाठ के रूप मे रहती है उसे सुनाने के दौरान मौखिक या वाचिक पाठ के रूप में बदल दिया जाता है। इसलिए सुनाने की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सुनने वालों की रुचि कितनी जागृत की जा सकी। कोई भी कहानी सिर्फ एक बार नही बल्कि कई कई बार सुनाई जा सकने लायक होती है और बच्चे इसे पसद भी करते है। सुनाने से पहले इस तरह के सवालों के बारे में बताकर, कहानी खत्म होने पर सवाल पूछे जा सकते. है। कहानी मे पात्र कौन-कौन से है कहानी किस समय (घटित) हो रही हैं, सवाद किसके बीच है कहानी में किसी घटना के बाद क्या हुआ यानि घटनाओ/स्थितियो का क्रम क्या है? लेकिन इस तरह के सवाल पूछना कि इस कहानी से तुम्हे क्या शिक्षा मिलती है, यह कहानी के आनन्द को समाप्त करने के लिए पर्याप्त है। इसलिए कहानी के प्रति आकर्षण बनाए रखने और उसकी रचनात्मक सभावनाओ के इस्तेमाल की दृष्टि से कहानी मे मूल्य और शिक्षा जैसे सवालो से बचा जाना चाहिए

कहानी सुना चुकने के बाद कुछ बच्चों से कहा जा सकता है कि वे कहानी को अपने शब्दो मे सुनाए। यहा बच्चो से हूबहू उसी क्रम में कहानी को सुनाने की मांग करना निरर्थक है। जरूरी नही कि जिन शब्दो में और जिस क्रम मे बच्चो को कहानी सुनाई गई ठीक उसी तरह बच्चे भी सुना सकें। महत्वपूर्ण यह है कि वे सुनाने की हिम्मत जुटा सकें और सुना सके। वे सुनाने के लिए समूह के सामने आ सकें। बच्चों को ही नही बडो को भी अपने ऊपर विश्वास नहीं होता कि उनकी कहानी कोई ध्यान से सुनेगा भी। लेकिन शुरुआत करने में कोई हर्ज नही है। जरूरत पहल करने और प्रोत्साहित करने की है अगर बच्चो को कहानी सुनाए तो बच्चों को, चाहे घर हो या कक्षा कुछ मिलेगा ही, प्राप्ति ही होगी, हानि नहीं होगी। बच्चे इस बात पर कोई निर्णय नही देने जा रहे हैं कि आपका कहानी सुनाना कैसा है।

चाहे कल्पना बुनी जा रही हो या तथ्य जड़े जा रहे हों, कहानी सुनाने वाले की आवाज सुनने वालों को एक दूसरी दुनिया में ले जाती है, चाहे सह दादी-नानी की आवाज हो या कक्षा में शिक्षक की। आनंद वैसा ही होता है, ध्यानमग्न चेहरे, उत्सुकता भरी आंखे, मुस्कराहटे, हंसी, विस्मय और मौन। शायद कहानी सुनाने का पुरस्कार भी यही है।

कहानी सुनाने के प्रभाव को और ज्यादा बढाने के कुछ और भी उपाय काम मे लाए जा सकते है— संगीत, परिधान और पोशाकें, मुखौटे, सांकेतिक भाषा, चित्र। इसके अलावा कहानी के कुछ सवादों को बार-बार दुहरा कर, ध्वनियां आवाजों का इस्तेमाल कर आवाज मे उतार चढ़ाव और नाटकीयता का इस्तेमाल कर कहानी का प्रभाव बढ़ाया जा सकता है। लेकिन सबसे जरूरी है श्रेताओं के प्रति संवेदनशीलता और कहानी के प्रति लगाव।

कहानी सुनाते समय कुछ और तरकीबें कारगर होती हैं। देखे कि बच्चे किस तरह बैठे है, क्या बैठक व्यवस्था को बदलकर अनौपचारिक स्वरूप दिया जा सकता है? क्या बच्चे कहानी का आभिनय कर सकते है? लेकिन यह याद रखना होगा कि यह किसी खास मौके पर उपस्थित अतिथियों के समक्ष की जाने वाली नाटकीय प्रस्तुति नहीं है। यह 'प्रर्दशन' नही है बल्कि बच्चे अपने लिए, अपने बीच प्रस्तुत कर रहे हैं जहा प्रदर्शन के गड़बड़ हो जाने का भय नहीं होना चाहिए।

छोटे बच्चे अक्सर बीच-बीच मे अचानक सवाल पूछना चाहते है, पूछ भी लेते है तो इन सवालो को टालने या हतोत्साहित करने से नुकसान ही होगा क्योकि फिर शायद सवाल पूछे ही न जायें और सवाल जबाव का यह सिलसिला जो दोनो पक्षो के बीच एक तरह का अतरंग रिश्ता बनाता है, खत्म हो जाए।

लेकिन कहानी सुनाने के लिए कहानी पर अधिकार जरूरी है यानि वे अच्छी तरह याद हों। कहानी अच्छी तरह याद हो तो उसे आत्मविश्वास और बिना किसी घबराहट के इत्मीनान से सुनाया जा सकता है, कहानी में सुनाते वक्त भी जरूरत के हिसाब से थोड़े बहुत बदलाव किए जा सकते है, जोड़ा घटाया जा सकता है और कहानी की गति को नियंत्रित किया जा सकता है। ऐसे माहौल मे कहानी का इस्तेमाल बच्चो से आपसी समझ बनाने में मदद करता है।

कहानी के जादुई संसार में जो चरित्र बसते है उनका सुख और दुख, जीत की खुशी और हार का दुख, बहादुरी और कायरता, मासूमियत और भोलापन हमें बाध लेते

है, आनन्द और भावनाओं के साथ जोड़ते है। यह सब हमे दूसरी सस्कृतियों के प्रति सहानुभूति सिखाता है।

कहानियों के लिए श्रोता सदैव रहेंगे क्योकि मानवीय आवाज की लय जैसी कोई दूसरी लय नही है जो इस कदर हमें आकर्षित कर सके। विचार यह है कि बच्चों को अच्छा साहित्य मौखिक रूप मे दिया जा सके। प्रश्न है, सुनाने के लिए जो कहानियां चुनी जाएं वे कैसी हों? उपदेशों के भार से दबी कहानियां जिनसे कोई न कोई 'सीख' देने की कोशिश रहती है, बच्चों को रत्तीभर आकर्षित नहीं कर पातीं कोई भी कहानी बिना द्वंद्व के नही हो सकती, अच्छे और बुरे का, हार और जीत का, आशा और निराशा का द्वंद्व ही वह ततु है जो कहानी से श्रोता को बांधता है। बच्चो को सुनाने के लिए ऐसी कहानियां चुनी जा सकती है जो छोटी हों, घटना प्रधान हो, जिनमे पात्रों की भीड न हो, जिनमे हास्य का पुट हो, सवाद भी हों। यह भी देखना होगा कि क्या कहानी में ऐसे पात्र हैं जिनसे बच्चे अपना सबध जोड सके। बच्चे की कहानियों मे दुहराव का बहुत महत्व है, खासतौर पर छोटी कक्षाओं मे ऐसी कहानियां जिसमे कुछ चीजें बार-बार आती हो, जिसमें कुछ शब्दो या वाक्यों को अर्थपूर्ण तरीके से बार-बार दुहराया गया हो, वे बच्चों को ज्यादा आकर्षित करती है। कहानियो का अत बच्चो के लिए एक चुनौती प्रस्तुत करता है या नही, सोच की नई बुनियादें खोलता है या नही, यह भी महत्वपूर्ण है।

कहानी सुनने-सुनाने में कुछ और बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए, वे हैं— कहानी की भाषा, शब्द चयन, वाक्य-संरचना। कहानी में बच्चों के लिए अनजाने, अपरिचित तत्व इतने ही हों कि उनको समझने मे हल्की सी चुनौती उपस्थित हो, बहुत सरल भी न हो और ऐसी भी न हो कि सिर के ऊपर से गुजर जाए। हां, भाषा संबधी कुछ ऐसी बाते जरूर हों जो बच्चों के लिए नई हो। तो कहानिया कहां से लाए, यह चुनौती अभी बरकरार है। परम्परा से मिली हुई कहानियां सुनाने के मामले में समकालीन कहानियो से अक्सर बेहतर साबित होती है। लोककथाए मौखिक परंपरा का हिस्सा होती हैं जिन्हें ठीक-ठीक लिखना तो मुश्किल होता है लेकिन सुनाते वक्त उनका असली सौन्दर्य खुलकर सामने आता है। ये भाषा, खासकर मौखिक भाषा के कुशल और बहुविधि प्रयोगों का अवसर देती हैं। इसके अलावा लोककथाए जीवन के उन तनावों और संघर्षो को प्रस्तुत करती हैं। जो हमारे जीवन में हमेशा से मौजूद रहे हैं। पत्र-पत्रिकाओ में छपी कहानिया, चुटकुलो के रूपातर, कॉमिक्स की किताबों से उठाई गई कहानियां, वास्तविक अनुभवो को कहानी की तरह पेश करना, हमारी मदद नहीं कर पाते क्योकि इनमें कहानी का तनाव और द्वंद्व अनुपस्थित होता है। इनसे किसी जादुई असर की उम्मीद करना बेमानी है। कहानी की शुरुआत, उनका केनवस, पृष्ठभूमि, घटनाओं के घटित होने की तीव्रता और गति, पात्रो के बीच द्वद्व, रणनीतियां, संवाद जैसी चीजें कहानी को अच्छी या बुरी कहानी बनाते हैं।

दुनिया भर की लोककथाएं एक समृद्ध स्रोत है। हम चाहें तो उन्हें आधुनिक संदर्भो के अनुरूप ढाल भी सकते है। परी कथाए, जातक कथाए, महाभारत, पचतत्र, हितोपदेश भी इसमे हमारी मदद कर सकता है। आसपास के बड़े बुजुर्ग और स्त्रियां जो कहानियों के भडार होते हैं, भी इस काम मे हमारी सहायता कर सकते हैं। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि हम उन्हें आदर और सम्मान से आमत्रित कर सके।

और अंत में, क्या आपके बच्चो को ढेर सारी कहानियां सुनने का अवसर मिलता है? कहानी सुनाना एक कौशल जरूर है लेकिन यह सोचकर कहानी सुनने के आनंन्द से बच्चो को वंचित कर देने का कोई तुक नहीं है। यह कौशल अभ्यास से सीखा जा सकता है, यह हुनर आते-आते आएगा और इसके लिए सुनाने की शुरुआत तो करनी ही होगी। ❑❑

वरिष्ठ विशेषज्ञ
राज्य परियोजना कार्यालय
विद्या भवन, निशातगंज, लखनऊ

आदिवासी विद्यार्थियों की स्वअवधारणा का अध्ययन

❑ अश्वनी कुमार गर्ग

भूमिका

आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं। ये प्रारम्भ से ही दूरस्थ एव निर्जन स्थानों पर निवास करते रहे हैं परिणामस्वरूप आदिवासियों पर शहरी सभ्यता एवं विकास का बहुत कम प्रभाव पड़ा है, इसी कारण ये सदैव ही प्रगति के नवीन साधनो से वंचित रहे हैं। इसलिए आदिवासियो की अपनी अलग व विशिष्ट पहचान बनी रही है। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् आदिवासियो को देश की मुख्यधारा से जोड़ने के लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। आदिवासियो मे पिछड़ेपन का मुख्य कारण उनकी शिक्षा है। आदिवासियो को अन्य लोगों की बराबरी मे लाने के लिए आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा के लिए प्राथमिक, माध्यमिक, हाईस्कूल, हायरसैकेण्डरी शालाए तथा पूर्व-माध्यमिक छात्रावास, मैट्रिकोत्तर छात्रावास तथा आश्रम शालाए खोली गई। इसके अलावा आदिवासी विद्यार्थियो को छात्रवृत्ति देने की भी व्यवस्था शासन स्तर से की गई। इन सभी सुविधाओ के बाद आदिवासी परिवार ज्यादातर अशिक्षित हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार मध्य प्रदेश मे आदिवासियो की साक्षरता का प्रतिशत 21.54 रहा है जो बहुत ही कम है। आदिवासियों के शिक्षित न होने से आज भी वे देश की मुख्यधारा से कटे हुए देखे जा सकते है।

अध्ययन की आवश्यकता

आदिवासी जो कि समाज की मुख्यधारा से कटे हुए हैं, इनमें शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ है, अभी भी विकास की ज्योति इन तक नहीं पहुंची है। इसके परिणामस्वरूप इन जातियों में मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक पिछडापन आता चला गया है। इनकी सामाजिक एव शैक्षिक उन्नति नही हो पाई है। व्यक्तिगत व्यवहार, स्वभाव, रहन-सहन, खान-पान, स्वास्थ्य आदि जीवन के समस्त पहलुओ पर इसका कुप्रभाव पडा और इन असमानताओं के कारण इनके व्यक्तित्व का अपेक्षित विकास नही हुआ है। इससे इनके व्यक्तिगत गुण, मूल्यों, स्वअवधारणाओ, रुचियो, बौद्धिक शक्ति, अभिवृत्तियो और अनुकूलन (समायोजन) करने की शक्ति पर भी सार्थक प्रथाव पडा है।

इस अध्ययन मे सामान्य एव आदिवासी विद्यार्थियो की शिक्षा के प्रति स्वअवधारणा का परीक्षण किया गया है, क्योकि व्यक्तित्व निर्माण मे इस गुण का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

आदिवासियों में पिछड़ेपन का मुख्य कारण उनमें शिक्षा का न होना है। इसी के कारण ये सदैव प्रगति के नवीन साधनों से वंचित रहे हैं। इनकी सामाजिक एवं शैक्षिक उन्नति न होने के कारण इनके व्यक्तिगत गुण, मूल्यों, स्वअवधारणाओं, रुचियों, बौद्धिक शक्ति, अभिवृत्तियों और अनुकूलन करने की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इस अध्ययन में सामान्य एवं आदिवासी विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति स्वअवधारणा का परीक्षण किया गया है क्योंकि व्यक्तित्व निर्माण में इस गुण का महत्वपूर्ण योगदान है।

उद्देश्य

अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए–

आदिवासी एव गैर-आदिवासी विद्यार्थियो मे–

- जाति, लिग, परिवार की मासिक आय एवं इनके बीच अंतक्रिया का स्वअवधारणा पर प्रभावो का अध्ययन करना।
- जाति, परिवार के आकार, परिवार के व्यवसाय एवं इनके बीच अंतक्रिया का स्वअवधारणा पर प्रभावो का अध्ययन करना।

अध्ययन की विधि

इसके लिए पियर एण्ड हैरिस द्वारा निर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया। इस प्रश्नावली के माध्यम से यह

जानने का प्रयास किया गया है, कि विद्यार्थी अपने बारे में क्या सोचता है। इसमे कुल 80 प्रश्न थे। प्रत्येक प्रश्न के सामने "हां" या "नही" लिखा है। जिससे विद्यार्थी सहमत हो उसमें "हा" पर सही का निशान लगाना है तथा जिससे असहमत हो उसमे "नहीं" पर सही का निशान लगाना है। प्रत्येक प्रश्न मे एक पर ही निशान लगाना है। प्रत्येक सही प्रश्न के लिए 1 अक तथा गलत प्रश्न के लिए 0 अक निर्धारित किए गए हैं। साथ ही साक्षात्कार अनुसूची में माध्यम से विद्यार्थियो एवं पालकों से जानकारी प्राप्त की गई। जिसके अंतर्गत परिवार का आकार, परिवार का व्यवसाय आदि था।

न्यादर्श एवं चयन प्रक्रिया

न्यादर्श का चयन सुविधानुसार यादृक्षिक विधि से किया है, जिसमें बैतूल जिले के हायर सैकेण्डरी के 11वीं कक्षा स्तर के 800 विद्यार्थियो को लिया गया जिसमें आदिवासी, गैर-आदिवासी छात्र एवं छात्राएं शामिल थी।

क्र.	जाति	छात्र	छात्रा	योग	प्रतिशत
1	गैर-आदिवासी	194	188	382	47 75
2.	आदिवासी	212	206	418	52.25
	योग	406	394	800	100

प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु प्रयुक्त सांख्यिकी

प्रदत्तो के विश्लेषण हेतु "माध्य" "प्रसरण विशलेषण" एवं "Duncan's Multiple Range" परीक्षण का उपयोग किया गया।

परिकल्पनाएं, निष्कर्ष एवं व्याख्या

इस शोध कार्य में निम्न उद्देश्य को लेकर परिकल्पनाएं निर्धारित की गई। उद्देश्य व्याख्या निम्नानुसार है– **स्वअवधारणा पर जाति, लिंग, आय एवं इनके बीच अन्तर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन**–इस शोध कार्य का *उद्देश्य स्वअधारणा पर जाति, लिग, आय एवं* इनके बीच अन्तर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना है। इस उद्देश्य में जाति के दो स्तर है। जिसमें एक गैर-आदिवासी एवं दूसरे आदिवासी। छात्र एवं छात्राएं लिंग के दो स्तर है। आय के तीन स्तर (जिनकी मासिक आय रु. 5 हजार से ऊपर थी उसे उच्च आय समूह, जिनकी मासिक आय रु. 5 हजार से नीचे तथा रु. 3 हजार से ऊपर थी उसे मध्यम आय समूह एवं जिसकी आय रु 3 हजार एव उससे कम थी उसे निम्न आय समूह) है। इसको ध्यान मे रखते हुए प्रदत्तो का विश्लेषण $2 \times 2 \times 3$ Factorial Design ANOVA साख्यिकी विधि द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका क्रमाक 1 मे दिए हैं।

तालिका 1

स्वअवधारणा के लिए प्रसरण विश्लेषण की $2 \times 2 \times 3$ की Factorial Design का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	F अनुपात
जाति (A)	1	2012.27	2012.27	29 85**
लिग (B)	1	313.40	313.40	4.65*
आय (C)	2	1379.42	689.71	10.23**
A × B	1	1.55	1 55	0.02
A × C	2	44 72	22 36	0 33
B × C	2	32 66	16 33	0.24
A × B × C	2	170.44	85 22	1 26
त्रुटि	788	53131.06	67.43	—
योग	799			

** 0.01 स्तर पर सार्थकता * 0.05 स्तर पर सार्थकता

तालिका क्रमांक 1 से–

- जाति के लिए 'F' का मान 29 85 है जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है। इसका अर्थ है कि स्वअवधारणा पर जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है। स्वअवधारणा के माध्यो का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि गैर-आदिवासी विद्यार्थियो के स्वअवधारणा माध्य का मान 58 17, (N = 382) है, जो कि आदिवासी विद्यार्थियो के माध्य स्वअवधारणा (माध्य का मान = 54.15, N = 418) अंक की तुलना में सार्थक उच्च है। अत' कहा जा सकता है कि गैर-आदिवासी विद्यार्थियों की स्वअवधारणा, आदिवासी विद्यार्थियों की तुलना मे सार्थक उच्च स्तर की है।
- लिग के लिए 'F' का मान 4.65 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है। इसका अर्थ है कि स्वअवधारणा पर लिंग का सार्थक प्रभाव पड़ता है। स्वअवधारणा के माध्यो का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि छात्रों के स्वअवधारणा माध्य का मान 55.64 (N =406) है जो कि छात्रओं के माध्य स्वअवधारणा (माध्यमान = 57.10, N = 394) अक की तुलना में सार्थक कम है। अतः कहा जा सकता है कि छात्राओं की स्वअवधारणा छात्रो की तुलना मे सार्थक उच्च स्तर की है।
- आय के लिए 'F' का मान 10.23 है जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है। इसका अर्थ है कि स्वअवधारणा पर परिवार की आय का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

तालिका 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि 0.05 स्तर पर निम्न आय समूह एव मध्यम आय समूह, निम्न आय समूह एवं उच्च आय समूह तथा मध्यम आय समूह एवं उच्च आय समूह, माध्य स्वअवधारणा के बीच सार्थक अन्तर है अर्थात् जिनकी मासिक आय रु 5000 या इससे अधिक है उनकी स्वअवधारणा माध्य 59.58 (N = 151) जिनकी मासिक आय रु. 3000 से अधिक तथा रु 5000 से कम है उनका स्वअवधारणा माध्य 58.08 (N = 154) तथा जिनकी मासिक आय रु. 3000 या उससे कम है उनका स्वअवधारणा माध्य 54 72, (N = 495) है। इस प्रकार माध्य स्वअवधारणा अक जिन परिवारो की मासिक आय कम है वहां सार्थक कम है। अतः कहा जा सकता है कि अधिक आय वाले परिवार के विद्यार्थियों की स्वअवधारणा कम आय वाले परिवार के विद्यार्थियों की तुलना मे सार्थक उच्च स्तर की है।

- जाति एव लिंग के बीच अन्तर्क्रिया के 'F' का मान 0.02 है, जो कि सार्थक नहीं है। इसका अर्थ है कि जाति एवं लिंग के बीच की अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव स्वअवधारणा पर नहीं पड़ता है।
- जाति एवं परिवार के आय के बीच अन्तर्क्रिया के 'F' का मान 0 33 है, जो कि सार्थक नहीं है। इसका अर्थ है कि जाति एव परिवार की आय के बीच की अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव स्वअवधारणा पर नही पड़ता है।

तालिका 2

तीन स्तर के आय-वर्ग के विद्यार्थियों के स्वअवधारणा के लिए Duncan's Multiple Range परीक्षण

आयु समूह	माध्य	N	निम्न आय समूह	मध्यम आय समूह	उच्च आय समूह
निम्न आय समूह	54 72	495	–	★	★
मध्यम आय समूह	58.08	154	–	–	★
उच्च आय समूह	59.98	151			

★ 0.05 स्तर पर सार्थकता

लिंग एव परिवार की आय के बीच अन्तर्क्रिया के 'F' का मान 0.24 है, जो सार्थक नहीं है। इसका अर्थ है कि लिंग एव परिवार की आय के बीच की अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव स्वअवधारणा पर नहीं पड़ता है।

- जाति, लिग एव परिवार की आय के बीच अन्तर्क्रिया के 'F' का मान 1.26 है, जो कि सार्थक नहीं है। इसका अर्थ है कि जाति, लिंग एवं परिवार की आय के बीच की अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव स्वअवधारणा पर नही पड़ता है।

निष्कर्ष–स्वअवधारणा पर जाति, लिंग, आय एवं इनके बीच अन्तर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर स्वअवधारणा पर जाति, लिंग, परिवार की मासिक आय का सार्थक प्रभाव दिखाई पड़ता है। जबकि जाति एवं लिग, जाति एवं परिवार की आय, लिंग एवं परिवार की आय तथा जाति, लिंग एवं परिवार की आय के बीच की अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता है।

स्वअवधारणा पर जाति,परिवार के आकार, परिवार के व्यवसाय एवं इनके बीच अन्तर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन– इस शोध कार्य का उद्देश्य स्वअवधरणा पर जाति, परिवार के आकार, परिवार के व्यवसाय एव इनके बीच अन्तर्क्रिया के प्रभावो का अध्ययन करना है। इसमे जाति के दो स्तर (स्तर एक गैर-आदिवासी, स्तर दो आदिवासी) लिए गए हैं। परिवार के आकार के तीन स्तर (परिवार में सदस्यों की सख्या 7 से अधिक को बड़ा परिवार, परिवार मे सदस्यो की संख्या 7 या 6 है उसे मध्यम परिवार, के परिवार मे सदस्यो की संख्या 6 से कम है उसे छोटा परिवार) लिए गए हैं। परिवार के व्यवसाय के चार स्तर (1- मजदूर, 2-कृषक, 3-व्यापारी, 4-नौकरी) लिए गए है।

इसको ध्यान मे रखते हुए प्रदत्तो का विश्लेषण 2 × 3 × 4, Factorial Design ANOVA साख्यिकी विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका 3 में दिए गए हैं।

तालिका 3

स्वअवधारणा के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2 × 3 × 4 की Factorial Design का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्गयोग	F अनुपात
जाति (A)	1	2983.25	2983.55	45.56**
परिवार का आकार (B)	2	318.33	159.17	2.43*
परिवार का व्यवसाय (C)	3	1874 02	624 67	9.54**
A × B	2	257.25	128.63	1.97
A × C	3	342.94	114.31	1.75
B × C	6	193.34	32.22	0.49
A × B × C	5	1187.91	237.58	3.63**
त्रुटि	777	50872.67	65.47	–
योग	799			

** 0.01 स्तर पर सार्थकता * 0.05 स्तर पर सार्थकता

तालिका 3 से ज्ञात होता है कि—

- जाति के लिए 'F' का मान 45 56 है जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है। इसका अर्थ कि स्वअवधारणा पर जाति का सार्थक प्रभाव पडता है।
- परिवार के आकार के लिए 'F' का मान 2.43 है जो कि सार्थक नही है। इसका अर्थ है कि परिवार के आकार का स्वअवधारणा पर कोई सार्थक प्रभाव नही पड़ता है।
- परिवार के व्यवसाय के लिए 'F' का मान 9.54 है जो कि 0 01 स्तर पर सार्थक है। इनका अर्थ कि स्वअवधारणा पर परिवार के व्यवसाय का सार्थक प्रभाव पड़ता है। स्वअवधारणा के माध्यो के अवलोकन से ज्ञात होता है कि मजदूर परिवार के विद्यार्थियो की स्वअवधारणा माध्य सार्थक निम्न स्तर का (स्वअवधारणा माध्य = 54.31, N = 118) तथा व्यापारी परिवार के विद्यार्थियों का स्वअवधारणा माध्य सार्थक उच्च स्तर (माध्य मान = 60.02, N = 50) का है। हम कह सकते हैं कि परिवार के व्यवसाय का विद्यार्थियों की स्वअवधारणा पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- जाति एव परिवार के आकार के बीच अन्तक्रिया के 'F' का मान 1.97 है, जो कि सार्थक नहीं है। इसका अर्थ है कि जाति एव परिवार के आकार के बीच की अन्तक्रिया का कोई सार्थक प्रभाव स्वअवधारणा पर नहीं पड़ता है।
- जाति एवं परिवार के व्यवसाय के बीच अन्तर्क्रिया के 'F' का मान 1 75 है जो कि सार्थक नहीं है। इसका अर्थ है कि जाति एव परिवार के आकार के बीच की अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव स्वअवधारणा पर नही पडता है।
- परिवार के आकार एव परिवार के व्यवसाय के बीच अन्तर्क्रिया के 'F' का 0 49 है, जो सार्थक नही है। इसका अर्थ है कि परिवार के आकार एवं परिवार के व्यवसाय के बीच की अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव स्वअवधारणा पर नहीं पड़ता है।
- जाति, परिवार के आकार एवं परिवार के व्यवसाय

तालिका 4

चार स्तर के परिवार व्यवसाय के विद्यार्थियों के स्वअवधारणा के लिए Duncan's Multiple Range परीक्षण

परिवार व्यवसाय समूह	माध्य स्वअवधारणा	N	मजदूर परिवार	कृषक परिवार	नौकरी परिवार	व्यापारी परिवार
1. मजदूर परिवार	54.31	118	—	—	★	★
2. कृषक परिवार	54.84	354	—	—	★	★
3. नौकरी परिवार	55.51	50	—	—	—	—
4 व्यापारी परिवार	60.02	278				

★ 0.05 स्तर पर सार्थकता

तालिका 4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि 0.05 स्तर पर मजदूर परिवार एवं नौकरी परिवार, मजदूर परिवार एव व्यापारी परिवार, कृषक परिवार एव नौकरी परिवार तथा कृषक परिवार एवं व्यापारी परिवार के विद्यार्थियों के माध्य स्वअवधारणा के बीच सार्थक अंतर है। अतः

के बीच अन्तर्क्रिया के 'F' का मान 3.63 है, जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है। इसका अर्थ कि जाति, परिवार के आकार एव परिवार के व्यवसाय के बीच अन्तर्क्रिया का स्वअवधारणा पर सार्थक प्रभाव पडता है।

जाति, परिवार के आकार, परिवार के व्यवसाय के बीच की अन्तर्क्रिया के स्वअवधारणा माध्यों का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि बड़े आकार (परिवार के सदस्यो की संख्या 7 से अधिक है परिवार) के गैर-आदिवासी विद्यार्थियों का परिवार के व्यवसाय के आधार पर स्पष्ट है कि नौकरी परिवार के विद्यार्थियों का स्वअवधारणा माध्य सबसे उच्च (माध्य मान = 61.89, N = 14) है जबकि मजदूर परिवार के बच्चों की स्वअवधारणा माध्य सबसे कम (माध्य मान = 59.07, N =28) है। ठीक इसी प्रकार आदिवासी विद्यार्थियो मे नौकरी परिवार के विद्यार्थियों का स्वअवधारणा माध्य सबसे अधिक (माध्य मान = 61.85, N = 13) तथा मजदूर परिवार के बच्चों का स्वअवधारणा माध्य सबसे कम (माध्य मान = 50. 46, N = 53) है। इस प्रकार आदिवासी एव गैर-आदिवासी नौकरी परिवार के विद्यार्थियों का स्वअवधारणा माध्य सार्थक उच्च स्तर का तथा मजदूर परिवार के विद्यार्थियो का स्वअवधारणा माध्य सार्थक निम्न स्तर का है।

मध्यम परिवार आकार के विद्यार्थियो का स्वअवधारणा माध्य का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि गैर-आदिवासी परिवार के विद्यार्थियों मे स्वअवधारणा माध्य नौकरी परिवार में सार्थक उच्च (माध्यमान = 61 61, N = 59) तथा कृषक परिवार में निम्न (माध्यमान = 56.43, N = 56) है जबकि आदिवासी परिवार के विद्यार्थियो मे स्वअवधारणा माध्य में व्यापारी परिवार के विद्यार्थियों मे सार्थक उच्च (माध्यमान = 66.00, N = 5) तथा कृषक परिवार के विद्यार्थियो में सार्थक निम्न (माध्यमान = 54.40, N = 107) है।

छोटे परिवार आकार के विद्यार्थियो के स्वअवधारणा माध्य के अवलोकन से भी स्पष्ट है कि गैर-आदिवासी विद्यार्थियों में व्यापारी परिवार के विद्यार्थियो का स्वअवधारणा माध्य (माध्यमान = 58.90, N = 20) सार्थक उच्च स्तर का तथा मजदूर परिवार के विद्यार्थियो का स्वअवधारणा माध्य (माध्य मान = 56.55, N = 22) सार्थक निम्न स्तर का है। इसी प्रकार आदिवासी परिवार के विद्यार्थियो मे जिन परिवार के लोग नौकरी मे हैं उनकी स्वअवधारणा माध्य सार्थक उच्च (माध्य मान = 56.66, N = 56) है जबकि कृषक परिवार के विद्यार्थियो का स्वअवधारणा माध्य सार्थक निम्न (माध्य मान = 51.51, N = 49) स्तर का है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वअवधारणा में जाति, परिवार के आकार एव परिवार के व्यवसाय के बीच की अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

स्वअवधारणा पर जाति, परिवार के आकार, परिवार के व्यवसाय एव इनके बीच की अन्तर्क्रिया के प्रभावो का अध्ययन करने से स्वअवधारणा पर जाति, परिवार के व्यवसाय तथा जाति, परिवार के आकार एवं परिवार के व्यवसाय के बीच अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव दिखाई पड़ता है। जबकि परिवार के आकार तथा जाति एवं परिवार के आकार, जाति एवं परिवार के व्यवसाय तथा परिवार के आकार एवं परिवार के व्यवसाय के बीच की अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव दिखाई नही पडता है।

मूल्य	जाति (A)	लिंग (B)	आय (C)	A × B	A × C	B × C	A × B × C
F	29.85	4.65	10.23	0 02	0 33	0.24	1.26
सार्थकता	★★	★	★★	NS	NS	NS	NS

स्वअवधारणा पर जाति, परिवार के आकार, परिवार के व्यवसाय एव इनके बीच अन्तर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन सारांश

मूल्य	जाति (A)	परिवार का आकार (B)	परिवार का व्यवसाय (C)	A × B	A × C	B × C	A × B × C
F	45.56	2.43	9.54	1.97	1.75	0.49	3.69
सार्थकता	★★	NS	★★	NS	NS	NS	★★

★★ 0.01 स्तर पर सार्थकता NS सार्थक नहीं है ★ 0.05 सार्थकता

सारांश

स्वअवधारणा का जाति, लिंग, आय, परिवार के आकार, परिवार के व्यवसाय एवं इनके बीच अन्तर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर स्वअवधारणा पर जाति (F = 29. 85, P = 0001), लिग (F = 4 65, P = 0.0005), आय (F = 10 23, P = 0.0001) परिवार के व्यवसाय (F = 9.54, P = .0001) तथा जाति, परिवार के आकार एवं परिवार के व्यवसाय के बीच अन्तर्क्रिया (F = 3 69, P = .0001) का स्वअवधारणा पर सार्थक प्रभाव देखने को मिलता है। जबकि परिवार के आकार तथा जाति एवं लिंग, जाति एव आय, लिंग एव आय, जाति, लिंग एवं आय, जाति एवं परिवार के आकार, जाति एवं परिवार के व्यवसाय और परिवार के आकार एवं परिवार के व्यवसाय के बीच अन्तर्क्रिया का स्वअवधारणा पर सार्थक प्रभाव दिखाई नहीं देता है। गैर-आदिवासी विद्यार्थियो के स्वअवधारणा माध्य का मान 58.17 (N= 382) है जो कि आदिवासी विद्यार्थियों के माध्य स्वअवधारणा (माध्य का मान = 54 15, N = 418) अंक की तुलना मे सार्थक अधिक है। आदिवासी विद्यार्थियों के स्वअवधारणा माध्य का कम होना यह दर्शाता है कि आदिवासी विद्यार्थी अपनी सामर्थ्य के आधार पर दृढ़ विश्वासी नहीं होते यानि उनमे विश्वास का अभाव रहता है। ❑❑

उप प्रबंधक (दक्षता एवं अनुसंधान)
राज्य शिक्षा केन्द्र, भोपाल, म.प्र.

संख्या पद्धति का विकास

❑ आर.के. मिगलानी

वर्तमान संख्या पद्धति का विकास प्राचीन काल के वन मानस की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के परिणामस्वरूप आरंभ होकर विभिन्न रूपों व चरणों में हजार वर्षो के अन्तराल में हुआ। प्राथमिक स्तर पर लगभग 80 प्रतिशत गणित "संख्याएं तथा उन पर संक्रियाएं" से ही संबंधित है। अतः प्रारंभ में बच्चों को इनका सम्यक ज्ञान देना अति आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में संख्या पद्धति के विकास पर प्रकाश डाला गया है जो अध्यापकों के लिए उपयोगी है।

क्या कभी आपने यह सोचा है कि जिस सख्या पद्धति को हम प्रतिदिन प्रयोग मे लाते रहते हैं वह कब? कहा? कैसे? तथा किस के द्वारा आई? इसके विकास के सन्दर्भ मे यहां प्रकाश डाला गया है तथा संख्याओ पर मूल संक्रियाओ का सूक्ष्म विवरण भी प्रस्तुत किया गया है।

प्राचीन काल से ही मानव को अपने दैनिक जीवन मे गणित की आवश्यकता थी। इसके अभाव मे उसे बहुत अधिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता था। वह कुछ संकेतो का प्रयोग कर अथवा संख्या के बराबर लकीरे खीच कर मुद्रा, समय, वस्तुओं आदि का अनुमान लगाने का प्रयत्न करता था और पशुओ के बारे में जानकारी उन के शरीर पर निशान लगाकर प्राप्त करता था। जो वस्तु उन्हें प्राप्त होती थी उसकी गणना लकीरे खीच कर और जो वस्तु चली जाती थी या समाप्त हो जाती थी उन लकीरों को काटकर करते थे। जैसे— धोबी को कुछ कपडे धोने के लिए दिए तब— ।।।।।।।।।।। जब धोबी ने उनमें से कुछ कपड़े लौटा दिए तब— ××××××××××।।

शेष कपड़े जो धोबी के पास रह गए— ।।

बहुत समय पश्चात् सुमेर के निवासियों ने एक 'कीलाकार लिपि' को विकसित किया जिसके द्वारा वस्तुओ की गिनती साठ-साठ की ढेरियों में होती थी इसलिए इस लिपि को 'षटदाशमिक लिपि' के नाम से पुकारा जाता था। इससे कम की गिनती नहीं की जाती थी। एक कुशल मजदूर, घरेलू औरत, आधुनिक किसान, व्यापारी, विद्यार्थी और किसी भी कार्य को करने वाले अथवा किसी भी कार्य से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति के लिए गणना सख्या प्रणाली की अत्यधिक आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर गणित की सख्या पद्धति का विकास हुआ।

विश्व में इस समय दो सख्या पद्धतियां प्रचलित है। 'हिन्दू-अरबी प्रणाली' तथा 'अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली'। हिन्दू-अरबी प्रणाली जिसका हजारों वर्ष पूर्व भारत के हिन्दुओ ने प्रयोग किया था तथा अरब लोग इस प्रणाली को यूरोप ले गए, इसलिए इस को हिन्दू-अरबी प्रणाली के नाम से जाना जाता है। यह प्रणाली सख्या एक से नौ तक की सख्याओ को ही लिए हुए थी क्योंकि तब तक शून्य का आविष्कार नहीं हुआ था। समय बीतने के साथ यह प्रणाली आज शून्य से प्रारम्भ होकर पूर्ण होती है। यही प्रणाली सबसे अधिक प्रयोग में लाई जाती है तथा गणित की सर्वश्रेष्ठ प्रणाली मानी जाती है। इस प्रणाली में इकाई, दहाई, सैकडा, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड आदि को दर्शाने के लिए आधार दस का सहारा लेना पड़ता है, इसलिए इस प्रणाली को आजकल दाशमिक प्रणाली (आधार दस) के नाम से जाना जाता है। जैसे—

$(10)^0$	= 0 बार 10	= 1	इकाई
$(10)^1$	= 1 बार 10	= 10	दहाई
$(10)^2$	= 2 बार 10	= 100	सैकड़ा
$(10)^3$	= 3 बार 10	= 1000	हजार
$(10)^4$	= 4 बार 10	= 10000	दस हजार
$(10)^5$	= 5 बार 10	= 100000	लाख
$(10)^6$	= 6 बार 10	= 1000000	दस लाख
$(10)^7$	= 7 बार 10	= 10000000	करोड़

इसी प्रकार आगे इस प्रणाली मे किसी भी अंक

का मूल्य उसके स्थान से निर्धारित होता है। किसी सख्या के किसी अक को अपने स्थान से आगे के बाए स्थान पर ले जाने से उसके मूल्य मे 10 गुना वृद्धि होती है तथा दाए स्थान पर ले जाने से उसका मान 10वां भाग रह जाता है। इस प्रकार दाशमिक प्रणाली मे बडी से बडी तथा छोटी से छोटी सख्या को बड़ी आसानी से प्रकट किया जा सकता है।

जैसे–

एक करोड ⟶ 1 0 0 0 0 0 0 0
दस लाख ⟶ 1 0 0 0 0 0 0
एक लाख ⟶ 1 0 0 0 0 0
दस हजार ⟶ 1 0 0 0 0
एक हजार ⟶ 1 0 0 0
एक सैकड़ा ⟶ 1 0 0
एक दहाई ⟶ 1 0
एक इकाई ⟶ 1

शून्य की खोज एवं उपयोगिता

शून्य या जीरो 0 (पूर्ण गोल नहीं) संख्या प्रणाली का एक मुख्य संकेत है जो कि खाली स्थान या किसी भी मूल्य अथवा मान के न होने को प्रकट करता है। अत· संख्या मे जिस स्थान को कोई मूल्य अथवा मान नही मिला उस स्थान पर शून्य लिखने से चिह्न अंकन सम्पूर्ण होता है। कहा जाता है कि शून्य की खोज अरब निवासियो ने की थी बाद मे हिन्दुओ को इसकी खोज का श्रेय दिया गया परन्तु कुछ समय बाद जानकारी मिली कि बेबीलोन देश के निवासी शून्य के बारे मे पहले से ही जानकारी रखते थे। शून्य की खोज को मानव जाति का एक महत्त्वपूर्ण कदम माना जाता है। शून्य द्वारा खाली स्थान पूरा करने की उपयोगिता इसका महत्वपूर्ण उपयोग है।

कुछ संख्याओं में शून्य पढ़ने मे नहीं आता परन्तु सख्या को सही नाम व मूल्य प्रदान करता है इसके बिना सख्या अपने आप में अधूरी है। जैसे–

50 पचास (पांच दहाई व शून्य इकाई) में शून्य बोला नही जाता परन्तु इसके बिना संख्या 50 की रचना अधूरी है।

505 पांच सौ पाच मे इकाई व सैकड़े की ध्वनि आती है परन्तु दहाई (शून्य) की नही। शून्य को किसी सख्या मे जोडने या किसी संख्या से घटाने पर सख्या के मान मे कोई अन्तर नहीं आता है।

$538 + 0 = 0 + 538 = 538$ संख्या का मान वही है तथा

$538 - 0 = -0 + 538 = 538$ संख्या की रचना वही है

शून्य को किसी संख्या से गुणा करने या किसी सख्या को शून्य से गुणा करने पर गुणनफल सदैव शून्य प्राप्त होता है।

$$538 \times 0 = 0$$
$$0 \times 538 = 0$$

> किसी भी संख्या को शून्य से भाग करना सम्भव नही है।

जिस प्रकार किसी भी संख्या को शून्य से भाग करना सम्भव नही होता उसी प्रकार शून्य को किसी भी सख्या से भाग करना सम्भव भी होता है तथा सरल भी और अन्तिम भागफल शून्य प्राप्त होता है।

जैसे– $\dfrac{\text{संख्या}}{0} =$ भागफल सम्भव नही

$\dfrac{0}{\text{सख्या}} = 0$ भागफल सम्भव है तथा भागफल सदैव शून्य प्राप्त होता है।

संख्या एवं संख्यांक

संख्याओं के चिह्नो या संकेतों को संख्यांक कहते हैं, तथा संख्यांक को बोलना, शब्दों में व्यक्त करना, संख्याक

को दिमाग मे लाना, सख्याक को लिखना या सख्यानाम को सख्या कहते है।

जैसे–

संख्यांक (संख्या का संकेत)	**संख्या**
2	दो
15	पन्द्रह
0	शून्य
105	एक सौ पांच

हम प्रतिदिन सख्या को 'सख्या शब्दो में' व संख्याक को 'संख्या अंकों में' प्रयोग करते हैं।

जैसे– सौ रुपए को अंको व शब्दो में लिखो

अकों में 100 (सकेत रूप में)

सख्यांक

शब्दो में सौ रुपए (संख्या)

अंक

शून्य से नौ तक की सख्याओं के संकेतो को अक कहते हैं। भारत वर्ष में इन दस (0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9) अकों का ही आविष्कार हुआ। यह सभी अक संख्याक भी होते हैं तथा यह सभी अक संख्याए भी होती हैं (एक अंक वाली)।

> सभी अक संख्याएं भी होती है परन्तु सभी सख्याएं अक नहीं होते।

इन अंकों की अच्छी तरह पहचान के लिए कुछ क्रियाकलाप कीजिए–

जैसे–

0	अक	संख्या शून्य भी
7	अंक	संख्या सात भी
15	संख्या	परन्तु अंक नही
105	सख्या	परन्तु अंक नही

> **क्रियाकलाप**
>
> इस क्रियाकलाप में 1, 4, 5, 7 चार अक दिए है जिससे दो सख्याएं बनी पन्द्रह व सैन्तालिस शेष छः तारांकित स्थानो पर अक रखकर पहले तीन सख्याओं का योग ज्ञात करो फिर एक और सख्या (प्रत्येक दो अंको की) लिखकर कुल योग 100 आए। कोई अंक छूटना नहीं चाहिए तथा कोई अक दो बार न आए। इस प्रकार छ. तारांकित स्थानों पर अक भरने का प्रयास करें
>
> 15
+ 47
+ **
**
+ **
100

मूलभूत संक्रियाएं

जोड़ने की मूलभूत संकिया (तीन अको की सख्या मे तीन अको की सख्या जोड़ना)

☐ **वस्तुओं द्वारा**

	100 इकाई का बाक्स	100 इकाई का बाक्स	100 इकाई का बाक्स	←10 इकाई के पैकेट→	←10 इकाई→
358	☐	☐	☐	0 0 0 0 0 100 इकाई 0 0 0 0 0	xxxxxxxx 10 इकाई का पैकेट
+ 272	☐	☐	0 0	←10 इकाई के पैकेट	xx
630	→100 इकाइयो के 6 बॉक्स + 10 इकाइयों के 3 पैकेट + 0 इकाई				

☐ **हासिल द्वारा**

```
   11
   358   1 1 1 1 1 1 1 1
+  272   1 1
   630
```

□ स्थानीय मान द्वारा

	सै.	द	ई	
	3	5	8	
+	2	7	2	
	5	0	0	(5 सैकड़े)
+	1	2	0	(12 दहाइयां)
+		1	0	(10 इकाइयां)
	6	0	0	(6 सैकड़े)
+		3	0	(3 दहाइया)
+			0	(0 इकाई)
	6	3	0	

□ प्रसारित रूप द्वारा

			इकाइया		इकाइयां		इकाइयां	
	358	=	300	+	50	+	8	
+	272	=	200	+	70	+	2	
		=	500	+	120	+	10	इकाइया
		=	600	+	20	+	10	
	630	=	600	+	30	+	00	= इकाइयां

□ मनोरंजक विधि

3 5 8 + 2 7 2	=	8 + 2	=	10
		5 + 7	=	12
		3 + 2	=	05
				630

दी गई सख्याओं के अंकों को (इकाई से सैकड़े) उल्टा लिखो तब सीधा जोड करके एक अंक बाई ओर खिसका कर स्तम्भ में लिखो व अन्तिम योगफल ज्ञात करो यही सही योगफल होगा।

घटाने की मूलभूत संक्रिया (तीन अको की सख्या मे से तीन अको की सख्या को घटाना)

□वस्तुओं द्वारा

☐ हासिल द्वारा

```
   215
   3̶5̶8    (x x) 1 1 1 1 1 1
 – 2 7 2   (x x)
   0 8 6
```

☐ स्थानीय मान द्वारा

```
   358
 – 272
     6  ←8 इकाइयों से 2 इकाइयां घटाई
    80  ←15 दहाइयों में से 7 दहाइयां घटाई
   000  ←2 सैकड़े से 2 सैकड़े घटाए
   086
```

☐ मनोरंजक विधि

```
   358  → (8̶ 2̶)  = 8 – 2   =  06
 – 272  → 5 –7   = 15 – 7  =  08
        → 3 –2   = 2 – 2   =  00
                              086
```

☐ प्रसारित रूप

```
 358  = 300 इकाइयां +50 इकाइयां +8 इकाइया
      = 200 इकाइयां +150 इकाइयां +8 इकाइया
–272  = 200 इकाइयां +70 इकाइयां +2 इकाइयां
 086  = 0 इकाइयां   +80 इकाइया  +6 इकाइयां
```

गुणा की मूलभूत संक्रिया

☐वस्तुओं के प्रयोग द्वारा

गुणा करो 5 को 5 से

```
          समूह × वस्तुएं वस्तुएं                                      वस्तुए
  5  →  1  ×  5   xxx                                     =   xxx
+ 5               xx                                          xx
 10  →  2  ×  5   xxx   xxx                                   पैकेट
+ 5               xx    xx                                =   (xxx xxxx xxx)

 15  →  3  ×  5   xxx   xxx  xxx                          =   (xxx xxxx xxx)   xxx
+ 5               xx    xx   xx                                                xx

 20  →  4  ×  5   xxx   xxx  xxx  xxx                     =   (xxx xxxx xxx)  (xxx xxxx xxx)
+ 5               xx    xx   xx   xx

 25  →  5  ×  5   xxx   xxx  xxx  xxx  xxx                =   (xxx xxxx xxx)  (xxx xxxx xxx)  xxx
                  xx    xx   xx   xx   xx                                                     xx
```

☐ स्थानीय मान द्वारा

627 को 5 से गुणा करो

सैकड़ा	दहाई	इकाई
①	③	
6	2	7
6	2	7
6	2	7
6	2	7
6	2	7
31 ← ①	3 ← ③	5

= 3135

स्थानीय मान के अनुसार प्रत्येक अंक (इकाई, दहाई व सैकड़ा) का योग अलग से ज्ञात कर लेते हैं तथा हासिल को अगले स्तम्भ में जोड़कर योगफल पूर्ण करते हैं।

☐ बंटन नियम के प्रयोग द्वारा

627 को 5 से गुणा करो

$627 \times 5 = (600 + 20 + 7) \times 5$ (स्थानीय मान के अनुसार गुण्य (Multiplicand) का विस्तार कर लिख लें)

$600 \times 5 = 3000$

$20 \times 5 = 100$

$7 \times 5 = 35$

3135

☐ बंटन नियम को दो बार प्रयोग करके

627 को 125 से गुणा करो

$$\begin{aligned} 627 \times 125 &= (600 + 20 + 7) \times (100 + 20 + 5) \\ &= 600\,(100 + 20 + 5) + 20\,(100 + 20 + 5) + 7\,(100 + 20 + 5) \\ &= 60000 + 12000 + 3000 + 2000 + 400 + 100 + 700 + 140 + 35 \\ &= 77000 + 1300 + 75 = 78375 \end{aligned}$$

☐ संख्या की शून्य व एक से गुणा

627 को शून्य से गुणा करो

$627 \times 0 = 0 \times 627 = 0,$

$1 \times 627 = 627 \times 1 = 627$

शून्य को किसी भी संख्या से (शून्य के अतिरिक्त) या किसी भी सख्या को शून्य से गुणा करने पर गुणन फल शून्य ही आता है। एक को किसी भी सख्या से (शून्य के अतिरिक्त) या किसी भी सख्या को 1 से गुणा करने पर गुणनफल सदैव वही संख्या प्राप्त होती है।

☐ मानक विधि द्वारा गुणनफल

627 को 125 से गुणा करो

627 गुण्य

125 गुणक (125 = 100 + 20 + 5) का विस्तार करो

3135 ← 627×5

12540 ← 627×20

62700 ← 627×100

78375 ← 627×125

भाग की मूलभूत संक्रिया

☐ लगातार घटाकर भाग करना

21 को 3 से भाग करो

भाज्य		भाजक				
21	÷	3	=	21 − 3 = 18	भाज्य	= 21 दी गई बड़ी संख्या जिसको भाग करना है।
				18 − 3 = 15		
				15 − 3 = 12	भाजक	= 3 दी गई सख्याओ में छोटी संख्या जिसको भाज्य से, शेषफल शून्य आने तक, घटाना है।
				12 − 3 = 09		
				9 − 3 = 06		
				6 − 3 = 03		
				3 − 3 = 00		
					भागफल	= 7 भाजक को जितनी बार भाज्य से घटाने पर शेषफल शून्य आए
					शेषफल	= 0

☐ **बड़े से बड़े भाजक के गुणज द्वारा**

54 को 3 से भाग करो

भाज्य 54 मे से भाजक 3 के बड़े से बड़े गुणज 30 को घटाने पर शेष 24 में से पुन. बडे से बडे गुणज 24 को घटाने पर भागफल 10 + 8 = 18 तथा शेषफल शून्य आता है।

☐ **तीन समान अंकों की संख्या को भाग करना**

555 को सामन अंको के योग से भाग करो

$$\begin{array}{r} 37 \\ 15\overline{)555} \\ -45 \\ \hline 105 \\ -105 \\ \hline 0 \end{array}$$

यदि तीन समान अंकों से बनी किसी भी सख्या को उसी संख्या के अंकों के योग से भाग करें तो भागफल सदैव 37 आएगा व शेषफल शून्य बचेगा।

☐ **शून्य को किसी संख्या से भाग करना**

$7 \times 8 = 56$, $56 \div 7 = 8$ and $56 - 8 = 7$

$0 \times 8 = 8 \times 0 = 0, \frac{0}{8} = 0$ परन्तु $\frac{0}{0} = 8$ नही

क्योंकि शून्य को शून्य से भाग करना परिभाषित नही है।

☐ **वस्तुओं द्वारा भाग करना**

	बॉक्स	पेकेट	वस्तुए
		5	4
8)	4	3	4

−40 (4 बॉक्स = 40 पैकेट)

3 पैकेट

=30 वस्तुएं (3 पैकेट

4 वस्तुएं = 30 वस्तुए)

8)34 वस्तुएं — भाज्य = 434

− 32 वस्तुएं — भाजक = 8

2 वस्तुएं — भागफल = 54

शेषफल = 2

भाग सदैव बाएं से दाए की ओर करते है क्योकि भाग न होने की दशा मे बडे बॉक्स को खोल कर छोटे पैकेट व पैकेट को खोलकर वस्तुओं मे बदला जा सकता है।

अध्यापक वर्ग छात्रों में सख्या पद्धति का विकास कर चार मूलभूत संक्रियाओ को विभिन्न विधियों द्वारा विकसित कर छात्रो के लिए गणित को अर्थपूर्ण समझने योग्य व मनोरजक बनाने का प्रयास करें। ☐☐

प्रवक्ता

सेवा पूर्व शिक्षक शिक्षा विभाग, मंडलीय शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान

पुराना राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली

प्राथमिक शिक्षकों का जीवन-कला में प्रशिक्षण

❒ ब्रजभूषण झा
❒ अजीत सिंह

जीना एक कला ही नहीं बल्कि तपस्या है। जीवन-कला ऐसी सामाजिक, मानसिक, धार्मिक अवधारणा है जो व्यक्ति के जीवन में हर क्षण सुख एवं शांति प्रदान करती है, तथा दूसरों के लिए हितकारी होती है। इसमें यम, तप, नियम व आचरणों का अनुसरण आवश्यक है।

जिस प्रकार वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला आदि भारतीय संस्कृति की देन है तत्सदृश जीवन-कला एक व्यक्तित्व निर्मात्री कला है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसे हमेशा समाज स्वीकृत व्यवहारों के माध्यम से काम करना पड़ता है साथ ही वेदो, उपनिषदों इत्यादि मे कही गई बातों को भी ध्यान में रखना अपेक्षित होता है। वैसे तो सामान्य रूप से उपनिषद् विश्वास अथवा कर्म की अपेक्षा ज्ञान व आत्म साक्षात्कार को प्रधानता देती है। उनकी आचरणशास्त्र क्रिया सिद्धिवादी है। पाप एवं पुण्य सर्वव्यापक ब्रह्म में विश्लिष्ट है और वे सापेक्ष पदमात्र हैं। छान्दोग्यपनिषद् के अनुसार– **त्रयोधर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एवं द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयो ऽत्यन्तमात्मानमाचार्य कुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्य लोकभवन्ति ब्राह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति**– धर्म के तीन स्कन्ध होते हैं– यज्ञ, अध्ययन और दान प्रथम है, तप द्वितीय तथा गुरु के आश्रम मे ब्रह्मचर्य रूप मे रहना तृतीय है। इन सबसे पुण्यलोक की प्राप्ति होती है तथा ब्रह्म में स्थित मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है। ऐसा कहा गया है कि–

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।

(जब हृदय की समस्त इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं तब मर्त्य अमर हो जाता है और इस जीवन में ब्रह्म की प्राप्ति कर लेता है।)

महात्मा बुद्ध के श्रेष्ठ अष्टागिक मार्ग जीवन के अन्तर्सूझ आयामों को जन्म देता है। यह श्रेष्ठ अष्टागिक मार्ग है– सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् विचार और सम्यक् ध्यान। इतना ही नहीं उनके अनुसार दु'ख की उत्पत्ति तृष्णा से होती है, जिससे पुनर्जन्म होता है तथा उससे सुख एवं वासना की प्राप्ति होती है और मनुष्य कभी यहा, कभी वहा आनन्द की खोज करता है– विषय सुख की पिपासा, निरन्तर जीवन की पिपासा, शक्ति की पिपासा। पुनश्च जब हम साख्य दर्शन की ओर मुड़ते है तो उसके त्रिगुण सिद्धात सदाचार (सत्व), वासना (रजस) तथा जाड्य (तमस) की उत्पत्ति होती है। प्रकृति की अविकसित अवस्था मे ये तीनों गुण समीकृत परिमाण मे विद्यमान रहते हैं परन्तु जैसे ही सृष्टि का उदय होने लगता है तो विभिन्न पदार्थो अथवा प्राणियों पर तीनों में से एक अथवा अपर के प्रभाव की अतिशयता हो जाती है और उनके अनुपात विश्व की निर्धारित मान्यताओ के कारण की व्याख्या करते हैं। उन समस्त पदार्थों में जिनमे सत्य, विवेक, सौन्दर्य और सद्भावना की प्रवृत्ति होती है उनमें सतोगुण विद्यमान रहता है। रजो गुण की विशेषताए उन सबमें होती हैं जो भयावह हिंसक स्फूर्तिवान, उग्र अथवा क्रियाशील होते है और जो तिमिरावृत्त, उदास तथा अप्रसन्न होते हैं उसमें तमोगुण की प्रधानता है। इस त्रिगुणात्मक विभाजन ने भारतीय जीवन एवं भारतीय विचारधारा को अनेक रूपों मे प्रभावित किया और इसका प्रभाव सांख्य सम्प्रदाय की सीमाओ को इतना अतिक्रान्त कर गया कि सांख्य सम्प्रदाय ने इसे अपने मे समाहित कर लिया।

इस दर्शन के बाद एक और महत्वपूर्ण दर्शन है

योगदर्शन। इसका शाब्दिक अर्थ होता है आत्मानुशासन। इस पद का स्थूल रूप से प्रयोग उन समस्त कार्यो का बोध कराने के लिए होता है जो धार्मिक अभ्यासो तथा भारतीय धर्म के आत्मसंयम के कृत्यो से संबंधित है। इन समस्त क्रियाओ का सत्यभाव अनुनायी योगी कहलाता है। महात्मा बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग का सबध योगशास्त्र के साथ भी है साथ ही गीता में कहा गया है– कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन– (कर्म करना ही अधिकार होता है, फल की चिन्ता व्यर्थ है)।

अत: जीवन कला के द्वारा पूर्व की परम्पराओ व सस्कृतियों को बल मिल सकता है। जिसमें यम, तप, नियम वे सारे आचरणो का अनुसरण आवश्यक हो जाता है। उपनिषदों मे ऐसा कहा गया है कि सुख की प्राप्ति ब्रह्म के ज्ञान से ही हो सकती है। यक्ष कर्म से आत्मन् को मुक्ति नही मिल सकती, उसके लिए आध्यात्मिक चिन्तन की आवश्यकता है। ब्रह्म का ज्ञान वेदों के ज्ञान से श्रेष्ठ है। ब्रह्म ही सबका आदि श्रोत है। इन सद्ग्रंथों में ऐसा भी कहा गया है कि "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या" ब्रह्म को जानने से सब कुछ जाना जा सकता है।

'जीवन-कला' एक ऐसी सामाजिक, मानसिक, धार्मिक अवधारणा होनी चाहिए जो व्यक्ति के जीवन मे हर क्षण सुख एवं शाति प्रदान करे तथा दूसरो के लिए भी हितकारी बने। स्वयं की अवधारणाए ही केवल नहीं होनी चाहिए वस्तुतः समाज स्वीकृत व्यवहार होना चाहिए। अतः सस्कृत की यह निम्नलिखित पक्ति अक्षरशः इस कला का प्रतिनिधित्व कर सकती है–

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यद कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।।
–नीतिशास्त्र

महात्माओ के मन, वाणी और कर्म तीनों मे एकरूपता होती है। परन्तु दुष्ट लोगो के मन, वचन तथा कर्म में भिन्नता होती है।

पुनश्च ऐसा कहा जा सकता है कि जीवन के हरेक पहलू पर अपने आपको सिद्ध करने के लिए कुछ और विधानो का भी ध्यान रखा जाए तो यह और भी बेहतर होगा। जीवन-कला से संबधित कुछ आयाम ऐसे भी है जो **मनुष्य** जाति के लिए कर्त्तव्य बन जाता है जो इस **प्रकार है–**

"**जीवन** एक कला है जब हम उसे साधन, धैर्य, संयम के **साथ** जीते हैं।

अर्थात् यही सभी चीज़े हमे अमरत्व शक्ति प्रदान करती हैं"।

अतः जीवन-कला से सबधित कुछ कवियो तथा दार्शनिको के विचार–

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी– जीना भी एक कला है, बल्कि कला ही नहीं तपस्या है।

महात्मा गांधी– मनुष्य जीवन का उद्देश्य आत्म दर्शन है और उसकी सिद्धि का मूल एवं एकमात्र उपाय पारमार्थिक भार से जीव-मात्र की सेवा करना है।

सेनेका– जब तक जीवित हो, तब तक जीवन-कला सीखते हो।

गिरिजादत्त शुक्ल– जीना केवल सत्य साधना के लिए, मरना भी बस सत्य दृष्टि के लिए निज समाज को सीख मनोहर दो यही, आए हम सब सत्य दृष्टि ही के लिए।

रस्किन– मानव की बहुमुखी भावनाओ का प्रबल प्रवाह जब रोके नही रुकता, तभी वह कला के रूप मे फूट पड़ता है।

जीवन कला से संबंधित क्रिया विधियों के कुछेक आयाम इस प्रकार हैं–

स्वयं को वर्तमान में स्थापित करना

जीवन-कला की सबसे प्रमुख अवधारणा है कि मनुष्य को वर्तमान मे रहना चाहिए। वर्तमान में रहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी व्यक्ति अतीत को भूल जाए कि जो होनी या अनहोनी घटित होनी थी वह हो गई उसके बारे मे व्यर्थ चिन्तन करना है, क्योंकि अतीत मृतप्राय है। घटनाए तो हमेशा अनिच्छित व अप्रिय होती ही हैं तो इसमे किसी को चाहने या न चाहने तथा उसके बारे में व्यर्थ सोचने से क्या फायदा क्योंकि उसके ऊपर

किसी का नियंत्रण नही होता है। इतना ही नहीं शाति के लिए भूत के बारे मे सोचना एवं भविष्य के कल्पना-सागर में तैरना कष्टकर होता है। जो कि हमारी चित्तवृत्ति, ध्यान एवं शांति को बाधित कर देती है। "यद्‌भावी तद्‌ भविष्यति" वाली कहावत के ऊपर ही इसे छोड़ दिया जाना चाहिए। इस तरह की प्रवृत्ति को अपनाने की सबसे अच्छी खासियत यह है कि सही समय पर उचित निर्णय लेने में लोग समर्थ होते हैं। और इस तरह की क्रियाकलापों तथा गतिविधियो को अपनाने वाले व्यक्ति को एहसास होता है कि मै जो कुछ कर रहा हू वह काम निष्ठापूर्वक सम्पादित हो रहा है। पुनश्च जो कोई जिस काम को कर रहा है उसे ही तल्लीनतापूर्वक सम्पादित करे वही जीने की कला है। दृष्टान्तस्वरूप, अगर कोई महिला खाना पका रही है तो उसे ही वह निपुणता से, पूरी निष्ठा से तथा एकाग्रता से सम्पादित करे ठीक उसी समय वह अन्य कामों के बारे में न सोचे क्योकि इससे उस समय में हो रहे काम प्रभावित होते हैं तथा एकाग्रता के अभाव में कुशल पाकशास्त्री का परिचय नही हो पाता। मान लिया जाए कोई व्यक्ति खाना खा रहा है तो उसे पूरी एकाग्रता व तल्लीनता से खाना खाना चाहिए, उस समय केवल खाने पर के एकाग्रचित्त रहना चाहिए। यह बात तो शास्त्रों में भी वर्णित है कि खाना खाने के समय बोलना नही चाहिए क्योंकि उचित गति से भोजन व चर्वण का काम नही हो पाता है। ठीक इसी प्रकार का एक और उदाहरण हम दे सकते हैं कि कोई व्यक्ति अगर पूजा कर रहा है तो उसे शत-प्रतिशत ध्यानस्थ होकर उस काम को सम्पादित करना चाहिए उस समय अन्य कामों के बारे में न सोचे जिससे कि उसकी एकाग्रता भंग हो तथा उसमे अन्यमनस्कता का लेश मात्र भी हो। अत. कोई भी काम वर्तमान में ही रहकर सम्पादित होने चाहिए जिससे कि उस व्यक्ति की एकाग्रता, कार्यक्षमता एवं कुशलता का शत-प्रतिशत दिग्दर्शन होता है, यानी उसे समर्पित भाव से सम्पन्न करना चाहिए। सुख एवं शाति से जीवन यापन करने के कुछ आयामों मे निम्नलिखित प्रमुख हैं।

मीमांसात्मक गूढ़ चिन्तन

जीवन-कला का दूसरा प्रमुख अवयव है मीमासात्मक गूढ़ चिन्तन। इस चिन्तन के दौरान श्वसन की प्राचुर्यता घट जाती है एवं श्वसन प्रक्रिया मृदु हो जाती है। शारीरिक रूप से प्लाज्मा में जब कार्बनडायऑक्साइड का स्तर गिर जाता है तब ऐसा होता है। यह गिरावट या तो उपापचयी प्रक्रिया के द्वारा कार्बनडायऑक्साइड के उत्पादकता के गिरने से होता है या फेफड़ो के द्वारा कार्बनडॉयआक्साइड को बाहर निकलने पर बल दिया जाता है। उपापचयी *प्रक्रिया के द्वारा कार्बनडायऑक्साइड के उत्पादन में* गिरवट आने के चलत मुख्य रूप से सांसो मे मृदुता आ जाती है यानी मीमासात्मक गूढ़ चिन्तन के दौरान सांसं तेजी से बाहर नहीं आती है।

अपचयन प्रक्रिया के द्वारा शरीर में ऊर्जा उत्पादन के लिए कार्बनडायऑक्साइड का निष्कासन किया जाता है अर्थात् कम क्रियाकलापो के लिए कम मात्रा मे कार्बन का उपचयन तथा इसका निष्कासन किया जाता है। मीमांसात्मक चिन्तन के दौरान कार्बनडायऑक्साइड का उत्पादन कम हो जाता है। स्वाभाविक रूप से एक कम मात्रा मे ऊर्जा का उत्पादन करता है। तत्रिका तंत्र व शरीर की स्फूर्ति कम हो जाती है। दिमाग अच्छे विचारों एवं अनुभवों के लिए काम करना शुरू कर देता है। सर्वाग शरीर बिलकुल शांत एवं स्थिर हो जाते हैं। शरीर की स्थिरता स्वाभाविक रूप से विश्राम को अनुमति देती है जो कि ऊर्जा संरक्षण के विचारणीय अंश हैं। यह निश्चित है कि तंत्रिका तंत्र में दिमागी क्रियाकलाप बिलकुल कम हो जाते है एव उस अवस्था में यह शांत एवं स्थिर हो जाता है। शांति के लिए हर कोई यह व्यक्तिगत अनुभव करता है।

कार्बनडायऑक्साइड के गिरने से किसी दूसरे प्रभावों का भी जन्म होता है जिसका कारण है रक्त को अम्लीयता से क्षारीयता में बदल देने की प्रवृत्ति होती है। यह परिवर्तन रसायन के ऊपर बड़ा प्रभाव डालता है जो कि सम्पूर्ण तंत्र के लिए लाभदायक होता है। एक व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार, शांति एवं खुशहाली प्रदान करती है।

ऐसा अवलोकन किया गया है कि मीमांसात्मक

चिन्तन प्रक्रिया के द्वारा दिमाग को बल मिलता है एव दिमाग तनावमुक्त होता है। ध्यान तथा चिन्तन चिन्ताओं को दूर करते है। मीमासात्मक गूढ़ चिन्तन का अभ्यास शुरू करने से सैकडो चिन्तित व तनावग्रस्त लोग अपने तनावों को कुछ ही समय मे भूल जाते हैं। मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मीमासात्मक गूढ़ चिन्तन एक वरदान है। यह शांति एवं सुख के लिए जीर्णोद्धारक होता है।

मध्यम मार्ग पर चलना

जीवन बडा जटिल है यह किसी पहाड़ी पर उस्तरे की तेज धार पर चलने तथा यात्रा पूरी करने के बराबर है अर्थात् किसी भी काम की न तो अतिशयता होनी चाहिए और न ही अल्पता। क्योंकि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' अति हमेशा हानिकारक सिद्ध हो सकती है। इसलिए बीच के रास्ते को अपनाकर लोग सुखी एवं प्रभावशाली हो सकते हैं।

संतुष्टि

जीवन मे खुश रहना प्रत्येक मानव जाति की स्वाभाविक चाहत होती है। सतोषम् परम सुखम् (संतोष में परम सुख है)। परन्तु लोगो का ऐसा मानना है कि सुख के बिना हमारा जीवन व्यर्थ होता है। प्राचीन समय से ही भारतीय सस्कृति में ऐसी व्यवस्था है कि सब को खुश रहने का अधिकार है। हममें से प्रत्येक के पास कुछ-न-कुछ इच्छाए होती हैं। इन इच्छाओ की पूर्ति ही हमे खुशी प्रदान करती है और इसके पूर्ण नहीं होने पर हमें तकलीफ होती है। इस दुनिया में काई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसकी सभी अभिलाषाए पूरी हुई हो। इसीलिए हमारे जीवन मे दुःख और सुख का होना अवश्यम्भावी होता है।

विपत्तियो के दो प्रकार होते हैं। एक तो वह जो प्राकृतिक आपदा के कारण होते हैं या ईश्वरेच्छा से। इस तरह की विपत्तियां विध्वंसात्मक होती है जिससे कि जान-माल का नुकसान होता हो चाहे वह भूकम्प या बाढ़ के कारण हो या माता-पिता, बच्चे, सगे-संबंधी तथा दोस्तो की असमय मृत्यु से हो। इस तरह की विपत्तियों (आपदाओ) के ऊपर मनुष्य का कोई नियत्रण नहीं होता। दूसरे, प्रकार के संकट वे होते हैं जो मानव जाति या किसी और के द्वारा अमानवीय व्यवहारों से पीड़ित करते है जैसे कि चोरी करना, हत्या करना, ठग लेना, बलात्कार करना इत्यादि। इस अपराध के भुक्तभोगी किसी भी तरह से पीडित हो जाते है। यहा तक कि जो अपराध करते हैं या दूसरो को पीडा देते है और उन्हे भी जब इस अपराध का परिणाम चुकाना पड़ता है तो वे भी इसी प्रकार पीड़ित होते हैं।

जब हम मानव की सहज प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हैं तो देखते है किसी की इच्छा (काम) के पीछे कोई शक्ति काम करती है और वह आवेश (क्रोध), मोह, लोभ, मद एव मात्सर्य से प्रभावित होता है। ये सभी आवेग मानव जाति के शत्रु हैं। जब तक ये प्रवृत्तियां नियंत्रित नहीं होगी तब तक लड़ाई, संघर्ष तथा अशांति अवश्यम्भावी है।

कोई भी व्यक्ति सतुष्टि के बिना खुशहाली एव शांति को प्राप्त नही कर सकता है। इस प्रकार सुख-शान्ति प्राप्त करने का एक ही तरीका है कि हमे सम्पत्ति के मामले मे, दफ्तरो में हैसियत के मामले मे, पडोसो में तथा समाज मे संतुष्ट रहना चाहिए।

अत. हम ऐसा कह सकते हैं कि—

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकुलै.,
सम इह परितोषों निर्विशेषो विशेष.।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान को दरिद्र ।।

हम तो वृक्ष की छाल पहनकर ही सतुष्ट है, तुम रेशम के वस्त्र से सतुष्ट हो। यहां संतोष एक-सा है कोई विशेष नही है। मन के सतुष्ट हो जाने पर न कोई अर्थवान धनी होता है और न कोई गरीब।

ईश्वर के प्रति समर्पण

हर किसी व्यक्ति को सुख-शान्ति तभी मिल सकती है जब वह अपने-आपको ईश्वर के प्रति समर्पित कर दे। वास्तव में यह करने से ज्यादा कहना आसान है जैसा

कि पूर्व वर्णित विवरण मे कहा गया है। इस तरह की अभिवृत्ति से कोई भी व्यक्ति अपने जीवन मे सुख-शांति का जीर्णोद्धार कर सकता है। इसलिए इस तरह की पीड़ा से दूर रहने के लिए अपने-आपको ईश्वर के प्रति समर्पण आवश्यक होता है अर्थात् जो कुछ किसी के साथ हो रहा है वह सब ईश्वरेच्छा से हो रहा है तथा यह सर्वविदित है।

अहं के ऊपर नियंत्रण

अहं एक मनोस्थित भाव है। यह कष्ट का एक प्रमुख श्रोत है। किसी भी व्यक्ति का अह उसे किसी भी अच्छे सम्पर्क से दूर रखता है। अहंवादी व्यक्ति किसी दूसरे को नही भाता है। तब वह अकेलापन महसूस करता है। ऐसा व्यक्ति यह सोचता है कि मैं सबो से अलग हू। इस परिवेश मे केवल मै ही तेज व्यक्ति हू बाकी सब अज्ञान है। यह हरेक चीज को नष्ट कर देती है यहां तक कि इस जीवन को भी।

परोपकार के लिए जीना

जीवन-कला का सबसे प्रमुख तत्व है दूसरों के लिए जीना। हमारे रोजमर्रा के जीवन में मुख्यत कुछ काम हमें सुखी बना देते है। यद्यपि किसी-किसी परिस्थिति में तो कोई-कोई व्यक्ति एक-दूसरे की सुख शाति को पसन्द नहीं करता तथा उसे परेशान करने मे आराम महसूस करता है। उसकी सोच होती है कि खुश रहने के लिए दूसरों को पीडित करना जरूरी होता है। ऐसा देखा गया है कि इस तरह के व्यक्ति दूसरो के द्वारा पसद नही किए जाते। अगर कोई व्यक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अत्यन्त स्वार्थी बन जाता है तो उसकी इन भावनाओं के चलते बहुत से साथी छूट जाते हैं। कुछ समये के बाद यह हस्तान्तरण उनके लिए अनेकों कष्ट के कारण बन जाता है। ठीक इसके विपरीत जो व्यक्ति दूसरो की सेवा करता है तथा दूसरो के लिए जीता है उसकी खुशी तथा सुख का कोई मापदण्ड नही होता। इसलिए कहा गया है कि–

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वय न खादन्ति फलानि वृक्षाः। नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहा., परोपकाराय सता विभूतयः।।

(नदियां स्वय अपना पानी नही पीतीं, वृक्ष अपना फल स्वयं नही खाते, खेत अपनी फसल स्वयं नहीं ग्रहण करते, अर्थात् परोपकार का काम हमेशा दूसरों के लिए होता है।)

दुनिया के बडे-बड़े चिन्तनशील दार्शनिकों ने भी यही अनुशसित किया है कि दूसरो के लिए जीना चाहिए। इसके मुताबिक मनुष्य को अपनी सामर्थ्य के अनुरूप किसी भी रूप में दूसरो की सेवा करनी चाहिए चाहे शारीरिक हो, आर्थिक हो अर्थात् जैसे भी हो।

अनासक्ति

माता अमृतानन्दमयी के अनुसार मानव जाति के पास दो तरह की समस्याएं है। एक तो यह कि जो आप इच्छा करते हैं वह नही पाते हैं और दूसरा, इसे आप तब प्राप्त करते हैं जब आप इसकी इच्छा करते हैं। जब किसी की इच्छा पूर्ति हो जाती है तो परिस्थिति अपने आप में एक समस्या की कडी बन जाती है। इसका सीधा कारण यह होता है कि जो कुछ भी आपने प्राप्त किया है उसके प्रति आसक्ति। किसी व्यक्ति को इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाने पर वह उसे उसी प्रकार सुरक्षित रखना चाहता है, वह किसी कीमत पर उसे खोना नही चाहता। इस प्राप्त वस्तु के सरक्षण के द्वन्द्व में कई बार व्यक्ति अपनी शाति खो जाता है। यह आसक्ति-भावना का परिणाम होता है। यह एक प्रकार का रोग है। बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग की तरफ हम एक बार फिर से मुडते हैं तथा उनके अभिमत के मुताबिक वासना एवं तृष्णा एक अविवेकी इच्छा तथा भूख है जो कि मानव जाति की पीड़ा की जड़ है। अनासक्ति की भावना अधिग्रहण करने से इससे मुक्ति मिल सकती है। अनासक्ति का मतलब यह नहीं कि दूसरों की समस्या से परे रहे या पलायनवादी हो जाएं। अनासक्ति का मतलब यह होता है कि विभिन्न परिस्थितियों में सतुलित रहना जो कि सुख और पीड़ा का कारण बनता है।

लेख में वर्णित जीने की कला के सभी तत्व आपस में निवर्ज्य नहीं हैं। ये सभी पूरक है। अतएव इनमें से कुछ भी अधिग्रहण करने से किसी का भी जीवन

सुख-शांति के साथ व्यतीत हो सकता है।

अतः जीने की कला के सभी आयामों को सायास प्रयास से ही पूर्ण होने की संभावना व्यक्त की जा सकती है। व्यक्ति में मूल्य ज्ञान के साथ-साथ स्व-जीवन जीने की एक कला होनी चाहिए जिसके माध्यम से वे सर्वांगीण विकास कर सकते हैं। इतना ही नही व्यक्तित्व की भावना मन में जागृत होनी चाहिए जिसके लिए पूर्व-वर्णित मार्ग तथा सुझावों का अनुकरण कर सफल व्यक्तित्व के सपने को साकार रूप दिया जा सकता है। पुनश्च जीने की कला को ध्यानस्थ करने से व्यक्ति अपने विकास को अनवरत रूप से जारी रख सकता है तथा महत्वाकांक्षा तो होनी ही चाहिए परन्तु अति महत्वाकांक्षी मनोवृत्ति कष्ट को भी जन्म देती है।

निष्कर्षतः ऐसा कहा जा सकता है कि अच्छे व्यक्तित्व के निर्माण के लिए सुख एवं शांति के लिए जीवन-कला नितांत आवश्यक है तथा कष्ट से दूर रहने के लिए ऊपर कथित सदाचार का आचरण आचरित करना आवश्यक है। ❑❑

(1) कार्यकारिणी सहायक
(2) वरिष्ठ कार्यकारिणी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय
ए-38, कैलाश कालोनी, नई दिल्ली

प्राथमिक शिक्षा और शैक्षिक तकनीकी

❑ सुरेश चन्द्र पचौरी

संसार में तीव्रगति से हो रहे व्यापक परिवर्तनों के चलते कोई भी समाज अपने नागरिकों की शिक्षा को अनदेखी करके आगे नही बढ सकता। विश्व में वही राष्ट्र प्रगति एवं आर्थिक समृद्धि के शिखर पर पहुंचे हैं जिन्होंने अपने देश के नागरिको के लिए प्राथमिक शिक्षा को गुणवत्ता के साथ विकसित किया है क्योंकि नागरिकों की सम्पन्नता एवं आत्मनिर्भरता की आधारशिला "प्राथमिक शिक्षा" ही है। शिक्षा का प्रथम सोपान प्राथमिक शिक्षा से प्रारम्भ होता है यही शिक्षा मानव को चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भी सुखद जीवन व्यतीत करने योग्य बनाती है। अत शिक्षा ही मानव के विकास का एकमात्र साधन है जिसके ज्ञान एव कौशल मे वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और निरन्तर परिवर्तनशील समाज में रहने योग्य सभ्य, सुसंस्कृत नागरिक बनाने का प्रयास किया जाता है।

शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की दिशा मे वैदिक युग से बौद्ध युग, मुगल युग, ब्रिटिश युग मे भी अनेक प्रयास किए गए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा को भारतीय संविधान के अनुच्छेद-45 में नि:शुल्क एव अनिवार्य शिक्षा के रूप में मूल रूप से राज्य सूची में रखा जिसके कारण प्राथमिक शिक्षा को विकसित करने की पूरी जिम्मेदारी केवल राज्य सरकार को सौंपी गयी। इसकी अवधि प्रारम्भ में 10 वर्ष रखी गई बाद में 1976 मे संविधान संशोधन के माध्यम से शिक्षा को राज्य सरकार के साथ केन्द्र सरकार की देख-रेख मे भी रखा जिससे समूचे देश में 6-14 वर्ष के बच्चों को शिक्षा की नि शुल्क व्यवस्था है। और अनेक प्रकार की शैक्षिक योजना भी जैसे— ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना 1987, डी.पी.ई.पी. योजना, प्राथमिक शिक्षा पाठ्यचर्या नवीनीकरण परियोजना, प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम, क्षेत्र सघन शिक्षा परियोजना, बिहार शिक्षा परियोजना, शिक्षा कर्मी परियोजना, लोक जुम्बिश परियोजना, आन्ध्र प्रदेश प्राथमिक शिक्षा परियोजना, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परियोजना, चलायी गई। इनके माध्यम से प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के क्षेत्र में भारत ने उल्लेखनीय सफलता पाई है। देश मे करीब 6 लाख प्राथमिक और 1.80 लाख उच्च प्राथमिक विद्यालय हैं जो 6 से 14 वर्ष के आयु समूह के करीब 15 करोड़ बच्चों को शिक्षा दे रहे हैं। देश की 94 प्रतिशत आबादी को प्राथमिक स्तर पर किसी भी बच्चे के घर से एक किमी. के दायरे मे स्कूल उपलब्ध हैं। राष्ट्रीय मान दण्ड यह है कि किसी भी बच्चे को स्कूल जाने के लिए एक किमी. से अधिक न चलना पड़े। किन्तु व्यवहार मे एक औसत बच्चे को एक किमी. से भी कम चलना पड़ता है। उच्च प्राथमिक स्तर पर 84 प्रतिशत आबादी को बच्चों के आवास से तीन किमी. के दायरे में एक स्कूल की व्यवस्था की गई है।

भारत जैसे विकासशील देश की शिक्षा प्रणाली को गुणवत्ता के साथ विकसित करने के लिए प्राथमिक शिक्षा में प्रौद्योगिकी का प्रयोग नितान्त आवश्यक है। शिक्षा का प्रथम सोपान प्राथमिक शिक्षा है इस सोपान से ही देश के भावी कर्णधारों को प्रगति का आधार मिलता है। आज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षक को प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक विकास करने के लिए शैक्षिक तकनीकी के उपयोग पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

जिन क्षेत्रों में बच्चों के लिए स्कूल जाना सम्भव नहीं है, वहां अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र के रूप में स्कूल बच्चे तक पहुंचता है, यह व्यवस्था विशेष रूप से शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों, शहरी मलिन बस्तियो, पर्वतीय और रेगिस्तानी क्षेत्रों, तटवर्ती क्षेत्रों और अन्य राज्यों के

ऐसे क्षेत्रो में जहा काम पर जाने वाले बच्चो की सख्या अधिक है, में की गई है। वर्तमान मे 2.79 लाख अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र पूरे देश में कार्यरत है जिनमे 6-14 वर्ष की आयु के 70 लाख बच्चे अध्ययनरत है जिनमें 30 लाख लड़कियां हैं।

आज के वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक वातावरण में केवल एक शिक्षित समाज ही भविष्य का सपना नही रह गया है यह एक ऐसा समाज है जो जीवन पर्यन्त शिक्षा के प्रति वचनबद्ध है, जिसमे प्रत्येक नागरिक शिक्षा के दीपक को जीवन भर प्रज्जवलित रखने की स्थिति में हो। एक शिक्षित समाज में शिक्षा स्कूल या कालेज की चारदीवारी तक सीमित नहीं हो सकती, इसमे सभी मानवीय गतिविधियों को हर समय और एक स्थान पर गले लगाया जा सकता है। क्योकि पूर्ण रूप से शिक्षित समाज गतिशील और गुंजायमान समाज होता है जो भविष्य की चुनौती का सामना करने के लिए तैयार होता है। शिक्षा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण चुनौती लोगों को लोकतंत्र की शिक्षा देने की है, लोकतंत्र का अर्थ सिर्फ मतदान करना अथवा मतपेटी की पूजा करना मात्र नही है। यह एक जीवन पद्धति है। यह जनता द्वारा परिवर्तन और विकास के लिए सत्ता को योग्य लोगों को सौंपने की व्यवस्था है। यह तभी सम्भव है जब प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता पर बल दिया जाए, जिससे प्रत्येक बच्चे को सीखने का अनिवार्य स्तर हासिल हो सके।

शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक ही प्रभावशाली शिक्षण से अपने विषय को रुचिकर बनाकर शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रख सकता है। शिक्षक के महत्व पर प्रकाश डालते हुए हैनरी वैन डायक ने कहा है कि– "शिक्षक वह है जो सुप्त आत्माओ की तन्द्रा भंग करता है (सोने से जगाता है), अकर्मण्यो व आलसियों को चेताता है, और उत्सुकों को और अधिक उत्साहित करता है और जो चल रहे हैं, उनकी गति को और तेज करता है।" इससे भी बढ़कर शिक्षक वह है जो अपने मस्तिष्क के सर्वोत्तम कोश एव अपनी स्वयं की खुशियों को सीखने की प्रक्रिया मे सम्प्रेषित करता है और विद्यार्थियो के साथ उन्हें बांटता है। वह ऐसे अनेक दीप जलाता है जो आने वाले वर्षो में अपना उजाला बिखेरकर उस शिक्षक की खुशियों को वापस लौटाने, खुशियो को कई गुना बढ़ाकर समाज में बांटने मे जुट जाते है।

वर्तमान में प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव से शैक्षिक क्षेत्र भी अछूता नही है। शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक तकनीकी ने शिक्षण विधियो के रूप में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रखा है क्योकि शैक्षिक तकनीकी के विभिन्न माध्यमों से उच्च्य शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित कर शिक्षा की गुणवत्ता में सवर्धन किया जा रहा है। चूंकि शैक्षिक प्रक्रिया का प्रथम सोपान प्राथमिक शिक्षा है अतः प्राथमिक शिक्षा में भी गुणात्मक विकास करने के लिए प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग नितान्त आवश्यक है। यह एकमात्र ऐसा माध्यम है जिससे इस स्तर पर विविध शैक्षिक उपकरणो, शिक्षण प्रविधियो के प्रयोग द्वारा गुणवत्ता को बनाए रखा जा सकता है, साथ ही अरुचि को दूर कर शिक्षा को जन-जन तक पहुंचा सकता है। वर्तमान समय में शिक्षा प्रणाली इतनी जटिल हो गई है जिससे शिक्षक का उत्तरदायित्व तो बढ़ गया है किन्तु उसकी स्वतन्त्रता कम होती जा रही है। शिक्षक को एक ही पाठ्य-वस्तु प्रतिवर्ष पढ़ानी पड़ती है यहां तक कि एक पाठ्य-वस्तु को कई बार कक्षा के विभिन्न खंडों में पढ़ाना होता है। यह व्यवस्था शिक्षा मे उदासीनता तथा अरुचि की प्रवृत्ति उत्पन्न करती है जब कि प्राथमिक स्तर पर बालक का मानसिक विकास भी तीव्र गति से होता है जिसके कारण वह अपने आसपास के वातावरण, विद्यालय मे सिखायी जाने वाली नवीन ज्ञान सम्बन्धी बातों को अपने व्यवहार मे लाने के लिए उत्प्रेरित रहता है। उनको सहज और सरल बनाने के लिए आज अध्यापक के पास ऐसे विभिन्न प्रकार के साधन उपलब्ध हैं जो पहले कभी नहीं थे। परिणामतः अतीत मे कोशिशों के बावजूद कक्षा का वातावरण इतना सजीव व प्रभावशाली नहीं बन पाता था जितना कि आज है। इन सभी क्रियाकलापो के लिए शैक्षिक तकनीकी को माध्यम बनाया जाना आवश्यक है क्योकि शैक्षिक तकनीकी ऐसी प्रविधि का विज्ञान है जिसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यो को अधिकतम

स्तर तक प्राप्त किया जा सकता है। इसका क्षेत्र उद्देश्यो को व्यवहारिक रूप मे परिभाषित करने मे भी सहायता करता है तथा इसके आधार पर ही शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्य की अधिकतम प्राप्ति के लिए विभिन्न व्यूह-रचनाओं का निर्धारण तथा विकास किया जा सकता है। आज के वैज्ञानिक युग में ज्ञान का विस्फोट तीव्र गति से होने से अधिगम की जटिल परिस्थितियों को शैक्षिक तकनीक के सॉफ्टवेयर व हार्डवेयर के प्रयोग द्वारा प्रभावशाली व सरलीकृत रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। शैक्षिक तकनीकी द्वारा सीखने मे एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियां कार्य करती है जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा कठिन से कठिन भावो को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है तथा इसके उपयोग से पाठ मे रोचकता भी आ जाती है।

शैक्षिक तकनीकी के अन्तर्गत प्राथमिक स्तर पर चलचित्र, समाचार सम्बन्धी फिल्म तथा टेलीविजन, रेडियो, ग्रामोफोन तथा लिग्बाफोन, मूर्त पदार्थ, नमूने, चित्र, मानचित्र, रेखाचित्र तथा खाके, ग्राफ चार्ट, बुलेटिन बोर्ड, फ्लेनल बोर्ड संग्रहालय, जादू की लालटेन, चित्र विस्तारक यत्र, स्लाइडे, फिल्म पट्टियां तथा चित्र दर्शक, मूक चित्र, क्लोज सर्किट तथा कम्प्यूटर जैसे शैक्षिक साधनो के प्रयोग से विषय को तो ग्राह्य व अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है। आज ये सभी ससाधन शहरी व ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक शिक्षा के लिए उपलब्ध नहीं हो रहे है। इसके विकल्प के लिए वहा का अध्यापक स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के द्वारा भी प्राथमिक शिक्षा को सहज और सरल बना सकता है। जैसे– शिल्प कला निर्मित कठपुतलियों के माध्यम से मानव की सामाजिक परिवेश के बारे मे जानकारी तथा मानव सम्बन्धों के विकास और विविध परम्पराओं आदि को कहानी के माध्यम से स्पष्ट कराना, बगीचे मे उपलब्ध पेड-पौधो, फूलो के द्वारा रगो एव गिनती का ज्ञान कराना जैसे एक रंग के फूलों के जोड़े बनाइए या उन्हे उस विशेष वस्तु या सामान की विशेषता बताकर पुनः पूछना आदि क्रियाकलाप करके उससे सम्बन्धित विविध जानकारिया सरलतम व रोचक रूप में प्रदान की जा सकती हैं।

मिट्टी से निर्मित फलों और अन्य वस्तुओं की आकृति बनाकर उनके बारे मे विस्तारपूर्वक वर्णन करना और उस विस्तार पर आधारित अन्य प्रकार से क्रियाकलाप करना, गत्ते या कागज से निर्मित विभिन्न प्रकार की आकृतियों और विभिन्न प्रकार के चार्ट और मॉडल आदि के द्वारा बच्चो को जटिल से जटिल ज्ञान भी बहुत आसानी से इनके प्रदर्शन से विस्तारपूर्वक समझाया जा सकता है जैसे कागज की नाव बनाकर नाव की आकृति और उसके उपयोग के बारे में समझाना, बोतलो और डिब्बो के ढक्कन, कपडे के टुकडे, चूडी के टुकडे, छोटे-छोटे पत्थर, पत्तिया और इस तरह की बहुत सी चीजें इकट्ठी की जा सकती है। नैतिक मूल्यो पर आधारित कहानी तैयार करते हैं और उस कहानी के माध्यम से शैक्षिक प्रक्रिया के साथ नैतिक मूल्यों का ज्ञान बच्चों को आसानी से कराया जा सकता है। इस प्रकार से बच्चो को प्रदान किए जाने वाले नवीन ज्ञान को सहज और सरल बनाया जा सकता है। शिक्षा प्रदान करने के ये सभी साधन भी शैक्षिक तकनीकी का ही एक अंग है।

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि बदलते हुए परिवेश मे प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की प्रगति और बच्चो के भविष्य को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक स्तर पर प्रत्येक अध्यापक द्वारा शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। ऐसा करने से ही देश के भावी कर्णधारों को भावी राष्ट्र की आवश्यकताओं व अपेक्षाओ के अनुरूप तैयार किया जा सकता है तभी देश को सच्चे अर्थो में प्रगति व समृद्धि के शिखर पर पहुचाना सम्भव हो सकेगा। ❑❑

प्राध्यापक
बिजली कॉटन मिल्स, स्टाफ कालोनी
मैण्डू रोड, हाथरस

जनसंख्या वृद्धि, विकास और महिला साक्षरता

□ सुभाष चन्द्र अग्रवाल
□ धर्मेन्द्र कुमार

किसी भी देश को विकसित करने, खुशहाल बनाने एव भविष्य निर्धारण मे जनसंख्या का महत्वपूर्ण योगदान होता है। राष्ट्र की वास्तविक शक्ति वहा उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनो के साथ-साथ वहां की कर्मठ, शिक्षित, जझारू, क्रियाशील जनसंख्या होती है। प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग और देश का आर्थिक, सामाजिक, व्यापारिक विकास वहां पाई जाने वाली जनसंख्या के समान वितरण, घनत्व, शिक्षा एव उनकी गुणात्मक विशेषताओ पर निर्भर करता है। देश का विकास इससे भी आंका जाता है कि वहां पाए जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग किस स्तर पर किस प्रकार व कितनी जनसख्या कर रही है और वहा महिलाओं की शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य एवं पोषण की स्थिति कैसी है। महिलाए जो किसी देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, हमारी आबादी का आधा हिस्सा ही नही वरन सामाजिक परिवर्तन की धुरी भी है। यदि इन्हे विकास की प्रक्रिया में शामिल नही किया जाता तो देश का समग्र विकास नहीं हो सकता। देश की विस्फोटक गति से बढ़ती आबादी से देश मे उपलब्ध संसाधनों और जनसख्या मे असंतुलन के कारण देश के विकास में बाधा उत्पन्न हो रही है। जनसंख्या नियन्त्रण में महिलाओ की अहम् भूमिका को देखते हुए, इन्हे शिक्षा प्रसार के माध्यम से शिक्षित कर प्रोत्साहन देना जरूरी है क्योंकि शिक्षा ही महिलाओ को नई सोच, नया आयाम, नई दिशा दे सकती है। और वे जनसख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने मे सहयोग प्रदान कर देश के सम्पूर्ण विकास में सहायक हो सकती है।

जनसंख्या नियन्त्रण का सीधा सम्बन्ध साक्षरता से है, विशेष रूप से महिला साक्षरता से क्योंकि महिलाओं का उनके सम्पर्क में आने वालों पर अधिक भावात्मक एवं संवेदनात्मक प्रभाव पड़ता है। शिक्षित महिलाएं अपने विचार तर्क पूर्ण ढंग से रख सकती हैं। वे अपने कैरियर के प्रति जागरूक होती हैं। शिक्षा के प्रति अपने सजग नजरिये के कारण वे अपने सपनों को पूरा करने के उपरान्त ही बच्चों के बारे में सोचती हैं। इसके लिए वे जनसंख्या नियन्त्रण सम्बन्धी साधनों, कार्यक्रमों को अपनाती हैं तथा दूसरों को भी उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित करती हैं और इस प्रकार देश के विकास में अपना रचनात्मक सहयोग देती हैं।

जनसंख्या– कल और आज– पृथ्वी पर मनुष्य के जन्म के साथ ही जनसख्या वृद्धि का सिलसिला निरन्तर चलता रहा है। सभ्यता के आरम्भिक काल मे जनसंख्या वृद्धि बहुत धीमी थी। डब्लू. एच. मोरलैण्ड के ऑकलन के अनुसार सन् 1600 ई मे देश की जनसख्या मात्र 12.5 करोड़ थी। सन् 1881 में देश की जनसंख्या 22.7 करोड़ थी जो सन् 1891 ई. मे 23.6 करोड़ हो गयी। सन् 1891 ई. से 1921 ई. तक के 30 वर्षो में जनसंख्या लगभग स्थिर सी रही और सन् 1921 ई. में जनसख्या 25.1 करोड़ के स्तर तक पहुची अर्थात् उसमें मात्र 0.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष की ही वृद्धि हुई तथा सन् 1951 ई. में देश की कुल जनसंख्या 36.1 करोड़ हो गई अर्थात् उसमे 11 करोड़ या 1.22 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सन् 1951 ई. से सन् 1991 ई. तक देश की जनसंख्या में सर्वाधिक 48 3 करोड़ की वृद्धि हुई और जनसख्या 36.1 करोड़ से बढ़ कर 84.4 करोड़ हो गई।

जनसंख्या मे यह वृद्धि 2.13 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से थी जिसका मुख्य कारण मृत्युदर में कमी व निरक्षरता थी। मृत्युदर 27 4 से घटकर 10 2 प्रति हजार हो गयी थी तथा साक्षरता मात्र 52.2 प्रतिशत थी। एक सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1997 ई. में देश की जनसख्या 96. 09 करोड़ थी जिसमे 1 8 करोड प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हो रही थी। भारत की जनगणना 2001 के अनुमान के अनुसार इस समय देश की जनसख्या लगभग 103 करोड हो गयी है। अत. देश की जनसख्या में विस्फोटक वृद्धि हो रही है जिसमे 48.5 प्रतिशत महिलाए है।

जनसंख्या नियन्त्रण और साक्षरता— शिक्षा मनुष्य मे समस्याओ को समझने, विश्लेषण करने और उनका सामना करने की शक्ति उत्पन्न करती है। जनसख्या वृद्धि जैसी समस्या से छुटकारा पाने के लिए साक्षरता का प्रचार-प्रसार जरूरी है। विशेषकर महिला साक्षरता का, क्योंकि महिलाओ की जनसख्या नियन्त्रण कार्यक्रमो की प्रभाविता में महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा बच्चो की देखभाल, पालन-पोषण का दायित्व उन्ही के कन्धो पर होता है। हमारा देश गांवो का देश है और इसकी लगभग दो-तिहाई जनसंख्या आज भी गावो में निवास करती है। यहां जनसख्या वृद्धि की दर भी सबसे अधिक है। हमारे देश की जनसख्या विश्व की जनसख्या की लगभग 16 प्रतिशत है परन्तु देश में कृषि योग्य भूमि 2 4 प्रतिशत व प्राकृतिक संसाधन मात्र 1 प्रतिशत हैं। गांवों की अधिकतर जनसंख्या इन्हीं पर निर्भर है। इस स्थिति में जनसंख्या का सीमित होना अति आवश्यक है जिसके लिए शिक्षा ही एक अनिवार्य आवश्यकता है। भारत की जनगणना 2001 के अनुसार देश की कुल साक्षरता 65.38 प्रतिशत है। जिसमे कुल पुरुष आबादी का लगभग तीन चौथाई और महिला आबादी का आधा हिस्सा ही साक्षर है। आंकड़ो के अनुसार 75.85 प्रतिशत पुरुष साक्षर है वहीं 54 16 प्रतिशत महिलाए साक्षर है। ग्रामीण महिला साक्षरता जनगणना 1981 के अनुसार 21.7 प्रतिशत थी वही जनगणा 1991 के अनुसार मात्र 30.6 प्रतिशत रही। इस समय ग्रामीण महिला साक्षरता में हुआ सुधार नगण्य ही है। निरक्षरता के कारण इन महिलाओं द्वारा, साक्षर महिलाओं की तुलना में रीति-रिवाज, अधविश्वास, परम्पराओं इत्यादि को बिना तर्क पूर्ण विचार किए अपनाया जा रहा है एव अन्य गर्भ निरोधकों को अभी भी धर्म विरोधी तथा संतति नियन्त्रण को ईश्वर की देन का अनादर माना जाता है। लडके की चाह को अभी भी हमारे समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। चार बडे राज्यों बिहार, उ प्र , म.प्र , राजस्थान में जहा देश की लगभग 55 प्रतिशत आबादी निवास करती है। वहां 1991 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता क्रमश· 23 प्रतिशत, 21 प्रतिशत, 28 85 प्रतिशत व 20 8 प्रतिशत मात्र थी जो 2001 की जनगणा के अनुसार क्रमशः 33 57, 42.34, 50.28 एवं 44.34 प्रतिशत हो गई। यहा जनसख्या वृद्धि भी अन्य राज्यों की तुलना मे अधिक है। इन राज्यो मे पिछले दशक में जनसंख्या वृद्धि क्रमशः 28.43, 25 80, 24.34 व 28.33 प्रतिशत रही। इन प्रदेशों में अशिक्षा के कारण 20 वर्ष से कम उम्र मे विवाह करने वाली महिलाएं 60 प्रतिशत के लगभग हैं। देश में 18 वर्ष तक की लगभग 50 प्रतिशत लड़किया जल्दी ही गर्भवती हो जाती हैं। अशिक्षा के कारण देश की लगभग 51 प्रतिशत महिलाए किसी भी गर्भ निरोधक का प्रयोग नही करती हैं। यहां तक कि पाच में से दो महिलाएं निरोध या अन्य किसी गर्भ निरोधक का नाम तक नहीं जानती। बढ़ती जनसंख्या के कारण इस समय देश में 20 करोड़ से भी अधिक शिक्षित बेरोजगार हैं। केवल 25 प्रतिशत लोगों को ही पोषक आहार मिल पा रहा है। देश को आज प्रतिवर्ष 1 लाख 80 हजार प्राथमिक विद्यालयों की जरूरत है जो देश के लिए सीमित ससाधनों के होते असभव कार्य है। विश्व बैंक द्वारा साक्षरता अभियान मे शामिल उन्नाव जिले के विभिन्न गावो की 100 महिलाओं के साक्षात्कार में लेखक ने पाया कि 56 महिलाए अशिक्षित या बहुत कम पढ़ी-लिखी थी, 28 कक्षा आठ पास, 5 हाईस्कूल, 6 इण्टर व 5 स्नातक थीं जिनमे मात्र 4 महिलाए अनौपचारिक केन्द्र में कार्यरत थी और दो महिलाए स्नातक के उपरान्त बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्राप्त करके शिक्षण कार्य कर रही थीं। इनमें से स्नातक व इण्टर तक पढी महिलाएं ही परिवार नियोजन

कार्यक्रमो से परिचित थी और इनको अपना रही थीं शेष या तो उपायो को जानती ही नही थी और अगर थोड़ा बहुत जानकारी थी तो अशिक्षा के कारण उनको अपनाने में एक भय सा व्याप्त था।

जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से प्रजनन योग्य उम्र (15-49) की महिलाओ की संख्या पर निर्भर करती है। देश मे शिक्षा के अभाव में पहले अपने विकास व कैरियर को ध्यान न देने से अधिकांश महिलाओं का विवाह कम उम्र से ही हो जाता है जिससे उनके प्रजनन काल का अधिकतम प्रयोग होता है। कम उम्र में विवाह होने के कारण एक भारतीय नारी अपने जीवन काल मे औसतन 4 बच्चो की मा बनती है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण 1992-93 की रिपोर्ट (जिसे इण्टरनेशलल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज, बम्बई ने जारी किया है) के अनुसार 6 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओं मे 57 प्रतिशत अशिक्षित है और 9 प्रतिशत ही ऐसी थी जिन्हे माध्यमिक तक की शिक्षा प्राप्त थी, 15-19 वर्ष की ग्रामीण विवाहित महिलाएं 46 प्रतिशत्त थी और 72 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएं गर्भ धारण के दौरान अशिक्षित थी। जनसख्या नियन्त्रण पर स्त्री शिक्षा का प्रभावकारी असर पड़ता है। शिक्षा न केवल विवाह की उम्र बढ़ाने मे सहायक है अपितु प्रजनन दर को भी नीचे लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। महाराष्ट्र के पी. डी भवलकर का अध्ययन बताता है कि 4 वर्ष की लगातार शिक्षा 6-11 वर्ष की लड़कियों के मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव डालती हैं। इन्हीं के एक अन्य अध्ययन मे राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के अन्तर्गत लाए गए जिलो में जन्मदर में 1991-95 के बीच प्रतिवर्ष 1.2 अक की कमी आई जवकि जहां साक्षरता मिशन नही था वहां मात्र 0.1 अंक का ही ह्रास पाया गया। अत बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ यौन शिक्षा तथा जनसंख्या नियन्त्रण के प्रभावकारी कार्यक्रमों की जानकारी प्रदान करने से भविष्य में उल्लेखनीय सहयोग प्राप्त होता है।

देश के कुछ प्रदेशो मे जैसे केरल, तमिलनाडु, मिजोरम में महिला साक्षरता अधिक है जिससे वहा जनसंख्या वृद्धि कम है। इन प्रदेशो में जनगणना 2001 के अनुसार साक्षरता दर क्रमश· 90.92 प्रतिशत, 73. 46 प्रतिशत व 88.49 प्रतिशत है जिसमे महिला साक्षरता क्रमश5 87 86, 64.55 व 86.13 प्रतिशत है। जिससे जनसंख्या वृद्धि मे काफी कमी आई है। 1991-2001 के दशक में जनसख्या वृद्धि क्रमश· 9.42, 11.19 व 29.18 प्रतिशत रही जो 81-91 के दशक से काफी कम है। उ.प्र. मे भी साक्षरता बढ़ने से महिलाओं मे जनसख्या-नियंत्रण के साधन अपनाने की प्रवृत्ति बढी है। जनगणना 2001 के अनुसार उ. प्र में महिला साक्षरता 42 98 प्रतिशत है। जो 1991 मे 24.37 प्रतिशत थी। परन्तु साक्षरता हर लक्ष्य से काफी कम होने के कारण वृद्धि दर 1991-2001 मे 25.80 प्रतिशत रही जो 81-91 के दशक मे 25.55 प्रतिशत थी। अत· जनसख्या नियन्त्रण का सीधा सम्बन्ध साक्षरता से है और जो राज्य साक्षरता मे आगे है वे जनसख्या नियन्त्रण के काय्रक्रमो में भी कही अधिक सफल है।

चीन मे शिक्षा के द्वारा महिलाओ को इतना सचेत किया गया है कि जनसंख्या नियन्त्रण से सम्बन्धित कार्यक्रमों, नियमो का पालन करने मे सक्षम हुई और सम्बन्धित उपायो को सफलतापूर्वक अपनाकर उन्होने जनसख्या नियन्त्रण मे सहयोग प्रदान किया। पश्चिमी देशों मे भी महिलाओं की शिक्षा व सामाजिक भागीदारी से ही परिवार नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रमो में सफलता प्राप्त हुई। अत शिक्षित महिलाए ही जनसंख्या नियन्त्रण सम्बन्धी जरूरतो को समझ सकती है और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहती है। शिक्षित युवती परिपक्व आयु में विवाह करना पसन्द करती है। उस समय तक वह पारिवारिक दायित्वों तथा जनसंख्या शिक्षा में पारंगत हो जाती है। शिक्षित महिलाए स्वच्छता, स्वास्थ्य, पोषण तथा प्रसव से पूर्व व पश्चात् की सावधानियो के प्रति पूर्ण रूप से सजग होती हैं। उदाहरण के लिए सन् 1995 में देश में अशिक्षित माताआ का बच्चो को प्रतिरोधी टीके लगवाने का प्रतिशत 17 था वहीं माध्यमिक तक की शिक्षित महिलाओं का यह प्रतिशत 50 के लगभग था। महिला साक्षरता के सम्बन्ध में गाधी जी ने कहा है कि "एक नारी को शिक्षित करने का मतलब सम्पूर्ण परिवार को शिक्षित करना है।" महिलाएं अत्यधिक

संवेदनशील व भावनात्मक भी होती हैं जिससे परिवार व बच्चो पर इनका प्रभाव भी अधिक पड़ता है। शिक्षित महिलाओं का दृष्टिकोण व्यापक होता है। उनकी दृष्टि में पारिवारिक एवं निजी सोच महत्वपूर्ण न होकर राष्ट्रीय हित प्रबल होता है। अत. वे परिवार को सीमित रखकर राष्ट्रीय हित से जुड़ी होती है।

जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने का महत्वपूर्ण साधन शिक्षा है। महिलाएं समाज की प्रेरणाश्रोत रही हैं। जनसंख्या नियन्त्रण में इनकी अहम् भूमिका को देखते हुए आवश्यक है इनकी दशा, शिक्षा मे सुधार की क्योंकि शिक्षित होकर महिलाए छोटे परिवार का महत्व समझेंगी, उनमें परिवार नियोजन कार्यक्रमों, साधनों के प्रति विश्वास पैदा होगा और इसके लाभों को स्वयं समझेगी व दूसरों को भी इसकी जानकारी दे सकेगी। वे लिग भेदभाव से दूर, परिवार, समाज, देश के विकास व कैरियर के प्रति जागरूक होगी। नारी के विषय में स्वामी विवेकानन्द जी का कहना है के "जब तक नारी की दशा को सुधारा नहीं जा सकता तब तक समाज, देश, विश्व का कल्याण सम्भव नही।" कम शिक्षित व निरक्षर होने के कारण जहां उन्हे परिवार, समाज व देश मे कम महत्व दिया जाता है वही शिक्षित होकर वे अपने पक्ष को प्रभावपूर्ण ढग से सामाजिक दृष्टि पटल पर रख सकेंगी। स्त्री रोग विशेषज्ञ डा किरण फोइल्डो के अध्ययन से पता चलता है कि शिक्षित होकर कैरियर, कामयाबी और अपनी मर्जी से जीने की चाह मे विवाह देर से करने व संतान न चाहने वाले दम्पत्तियों की सख्या बढ़ती जा रही है। मौजूदा पीढ़ी 80 के दशक की पीढ़ी के इकलौती संतान के फैसले से एक कदम आगे बढ रही है। वह तीस-चालीस साल तक अपने कैरियर के प्रति जागरूक रहती है और उसके बाद विवाह व संतान चाहती है जिससे विवाह की उम्र बढ़ती है। जो महिलाए शिक्षा और सूचनाओ के प्रति सजग नजरिये के कारण अपनी जिन्दगी के सपनों को पूरा करने का अवसर तलाश रही हैं वे बच्चे पैदा कर बच्चों के पालन-पोषण के झमेले में समय से पहले नहीं पडता चाहती है। अधिकांश शिक्षित स्त्रियां कामकाज के कार्य मे व्यस्तता के कारण अधिक बच्चो के पालन-पोषण में स्वयं को असमर्थ पाती हैं। अतः जनसख्या नियन्त्रण सम्बन्धी साधनो, विधियों, कार्यक्रमो को प्रभावी ढग से अपनाकर दूसरो को इससे अवगत कराने का प्रयास करेगी जिससे जनसख्या नियन्त्रण में सहयोग प्राप्त होगा। सीमित जनसंख्या होने से परिवार, समाज को समुचित देखभाल, दिशा, शिक्षा, सुरक्षा प्राप्त हो सकेगी और देश का सम्पूर्ण विकास होगा। ❑❑

(1) प्रवाचक, शिक्षा विभाग
छत्रपति शाहू जी महाराज वि.वि., कानपुर
(2) सहायक अध्यापक
प्राथमिक विद्यालय
76/4 जूही लाल कालोनी, कानपुर

विद्यालय प्रवेशोत्सव
प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का सार्थक कदम

❑ तिलक राज पंकज

प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का उद्देश्य

6 से 14 आयु-वर्ग के सभी बालक-बालिकाओ को प्राथमिक शिक्षा सुलभ कराना (ऐसी व्यवस्था करना कि इस आयु का प्रत्येक बच्चा प्राथमिक शिक्षा से जुड़ सके), नामांकित बच्चो का विद्यालय मे ठहराव सुनिश्चित करना (ताकि वे न्यूनतम कक्षा 5 तक की पढ़ाई पूरी कर सकें) तथा बच्चों को संतोषजनक स्तर की शिक्षा उपलब्ध कराना है अर्थात् नामाकन का सार्वजनीकरण, ठहराव का सार्वजनीकरण व गुणवत्ता आधारित शिक्षा का सार्वजनीकरण इसके अंतर्गत बालिकाओं एवं वंचित वर्ग के बच्चों की शिक्षा हेतु विशेष प्रयास करने पर बल दिया गया है।

प्रवेशोत्सव

बालक-बालिकाओं को विद्यालय की तरफ आकर्षित करने, शैक्षिक माहौल तैयार करने, ग्राम समुदाय एव अभिभावको को उनके दायित्वों का बोध कराने, ग्राम समुदाय व विद्यालय परिवार में समन्वयन स्थापित करने तथा शाला परिवार द्वारा ग्राम समुदाय को उनके बच्चों का उज्जवल भविष्य बनाने का आश्वासन देने एवं ग्राम समुदाय शिक्षको का सम्मान करने हेतु शाला परिवार, ग्राम समुदाय, अभिभावको व बच्चो के साथ मिलकर, विद्यालय मे नव प्रवेशी बच्चों को नामांकित करने व पूर्व नामांकित बच्चों को उत्साहित करने के लिए एक विशेष दिन तय कर, उस दिन को उत्सव के रूप में मनाना ही प्रवेशोत्सव है।

राजस्थान में लगभग गत् 5 वर्षो से और संभवतः देश के अन्य प्रदेशो के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों मे प्रवेशोत्सव मनाए जा रहे हैं। इनका विवरण यहां प्रस्तुत है।

शाला परिवार, ग्राम समुदाय, अभिभावकों एवं बच्चों के साथ मिलकर विद्यालय में नव प्रवेशी बच्चों को नामांकित करने से पूर्व नामांकित बच्चों को उत्साहित करने के लिए शिक्षा सत्र के प्रारंभ में एक विशेष दिन को उत्सव के रूप में मनाना ही "प्रवेशोत्सव" है। यह शत-प्रतिशत नामांकन तथा नामांकित बच्चों के ठहराव में महत्वपूर्ण कदम साबित हो रहा है।

शिक्षा विभाग की ओर से की जाने वाली तैयारियां—प्रवेशोत्सव की प्रभावशीलता बढ़ाने एव अपेक्षित लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु सरकार के शिक्षा विभाग को सुनियोजित तैयारी की आवश्यकता है जैसे—

- ❑ सत्रारंभ से पूर्व प्रत्येक विद्यालय में न्यूनतम अथवा छात्र-छात्राओ की संख्यानुसार शिक्षको का पदस्थापन करना।
- ❑ प्रत्येक विद्यालय में न्यूनतम् भौतिक सुविधाएं जैसे— भवन (मरम्मत/अतिरिक्त कक्षाकक्ष), चारदीवारी, शौचालय, पीने का पानी, फर्नीचर आदि एवं शैक्षिक सुविधाएं— जैसे स्टेशनरी, श्यामपट्ट, चॉक, डस्टर, नक्शे, चार्ट, पुस्तकालय पुस्तके, आकस्मिक व्यय वजट, खेल सामग्री इत्यादि प्रदान करना।
- ❑ सत्रारंभ से पूर्व विद्यालयो हेतु पाठ्यपुस्तकों की उपलब्धता।
- ❑ सत्रारंभ से शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- ❑ प्रवेशोत्सव सम्बन्धित कार्य-योजना इत्यादि तैयार करना।
- ❑ प्रवेशोत्सव कार्यक्रम व उसकी उपलब्धियों के आकलन हेतु प्रभावी अनुश्रवण की कार्य-योजना बनाना इत्यादि।

संभवतः उक्त बिन्दुओं के आधार पर प्रवेशोत्सव की उपलब्धियो/वास्तविकताओं की परख की जाए, तो

हसूस होगा कि शिक्षा विभाग केवल औपचारिकताएं ी कर रहा है।

ाला परिवार की ओर से की जाने वाली तैयारियां– ाशोत्सव प्राथमिक शिक्षा विभाग का सार्वजनीकरण का क महत्वपूर्ण उपकरण है, तथा इसका क्रियान्वयन ग्राम र पर ही होता है। अत विद्यालय स्तर पर निम्नानुसार ारियां प्रवेशोत्सव को उद्देश्य परक बना सकती है–

- ☐ ग्राम शिक्षा समिति/शाला प्रबधन समिति के साथ बैठक ग्राम सभा का आयोजन कर उक्त समिति का चयन करना। इसमें जनप्रतिनिधि, अभिभावक, ग्राम सेवक, पटवारी, आगनवाड़ी कार्यकर्ता अनौपचारिक अनुदेशक, एवं अन्य सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को आवश्यक रूप से शामिल करना है।
- ☐ ग्राम स्तरीय समिति के सक्रिय सहयोग से विद्यालय में नव प्रवेश पाने, अनियमित व लगातार विद्यालय मे नही जा पा रहे तथा अन्य शिक्षा से वचित बच्चों की पहचान करना तथा उनको शिक्षा से जोड़ने हेतु कार्य-योजना तैयार करना।
- ☐ अन्य उपकरण जैसे– नक्शा-नजरी, गौश्वारा, ग्राम शिक्षा रजिस्टर व ठहराव रजिस्टर आदि तैयार करना।
- ☐ प्रवेशोत्सव की तारीख तय करना व व्यवस्थाए तय करना जैसे– विद्यालय साफ सफाई, नव प्रवेशी बच्चो का स्वागत, सांस्कृतिक/ अन्य गतिविधिया, शिक्षक सम्मान, वातावरण निर्माण की गतिविधियां आदि।
- ☐ शिक्षा से जोड़ने वाले बच्चो की सूची तैयार कर उनके अभिभावकों के साथ गहन सम्पर्क करना या अभिभावक बैठक करना।
- ☐ शाला कोष की स्थापना हेतु प्रयास करना–प्रतिघर से राशि (न्यूनतम) एकत्र करना।
- ☐ प्रवेशोत्सव मनाना।
- ☐ ग्राम स्तरीय समिति के साथ प्रवेशोत्सव के अनुश्रवण की कार्य-योजना तैयार करना जैसे– प्रतिमाह बैठक करना, बच्चो के ठहराव हेतु प्रयास, विद्यालय व अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का सहयोग, भौतिक संसाधन जुटाना आदि।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक विद्यालय को अपने गांव/ ढाणी के अनुसार योजना बद्ध तरीके से कार्य करने की जरूरत है। लोक जुम्बिश परियोजना द्वारा ही राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में अच्छे तरीके से प्रवेशोत्सव मनाए गए है।

नामांकन (आंकड़े एवं उपलब्धियां)– ग्राम शिक्षा समिति या शाला प्रबंधन समिति एवं शाला परिवार द्वारा नव प्रवेशी, पुनः प्रवेशी के रूप में पहचान / सर्वे किए गए बच्चों का नामाकंन करना। गत वर्ष असफल रहे, अनियमित या लगातार अनुपस्थित, परीक्षा से वंचित, पाठ्यक्रम मे पिछडने वाले तथा अपेक्षाकृत कमजोर बच्चों को विद्यालय से जोडने का विशेष प्रयास करना तथा उनके विद्यालय में ठहराव हेतु कार्य-योजना तैयार करना व समिति तथा अभिभावको की जिम्मेदारिया तय करना। किसी भी स्थिति मे अनावश्यक नामांकन को बढ़ावा नहीं देने की मानसिकता बनानी चाहिए।

अनुश्रवण–शिक्षा विभाग एवं शिक्षा अधिकारियो द्वारा प्रवेशोत्सव का अनुश्रवण औपचारिक रूप से किया जाता है तथा परम्परागत तरीके से आंकड़े प्राप्त कर उच्च अधिकारियों को प्रेषित कर दिए जाते हैं। सर्वे रजिस्टर/ ग्राम शिक्षा रजिस्टर, नामाकन, ठहराव पंजिका, शाला समिति की बैठक पंजिका, समिति द्वारा ठहराव हेतु किए जा रहे ठोस प्रयास, नक्शा-नजरी इत्यादि प्रेवेशोत्सव सब के महत्वपूर्ण सहायक उपकरणों की ओर शिक्षा अधिकारियों का औपचारिक या उपेक्षित रुख रहता है।

इस कारण से विद्यालयों मे वास्तविक नामाकन (भौतिक उपस्थिति) तथा पंजिका में नामांकित बच्चों में बहुत बडा अन्तर होना, दोहरा नामांकन होना तथा अनावश्यक नामाकन होना आम बात हो गई है। हालाकि विभाग एवं विद्यालय को इसकी पूर्ण जांनकारी होती है, परन्तु नामाकन कम नहीं होने, अनियमित बच्चों के ठहराव हेतु प्रयासों की कमी आदि कारणों से इस दिशा में यथा संभव सुधार हेतु उदासीनता नजर आती है।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार– प्रत्येक बालक-बालिकाओं
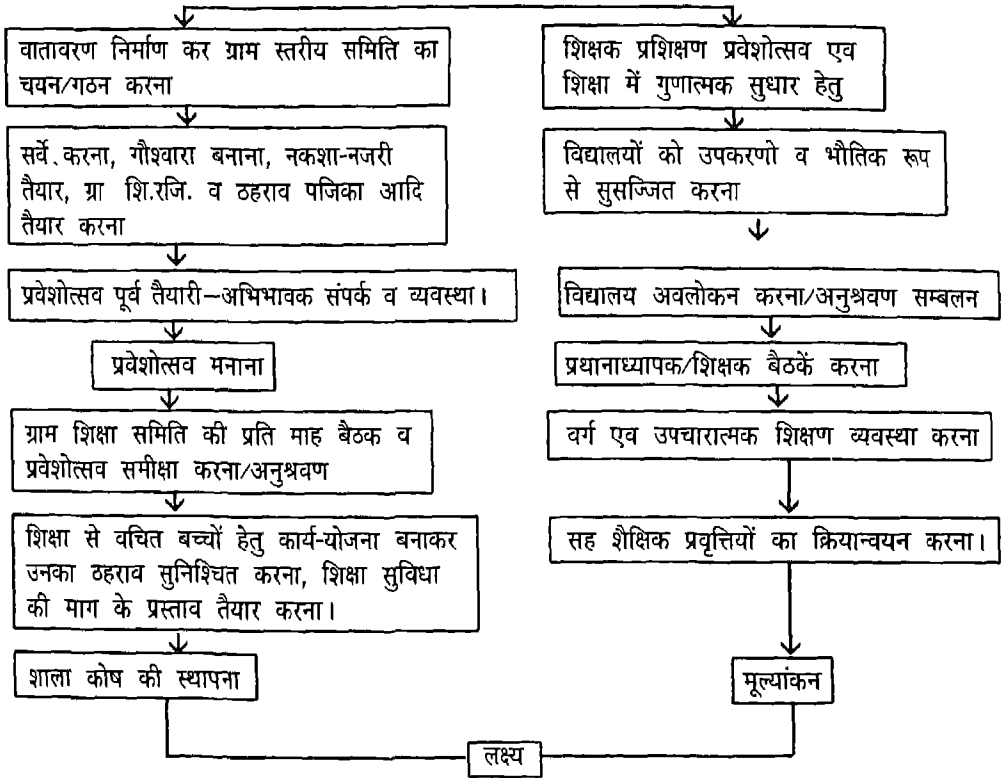
जो एक कक्षा से क्रमोन्नत होकर अगली उच्च कक्षा में जाता है, उसे पूर्व की कक्षा के न्यूनतम अधिगत स्तरों में पारंगत होना आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक शिक्षक को सत्रारभ में शैक्षिक कार्य-योजना तैयार कर लेनी चाहिए। सह शैक्षिक प्रवृत्तियों तथा प्रार्थना स्थलीय कार्यक्रम खेलकूद, शिक्षण सहायक अधिगम सामग्री का निर्माण एवं संकलन, शनिवारिम कार्यक्रम, चित्रकला, कविता/गीत, सांस्कृतिक गतिविधियों पर भी मंथन एवं क्रियान्वयन योजना तैयार कर लेनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक शिक्षक को प्रत्येक बच्चे के लिए पारंगति स्तर की शिक्षा हेतु तैयारी करनी आवश्यक है।

सुझाव— पाठ योजना— कक्षावार, विषयवार, दैनिक/साप्ताहिक/पाक्षिक/ मासिक पाठ-योजना तैयार करना।

- ☐ कक्षा शिक्षण पूर्व तैयारी करना।
- ☐ कक्षा, विषय, स्तरानुसार शिक्षण विधा तय करना।
- ☐ शिक्षण सहायक अधिगम सामग्री प्रयोग करना।
- ☐ मूल्यांकन— क्यों/कैसे विधाए तय करना।
- ☐ वर्ग शिक्षण व उपचारात्मक शिक्षण कराना।
- ☐ बच्चों के प्रति संवेदनाशीलता— उन्हे समझाना।

विविध— अततः यदि भारत सरकार व प्रदेश सरकारें सचमुच प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण हेतु गंभीर है तो उन्हें वास्तविकताओं के करीब जाना होगा। आंकड़ों तथा उपलब्धियो के मध्य बढ़ती खाई को पाटना होगा। सरकार, शिक्षा प्रशासन शिक्षक समुदाय व ग्राम समुदाय को नैतिक जिम्मेदारी लेनी होगी। औपचारिकताओ के स्थान पर वास्तविकता को, लाना होगा तथा अथक प्रयास

करने होंगे।

सुझाव– ग्राम स्तरीय शिक्षा समिति मे अन्य सभी ग्राम स्तरीय विभागों की भागीदारी सुनिश्चित करना व इसको वित्तीय तथा प्रशासनिक अधिकार प्रदान किए जाने अति आवश्यक हैं।

- शिक्षकों को गैर-शैक्षिक कार्यो में प्रतिनियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। इससे शिक्षक की विद्यालय के प्रति संलग्नता व जवाबदेही कम हो रही है। तथा समाज मे शिक्षक की प्रतिष्ठा, सम्मान व विश्वासनीयता मे निरन्तर गिरावट आ रही है।
- सदर्भ सस्थाओं, शिक्षा अधिकारियों, विषय विशेषज्ञो द्वारा प्रभावी अवलोकन करना व सम्बल प्रदान करना।
- जिला व खण्ड शिक्षा अधिकारियो को तथा प्रधान अध्यापको को वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकार प्रदान करना।
- शिक्षा में राजनैतिक हस्तक्षेप कम करना।
- शिक्षा बजट में वृद्धि करना।

शिक्षक की उपलब्धियों, कार्यों, कार्यप्रणाली, प्रशासन व ग्राम समुदाय के समन्वय, नवाचारों के आधार पर उनको प्रोत्साहन जैसे– वेतन वृद्धि, प्रशंसा-पत्र, पदोन्नति इत्यादि प्रदान करना

शिक्षा जीवन का आधार है। शिक्षा के क्षेत्र में भारत अतीत में विश्व को अपनी गुरुत्वता का आभास करा चुका है। पुनः जरूरत है सार्थक प्रयासों की। पुनः जरूरत है वनाचारों की; पुनः जरूरत है एक जन आदोलन की। ❑❑

अवर उपजिला शिक्षा अधिकारी
आबू रोड, सिरोही, राज.

सहिष्णुता शिक्षण : आवश्यकता एवं महत्ता

❒ बी. आर. परमार

वर्तमान समय मे संसार के सभी देशो में शिक्षा का उद्देश्य आकाश-पाताल भेदना हो गया है। ज्ञान सप्रेक्षण व पाठ्य-वस्तु शिक्षण का पंजीकरण इतने बडे पैमाने पर हो रहा है कि वहां पर सहिष्णुता शिक्षण की बात करना उपयुक्त नहीं समझा जाता है। वर्तमान शिक्षण व्यवस्था में शिक्षक भी सहिष्णु भाव जागृति की शिक्षा नही दे पाते है। अभिभावक भी अपने बच्चो को उच्च अधिकारी, बनाने की लालसा मे मानवीय गुणों के विकास की ओर ध्यान नही देते हैं। वहीं दूसरी ओर पाठ्यक्रम में भी मानवीय मूल्यों के शिक्षण का समायोजन नही है। ज्ञानार्जन प्रक्रिया में सहिष्णुता गुण की स्थापना तथा प्रगाढता के लिए कोई विधिवत प्रयास नहीं हो रहा है। शैक्षणिक मच अपनी-अपनी स्वार्थ सिद्धि मे व्यस्त है। पाठ्यक्रम निर्माण करने वाली संस्थाएं पाठ्य-वस्तु का चयन या तो राजनीति से प्रेरित होकर करती है अथवा उनकी सोच मे भौतिक विकास के अलावा मानवीय विकास का पुट होता ही नहीं है।

फलत. सहिष्णुता, सहनशीलता, सौहार्द्रता, भ्रातत्वभाव व सर्वधर्म समभाव जैसे मानवीय गुणों के अभाव मे अनर्थ व अनाचार बढ़ रहा है। व्यक्ति के अन्दर अहंकार का भाव इतना अधिक बढ़ता जा रहा है की वह किसी भी हद तक जाकर बिना प्रयोजन के किसी का भी अनर्थ करने मे संकोच नहीं करता है। "मानव अपने श्रेष्ठ आदर्शो से भटक कर पतित हो गया है"। वर्तमान में सामाजिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक समस्याओं की उत्पत्ति के पीछे मानवीय गुणो का ह्रास है। अमानवीय सोच की वृद्धि के चलते मानव अधिकारों का हनन व उल्लंघन हो रहा है। समाजोपयोगी योजनाए नाकारा सिद्ध हो रही हैं। वैज्ञानिक व तकनीकी उन्नति की दौड़ में मानव ने मानवता की जड़े खोद डाली हैं।

विकास की इस वर्तमान दौड़ में व्यक्तियों में सहनशीलता इतनी कम होती जा रही है कि छोटी-सी बात पर भी लोग मरने-मारने पर आमादा हो जाते हैं। सहिष्णुता, सहनशीलता सौहार्द्रता, भ्रातृत्वभाव तथा सर्वधर्म समभाव जैसे मानवीय गुणों के अभाव में अनर्थ व अनाचार बढ़ रहा हे। संदर्भित लेख में सहिष्णुता शिक्षण द्वारा प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से विद्यार्थियों में ऐसी क्षमता, योग्यता तथा मानसिकता का विकास करना है जिससे वे जीवन पर्यन्त संयम व धैर्य के साथ मानवोपयोगी लोकाचरण का पालन कर सकें।

इस अधोगति के लिए अन्य कारणो के अलावा एक कारण यह भी है कि हमारी विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था में सहिष्णुता शिक्षण का सर्वथा अभाव है। यदि वर्तमान 21वी सदी मे भी ऐसी ही शिक्षा-दीक्षा देने की प्रवृत्ति चलती रही तो निकट भविष्य मे सुन्दर सलौना पढ़ा-लिखा भौतिक साधनो से परिपूर्ण मानव, मानवीयता के क्षेत्र मे पशु की भांति व्यवहार करेगा।

सहिष्णुता शिक्षण का अर्थ

सहिष्णुता एक सुन्दर व मानव उपयोगी भाव है जो व्यक्ति के सुहृदय मे विद्यमान रहता है। इसकी उपस्थिति से व्यक्ति का आत्मबल सबल है और व्यक्ति जनकल्याण के कार्यो की ओर प्रेरित होता है। अहम् अथवा अहकार उस पर हावी नहीं होता है। फलत. उसकी मन:स्थिति विचलित नही होती है। मान-अपमान के भेद से ऊपर उठकर हमेशा विकट व प्रतिकूल परिस्थिति मे भी संयम व धैर्य से काम करता है। जिससे कई अर्थो में परिवार, समाज, राष्ट्र तथा सम्पूर्ण मानव सभ्यता को लाभ मिलता है।

उपरोक्त गुणो के संदर्भ मे सहिष्णुता शिक्षण वह शिक्षण है जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप सें विद्यार्थी मे ऐसी क्षमता, योग्यता तथा मानसिकता का विकास करे, जिससे विद्यार्थी जीवन भर सयम व धैर्य धारण करते हुए अपने दैनिक लोकाचरण में ऐसी शैली विकसित करे जो उसे प्रतिकूल परिस्थिति अथवा वातावरण मे भी विचलित होने से बचाए और हमेशा सभी जाति, धर्म, मत तथा देश पर समरसता, समता, व समानता की दृष्टि डाले और विचार व्यक्त करे। सब पर दया का भाव रखे तथा माफ करने की प्रवृत्ति व प्रकृति वाला हो।

यद्यपि सहिष्णुता भाव की हृदय मे उपस्थिति *आस-पड़ोस के वातावरण तथा समाजीकरण की प्रक्रिया* पर निर्भर करती है तथापि विद्यार्थी अपने जीवन का अधिकाश भाग विद्यालयी शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करने में बिताता है। अतः पाठ्य-वस्तु शिक्षण के दौरान तथा शिक्षक व्यवहार से विद्यार्थी मे जो सौहार्द्रता, समता, समानता, एकता, दया, प्रेम, स्नेह जैसे मानवीय गुणों का प्रस्फुटन होकर जीवन शैली में प्रतिष्ठित होता है उसे सहिष्णुता शिक्षण की सज्ञा दी जा सकती है।

सहिष्णुता शिक्षण की आवश्यकता

सहिष्णुता अथवा सहनशील शिक्षण की आवश्यकता संसार को जितनी आज है, शायद पहले कभी नही रही। क्योंकि आज का मानव भौतिक वैभव के अभाव में जीवन अधूरा मानता है। भौतिक वैभव की अनिवार्यता, औद्योगिक विकास, महानगरो मे उहापोह का वातावरण, झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा तथा मानवीय मूल्य की कमी के फलस्वरूप आम जीवन मे सौहार्द्रता, समता, समानता, प्रेम, त्याग जैसे सहिष्णुता गुणो की समस्या बढ़ती जा रही है।

बालक गाव का हो या शहर का, विकसित देश का हो या विकासशील देश का; नौकरशाही परिवार का हो या राजनीतिक परिवार का; गरीब परिवार का हो या अमीर परिवार का सभी को सहिष्णु होने की आवश्यकता है। क्योकि निकट भविष्य में कुछ ऐसे अविष्कार होंगे जिनके प्रयोग में यदि थोडी भी असहिष्णुता दिखाई जाती है तो सम्पूर्ण मानव जाति का अस्तित्व ही मिट जाएगा। दुनिया बारूद के ढेर पर तो पहले से ही बैठी है। जैविक व आणविक हथियारों का खतरा विश्व पर पहले से ही मंडरा रहा है। यह दुनिया अब प्रकृति की मर्जी के स्थान पर "बटन" की मर्जी पर जिन्दा है। इस अनिश्चितता के खतरे से केवल सहिष्णुता ही बचा सकती है।

हर देश मे, किसी न किसी बात को लेकर आपस मे बैरभाव देखने को मिलता है। पवित्र स्थल का उपयोग अलगाव व आतंक फैलाने के लिए किया जाने लगा है। हर कोई आशंकित है कि न जाने क्या हो जाए? फलतः *जीवन जीने का अर्थ ही बदल रहा है, भय की काली* छाया में जी रही अधिकाश आबादी यह अनुभव करने लगी है कि उहापोह की जिन्दगी से सकून की जिन्दगी ज्यादा बेहतर और मानवीय है। दुनिया दाव-पेच को सहते-सहते इतनी थक चुकी है कि भागदौड़ तथा आकाश-पाताल भेदने की सनक छोड़ प्रकृति से तालमेल बैठा कर खाने-कमाने से अधिक सत्यम् व सुन्दरम् समझने लगी है। अतः आज के संदर्भ में सहिष्णुता का शिक्षण न केवल प्रासगिक है अपितु सुन्दर जीवन के लिए अनिवार्य भी बन गया है।

वर्तमान पाठ्यक्रम में सहिष्णुता शिक्षण व्यवस्था

प्रत्येक विषय पढ़ाने का उद्देश्य है विद्यार्थी की ज्ञानार्जन प्रक्रिया को उत्तरोत्तर तीव्र करना, नित नया सीखना-समझना तथा उससे आदर्श व संस्कारित नागरिक बनाना। क्योकि संस्कार जीवन का आभूषण है। संस्कार विना जीवन पशु समान है। बालक को संस्कारित करने मे परिवार व समाज के बाद विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। क्योंकि 5 वर्ष की आयु से लेकर 18-20 वर्ष की आयु तक वह विद्यालयी जीवन के सम्पर्क मे रहता है। यह विडम्बना ही है कि हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था मे संस्कारों के शिक्षण की व्यवस्था नही के बराबर है।

वर्तमान शिक्षण व्यवस्था में केवल अक्षर ज्ञान, अंकीय ज्ञान, पुस्तकीय ज्ञान तथा रोजगार उन्मुख ज्ञानार्जन पर विशेष बल देकर विद्यार्थी के भौतिकीय तथा आर्थिक

विकास करने पर बल दिया जाता है तथा आध्यात्मिक एव सांसारिक विकास को वातावरण व पर्यावरण परिस्थितियों पर छोड़ दिया जाता है। फलतः पढ़ा-लिखा व्यक्ति उन मानवीय और संवेदनशील भाव-अंकुरण अवसर से वचित रह जाता है, जिनके ऊपर वसुधैव कुटुम्बकम् तथा सयुक्त राष्ट्र संघ सिद्धात का प्रतिपादन हुआ है।

निःसदेह, सहिष्णुता मानव के चिन्तन तथा संस्कृति-सभ्यता का आभूषण रहा है। यही यशस्वी, योगी तथा समाजोपयोगी व्यक्ति की यशोगाथा भी है। इसमे चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर विजय पाने की क्षमता है। लेकिन वर्तमान पाठ्य-वस्तु का जायजा लेने से पता चलता है कि विद्यालयी तथा महाविद्यालयी शिक्षा व्यवस्था तथा पाठ्यक्रम में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष दोनो ही रूप में सहिष्णुता शिक्षण की व्यवस्था नहीं है लेकिन इसकी मानव जीवन में महत्ता को देखते हुए, शिक्षक का यह कर्तव्य बनता है कि वह अपने विद्यार्थियो को विषयान्तर्गत ही ऐसे अवसर प्रदान करे जिसके द्वारा उनमे सहिष्णुता गुण का विकास हो सके। इसके लिए अध्यापक को सूक्ष्म दृष्टि से पाठ्य-वस्तु पढ़ाने मे नवाचार प्रयोग करना पढ़ेगा। निर्धारित पाठ को कक्षा में पढ़ाते समय ऐसे अवसर तलाश करने पडेगे। ऐसी युक्तियो का शिक्षण में समावेश करना पड़ेगा, जिसके माध्यम से प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनो ही प्रकार से सहिष्णु बनने तथा बनाने का उद्देश्य पूरा किया जा सके।

विज्ञान और सहिष्णुता शिक्षण

विज्ञान, प्रकृति तथा मानव के बीच घनिष्ट सम्बन्ध है। विज्ञान प्रकृति तथा प्राकृतिक आपदाओ पर विजय प्राप्त करने तथा प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को जानने में प्रयासरत रहता है। हमारे आसपास जैविक तथा अजैविक पर्यावरण में घटित घटनाओं को विद्यार्थी विज्ञान विषय के अन्तर्गत उसकी वैज्ञानिक प्रक्रिया की सत्यता के बारे मे जानते व समझते है।

प्रकृति क्या है? किस प्रकार सारे जीवन चक्र संचालित हैं? जमीन पर, आकाश मे तथा समुद्र के अन्दर परिस्थितियो व पर्यावरण का सचालन— क्या है, क्यो है, कैसे है, किसलिए है? आदि शिक्षण के दौरान अनेकों अवसर ऐसे आते हैं जो प्रकृति की महानता तथा उसका मानव जीवन पर उपकार का वर्णन मिलता है। यदि इन अवसरों का लाभ उठाकर विद्यार्थियों को यह बताने व समझाने की चेष्टा की जाए कि किस प्रकार यह सम्पूर्ण जैविक तथा अजैविक ससार एक-दूसरे पर निर्भर है तथा किस प्रकार एक-दूसरे के अभाव मे शून्य हो सकता है। इस प्रकार का विश्लेषण विद्यार्थियो में प्रकृति के उपकार व उपहार के बदले उसके प्रति दया, प्रेम, स्नेह तथा उसके संरक्षण व विकास के भाव जागृत होगे, जो विद्यार्थी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहिष्णु बनने की ओर प्रेरित करेगे।

गणित व सहिष्णुता शिक्षण

प्राय. माना जाता है कि गणित नीरस विषय है तथा गणितज्ञ मे हृदयानुभूति कम होती है। यह धारणा पूर्णतः निराधार है। इसके विपरित गणितज्ञ सर्वाधिक प्रकृति प्रेमी तथा सहिष्णु होते है। समय की बचत, गणना की सख्या कम करने तथा सर्वाधिक शुद्ध परिणाम के उद्देश्य से गणित मे सूत्रों का सर्वाधिक प्रयोग होता है। इन्ही सूत्रो को गणित का अध्ययन करते समय विद्यार्थी सूक्ष्म से विस्तार तथा विस्तार से सूक्ष्म तथा सश्लेषण से विश्लेषण व विश्लेषण से संश्लेषण का अभ्यास करता है। सूत्रो को हल करता है। इस तरह एकाग्रचित होकर अभ्यास करना अपने आप मे सहिष्णुता का गुण है। गणित का अध्ययन करते समय विद्यार्थी सत्यनिष्ठ, स्वावलम्बी, श्रम के प्रति निष्ठा तथा मितभाषी जैसे गुणों को विकसित करता है। अतः गणित शिक्षण के दौरान शिक्षक यदि अवसर को पहचान कर विद्यार्थी में विद्यमान तथा विकसित गुणों को सही दिशा प्रदान करे तो प्रत्येक बालक को आदर्श सहिष्णु नागरिक बनाया जा सकता है।

भाषा व सहिष्णुता शिक्षण

भाषा शिक्षण और सहिष्णुता शिक्षण का आपस मे अटूट सम्बन्ध है। क्योंकि भाषा भावों का विषय है तथा सहिष्णुता भावो की परिणति। भाषा हृदयानुभूति को स्वर देकर उद्गार करने का सरल सुगम तथा सर्वमान्य व सर्वग्राही माध्यम है। हृदय मे विराजमान रस (हास्य, रौद्र, वीभत्स, करुण, वात्सल्य, शृंगार, वीर, अद्भूत, शांत)

को साहित्य की विभिन्न विधाओ (कहानी, कविता, नाटक, रिपोतार्ज, निबन्ध, जीवनी, यात्रावर्णन आदि) मे प्रकट करने का साधन है बिन भाषा मानव प्रायः मृत है।

भाषा शिक्षण अन्य विषय शिक्षण की तुलना मे अधिगम क्षेत्र में अधिक सशक्त है क्योकि जीवन शैली निर्माण में भाषा अधिगम व अध्ययन-अध्यापन का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

भाषा शिक्षण के दौरान सहिष्णुता गुण विकास की सर्वाधिक सम्भावना होती है। कहानी, कविता, नाटक, अथवा कोई और विधा पढ़ाते समय प्रत्येक अवसर पर सहिष्णुता शिक्षा का शिक्षण किया जा सकता है। सर्वांगीण विकास में भाषा शिक्षक का योगदान अपूर्व तथा महत्वपूर्ण होता है। अत. भाषा शिक्षण के समय समग्र व्यक्तित्व उभारने व निखारने की चेष्टा की जानी चहिए। "कहानी" सहिष्णुता शिक्षण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त साधन है।

सामाजिक अध्ययन एवं सहिष्णुता शिक्षण

सामाजिक अध्ययन विषय के अन्तर्गत नागरिकशास्त्र, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र जैसे विषयों का पठन-पाठन होता है, जिसकी जडें समाज की पृष्ठभूमि में गहराई तक जाती हैं। वर्तमान इसका कार्य क्षेत्र होता है तथा अनागत भविष्य इसका लक्ष्य होता है।

विदित है कि शिक्षा समाज का दर्पण है तथा शिक्षा व समाज आपस में अन्योन्याश्रित भी होते हैं। अतः विद्यार्थी का सामाजिक, धार्मिक व आध्यात्मिक पक्ष को उभारने में सामाजिक अध्ययन स्वरूप भौतिक एवं सामाजिक वातावरण प्रदान करता है। जहां एक ओर इतिहास शिक्षण के माध्यम से भूतकालीन गलतियों के भयावह परिणाम से विद्यार्थी अवगत होते है, वहीं भूगोल शिक्षण के माध्यम से मानवजातियों के उद्भव, विकास तथा आर्थिक, सामाजिक मानवीय परिस्थितियो से अवगत होते हैं।

एक ओर अर्थशास्त्र मानवीय आर्थिक पहलुओ को उजागर करता है, वहीं दूसरी ओर नागरिकशास्त्र मानव अधिकारो तथा कर्त्तव्यों का बोध कराता है। अतः सामाजिक अध्ययन का शिक्षण विद्यार्थी को आसपास के भौतिक तथा सामाजिक वातावरण से जोड़ने के साथ-साथ उन मानवीय क्षेत्रों में सेवारत संस्थाओं के साथ संवाद स्थापित करने की आदत का निर्माण करता है, जो स्वतः ही विद्यार्थी की चिन्तन शक्ति को विकसित एव परिमार्जित कर सहिष्णु बनने को प्रेरित करता है।

महत्ता

यह दु.ख का विषय है कि मूल्य प्रधान मानव समाज के लिए प्रचलित शिक्षा-शिक्षण व्यवस्था में मानवीय मूल्यों को उभारने, उन्हे स्थापित करने तथा उन्हे सुदृढ़ व प्रगाढ़ बनाने के जो प्रयास होने चाहिए, वंह नहीं हो पा रहे हैं।

वर्तमान शिक्षा-शिक्षण व्यवस्था में भौतिक पक्ष के विकास पर अधिक बल दिया जाता है तथा बालक का सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक, धार्मिक, बौद्धिक तथा सांस्कृतिक पक्ष के विकास को समय पर छोड़ दिया जाता है। उहापोह के वातावरण में विद्यार्थी का भौतिक पक्ष तो अपूर्ण विकसित हो जाता है, लेकिन सामाजिक व मानवीय पक्ष अपूर्ण ही रह जाता है। फलतः अतिआधुनिकता तथा चरमसीमावादी दौड़ में शामिल हो जाता है। इस अन्धी दौड़ मे उसे यह भान ही नहीं रहता है कि उसके द्वारा किये जा रहे कार्यो से असंख्य लोगों का अधिकार हनून हो रहा है। मानव का अनेक अर्थ में अहित हो रहा है। अन्ततः इस प्रकार की असहिष्णु सोच का खामियाजा निर्दोष जनता भुगतती है। संसार के अनेक प्रांतों में हो रहा नरसंहार इसका ज्वलंत उदाहरण है।

अतः प्रकृति को प्रकृति बनाए रखने, आदमी को आदमी बनाने के लिए, संस्कृति व सभ्यता की रक्षा के लिए तथा प्रत्येक प्राणी की खुशहाली को सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक नागरिक मे सहिष्णुता का गुण होना न केवल अनिवार्य है अपितु बारूद के ढेर पर बैठी इस दुनिया की मांग भी है। ☐☐

स्नातकोत्तर शिक्षक (भूगोल)
केन्द्रीय विद्यालय, सिलचर, (असम)

बाल-केन्द्रित शिक्षा के आयाम

❑ रमेश चन्द्र पारीक

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के तहत विद्यालयों में ऐसी शिक्षण व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया गया है जो बाल-केन्द्रित हो अर्थात् जिसके द्वारा बच्चो के सर्वागीण विकास पर ध्यान दिया जा सके। नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक आयाम है– बाल-केन्द्रित शिक्षा। सरल भाषा में हम कहेगे कि जिस शिक्षा पद्धति से बालक का अधिक से अधिक हित हो सके और जिस साधन से उसके मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक, बौद्धिक एव भावनात्मक विकास को प्रभावी बल मिले, सहायता प्राप्त हो सके, वही बाल-केन्द्रित शिक्षा कहलाएगी। इस पद्धित में बालक मुख्य रूप से केन्द्रित है, उसी की क्षमता, स्तर, समझ के अनुसार पाठ्यक्रम निर्धारित है और अध्यापक सशक्त एवं मनोवैज्ञानिक सारथी है, उसी के माध्यम से शिक्षा की समस्त प्रयोजनाएं, चर्चा एवं पाठ्यचर्चा का सीधा लाभ बालक को सुलभ हो पाता है। इसमे शिक्षा सीधे तौर पर बालक से सम्बद्ध रहती है। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी ने कहा था "सच्ची शिक्षा वह है जिससे हम अपनी आत्मा को पहचान सके।" अर्थात् शिक्षा केवल ज्ञान, रुचि या मनोरंजन तक सीमित नही है वह व्यक्तित्व का निर्माण करती है चरित्र को परिमार्जित करती है और सहज भाव से चरणबद्ध रूप मे छात्र का चहुंमुखी विकास करती है।

बाल-केन्द्रित शिक्षा की सफलता के अनेक सोपान एवं व्यवस्थित चरण हैं, व्यवस्था एवं क्रियान्वयन है, घटक एव आयाम सम्बद्ध है किन्तु हम प्रस्तुत आलेख में मुख्यतः तीन घटकों पर चर्चा करेंगे। इस शिक्षा पद्धति को सक्रिय एवं सघन रूप से प्रभावित करने वाले आयाम हैं– बालक, अध्यापक, अभिभावक, परिवेश एवं पाठ्यचर्या आदि। इस शिक्षा पद्धति का अहम् पहलू है बालक। शिक्षार्थी की आवश्यकता एव सीखने की क्षमता इस प्रक्रिया में मुख्य बात है जिस पर हमे विचार करना चाहिए। अनेक शोध एवं सर्वेक्षण यह तथ्य उजागर करते है कि बालक की सृजनात्मक प्रतिभा का विकास लगभग सात वर्ष तक अधिक प्रभावी ढंग से होता है। इसलिए आजकल ढाई तीन वर्ष की आयु से ही दाखिला करा देते है जब तक अनेक बालक स्पष्ट बोल भी नहीं पाते हैं, तुतला कर अपनी अभिव्यक्ति देते हैं, वे सकोची भी रहते हैं, अपनी बात जल्दी से बता नहीं पाते किन्तु उनमे सीखने की ललक व काम करने की चाहत होती है, स्फूर्ति व उत्साह भरा होता है। वे परम्परागत कहानियो को सुनने के बजाए कुछ करके सीखने में ज्यादा उत्सुक रहते है। उनकी सृजनात्मक प्रतिभा के विकास के लिए उन्हें कोई क्रियाकलाप (एक्टीविटी) चाहिए जिससे उनकी सृजनात्मक वृत्ति निखर सके।

बालक के सर्वागीण विकास का बाल-केन्द्रित शिक्षा एक सहज, सौद्देश्य एवं प्रभावी सोपान है। बालक की शिक्षा को सक्रिय एवं सघन रूप से प्रभावित करने वाले मुख्य घटक, शिक्षक, अभिभावक, परिवेश और पाठ्यक्रम हैं। बाल-केन्द्रित शिक्षा के तहत शिक्षक का समर्पित भाव व उदारवादी दृष्टिकोण तथा अभिभावक का निकट सहयोग नितांत आवश्यक है।

प्रत्येक बालक में सीखने की प्रवृत्ति अलग-अलग होती है। कोई किसी खेल के माध्यम से सीखना चाहता है तो कोई किसी वस्तु को बना-बिगाड़ कर, किसी खिलौने के माध्यम से, कोई अपने समूह में देख-समझकर तो कोई अपने उर्वर दिमाग व असीम योग्यता के आधार पर सीखता है। हरेक बालक अपनी समझ, बोध, दायरे में रहकर सीखता है। उनकी क्षमता स्तर, आयु भी गौण

रहती है। बालक की चाहत, रुचि, रुझान भी इसमे सहायक रहती है। बालक क्या चहता है, उसकी आवश्यकता क्या है? वह किस प्रकार के कार्यो में रुचि ले रहा है? उसकी सकारात्मक सोच को बल कैसे मिले? बालक का सर्वांगीण विकास कैसे संभव हो? उसे पढ़ाई सहज व सरल लगे, पुस्तको में रुचि जगे तथा विद्यालय जाने के लिए उसके सुकोमल मुखड़े पर चिंता की रेखाए न उभरें बल्कि उल्लासित भाव जागृत रहे। वह स्कूल जाने के लिए स्व-प्रेरणा से तैयार हो सके, उसका ज्ञान भी बढ़े, मनोरंजन भी हो, खेल भी खेल सके, अभिव्यक्ति दे सके कविता के माध्यम से, कहानी के द्वारा या चित्राकन या अन्य क्रियाकलाप से। विचित्र वेशभूषा मे भी सहभागिता करने से, एकल व समूह गान प्रतियोगिता के भाग लेने से उसकी रुचि, रुझान प्रदर्शित हो जाती है।

बाल-केन्द्रित शिक्षा का दूसरा घटक है अध्यापक एवं अभिभावक। अध्यापक अपने संचित एवं अर्जित ज्ञान से छात्र को सिखाने की भरसक कोशिश करता है। उसका ध्येय पाठ्यक्रम नही है बल्कि बालक है जिसे परिमार्जित करना है। ज्ञान और मनोरंजन दोनों पक्षो पर बल देना है। इस शिक्षा में शिक्षक का दायित्व गुणात्मक स्वरूप में बढ़ जाता है उसे बालक के स्तर पर उतरकर, उसकी रुचि को पहचान कर, उसमे सृजनात्मक प्रतिभा का निखार करना होता है। किसी भी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षार्थी और शिक्षक के बीच स्वाभाविक एवं सौमनस्यपूर्ण संबंध प्रतिध्वनित रहता है। शिक्षक को बालक की आवश्यकता को भी समझना है तो अभिभावक को संतुष्ट करना, उसकी प्रगति व कुशलताओ के क्रमिक विकास से अवगत करना भी है। इसलिए सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सुचारू, सुव्यवस्थित एव प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक को कक्षा मे घर जैसा वातावरण बनाना पड़ता है क्योंकि जो बालक घर से पहली बार स्कूल की चौखट पर पांव रख रहा है उसके लिए उपयुक्त पृष्टभूमि तैयार करने का दायित्व शिक्षक का है। शिक्षक अपने छात्र को पुत्रवत स्नेह, दुलार प्रदान करता है, उसकी जरूरत को जानने समझने को आतुर रहता है तथा उसे ऐसा वातावरण प्रदान करता है, जो सरस, सार्थक व उपयोगी हो, जिसमे बालक का मन रम सके, उसे उस प्रक्रिया में आनंद आ सके, वह घर की याद को विस्मृत कर सके। ऐसा करने से मानवीय गरिमा का सम्मान व आदर प्रदर्शित होगा। हमारे प्राचीन ग्रथो (वेद) में शिक्षक-छात्र संबध के विषय में स्पष्ट कहा गया है कि हम साथ-साथ बोलें, साथ-साथ चलें, साथ-साथ गतिविधि को समझकर दोहराए तथा हमारे मन भी एक जैसे हों। अर्थात दानों एक-दूसरे को ठीक तरह से समझ लें। छात्र को यह पक्का विश्वास हो जाए कि शिक्षक मेरे सच्चे मित्र, सहयोगी, हितचिंतक, मार्गदर्शक एवं शुभेच्छु हैं। दोनों जब एक-दूसरे को पहचान लेंगे, समझ लेंगे तब उनके बीच एक विशेष रिश्ता कायम हो सकेगा। बच्चो मे स्वतः अध्ययन की रुचि बढ़ेगी और धीरे-धीरे उनमें समस्त वांछनीय जीवन मूल्यों का विकास संभव हो सकेगा। इस प्रक्रिया की सफल परिणति के लिए शिक्षक का मनोवैज्ञानिक बोध एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण सार्थक कारगर रहेगा। शिक्षक अपनी व्यावसायिक कुशलता को तरोताजा बनाए रखे इसके लिए समय-समय पर अनेक सेवाकालीन प्रशिक्षण शिविर, सेमिनार, विषय चर्चाएं, नवाचार संगोष्ठिया, शैक्षिक सम्मेलन आदि आयोजित किए जाते हैं जिनके माध्यम से, प्रशिक्षण प्राप्त करके, वह अपनी क्षमता, कुशलता, दक्षता एवं कौशल में अभिवृद्धि कर सकता है और उसका सीधा लाभ बच्चों को सुविधानुसार पहुंचा सकता है।

अध्यापक एक ओर जहा छात्र की प्रतिपल उन्नति व विकास के प्रति प्रयत्नशील रहता है वहीं दूसरी ओर अभिभावक के साथ सतत् सम्पर्क बनाए रखता है ताकि इस प्रक्रिया में अवरोध व्याप्त न हो सके। कभी-कभी अभिभावक उदासीन रवैया प्रकट करते हैं, बार-बार आमंत्रित करने पर भी छात्र की प्रगति की जानकारी हासिल करने मे कतराते हैं या कभी नई मूल्याकंन पद्धति, नई प्रणाली के प्रति नादान रवैया अपना कर आशंकित रहते हैं। उन्हे शिक्षा के क्षेत्र में आए नवाचारों, नवीन प्रयोगों एवं नई पद्धतियों के बारे में जानकारी देना जरूरी हो जाता है इसीलिए अध्यापक-अभिभावक संवाद आवश्यक है। कई स्कूलों में अध्यापक-अभिभावक संघ (PTA) बने हुए हैं जहां कम से कम महीने में एक बार उनकी बैठक होती है, संपर्क होता है, दोनो एक-दूसरे की स्थिति को समझते हैं यदि कोई शंका हो, समस्या हो तो उसका समाधान ढूंढते हैं। अध्यापक एवं

अभिभावक दोनो ज्ञान रथ के पहिए है, छात्र रथी है। जब तक दोनों में सामंजस्य, तालमेल नहीं होगा तब तक सुधार नही होगा। शिक्षक का उदारवादी दृष्टिकोण तथा अभिभावक का समर्पित सहयोग बाल-केन्द्रित शिक्षा पद्धति मूल आधार है। जब दोनो मे परस्पर सम्पर्क होगा, बालक का हित दोनो ओर सर्वोपरि होगा तभी यह प्रक्रिया सफल व स्थायी रूप धारण करेगी। दोनो के बीच सौहार्द्रपूर्ण वैचारिक सहसंबध एवं व्यवहार कुशलता परमावश्यक है।

बाल-केन्द्रित शिक्षा का तीसरा मुख्य आयाम है पाठ्यचर्या एवं परिवेश। जैसे कक्षा प्रथम के छात्रो के लिए प्रारभिक 4-6 सप्ताह तक 'स्कूल रेडीनेस प्रोग्राम' चलाया जा रहा है उसी के अनुरूप छात्रो के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एव पाठ्येतर क्रियाएं होती हैं जिनके माध्यम से बालक को केन्द्र मानकर, उसका सर्वागीण विकास किया जाता है। उसे सीखने-सिखाने की प्रवृत्तियो से, पाठ्यक्रम के मुताबिक, प्रवीण, दक्ष व कुशल बनाया जाता है किन्तु इसमें भी शिक्षक प्रधान है, उसकी भूमिका सर्वाधिक महत्यपूर्ण है। स्वय शिक्षक को यह चिंतन करना होगा कि उसका दायित्व क्या है। वह अपने दायित्व को, कर्त्तव्य को किस सीमा तक, कितनी निष्ठा व ईमानदारी के साथ निर्वाहित कर रहा है। अपने कार्य के प्रति कितना सजग, सचेष्ट व ईमानदार है। उसे अपने कार्य के प्रति समर्पण बोध रखना होगा तथा रचनात्मक दृष्टिकोण मन मे सजोए रखना होगा। बाल-केन्द्रित शिक्षा में बालक-अध्यापक, अभिभावक, मित्रमडली, परिवेश, पाठ्यक्रम एव कक्षागत क्रियाकलाप तथा सहगामी क्रियाए सतत् रूप से सम्बद्ध हैं तथा अन्तर्सबंधित हैं। इसमें दो ही घटक उभर कर आते हैं वे है— शिक्षक और शिक्षार्थी। शिक्षक का व्यक्तित्व आकर्षक हो, उसे अपने आप पर विश्वास हो। विषय पर एकाधिकार हो, मनोविज्ञान का ज्ञान हो तथा छात्रों की रुचि व जरूरत के मुताबिक परिवर्तन करने की तीव्र भावना हो, प्रभावी कार्यशैली हो, वाणी में माधुर्य हो तथा व्यवहार में सहजता व सादगी हो, सदाशयता हो ताकि बच्चो के समक्ष आदर्श प्रस्तुत कर सके। उसकी पैनी व दिव्य दृष्टि हर पल बालक की एकल, समूह गतिविधि पर टिकी रहे। उसका रवैया सहानुभूति पूर्ण रहे, सकारात्मक सोच रहे, ऐसा प्रयास रहे कि छात्र प्रतिपल उत्साहित, तत्पर रहे, उसकी रुचि व ललक में निखार आता रहे। शिक्षक को छात्रों को डांटना फटकारना नही चाहिए, मारना-पीटना तो सर्वथा वर्जनीय एव अमानवीय है एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। उसकी कार्यक्षमता से बालक का परिवेश बदले वातावरण परिवर्तित हो सके। अच्छे साथियों, मित्रों, सहपाठियों का नव स्फूर्ति भरा परिवेश मिले।

इस शिक्षा पद्धति में यह भी जरूरी है कि अध्यापक प्रतिदिन छात्र की क्षमताओ व अर्जित कौशलों का मूल्यांकन सतत् रूप से करता रहे तथा उसका अभिलेख भी संभाल कर रखे। "बाल-केन्द्रित शिक्षा एक सहज, सौद्देश्य एव प्रभावी सोपान है बालकों के सर्वागीण विकास का। अतः इसे सफल बनाना प्राथमिक शिक्षा से जुड़े सभी प्रबुद्ध अध्यापकों एवं अधिकारियो का नैतिक दायित्व है। इसका मानवीय पक्ष यह भी है कि हम बालक के व्यक्तित्व एवं उसकी गरिमा का सम्मान करते हुए उसे अपने प्रति और दूसरों के प्रति सम्मान व्यक्त करना सिखा सकते हैं" शिक्षक इस प्रक्रिया मे उन्नायक चरित्र है जो अपने उदात आदर्श से नन्हे बालक को उद्देश्य परक शिक्षा की बुनियाद पर, चहुंमुखी विकास के परिमंडल मे अग्रेसित कर सकता है। वह बालक के लिए योग्य पथ प्रदर्शक है, कुशल नेतृत्व है एवं सही मार्गदशन का प्रणेता है। वास्तव में बाल-केन्द्रित शिक्षा एक दूरगामी नीति है, जीवत प्रक्रिया है जिसका यदि सही ढग से पान किया जाए, सीखने-सिखाने में क्रियान्वयन किया जाए तो भारत के नव निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान मिलेगा तथा गुरु शिष्य परम्परा जीवंत रहेगी। आवययकता है स्व चिंतन की, प्रेरणा की एवं समुचित प्रबंधन एवं क्रियान्वयन की, जिसे हम सब मिलकर पहल करके पूर्ण कर सकते है दृढ़ इच्छा शक्ति, लगाव व निष्ठा से।

❑❑

डी-7, गुरु निकुंज
मालवीय नगर, अलवर, राजस्थान

छात्रों में उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियां कारण एवं निवारण

❑ दीप्ति वाजपेयी

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। किसी भी भाषा का सौन्दर्य, सौष्ठव, गठन व शुद्धता उसके सही उच्चारण पर निर्भर है। अधिकांश छात्रों में उच्चारण संबंधी अशुद्धियां व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। उनकी ऐसी समस्याओं के कारण व निवारण के विवेचनोपरांत यदि शिक्षक व अभिभावक प्रेम, सहानुभूति व धैर्य के साथ प्रयास करें तो अवश्य ही छात्रों के उच्चारण दोषों को दूर कर उनके व्यक्तित्व को एक नई दिशा प्रदान की जा सकती है।

भाषा शब्द संस्कृत की भाषा धातु से निष्पन्न हैं जिसका अर्थ "वयक्तायां वाचि" अर्थात् व्यक्ति वाक् है। भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। आज भाषा के बिना जीवन की कल्पना अधूरी लगती है। महाकवि दण्डी तो भाषा के अभाव में तीनो लोको को अन्धकारमय मानते है।

"इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसार न दीप्यते।।"

अर्थात् यह सम्पूर्ण भुवनत्रय अन्धकारपूर्ण हो जाता है यदि संसार में शब्द रूपी ज्योति (भाषा) का प्रकाश न होता।

भाषा मूलतः उच्चरित होती है। अत उच्चारण वह मेरूदंड है जिसके आधार पर भाषा का समस्त भवन अवलम्बित होता है। भाषा का सौन्दर्य, सौष्ठव, गठन व शुद्धता उच्चारण की शुद्धता पर निर्भर है। भाषा में व्याकरण से भी दुगुना महत्व उच्चारण का है। एक सुःउच्चरित वाक्य व्याकरण असम्मत रहने पर भी अर्थ प्रदान करता है किन्तु पूर्ण व्याकरण सम्मत वाक्य अशुद्ध उच्चरित होने पर श्रोता को बोधगमय नहीं हो पाता या वह उसे अपूर्ण रूप से समझता है।

वस्तुत सभी भाषाओं मे उच्चारण का महत्व है किन्तु देववाणी सस्कृत में उच्चारण का विशिष्ट महत्व है क्योकि सस्कृत के आदि ग्रन्थ वेदो की परम्परा मौखिक चली आई है। महर्षि पतंजलि ने उच्चारण की विशेषता बताते हुए कहा है–

"एको शब्द· सम्यकृज्ञातः सुप्रयुक्त ।
स्वर्गे लोके व कामधुग्भवति।।"

अर्थात् एक भी शब्द अच्छी तरह जाना हुआ व अच्छी तरह प्रयुक्त किया हुआ इस लोक व परलोक में इच्छाओं की पूर्ति करने वाला होता है।

वेदाध्ययन में उच्चारण का विशेष महत्व था। इसीलिए वेदों को गुरु अपने शिष्य को व्यक्तिगत रूप से पढ़ाता था। पाणिनि ने कहा है–

"मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा।
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।।"

अर्थात् स्वरो एव वर्णो के शुद्ध उच्चारण से रहित मन्त्र अर्थ का अनर्थ कर देता है। अतः भाषा में उच्चारण की महत्ता सुस्पष्ट है। किन्तु अधिकांश छात्रों में उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियां व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होती हैं जिसके अनेक कारण हो सकते है।

प्रयत्न लाघव

यह मानव की सहज प्रवृत्ति होती है कि वह कम श्रम मे अधिक पाना चाहता है। यही नियम भाषा के उच्चारण में भी दृष्टिगोचर होता है। छात्र कम उच्चारण द्वारा अधिक अर्थ अभिव्यक्त करना चाहते हैं और इसी प्रवृत्ति के कारण उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियां हो जाती हैं जैसे– मास्टर साहब को मास्साब, बहन जी को बैनजी व डॉक्टर साहब को डॉकसाब कहना।

अज्ञानता

अधिकांश छात्र अज्ञानतावश भी अशुद्ध उच्चारण करते है। उचित ध्वनि निर्गम, मात्रा सम्बन्धी व शब्द व्युत्पत्ति

सम्बन्धी ज्ञान न होने के कारण उच्चारण की अशुद्धियां होती है। यथा–ज्योति को ज्योती, प्रश्न को प्रशन व प्रताप को परताप आदि उच्चारित करना।

भावातिरेक

कभी-कभी भावावेश मे प्रेम, क्रोध, शोक आदि के अतिरेक के कारण भी छात्र अशुद्ध उच्चारण कर बैठते है यथा– बच्चा को बच्चू, लालसिंह को लल्लू सिंह इत्यादि कहना।

शिक्षक द्वारा अशुद्ध उच्चारण

छात्रों के लिए उनके गुरु आदर्श होते हैं तथा अपनी अनुकरणात्मक प्रवृत्ति के कारण वे सर्वाधिक अनुकरण अपने शिक्षक का ही करते हैं। यदि शिक्षक का स्वयं का उच्चारण अशुद्ध है तो आदर्श मानने के कारण छात्र भी अशुद्ध उच्चारण करने लगते हैं। उदाहरणार्थ– आशा को आसा या सुषमा को सुसमा उच्चरित करने पर छात्र भी तथैव उच्चारण करेंगे।

असावधानी

बहुत सी उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियां असावधानी व लापरवाही के कारण हो जाती हैं। प्राय· कठिन शब्द ध्यानपूर्वक न बोले जाने के कारण गलत उच्चरित हो जाते हैं जैसे– किकर्त्तव्यविमूढ़ को किकर्त्यविमूढ़ या लखनऊ को नखलऊ कहना।

शारीरिक दोष

छात्रों मे किसी प्रकार का शारीरिक दोष भी उनके उच्चारण को अशुद्ध बना देता है। जैसे हकलाना या जिह्वा सम्बन्धी दोष अशुद्ध उच्चारण का कारण बन जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक कारण

छात्रों में भय, झिझक या भावना ग्रन्थि आदि मनोवैज्ञानिक कारणों से भी उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियां आ जाती हैं अर्थात् मनोवैज्ञानिक कारणों से भाषण प्रवाह में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है जिससे उच्चारण अशुद्ध हो जाता है।

प्रान्तीय भाषाओं का प्रभाव

प्रान्तीय भाषाओं के प्रभाव के कारण भी उच्चारण में अशुद्धियां आ जाती है यथा– अवधी बोलने वाला छात्र तालव्य श को दन्तव्य स ही उच्चरित करता है। भोजपुरी बोली के प्रभाव से छात्र सन्ध्या को संझा बोलने लगता है।

अन्य कारण

उपर्युक्त कारणो के अतिरिक्त अन्य कई कारण भी छात्रों के उच्चारण को प्रभावित करते है जैसे– आदत, आत्म प्रर्दशन या ध्यानाकर्षण की प्रवृत्ति।

महर्षि पाणिनि ने अशुद्ध उच्चारण के अनेक कारण बताए हैं जो अग्रलिखित है–

"उपाशुद्रष्टं त्वरितं निरस्तं
विलम्बितं गद्‌गदित प्रगीतम्
निष्पीडितं ग्रस्त पदाक्षरं च
वदेन्नदीन न तु सानुनास्यम्।"

अर्थात्

- ☐ जब छात्र जीभ दबाकर उच्चारण करते हैं व वर्णों को मुख में ही काटने लगते हैं तो उच्चारण अशुद्ध हो जाता है।
- ☐ जब छात्र त्वरित अर्थात् वर्णो को जल्दी-जल्दी बोलते हैं तो उच्चारण में अशुद्धि आ जाती है।
- ☐ जब छात्र वर्णों को फेंकता हुआ बोलता है तो उच्चारण अशुद्ध हो जाता है।
- ☐ जब छात्र रुक-रुक कर बोलता है तो उच्चारण अशुद्ध हो जाता है।
- ☐ जब छात्र गद्‌गद् स्वर में उच्चारण करता है तो उच्चारण में अशुद्धि हो जाती है।
- ☐ जब छात्र गा-गाकर बोलता है तो उच्चारण में अशुद्धि करने लगता है।
- ☐ जब छात्र तुतलाकर एव मुख के अन्दर ही बुदबुदाते हुए बोलता है तो वह अशुद्धियां करने लगता है।
- ☐ कभी-कभी छात्र अपूर्ण उच्चारण करता है।
- ☐ जब छात्र दीनता के स्वर में बोलता है तब भी वह अशुद्ध उच्चारण करता है।
- ☐ जब छात्र सानुनास्य अर्थात् सभी वर्णो को नासिका

से बोलने लगता है तब उच्चारण में अशुद्धि आ जाती है।

इस प्रकार छात्रो मे पाए जाने वाले उच्चारण सम्बन्धी दोषों के उपर्युक्त मे से कोई एक या अनेक कारण हो सकते है।

निवारणात्मक उपाय

छात्र के व्यक्तित्व विकास मे शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः छात्र में उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धि का निवारण करने के लिए अध्यापकों को विशेष उपाय करने चाहिए जिससे छात्र के व्यक्तित्व को उच्चारण दोष से मुक्त रखा जा सके—

ध्वनि तत्व का ज्ञान—किसी भाषा को सीखने के लिए उसके ध्वनि तत्व को जानना आवश्यक होता है। अतः अध्यापक को स्वर व व्यंजन के अतिरिक्त अनुस्वार (ं), विसर्ग (ः), अनुनासिक (ँ) आदि का उच्चारण सिखाकर इनके प्रयोग में कुशल बनाना चाहिए।

आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करना—उपदेश मे उदाहरण की श्रेष्ठता सिद्ध है। अतः अध्यापक को चाहिए कि वह स्वयं शुद्ध उच्चारण का उदाहरण छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करे जिससे अनुकरण करके अज्ञानतावश अशुद्ध उच्चारण करने वाले छात्र अपना उच्चारण शुद्ध कर सकेंगे।

अभ्यास—अशुद्ध उच्चारण को पुनः-पुनः अभ्यास के द्वारा शुद्ध कराया जा सकता है। शुद्ध उच्चारण समवेत स्वर में भी कराया जा सकता है और व्यक्तिगत रूप से भी। यदि किसी शब्द का शुद्ध उच्चारण अधिकांश छात्र नहीं कर पाते है तो उस शब्द की उच्चारण आवृत्ति समवेत स्वर मे कक्षा के समस्त विद्यार्थियो से करानी चाहिए।

मनोवैज्ञानिक व शारीरिक दोषों का उपचार—यदि छात्र किसी मनोवैज्ञानिक समस्या अथवा शारीरिक दोष के कारण अशुद्ध उच्चारण करते हैं तो सर्वप्रथम इसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए मनोवैज्ञानिक व चिकित्सकों की सहायता लेनी चाहिए। शिक्षक को चाहिए कि वह इस उपचार के लिए अभिभावकों से विचार-विमर्श करे व उनसे अपेक्षित सहयोग ले।

यांत्रिक सुविधाएं—छात्र के उच्चारण को शुद्ध करने में अभ्यास का महत्वपूर्ण योगदान होता है किन्तु कक्षा के सीमित समय मे अपेक्षित उच्चारण अभ्यास नहीं हो पाता है तथा संबंधित छात्र अन्य विद्यार्थियो के समक्ष संकोच का भी अनुभव करते हैं ऐसी स्थिति में यान्त्रिक सुविधाओं का सहारा लिया जा सकता है। इसमें ग्रामोफोन, टेपरिकार्डर, रेडियो, टी.वी. आदि प्रमुख हैं। इसमें रेडियो, टेलीविजन में शुद्ध उच्चारण सुन-सुनकर छात्र उच्चारण में सुधार कर लेते हैं। शिक्षक टेप रिकार्डर में अपनी आदर्श वाणी में शुद्ध उच्चारण रिकार्ड कर सकते है व छात्र उसे खाली समय में सुनकर तथा स्वयं का उच्चारण रिकॉर्ड कर पुनः सुनकर अपने दोषो का निवारण कर सकता है।

उच्चारण प्रतियोगिताओं का आयोजन—शिक्षकों को कक्षा में समय-समय पर उच्चारण प्रतियोगिताओं का आयोजन करते रहना चाहिए। इन प्रतियोगिताओं के माध्यम से उच्चारण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान सम्भव हो सकता है। अन्ताक्षरी की भांति इस प्रतियोगिता का संचालन किया जा सकता है अथवा पाठ्यपुस्तक से कठिन शब्द छांटकर पर्चियों पर लिख दिए जाएं तथा कक्षा विद्यार्थियों की टोली बना दी जाए। जिस दल के छात्र पर्चियों का शुद्ध उच्चारण करें उस दल को सर्वाधिक अंक दिए जाएं।

उच्चारण व वर्तनी परीक्षा—समयाभाव, पाठ्यक्रम की विशालता व कक्षा आकार मे वृद्धि होने के कारण उच्चारण व वर्तनी संशोधन कार्य आज शिक्षको के लिए दुरूह होता जा रहा है। अतः मासिक परीक्षा में उच्चारण व वर्तनी सम्बन्धी परीक्षा का भी समावेश किया जाना चाहिए। यह परीक्षाएं उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियों के निवारण का अच्छा साधन बन सकती हैं।

वैयक्तिक संशोधन—बहुत से छात्र नाक से बोलते हैं, हकलाते या तुतलाते हैं अथवा उच्चारण की अधिक अशुद्धियां करते हैं तो ऐसे छात्रों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। इन छात्रों के वाग्दोषों का निवारण करना भाषा-शिक्षक का ही नहीं वरन् समस्त शिक्षकों का उत्तरदायित्व है। ☐☐

वीर नगर, सेक्टर II
दयाल बाग, आगरा

प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं मानव मूल्य

❑ कुसुम यदुलाल

विश्व की किसी भी जाति के उत्थान और पतन मे उसकी सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा का विशेष महत्व रहता है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम् सस्कृतियों मे से एक है। परम्परागत रूप से चली आ भारतीय संस्कृति विचारधारा पर चिंतन से पता चलता है कि इसमे कई प्रत्यय विद्यमान हैं। भारतीय संस्कृति मूलत· एक मूल्य आधारित धारणा है जो अनिवार्य रूप से मानव जीवन के मूल्य निकायों की ओर निर्देशित करती है। ऐसे मूल्यों को व्यक्ति तथा समाज द्वारा वरीयता दी जाती है। इसके पीछे कोई एकाधिकार न हो कर रूपातरण मात्र है। लेकिन एक मात्र उद्देश्य मनुष्य का संर्वागीण विकास कर जीवनोमुख बनाना है। भारतीय शिक्षा मे मानव मूल्यों के बारे में अध्ययन करने पर हमे ज्ञात होता है कि मानव मूल्यो की शिक्षा व्यवस्था प्राचीन समय से ही प्रचलित थी।

प्राचीन काल में गुरुकुल की शिक्षा में मानव मूल्यो की शिक्षा समाहित थी। वैदिक काल मे शिक्षा, मनुष्य को अच्छा व्यक्ति बनाने तथा उसके सर्वागीण विकास के लिए थी। धर्म, कर्म काम, मोक्ष पर आधारित शिक्षा में उस काल के तथ्यों, घटनाओं, आंकडों को केवल कण्ठस्थ कर लेना विद्वता का मानदण्ड नही था। मनुष्य के उच्च विचार, नैतिकता, सचरित्र एव पवित्र आचरण का महत्व सर्वोपरि था। चरित्रवान तथा ज्ञानवान व्यक्ति ही समाज मे सम्मान का पात्र था। बाल्मिकि, बशिष्ठ, सांदोपान आदि ऋषि-मुनि इसके उदाहरण हैं। श्री मद्‌भागवद् गीता के अनुसार ''ज्ञान का अर्थ पडिताई या पुस्तक विद्या नहीं है। ज्ञान का अर्थ सद्‌गुण अथवा ऐसी शिक्षा है जो मनुष्य को सद्‌गुण ज्ञान करा सके, यही सच्ची शिक्षा है। मर्यादा पुरूषोत्तम राम का चरित्र बाल्मिकि रामायण मे चित्रित है। पौराणिक कथाओ, पच्चतत्र की कथायें, विक्रमादित्य के जीवन पर आधारित बेताल पच्चीसी की कथाये, बौद्ध कालीन जातक कथायें हमे विवेकशील, सदाचारी तथा आदर्शवान बनने तथा नैतिक मूल्यों के प्रति सजग रहने को प्रेरित करती है।

तैतरीपयोपनिषद् मे विद्यार्थी को सलाह दी गई है कि ''हित'' तथा कल्याण की उपेक्षा मन करना तथा शिष्यो से निम्न अपेक्षाएं भी की गई हैं–

''अध्ययन तथा सम्भाषण में सदाचारी बनना, अध्ययन तथा वाणी मे सत्याचरण करना। अध्ययन के साथ तप, दम(इन्द्रिय निग्रह), शम(मन का नियन्त्रण), अतिथ्य विनम्रता, आश्रितों की रक्षा, तथा सन्तति पालन का ध्यान रखना, सत्य बोलना, कर्तव्य पालन, व्यक्तिगत कल्याण तथा समृद्धि की उपेक्षा न करना, अध्ययन में प्रमाद न करना इत्यादि, दूसरो के प्रति सद्‌भावना रखना, गुरु मे उपस्थियात अनुकरणीय बातो की उपासना करना अन्य की नही। (यानि यान्य-स्माक सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि) जब जब आचार के सम्बन्ध मे शंका उत्पन्न हो तो महान शिक्षकों के आचरण का अनुसरण करना।''

मानव मूल्यो की दृष्टि से जैन शिक्षा का दर्शन एक अति समृद्ध दर्शन है। जैन दर्शन के प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यो की विवेचना करने पर हमे मानव मूल्यों का स्पष्ट विवरण मिल जाएगा। शिक्षा केवल ज्ञानार्जन ही नहीं, अपितु व्यक्ति के जीवन के गहन रूप से सम्बन्धित एक कठोर अनुशासन है। वह सभी ज्ञान शिक्षा है, जो व्यक्ति को सच्चरित्र की ओर प्रेरित करता है। वास्तविक ज्ञान के द्वारा हम अपने जीवन मे सक्रिय एव ज्वलित कुवृत्तियो जैसे क्रोध, मान, माया, लाभ इत्यादि ''कषाय'' को भुला यानि समाप्त कर सकते है। इस सम्यक् ज्ञान को शिक्षा का प्रथम उद्देश्य कहा गया है। ''सम्यक दर्शन

शिक्षा का दूसरा उद्देश्य है। इसे गुरू के प्रति श्रद्धा तथा आगम(ज्ञान) के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सम्यक् दर्शन के द्वारा ज्ञान को सद्वृतियों के साथ जोड़ा जा सकता है। सम्यक् ज्ञान अध्ययन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु सम्यक् दर्शन का उदय मानव के अन्दर अज्ञान के प्रति विरक्ति उत्पन्न होने पर ही सम्भव है। सम्यक् दर्शन के द्वारा मनुष्य को ग्रहणशील बनाना तथा सत्कर्म की ओर प्रेरित करना है। सम्यक् चारित्र, (अहित कार्यो का निवारण तथा हित कार्यो का आचरण), शिक्षा का तीसरा तथा अन्तिम उद्देश्य है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति वाले व्यक्ति को वास्तविक रूप मे शिक्षित व्यक्ति कहा जाएगा।

शुद्ध रूप से सच्चरित्र व्यक्ति वह है जिसने अपने जीवन मे पाच महाव्रतो को प्रमुख स्थान दिया हो तथा दस गुण धर्म उसके जीवन के अग बन गये हो।

पाच महाव्रत

1 अहिंसा– किसी भी प्राणी को मन, वचन अथवा कर्म से शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट न देना।
2 सत्य– विचार, वाणी तथा व्यवहार में झूठ न बोलना तथा सच्चाई का पक्ष लेना।
3. अस्तेय– स्थूल अथवा सूक्ष्म किसी प्रकार की चोरी न करना।
4. ब्रह्मचर्य– काम भोगों से सयम बरतना।
5. अपरिग्रह– विषयासक्ति का त्याग करना तथा वस्तुओ के सग्रह में नियन्त्रण करना।

दस गुण धर्म–

1. क्षमा
2. कोमलता
3. सत्य
4 सरलता
5. सयम
6. मन तथा शरीर की शुद्धता
7. तप
8. त्याग
9. अममत्व
10 ब्रह्मचर्य

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक छात्र का अद्वितीय व्यक्तित्व है। वह अपने आचरण में स्वतन्त्र तथा कर्मो के लिये भी स्वय उत्तरदायी है। अतः अध्यापक के लिये यह अपेक्षित है, कि अध्यापन करते समय यह ध्यान रखे कि बच्चो की इस स्वतंत्रता का अतिक्रमण न हो। पाठ्य-सामग्री का चयन इस प्रकार हो कि बच्चों में स्वय निर्णय लेने की मनोवृत्ति तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो। श्रपण से यह अपेक्षित है कि आचरण सम्बन्धी व्यवहार के ज्ञान का प्रतिबिम्ब उसके दैनिक आचरण में हो।

बौद्ध शिक्षा मे समानता, बन्धुता, तथा नैतिक जीवन आचरण को शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य माना है। अप्प द्विपो भव्व, भवन्तु सब्व मंगलम्, बहुचन हिताय, बहुजन सुखाय आदि शिक्षाओं से शिक्षा के हर पक्ष मे चरित्र निर्माण पर जोर दिया गया है। मानव व्यक्तित्व के विकास के अर्न्तगत आत्म-सम्मान, आत्म निर्भरता, आत्म संयम, आत्म विश्वास तथा विवेक आदि पर जोर दिया है। बुद्ध के द्वारा संसार को चार आर्य सत्य तथा आष्टागिक मार्ग वास्तव में एक सरल तथा विकसित नैतिक आचार-संहिता दी गई है। इसके द्वारा व्यक्ति एक नेक और सदाचारी व्यक्ति के रूप में रूपान्तरिक हो जाता है तथा विश्व कल्याण हेतु शान्ति स्थापित करने हेतु अग्रसर हो जाता है।

आष्टागिंक मार्ग

1 सम्यक् दृष्टि
2. सम्यक् सकल्प
3. सम्यक् बाक्
4. सम्यक् कर्म
5 सम्यक् आजीविका
6. सम्यक् व्यायाम
7. सम्यक् स्मृति
8. सम्यक् समाधि

सम्पूर्ण बौद्ध शिक्षा-प्रणाली मे बौद्ध दर्शन का "मध्यमा-प्रतिपदा" तथा प्रतीत्य-समुत्पाद" सिद्धान्त परिलक्षित है। इस के अनुसार संसार में घटने वाली प्रत्येक घटना का एक कारण होता है, तथा संसार का घटनाक्रम इस कारण प्रभाव (cause and effect) नियम के अनुसार

चलता है। मनुष्य के विकास मे नैतिक कार्य-कारण(नैतिक प्रतीत्य समुत्पाद) सक्रिय रहता है।

भारत ने विश्व को वसुधैव कुटुम्बकम्, बहुजन हिताय! बहुजन सुखाय। जियो और जीने दो, आदि अवधारणाओ से विश्व को शान्ति का पाठ पढ़ाया। वर्तमान में पाश्चूय संस्कृति के अन्धानुकरण के कारण जीवन आधारित शाश्वत स्थायी मूल्यों में विकृति उत्पन्न हो गयी है। धनोपार्जन व बल-शक्ति प्रदर्शन के कारण मानव जीवन में अशान्ति, संघर्ष, भय, अनिश्चितता और अविश्वास उत्पन्न हो गया है।

मानव में शान्ति व सौहार्द, भाईचारे का अभाव, वर्तमान में अन्धानुकरण, प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं मानव मूल्यों से वर्तमान पीढ़ी की दूरी के कारण ही यह स्थिति है।आधुनिक युग में जब कि युद्ध के बादल विश्व पर मंडरा रहे हैं प्राचीन भारतीय संस्कृति मे विद्यमान मानव मूल्यों की शिक्षा ही व्यावहारिक जीवन के तनावयुक्त वातावरण को दूर करने में सक्षम है। भारतीय सस्कृति के मूल के ऐसे उदार विचारो की यह रसधारा आज भी साहित्य में विद्यमान है तथा वर्तमान में यत्र की प्रतियोगितात्मकता एवं विषम परिस्थितियों में भी सूखने नहीं पायी है। विश्व के विकसित देश भले ही आर्थिक क्षेत्र में अपना विकसित वर्चस्व स्थापित करे, प्राचीनतम् भारतीय संस्कृति मे विद्यमान मानव मूल्य तथा नैतिक शिक्षा विश्व का सदैव मार्ग दर्शन करती रहेगी। आइये इस मानव कल्याणकारी मूल्य शिक्षा से अपने जीवन को आलोकित करें। ❑❑

प्रवक्ता

श्री लाल बहादुर शास्त्री

राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ

कटवारिया सराय

नई दिल्ली

प्राथमिक शिक्षक

अक्तूबर 2001

सृजनात्मकता संपोषण विशेषांक

'प्राइमरी शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षको और सबद्ध प्रशासको तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबधित जानकारियां पहुचाना, उन्हें कक्षा में प्रयोग मे लाई जा सकने वाली सार्थक व संबद्ध सामग्री प्रदान करना और देश भर के विभिन्न केद्रों मे चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा-जगत में होने वाली गतिविधियो पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मच प्रदान करती है। पत्रिका मे प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार लेखको के अपने विचार भी हो सकते है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक चिंतन मे परिषद् की नीतियो को ही प्रस्तुत किया गया हो।

पूरन चन्द *प्रधान अकादमिक संपादक*

रामेश्वर दयाल शर्मा *अकादमिक सपादक*

राजकुमार गुप्त *संपादक*

डी. साईं प्रसाद *उत्पादन अधिकारी*

मूल्य एक प्रति . 4 रुपये वार्षिक : 16 रुपये

प्राइमरी शिक्षक

सृजनात्मकता संपोषण विशेषांक

वर्ष : 26 अक . 4 अक्तूबर 2001

इस अंक में

संपादक की कलम से

भारत मे वर्तमान विद्यालयी शिक्षा विद्यार्थियों को मुक्ति दिलाने एवं प्रबुद्ध व तेजस्वी बनाने में विफल है। इतना ही नहीं अधिकाश शिक्षुओं के जीवन को यह दयनीय बना देती है। यह शिक्षार्थी को आसान व सुरक्षित विकल्पों की सीमा से आगे की चुनौतियो के लिए उत्प्रेरित नहीं करती है। सीमित महत्वाकांक्षाएं अथवा स्वर्णिम भविष्य के स्वप्नों के लोप होने से युवकों मे प्रतिभा विकास की अनन्य सभावनाएं भी नष्ट हो जाती है। अतः युवकों मे प्रतिभा खोज के समान ही सृजनशीलता की खोज व संपोषण का अभियान आरंभ से ही लागू करना आवश्यक है। बालक में निहित योग्यता को यदि प्राथमिक स्तर पर ही खोज कर और उसका सही मार्गदर्शन किया जाए तो सृजनशीलता का विघटन नही होगा। इसके लिए शिक्षक की सक्रियता, क्षमता और योग्यता का विशेष योगदान है। अनेक विख्यात मनोवैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों ने सृजनात्मक प्रक्रिया के रहस्य को खोजने में वर्षो से पुस्तकों के अबार लिख डाले है, फिर भी इस संबंध मे मतभेद आज तक विद्यमान हैं कि आखिर वह कौन-सा ऐसा गुण है जिससे हर कोई अलंकृत होना चाहता है परन्तु उसे हासिल करना असाध्य सा है। हा एक मत पर सभी के सगत विचार हैं कि सृजनात्मकता के सामर्थ्य को पूर्ण तथा अधिकतम सीमा तक विकसित किया जा सकता है। सृजनात्मकता योग्यताओं, कुशलताओ, अभिप्रेरणाओ, व्यक्तिगत गुणों का प्रतिफल है। सृजनात्मकता ऐसे दिमाग में प्रस्फुटित होती है जो शान्त, विश्राम एवं चुप अवस्था में होता है। किसी लक्ष्य सिद्धि के लिए सृजनात्मक अन्तरज्ञान की उत्पत्ति आवश्यक है जिससे सृजनशील प्रक्रिया स्वेच्छा से एकमात्र बिन्दु पर केन्द्रित हो तथा स्वय में पूर्ण विश्वास जागृत हो ताकि सभावित बाधाएं लक्ष्य प्राप्ति में विघ्न पैदा न कर सकें। माइकिल रे ने सृजनात्मकता अभिवृद्धि के लिए कुछ दिशा-निर्देश प्रतिपादित किए जो निम्न हैं–

- स्वय की योग्यताओं मे विश्वास,
- निर्णायक व आलोचक होने से दूर रहना,
- सृजनशील श्रोता बनना,
- प्राप्ति लक्ष्य निर्धारित करना,
- यह मानकर कि प्रयासो का अन्जाम कुछ भी हो सकता है सतत् प्रयत्नशील रहना,
- धैर्यपूर्वक परन्तु दृढ़ता से कार्यरत रहना।

सामान्यत. सृजनशील लोग स्वतंत्र, दृढ़ एवं उच्च प्रेरणायुक्त होते हैं।

प्राइमरी शिक्षक पत्रिका का यह अंक प्राथमिक स्तर पर सृजनात्मकता संपोषण प्रसंग पर प्रकाशित किया गया है। ❑❑
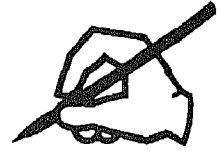
कल्पना, विचार और सृजनात्मकता

□ सुरेश नाथ त्रिपाठी

हारवर्ड विश्वविद्यालय की प्रोफेसर टेरेसा एमावाइल ने एक लेख प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था "सृजनात्मकता का हम कैसे हनन करे" (हाउ टु किल क्रिएटिविटी)। यह लेख हारवर्ड बिजनेस रिव्यू के सितम्बर-अक्तूबर, 1998 अक में छपा। लेखक ने शीर्षक के नीचे एक और वाक्य लिखा "जो कुछ आप कर रहे है वही करते जाइए।" कहने का मतलब है कि आप जो कुछ कर रहे हैं वह सृजनात्मकता को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। कुछ और करने की जरूरत नहीं है। हमारी शिक्षा प्रणाली की इससे बड़ी आलोचना और क्या हो सकती है? ये विचार तो अमरीकी शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में हैं, जो भारत से शिक्षा मे काफी आगे समझा जाता है। इस दृष्टि में भारत की स्थिति और भी चिन्ताजनक हो जाती है। कुछ कारक जो सृजनात्मकता को अवरुद्ध करते है उनका जिक्र नीचे किया जा रहा है।

याद करने पर बल

दूसरी कक्षा का एक बच्चा गृहकार्य कर रहा था। हिन्दी विषय में गिलहरी पर एक पाठ था। इस पाठ के कुछ प्रश्न दिए गए थे। एक प्रश्न था "गिलहरी कहा रहती है?" बच्चे ने लिखा, "गिलहरी डाल पर रहती है" और भी प्रश्नो के उत्तर लिखे। शिक्षिका को कापी जांचने को दी तो उसने "डाल" काट कर उसके स्थान पर पेड़ लिख दिया, यानी गिलहरी डाल पर रहती है यह गलत है और "पेड़ पर रहती है", होना चाहिए। इसके मतलब हुए कि जो किताब मे लिखा है या जो शिक्षिका ने कक्षा मे पढाया है वही सही है। उसी को याद कर लो और अपनी बुद्धि पर जोर नहीं डालो।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक कहानी लिखी थी जिसका नाम था "तोते की कहानी"। इसमे एक तोता राजा को मिलता है। राजा तोते को एक सुन्दर सोने के पिंजरे मे रखता है। तोते के पंख काट दिए जाते हैं। उसे पढ़ाने कई विद्वान आते है। अन्त मे तोता मर जाता है। यह रटने की प्रवृति पर एक व्यग्य था। अन्य कितने शिक्षाशास्त्रियो ने रटने के खिलाफ लिखा है, किन्तु इस दिशा मे बदलाव नही आया।

सृजनात्मक संपोषण के लिए यह आवश्यक है कि जो कारक इसके विकास में बाधा डालते हैं उनको कैसे दूर करें या कम करने के क्या उपाय हो सकते हैं उन पर विचार करें। सृजनात्मकता विकास के कुछ महत्वपूर्ण कारक रटने पर अल्प बल, स्वतंत्र विचार करने की क्षमता, कल्पना का विकास, कल्पना चित्रण, नाटक व रोल प्ले, कहानी-कविता लेखन आदि हैं। शिक्षकों को अपने शिक्षण में इनका उचित समावेश करना आवश्यक है।

सभी प्रकार का याद करना गलत नही है। पहाडे याद करने होंगे। इसी प्रकार वर्तनी याद करनी होगी। ऐसे विषयों को याद करना आवश्यक है, क्योंकि इसके विना हमारे दैनिक क्रियाकलाप तथा आगे की पढ़ाई नहीं चल सकती। बहुत सी बातें ऐसी हैं जहां याद करने के बजाय समझना अधिक आवश्यक है। अमुक शहर की आबादी क्या है इसे याद करना सभवतया अनावश्यक है। यहा समझने की बात यह है कि अन्य शहरों की तुलना में आबादी कितनी है और शहर आबादी की किस श्रेणी में आएगा।

बहुत से तथ्य जो याद किए जाते है उनकी उपयोगिता परीक्षा तक ही सीमित रहती है। कुछ समय बाद वे विस्मृत हो जाते है। यदि हमे उन तथ्यो की फिर से आवश्यकता पड़ती है, तो हम अपनी याद पर भरोसा करने के बजाय पुस्तक से पता लगाना उचित

समझेगे। फिर, याद करने पर इतना बल क्यो है? इसका कारण है हमारी परीक्षा प्रणाली में अंक देने की विधि। हम उस छात्र को अधिक अक देते हैं जिसने अधिक से अधिक तथ्य दिए है। यदि परीक्षा में शिवाजी के बारे में पूछा गया और एक छात्र लिखता है कि "औरगजेब की कैद से छूटने के कुछ वर्षों बाद शिवाजी का राज्याभिषेक 1674 मे हुआ", और दूसरा छात्र भी यही उत्तर लिखता है किन्तु वर्ष नहीं लिखता। परीक्षक निश्चय ही पहले छात्र के उत्तर को अधिक अच्छा मानेगा और संभवतया अंक भी अधिक देगा। यदि हम मध्यकालीन भारत के इतिहास के शिक्षकों से पूछे कि शिवाजी का राज्याभिषेक किस वर्ष में हुआ था, तो शायद ही कोई बता पाएगा। यही बात कुछ अन्य तथ्यों पर भी लागू होती है। फिर हम क्यों तथ्यों को याद करने पर इतना बल देते हैं।

पुस्तको में दी गई सामग्री को जैसी दी गई है उसे वैसी ही याद करने मे एक और नुकसान होता है। हमारा ध्यान याद करने पर केन्द्रित रहता है और परिणामस्वरूप बहुत से प्रश्न, जो हमारे मन में उठ सकते है, नही उठते। जैसे, शिवाजी मे क्या विशेष गुण थे जिसके कारण वह स्वतंत्र राज्य स्थापित कर सके। औरंगजेब ने क्या गलती की जिससे मराठा राज्य का उदय हुआ? यदि औरंगजेब की जगह अकबर होता तो वह शिवाजी के साथ कैसा व्यवहार करता? ऐसे प्रश्न जब उठते हैं तब इतिहास की समझ बढ़ती है, किन्तु यदि हमारा ध्यान केवल याद करने पर ही है तो ये प्रश्न उठेंगे ही नहीं। हम परीक्षा में भी कुछ ऐसे ही प्रश्न डाल सकते हैं। यहां न तो रटी-रटाई बात कहने का अवसर मिलेगा न नकल करने की कोई सामग्री होगी।

स्वतंत्र विचार करने की क्षमता

टौरेन्स ने कई देशों में एक अध्ययन किया। उन्होने 62 विशेषताओं की एक सूची बनाई और शिक्षकों को कहा कि वे उन विशेषताओ पर चिन्ह लगाएं जिनका छात्रो मे होना वाछनीय समझते हैं, और इनमे से पांच विशेषताओ पर दो चिन्ह लगाएं जिन्हें वे सबसे महत्वपूर्ण समझते हैं। यह अध्ययन अमरीका, पश्चिमी जर्मनी और भारत के साथ-साथ अन्य देशों मे भी हुआ। जो विशेषताएं ऊपर से पहली दस में आई उनमें भारत मे "आज्ञाकारिता", "विनयशीलता" और "समय पर काम पूरा करना" था। अमरीका और जर्मनी मे प्रथम दस मे इनको कोई स्थान नही मिला। इसके विपरीत "विचार करने में स्वतन्त्र", "निर्णय लेने में स्वतंत्र" और "विनोदप्रियता" को दोनो ही देशो के शिक्षको ने उच्च्य स्थान दिया। ये परिणाम चौंकाने वाले हैं। भारत के अन्य शिक्षाविदों ने भी शिक्षकों पर इस अध्ययन को दोहराया और करीब-करीब यही परिणाम मिले। यदि आज्ञाकारिता पर अत्यधिक बल दिया गया तो यह स्वतन्त्र चिन्तन में एक बाधा बन सकती है।

स्वतन्त्र चिन्तन सृजनात्मकता का एक आधार है। छात्रो को शिक्षक पर निर्भर नही होना चाहिए। "ट्यूशन" इसमें बाधा बनती है। छात्र शिक्षक पर निर्भर करने लगते हैं। यह ट्यूशन की सबसे बड़ी कमजोरी है। सेटर फॉर एडवास टेक्नोलॉजी, इन्दौर के निदेशक डा. भावलकर ने एक भेट में बताया कि जब वे सागर विश्वविद्यालय मे पढ़ रहे थे उस समय उनके पिताजी भौतिक शास्त्र के प्राफेसर थे। जब भी वे कभी कोई कठिनाई लेकर पिताजी के पास जाते तो पिताजी कठिनाई हल करने के बजाय कोई पुस्तक का उल्लेख करते और उसमें हल खोजने के लिए कहते।

प्रोजेक्ट विधि शिक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यहां छात्र को स्वयं सोचने और कार्य करने का अवसर मिलता है। प्रोजेक्ट विधि छोटी कक्षा से ही लागू की जा सकती है। दिल्ली में एक स्कूल है जिसका नाम मीराम्बिका है। यह स्कूल श्री अरविन्द के दर्शन पर आधारित है। यहां प्रातः की सारी पढ़ाई प्रोजेक्ट विधि द्वारा होती है। प्रोजेक्ट का चुनाव छात्र ही करते है। कार्य छोटे-छोटे समूहो में होता है। यदि छात्र अकेले ही कुछ करना चाहता है तो उसे यह स्वतन्त्रता भी है। इससे छात्रो को स्वयं सोचने, विचार करने का अवसर मिलता है एव उनका आत्मविश्वास भी बढ़ता है।

कल्पना का विकास

कल्पना चिन्तन का प्रमुख आधार है। कोई भी नई खोज

के पीछे कल्पना होती है। दूरवर्ती परिणामो को हम कल्पना द्वारा सोच सकते हैं। कल्पना हमे नई दिशाओ में ले जाती है। बच्चों में काल्पनिक खेलों के प्रति स्वाभाविक रुचि होती है। परियों की कहानियों को वे वास्तविकता से अलग करके नहीं देखते। ये उन्हें उतनी ही वास्तविक लगती हैं जितनी आसपास होने वाली घटनाए।

बाल्यकाल में कल्पना की विशेष भूमिका है। जैसा ब्रूनर ने कहा है, प्रारंभ में विचार का आधार क्रियाएं और प्रतिमान होते है। बाद मे इनके स्थान पर सांकेतिक (सिंबालिकल) विचार क्रिया आ जाती है। साकेतिक विचार क्रिया को शिक्षा में प्रमुख स्थान मिलता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतिमानो में सोचने की आदत, जो छोटी आयु में प्रमुख थी, धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है। प्रतिमानों में सोचना सांकेतिक सोच से अलग होता है। जो निष्कर्ष सांकेतिक क्रिया से निकलते हैं वे प्रतिमान की क्रिया से भिन्न हो सकते हैं। इनके साहचर्य भी अलग-अलग होते हैं। उदाहरण के लिए "मेज" शब्द लीजिए। यदि शब्दों के माध्यम से हम सोचें तो मेज का सबसे निकट का साहचर्य है कुर्सी। मेज कहने के साथ कुर्सी का ख्याल आता है। अब कल्पना का क्षेत्र लीजिए। हम कहें कि मेज की कल्पना करो और देखो कि उसके साथ क्या साहचर्य आते हैं। प्रतिमान में सोचते हुए जो साहचर्य सामने आते हैं वे हैं "मेज पर कुछ रखने के लिए", "मेज पर खड़े होने के लिए" या इसी प्रकार का साहचर्य। इस प्रकार संकेतात्मक चिन्तन और प्रतीकात्मक चिन्तन की अलग-अलग धाराएं हैं। कभी-कभी हम सकेतात्मक चिन्तन को छोड़कर यदि प्रतीकात्मक माध्यम से चिन्तन करें तब हम अलग परिणामो पर पहुंच सकते हैं। शिक्षा में हमारी कोशिश होनी चाहिए कि कल्पना का माध्यम लुप्त न हो जाए। इसके लिए कल्पना को बढ़ावा देने के लिए कुछ ऐसे कार्य शामिल करने चाहिए जिनमें छात्रों को अपनी कल्पना का प्रयोग करने का अवसर मिल सके।

कल्पना चित्रण (विज्युअलाइज़ेशन)

कल्पना को प्रेरित करने की कई विधियां हैं। इनमें एक है कल्पना को स्पष्ट रूप से अनुभव करना। इसके लिए प्रारंभ में कुछ सरल और रोचक क्रियाएं दी जा सकती हैं। इसे अंग्रेजी मे "वार्म अप" कह सकते है। उदाहरण के लिए हम छात्रो से कहे, "अपनी आखे बन्द कर लो और कल्पना मे अपने मकान को देखने का प्रयास करो। क्या तुम देख पा रहे हो? अच्छा अब बताओ मकान में कितने दरवाजे है? कितनी खिड़किया हैं?" एक-दो इसी प्रकार के प्रश्न पूछें।

वार्म अप के बाद कोई लेखन का कार्य दिया जा सकता है, उदाहरण के लिए "झील मे नौका विहार"। हम छात्रों से कहें कि "अपनी आख बन्द कर लो और झील देखने का प्रयास करो।" (यदि आवश्यक हो तो झील के स्थान पर हम नदी को ले सकते हैं।) क्या तुम झील को देख सकते हो। झील में नाव जा रही है। क्या तुम्हें नाव दिखाई दे रही है? नाव कौन चला रहा है? जैसे पतवार पानी में चलती है तो कैसी आवाज आती है? क्या यह आवाज सुनाई दे रही है? दूर कोई गीत गा रहा है। कौन-सा गीत सुनाई दे रहा है? हवा के कारण लहरें उठ रही है। क्या ये लहरे तुम देख सकते हो?" ऐसे कुछ प्रश्नों को करने के बाद लेखन का कार्य दिया जा सकता है। हम छात्रो से कहें कि वे अब अपने आप जैसी चाहो कल्पना करो और उसे लिखो। इसके दो लाभ होंगे। छात्रों के लेखन में सजीवता आएगी और उनको अपनी कल्पना शक्ति को पहचानने का अवसर मिलेगा।

भविष्य की कल्पना

कल्पना शक्ति के विकास की एक अन्य विधा है भविष्य की कल्पना करना। भविष्य की कल्पना का एक अन्य लाभ है कि छात्र अपने भविष्य के बारे में सोचने लगें और उसकी तैयारी करे। विज्ञान और तकनीकी प्रगति के साथ हमारा भविष्य तेजी से बदल रहा है। हम छात्रों से दस वर्ष बाद के भविष्य पर चिन्तन करने को कहें। इसमें एक या एक से अधिक प्रश्न उठाए जा सकते हैं। रोजगार की क्या समस्याएं होगी? शिक्षा में क्या परिवर्तन आएंगे? भोजन में क्या-क्या व्यजन बनें

अनेक प्रश्न हो सकते हैं। इनके बारे मे यदि छात्रो से हम विचार करने को कहें तो भविष्य के लिए उनको सोचने की आदत बन सकेगी और भविष्य के लिए उनकी तैयारी अधिक अच्छी हो सकेगी। इसमे कल्पना की मुख्य भूमिका है।

कुछ प्रयोग किए गए। सुभाषिनी पासी ने बच्चो को इस पर लिखने को दिया कि 2019 मे उनका जीवन कैसा होगा। कुछ रोचक लेख उन्होने प्राप्त किए। अधिकतर जो समस्याएं बच्चे देखते हैं उन्हीं को लेकर लिखते है। कुछ बिन्दुओ जिन पर वच्चो ने लिखा वे थे -- पेट्रोल और डीजल की समस्या, देशो की सीमाए, भोजन मे परिवर्तन, रोबोट का उपयोग, ओजोन पर्त में कमी, इत्यादि। इस प्रकार के लेखन से जैसा ऊपर लिखा, न केवल कल्पना को प्रेरणा मिलती है बल्कि भावी जीवन की चुनौतियों के लिए भी व्यक्ति तैयार होता है।

नाटक और रोल प्ले

शिक्षा में नाटक का महत्वपूर्ण स्थान है। छात्र अपने आपको एक-दूसरे पात्र की स्थिति मे रखकर कल्पना करता है कि अमुक स्थिति मे वह पात्र कैसा व्यवहार करता। दूसरों की मनोस्थिति समझने का यह अच्छा माध्यम है। भाषा का विकास तो इससे जुड़ा ही हुआ है। यहा बोलने और सुनने पर बल है। हमारी शिक्षा मे ज्ञानात्मक पक्ष की प्रधानता रहती है। किन्तु जीवन में भावनात्मक पक्ष का उतने ही महत्व का स्थान है। शान्ति निकेतन मे टैगोर ने नाटक को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। वे स्वय नाटक लिखते और रंगमच पर किसी पात्र की भूमिका निभाते थे। इन नाटको में छात्र भाग लेते थे। रिहर्सल के लिए काफी समय दिया जाता था। कुछ अध्यापकों का कहना था कि इसके कारण पढ़ाई के लिए कम समय मिलेगा, किन्तु टैगोर ने इस आलोचना की कभी परवाह नही की और नाटको का कार्यक्रम यथावत् चलता रहा।

रोल प्ले नाटक के समान है। अन्तर इतना है कि जो कुछ पात्र को कहना होता है वह कही लिखा हुआ नही होता। उसे केवल एक स्थिति बताई जाती है जिस स्थिति मे उसे अपने आपको रखना है। उस स्थिति मे स्वाभाविक रूप से जो विचार और उद्‌गार उसके मन में उठे उन्हें उसको प्रस्तुत करना होता है। सामाजिक जीवन की समस्याओं को समझने और उनका निराकरण ढूंढने में यह विधि उपयोगी सिद्ध हुई है।

कविता और कहानी लेखन

सामान्यतया हम बच्चो से कविता लेखन की अपेक्षा नही करते। किन्तु यदि उन्हें कविता लिखने को कहा जाए तो यह उनके लिए एक अच्छा अनुभव रहेगा। अशोक निरफिराके के अनुसार प्रारंभ मे हम "वार्म अप" के लिए तुकबन्दी ले सकते हैं। शिक्षक अपने आपको लेकर एक तुकबन्दी प्रस्तुत करे।

क्लास मे पाण्डे आता
शोर उसे नही भाता,
उसके पास एक है छाता
पान तमाखू वह नहीं खाता।

जब इस प्रकार की तुकबन्दी शिक्षक अपने आप पर प्रस्तुत करता है तो न केवल छात्रो का विनोद होगा, बल्कि कक्षा का वातावरण भी तनाव मुक्त होगा। अब शिक्षक छात्रों को ऐसी ही तुकबन्दी अपनी कक्षा के किसी छात्र को लेकर बनाने को कहेगा जिसमे कुछ-कुछ चिढ़ाने का, कुछ हास्य का पुट हो।

इसके बाद हम कविता रचने को ले सकते है। टौरेन्स ने एक विधि बताई है जिसमें पांच पंक्ति की कविता बनती है। इसे सिनक्वेन कहते हैं।

पहली पंक्ति : एक शब्द का शीर्षक।
दूसरी पंक्ति : दो शब्द जो शीर्षक का वर्णन करते हो।
तीसरी पंक्ति . तीन शब्द जो किसी कार्य का वर्णन करते हों।
चौथी पंक्ति : चार शब्द जिनमे कोई भाव हो।
पांचवी पक्ति · एक शब्द जिसमे सबका सार हो।

इसके लिए पहले एक उदाहरण लेना होगा। जैसे, पहली पक्ति में पक्षी ले तो दूसरी में पक्षी क्या है, तीसरी में पक्षी क्या करता है, चौथी मे पक्षी के प्रति हमारे

उद्‌गार, और पांचवीं में एक शब्द में कविता का सार प्रस्तुत करता हो।

इस प्रकार का प्रयोग आठवीं के बच्चो को दिया गया। प्रत्येक छात्र ने अपने आप विषय चुन कर कविता लिखी। एक छात्र की कविता नीचे दी जा रही है।

जीवन

जन्म मरण

रोटी कपडा मकान

रोना हसना खोना पाना

सफर

अधूरी कविताओ को प्रस्तुत कर उन्हे पूरी कराना एक दूसरी विधि हो सकती है।

कहानी लेखन में अधूरी कहानी दी जा सकती है। छात्र इसे अपने मन से पूरा करें। अधूरी कहानी ऐसी होनी चाहिए जिसमे कुछ रहस्य छिपा हो जो कल्पना को प्रेरित करे। सक्षेप में नीचे एक उदाहरण दिया गया है।

तूफानी रात थी। तीन व्यक्ति एक मकान की ओर जा रहे थे। मकान में अंधेरा था। उन्होंने बाहर का गेट खोला। तभी एक कुत्ता भोकने लगा।......

अब छात्रो से कहें कि कहानी को पूरा करो। एक दूसरा तरीका है कि हम छात्रो को चार कॉलम बनाने को कहें। पहले कॉलम मे कहानी के पात्र लिखे। ये काल्पनिक व्यक्ति, पशु, पक्षी, वस्तुएं, विचित्र व्यक्ति हो सकते हैं। दूसरे कॉलम मे हम उद्देश्य या उपलब्धि लिखें। पात्र क्या करना चाहते हैं, क्या पाना चाहते है। यहा हम पहले कॉलम पर ध्यान न दे और जो भी मन मे आए उसे लिखें। तीसरे कॉलम मे हम कठिनाइयां और रुकावटें लिखें। चौथे कॉलम में अन्त मे क्या होता है यह लिखें। कई प्रकार के अन्त लिखे। अब हम चारों कॉलम से कुछ-कुछ चुन लें। इनको मिलाएं तो कहानी की रूपरेखा बन जाती है। कई कहानियां बन सकती है। किसी एक को चुनकर कहानी लेखन किया जा सकता है।

सृजनात्मकता के विकास पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। इस लेख में कुछ प्रमुख बिन्दुओं की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। शिक्षक इस बात पर विचार करें कि वे कौन से कारक हैं जो सृजनात्मकता के विकास में बाधा डालते हैं। इनको दूर करने या कम करने के क्या उपाय हैं। दूसरी ओर शिक्षक यह भी सोचे कि उन्हें क्या करना चाहिए जिससे छात्रों की कल्पना के विकास को बल मिल सके, छात्र अधिक से अधिक आत्मनिर्भर बन सकें और वर्तमान एव भविष्य की समस्याओं पर स्वयं विचार करे। ❑❑

151, आराधना नगर

भोपाल, म.प्र.

वाचन की शिक्षा एवं सृजनात्मकता

☐ जी. एल. अरोड़ा

सृजनात्मकता अनेक मानसिक योग्यताओं एवं गुणों का सम्मिश्रण है। वर्तमान प्रचलित शिक्षण प्रक्रिया में बालकों में सृजनात्मकता के विकास की सीमित संभावनाएं हैं क्योंकि अधिकांश अध्यापक विद्यार्थियों को परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करने के लिए तैयार करना ही अपना सर्वोच्च कर्तव्य मानते हैं। अधिक तथ्यों, नियमों व विषय-वस्तु को रट लेने मात्र से सृजनात्मक चिन्तन संबंधी योग्यताओं का विकास संभव नहीं है। प्रस्तुत लेख में सृजनात्मकता विकास के लिए आवश्यक उपयुक्त प्रविधियों पर अति प्रभावी ढंग से प्रकाश डाला गया है।

अधिकाश शिक्षाविद्, अध्यापक एवं अभिभावक वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से संतुष्ट नही है। ये लोग समय-समय पर शिक्षा की अनेक त्रुटियों की ओर देश व समाज का ध्यान आकर्षित करते रहते है। त्रुटियों की लम्बी सूची में एक ऐसी त्रुटि भी है जिसके बारे में पिछले कुछ वर्षो मे पर्याप्त चर्चा हुई है। अनेक मनोवैज्ञानिकों एव शिक्षाशास्त्रियों ने इस बात पर बल दिया है कि शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बच्चों मे सृजनात्मकता का विकास करना है परन्तु अधिकाश विद्यालयों में जिस प्रकार की शिक्षण प्रक्रिया प्रचलित है उसमे बालक की सृजनात्मकता के विकास की संभावनाएं बहुत सीमित है। चूकि परीक्षा में अच्छे अक प्राप्त करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बन कर रह गया है इसलिए अधिकांश अध्यापक बालको को परीक्षा के लिए तैयार करना ही अपना एकमात्र कर्तव्य मानते हैं। परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि ज्यादा से ज्यादा तथ्यो एव विषय-वस्तु को रट लिया जाए जिससे परीक्षा में पूछे गए प्रश्नो के उत्तर लिखने में सुविधा हो और यह निर्विवाद सत्य है कि रटने मात्र से सृजनात्मकता अर्थात् सृजनात्मक चिन्तन सबधी योग्यताओं का विकास सम्भव नही है, परन्तु यह भी सत्य है कि उपयुक्त शिक्षण विधियो के उपयोग के द्वारा बालकों की सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि सृजनात्मकता के विकास के लिए उपयुक्त विधिया कौन-सी हैं और इनका उपयोग किन विषयों के शिक्षण के लिए किया जा सकता है।

सृजनात्मकता के विकास के सदर्भ में उपयोगी शिक्षण विधियो पर चर्चा करने से पूर्व सृजनात्मकता का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। सृजनात्मकता अनेक मानसिक योग्यताओ एवं गुणो का मिश्रण अथवा समूह है। कुछ प्रमुख योग्यताएं निम्नलिखित हैं—

- ☐ **समस्याओं के प्रति सजगता**— प्रत्येक मानव के आसपास अनेकानेक समस्याएं विद्यमान होती है परंतु कुछ व्यक्ति उन्हें तुरंत पहचान लेते है जबकि कुछ अन्य व्यक्ति उनके प्रति अनभिज्ञ बने रहते हैं। समस्याओ को पहचानने वाले व्यक्ति में सृजनात्मकता भरपूर मात्रा मे होती है। इसके फलस्वरूप वह प्रस्तुत समस्या के कारण एव उसके समाधान के उपाय ढूंढ़ने में जुट जाता है। पदार्थो, संस्थाओ, प्रशासन एव प्रबंधन, व्यवस्था आदि के विषय मे प्रश्न पूछ कर यह पता लगाया जा सकता है कि कोई व्यक्ति समस्याओं के प्रति कितना सजग है।
- ☐ **विचार बाहुल्य**— सृजनशील व्यक्ति बडी तेजी से किसी विषय अथवा समस्या पर अनेक विचार प्रस्तुत कर सकता है। द्रुतगति से अधिक विचार प्रस्तुत करने की योग्यता सृजनात्मकता मे सम्मिलित योग्यताओ मे से एक महत्वपूर्ण योग्यता है।
- ☐ **लचीलापन**— चिन्तन में लचीलापन सृजनात्मकता

अथवा सृजनात्मक चिन्तन का महत्वपूर्ण आयाम है। सृजनशील व्यक्ति किसी विषय पर एक ही दिशा मे अग्रसर न होकर विभिन्न दिशाओ मे बढ़ता है अर्थात् वह एक ही विषय पर विभिन्न प्रकार के विचार अथवा सुझाव प्रस्तुत कर सकता है।

- **मौलिकता**– मौलिक चिन्तन सृजनात्मकता का एक महत्वपूर्ण आयाम है। सृजनशील व्यक्ति किसी विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए अथवा दैनिक जीवन की समस्याओ का समाधान सोचते हुए कुछ ऐसे विचार प्रस्तुत करता है जो बिल्कुल नए होते हैं अथवा पुराने विचारों का परिवर्तित रूप होते है।
- **नवीनता के लिए संशोधन/ परिवर्तन**– उपलब्ध पदार्थों एवं प्रक्रियाओ में सुधार हेतु योग्यता भी सृजनात्मकता में सम्मिलित है। सृजनशील व्यक्ति में इस प्रकार की योग्यता पर्याप्त मात्रा में होती है।
- **जिज्ञासा**– सृजनशील व्यक्ति में नई-नई बातों को जानने व समझने की लालसा हर समय रहती है। जो कुछ वह देखता, पढ़ता अथवा सुनता है, उसे पूरी तरह समझना उसकी प्राथमिकता बन जाती है। ऐसा व्यक्ति ही कोई नवीन खोज अथवा आविष्कार कर सकता है।

प्रायः सभी अध्यापक एवं अभिभावक स्वीकार करते हैं कि अधिकांश विद्यालयों मे अध्यापको द्वारा अपनाई जाने वाली शिक्षण विधियां ऊपर लिखित योग्यताओं के विकास में अधिक सहायक सिद्ध नहीं होती हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रचलित शिक्षण विधियों में इस प्रकार के परिवर्तन किए जाएं कि बालकों में सृजनात्मकता से सम्बन्धित योग्यताओ का विकास सम्भव हो सके। शिक्षाविदों, अनुसंधानकर्ताओं और सृजनशील अध्यापको ने विभिन्न विषयों के शिक्षण हेतु ऐसी शिक्षण विधियो का विकास किया है जो परम्परागत विधियों के मुकाबले सृजनात्मकता के विकास में अधिक कारगर सिद्ध हुई हैं। प्रस्तुत लेख मे चर्चा की गई है कि भाषा में वाचन की शिक्षा के द्वारा सृजनात्मकता का विकास किस प्रकार किया जा सकता है।

पाठ्य-वस्तु का वाचन करते समय विभिन्न व्यक्ति अलग-अलग शैलियां अपनाते है। कुछ व्यक्ति किसी भी पुस्तक, लेख अथवा कहानी की जानकारी प्राप्त करने और अपने ज्ञान में वृद्धि के उद्देश्य से पढ़ते हैं। वे लेखक द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री को ही पर्याप्त एवं आदर्श मानते हैं। यह शैली सामान्य बुद्धि के व्यक्ति और छोटी कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी अपनाते हैं। कुछ अन्य व्यक्ति पाठ्य-वस्तु का वाचन आलोचक की दृष्टि से करते हैं। वे पठित सामग्री में त्रुटियां ढूंढ़ने के लिए अधिक प्रयत्नशील रहते हैं। कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो पढ़ते समय अथवा पढ़ने के उपरान्त यह सोचते हैं कि प्रस्तुत समस्या के विषय में लेखक ने जो कारण बताए है उनके अतिरिक्त और कौन-से कारण हो सकते हैं, लेखक द्वारा दिए गए कहानी के अन्त के अतिरिक्त कहानी का अन्त अन्य किस प्रकार हो सकता है, पुस्तक में सम्मिलित सामग्री को और किस क्रम मे प्रस्तुत किया जा सकता है, इत्यादि। इस प्रकार की शैली का अनुसरण करने वाले निश्चित रूप से सृजनशील पाठक होते हैं। सृजनात्मकता का विकास करने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों को सृजनशील पाठक बनाने का प्रयास किया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यार्थियो को उपयुक्त प्रशिक्षण देने की आवश्यकता होगी जिसके लिए अध्यापक निम्नलिखित प्रविधिया अपना सकते हैं।

विषय-वस्तु का विस्तार

विद्यार्थियों को वाचन के उपरान्त पठित सामग्री को अनेक प्रकार से विस्तार देने के लिए कहा जा सकता है। यदि उन्होंने किसी समस्या पर निबन्ध पढ़ा है तो उन्हे लेखक द्वारा दिए गए समस्या के कारणो के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण सोचने के लिए कहा जा सकता है। इसी प्रकार लेखक द्वारा सुझाए गए उपायों के अतिरिक्त कुछ अन्य उपाय सोचने के लिए उन्हे प्रोत्साहित किया जा सकता है। उदाहरणतया नगरो मे बढ़ते हुए प्रदूषण अथवा अपराधों पर निबन्ध पढ़ने के उपरान्त विद्यार्थी यह सोचें

कि लेख मे दिए गए कारणो तथा उपायो के अतिरिक्त और कौन-से कारण तथा उपाय हो सकते हैं।

विधा परिवर्तन

यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक उपन्यासकार, नाटककार अथवा कवि अपने उपन्यासों, नाटकों अथवा महाकाव्यो के लिए नितान्त नवीन विषय-वस्तु का सृजन करे। वह ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा लोककथाओं से कुछ सूत्र ले लेता है तथा उन्हें अपनी कल्पना शक्ति से निखार कर अपनी रचनाओं की विषय-वस्तु बना लेता है। वाचन करवाते समय अध्यापक भी विद्यार्थियों को कुछ इसी प्रकार अभ्यास करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। यदि उन्होंने कोई कहानी पढ़ी है तो उन्हे उस कहानी पर आधारित नाटक लिखने के लिए कहा जा सकता है। जीवनी के किसी मार्मिक अंश को आधार बनाकर वे कविता, निबन्ध अथवा संवाद लिखने का प्रयास कर सकते हैं।

तुलनात्मक अध्ययन

पठित सामग्री में यदि कोई ऐसी बात है जिससे सबंधित किसी तथ्य से विद्यार्थी पहले ही परिचित हैं, तो उन्हें दोनो तथ्यो अथवा स्थितियों मे समानता तथा भिन्नता पर चर्चा करने के लिए कहा जा सकता है। किसी अन्य देश के जन-जीवन पर लेख पढ़ते समय विद्यार्थी अपने देश अथवा किसी अन्य देश के जन-जीवन के साथ उसकी तुलना करे। किसी अन्य राज्य के त्यौहारो के बारे में पढते समय वे अपने राज्यों के त्यौहारों के साथ उनकी तुलना करते हुए समानताओ, भिन्नताओं आदि पर चर्चा करे। महाराजा रणजीत सिंह पर पाठ पढ़ने के उपरान्त विद्यार्थी सोचे कि यदि आज के युग में महाराजा रणजीत सिह को युद्ध करना पडे तो उसका स्वरूप क्या होगा। कहानी, नाटक व उपन्यास पढ़ते समय अथवा पढने के उपरात विद्यार्थी विभिन्न पात्रों की चरित्रगत समानताओं अथवा भिन्नताओ पर विचार कर सकते हैं। कभी-कभी उन्हे अन्य ख्याति प्राप्त लेखक के प्रसिद्ध पात्रो के साथ इन पात्रो की तुलना करने के लिए भी कहना चाहिए।

कल्पना आधारित अभ्यास

कहानी, नाटक अथवा उपन्यास पढ़ने के उपरान्त विद्यार्थी विचार करे कि इन का 'आरम्भ' अथवा 'अन्त' अन्य किस प्रकार से हो सकता था। सुझाए गए परिवर्तनों का समावेश करते हुए उन्हें पठित सामग्री की पुनर्रचना करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। उन्हें यह भी सोचने के लिए कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कहानी मे यदि कोई घटना घटित न हुई होती अथवा एक अन्य घटना घटित हो जाती तो इस कहानी का अन्त कैसे होता। उन्हें कहानी, नाटक, निबन्ध अथवा उपन्यास के अन्य उपयुक्त शीर्षक सोचने के लिए भी कहा जा सकता है। विद्यार्थियो को यह भी कहा जा सकता है कि वे किसी पात्र अथवा लेखक के साथ होने वाले अपने काल्पनिक वार्तालाप को लिखे अथवा सुनाए। विद्यार्थियों को किसी पुस्तक का शीर्षक बताकर यह कल्पना करने के लिए कहा जा सकता है कि पुस्तक में किस प्रकार की सामग्री होगी।

अन्य माध्यमों में पठित सामग्री का प्रस्तुतीकरण

अधिकाश पाठक तो शब्दों के माध्यम से पठित सामग्री का विस्तार कर सकते हैं तथा उसे दूसरों तक पहुंचा सकते है। परन्तु कुछ ऐसे भी विद्यार्थी होते है जो पठित सामग्री को भली-भांति समझते हुए भी शब्दों के माध्यम का उपयोग करने में असमर्थ होते है। परन्तु सम्भव है कि उनमें पठित सामग्री को चित्रकला अथवा नाट्यकला के माध्यम से अभिव्यक्त करने की क्षमता रखते हों। विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति का भिन्न माध्यम चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। शब्दों के माध्यम में अभ्यस्त विद्यार्थियो को भी अन्य माध्यमो का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

पठित सामग्री का दैनिक जीवन में उपयोग

पुस्तकीय सामग्री का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हमारे दैनिक जीवन पर अवश्यमेव प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थियो को यह सोचने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि पढ़ी अथवा पढ़ाई जा रही सामग्री का उनके दैनिक जीवन

में क्या उपयोग हो सकता है। शिक्षा मनोविज्ञान पर कोई लेख पढ़ते समय अध्यापक यह सोच सकते हैं कि लेख में दिए गए नियमों एवं सिद्धान्तों का उपयोग वे कक्षा में अध्यापन अथवा अनुशासन बनाए रखने में कैसे कर सकते है। किसी ऐतिहासिक घटना पर आधारित लेख अथवा कहानी पढ़ने के उपरान्त विद्यार्थी यह सोचें कि घटना विशेष से वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में क्या शिक्षा प्राप्त की जा सकती है।

पठित सामग्री पर आधारित अनुसंधान

विद्यार्थी यदि पुस्तक में कोई ऐसा तथ्य पढ़ते हैं जिससे वे पहले परिचित नहीं हैं तो उन्हें सर्वेक्षण, निरीक्षण अथवा आत्मचिंतन द्वारा स्वीकारने अथवा नकारने की इच्छा उनके मन में उत्पन्न होनी चाहिए। यदि वे पुस्तक में 'चिन्ता' के विषय में पढ़ते हैं तो उन्हें आत्मचिन्तन तथा अन्य लोगों के व्यवहार का निरीक्षण कर के पुस्तक में प्रस्तुत तथ्यों तथा विचारों की पुष्टि करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

पठित सामग्री की पुनर्रचना

विद्यार्थियों को कहानी अथवा नाटक के पात्रों का चयन या रद्द कर, उनमें एक या अधिक स्थितियों को बदल कर अथवा नकार कर, उनमें कुछ नए पात्र व पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों में परिवर्तन कर कहानी अथवा नाटक की पुनर्रचना करने के लिए कहा जा सकता है। इसी तरह सोचने के लिए भी कहा जा सकता है कि यदि नायक तथा उसके सहयोगी ने मित्रता के स्थान पर शत्रुता की होती तो कथा वस्तु का विकास किस प्रकार होता।

प्रस्तुत लेख में सृजनात्मकता समूह से सम्बन्धित मानसिक योग्यताओं के विकास हेतु कुछ सुझाव दिए गए हैं। ये सभी सुझाव भाषा शिक्षण के अंतर्गत वाचन की शिक्षा के संदर्भ में दिए गए हैं। सृजनशील अध्यापक भाषा शिक्षण के अन्य पहलुओं जैसे निबन्ध लेखन, गद्यांश लेखन के संदर्भ में भी इसी प्रकार की विधियों का सृजन कर सकते हैं।" समूची शिक्षण प्रक्रिया में रटने तथा अनुकरण के स्थान पर बालकों को स्वतंत्र एवं मौलिक चिंतन का अभ्यास करने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए।

423/7, अर्बन एस्टेट, गुड़गांव
हरियाणा

सृजनात्मक प्रयास के लिए शिक्षण

❑ सुषमा गुलाटी

संदर्भित लेख सृजनात्मकता की अवधारणा, उसमें निहित विचार प्रक्रिया, कुशलताओं, योग्यताओं, अभिप्रेरणाओं और गुणों जो कि सृजनात्मक प्रयास के लिए मूलभूत हैं उनका स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है। सृजनात्मकता के लिए शिक्षण का उद्देश्य बच्चों का सम्पूर्ण विकास करना, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को उन्नत बनाना तथा शिक्षकों के व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक विकास को बेहतर करना है। लेख में एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है कि विभिन्न विषयों को पढ़ाते समय सृजनात्मकता को बढ़ावा देना संभव है। शिक्षकों के उचित आचार- व्यवहार तथा बच्चों के साथ अन्योन्यक्रियाओं से सृजनात्मक शिक्षण के लिए उचित वातावरण सुनिश्चित होता है। लेखिका द्वारा निर्मित तथा प्रयोग किए हुए प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तरों के लिए उपयोगी क्रियाकलापों में प्रयुक्त कुछ शिक्षण रणनीतियों को भी प्रस्तुत किया गया है।

क्या हम बच्चों को सृजनात्मक होना सिखा सकते हैं? क्या वे जन्म से ही सृजनात्मक होते है? क्या सृजनात्मकता कुछ विशेष व्यक्तियों जैसे एडीसन, आइंसटीन, मोजार्ट, पिकासो में ही पाई जाती है अथवा यह एक मानकीय प्रक्रिया है जो प्रत्येक मानव मे विद्यमान होती है? ये कुछ प्रश्न हैं जो शिक्षको द्वारा अकसर पूछे जाते हैं।

पहले यह आम धारणा थी कि सृजनात्मकता को सिखाया नहीं जा सकता। सृजनात्मकता को कम या अधिक नहीं किया जा सकता। इस विचारधारा ने काफी विवाद उत्पन्न किया। तथापि अब यह आम मत है कि सृजनात्मकता के सामर्थ्य को पूर्ण तथा अधिकतम सीमा तक विकसित किया जा सकता है।

अब इस विषय पर शायद ही कोई मतभेद है कि सृजनात्मकता, जो योग्यताओ, कुशलताओं, अभिप्रेरणाओं, व्यक्तित्व गुणों का प्रतिफल है, आनुवंशिकता तथा वातावरण दोनों की उपज हैं। यदि सृजनात्मकता केवल आनुवंशिकता से ही निर्धारित होती तो शिक्षक इसे पोषित करने के लिए शायद ही कुछ कर पाते, जैसा कि दूसरी मानसिक और शारीरिक विशेषताओं के विषय में होता है। सृजनात्मक सामर्थ्य की सीमा का निर्धारण भी आनुवंशिकता से होता है लेकिन वातावरण संबंधी कारक सृजनात्मकता के विकास को प्रोत्साहित करते हैं। वास्तविकता में यह भी सच है कि सृजनात्मकता के विकास के लिए कितना भी प्रशिक्षण एक औसत व्यक्ति को दिया जाए वह लियोनाडो द विंशी, एडीसन, मेरी क्यूरी, शेक्सपियर अथवा टैगोर जैसा नहीं बन सकता। अधिकतम सृजनात्मक तथा प्रतिभा संपन्न व्यक्ति संभवतः सृजनात्मक सामर्थ्य के एक विशेष मिश्रण के साथ जन्म लेते हैं, एक असाधारण संचालन उन्हें सृजनात्मक निष्पादन की ओर ले जाता है। लेकिन यह भी सच है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सृजनात्मक दक्षताओं को अपने वर्तमान स्तर से ऊपर उठा सकता है। अतः सृजनात्मकता को बढ़ाने के प्रयास में जन्मजात सामर्थ्य को बढ़ा तो नही सकते किन्तु सामर्थ्य को अधिकतम सीमा तक सुनिश्चित कर सकते हैं। विद्यालय ही वह स्थान माना जाता है जहां शिक्षकों द्वारा छात्रों में सृजनात्मक उपलब्धि के लिए आवश्यक कुछ मूलभूत

प्रस्तुत लेख जरनल ऑफ इन्डियन एजुकेशन पत्रिका के नवम्बर 2000 अक में प्रकाशित विषय-वस्तु का पुनरवलोकित हिन्दी अनुवाद है।

आधार, योग्यताए, कौशल तथा आचार-व्यवहार विकसित करने के लिए सुव्यवस्थित प्रयास किए जा सकते है। इसे प्राप्त करने के लिए आरभिक स्तरो से ही विद्यालय में सृजनात्मक अभिव्यक्ति तथा उसके विकास के लिए प्रशिक्षण देने संबधी उचित वातावरण प्रदान करने की आवश्यकता है। ऐसा संभव है, यह शोध प्रमाणों द्वारा इंगित किया गया है।

सृजनात्मक प्रक्रिया में क्या समाहित है और यह कैसे कार्यशील होती है?

सृजनात्मकता को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से समझने के प्रयास किए गए हैं। इसे परिभाषित करने के लिए पुस्तको पर पुस्तकें लिखी गई। विभिन्न उपागमों के पक्ष और विपक्ष में दलीलें दी गई हैं। इस विषय पर विभिन्न विचारों और निष्कर्षों पर बहस का एक मुख्य कारण है सृजनात्मकता को कई दृष्टिकोणो और स्तरों से जानने और समझने का प्रयास। वास्तव मे किसी भी स्थिति अथवा मत के पक्ष या विपक्ष में कुछ भी कहा जा सकता है और यह इस बात पर निर्भर करता है कि कोई क्या सिद्ध करना चाहता है? सभी प्रकार के शोधकर्ताओं ने वास्तव में हमें बहुत कुछ सिखाया है। इन विवादों तथा अनसुलझे विषयो के बावजूद भी ऐसी विपुल सामग्री उपलब्ध है जो हमें सृजनात्मकता के स्वभाव और उसके पोषण तथा कक्षा में सृजनात्मकता को बढ़ाने के सकारात्मक प्रभाव के प्रति अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।

वर्तमान संदर्भ मे सकारात्मकता से आशय है– विचारो की सोच में नवीनता लाना, पारपरिक तरीकों से हटना, सोचने के वैकल्पिक मार्ग अपनाना, असामान्य आशय देखना तथा मौलिक विचारों तक पहुंचने के लिए प्रत्यक्ष रूप से असम्बद्ध वस्तुओं में नए संबंध खोजना आदि।

सृजनात्मक चिंतन में व्यक्ति वास्तविक समस्या की पहचान करता है, समस्या के विभिन्न पहलुओं पर एकाग्रचित्त होता है, अप्रत्यक्ष पहलुओं के बारे में जागरूक होता है, उसका खुलासा करता है अथवा पुनर्परिभाषित करता है, उन समस्याओं की पहचान करता है, जो अधिक प्रबंधन या हल करने योग्य हो, वैकल्पिक हल और वैकल्पिक व्याख्या प्राप्त करता है। अनुसधानो से ज्ञात हुआ है कि एक व्यक्ति अथवा समूह जितने अधिक विकल्प प्रस्तुत करता है, समस्याओ के सृजनात्मक समाधान की सफलता के उतने ही अधिक अवसर होते हैं। अतः सृजनात्मक उत्पादन के लिए वैकल्पिक चिंतन में विविधता आवश्यक है तथापि विकल्पों को तलाशने मे कुछ प्रयासों की आवश्यकता है। जैसे ही किसी व्यक्ति को एक समस्या का पता चलता है, उसे तुरंत यह भी ज्ञात हो जाता है कि उसके समाधान के लिए उसे क्या करना है। यदि वह व्यक्ति कोई संतोषजनक हल नहीं ढूंढ़ पाता तो ही वह अधिक जानकारी पाने के लिए प्रेरित होगा और वैकल्पिक समाधानों की दिशा में अनुमान लगाएगा। जब कोई व्यक्ति किसी एक अथवा अधिक विकल्पो से सन्तुष्ट नहीं हो पाता तो उसे अतिरिक्त विकल्प ढूंढ़ने के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसी स्थिति मे बडी संख्या में विचार उत्पन्न होगे जो अन्यथा न तो उत्पन्न होंगे और न ही उन पर विचार होगा। इस अवस्था में यह जरूरी है कि मन में उत्पन्न होने वाले विकल्पो को तुरन्त स्वीकार करने के आकर्षण से बचा जाए, समस्या के अपरिपक्व समाधानों को ही हल न माना जाए और अपने दिमाग को सृजनात्मक विचारों के लिए खुला रखा जाए।

यद्यपि बड़ी संख्या में विचारों के उत्पन्न होने से मौलिक विचारों के उत्पन्न होने की सभावना बढ़ जाती है किन्तु इस बात की कोई निश्चितता नहीं है कि ऐसा होगा ही। सृजनात्मक चिंतन तथा समस्या के समाधान के लिए स्वभावगत प्रत्यक्ष तथा एक मानसिक अनुवात दूरी आवश्यक है। यहां मौलिक विचारों की उत्पत्ति में प्रेरक कारक विशेष रूप से आवश्यक है। मौलिक विचारों को उत्पन्न करने मे व्यक्ति प्रेरित व निश्चिंत होना चाहिए। विचारों की मौलिकता को सुगम बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के विचारों अथवा सम्मिलित विचारो के साथ कल्पना सहित प्रयोग करते हुए अस्पष्टताओं के साथ खिलवाड़ करना पड़ता है। इस स्तर पर यदि वयस्क को अपने निर्देशन मे कार्यरत छात्रों की समस्या समाधान

अथवा विचार प्रयासों में सृजनात्मकता की झलक मिलती है, तो प्रशसा करने से उनके प्रयासों को बनाए रखने मे सहायता मिलती है। वह प्रोत्साहित होकर आगे अनुसरण करता है और समस्या का समाधानकर्ता उनके समाधानो अथवा विचारों की कमजोरियो, कमियों को जान पाता है। अंततः इन अनुभवो के आधार पर समाधानकर्ता रिक्त स्थानो की पूर्ति, समस्या की पुनर्परिभाषा, उनकी सोच को आगे बढाने या सृजनात्मक समाधान के लिए जो भी करना आवश्यक हो, करने के लिए प्रोत्साहित महसूस करता है। चूंकि बच्चे केवल एक सही और उत्तम उत्तर के बारे में सोचने के आदी होते हैं, इसीलिए अन्य सभावनाओ के बारे मे सोचने की या बाद में मूल्याकन के लिए विचार राशि बनाने की अनिच्छा होती है। जहा ऐसी बात हो, वहा यह स्पष्ट करना जरूरी होता है कि असाधारण और मौलिक विचार उत्पन्न करना ठीक है। विचारो को मिलाने तथा सश्लेषण करने से तत्वों में नए सबंध बनते है। इस पर एक नया दृष्टिकोण प्राप्त करने के लिए इसे किसी जानी हुई वस्तु से मिलाया जाता है। मौलिक विचारों की उत्पत्ति के लिए इस योग्यता या कौशल की आवश्यकता होती है।

वस्तुओ तथा अवधारणाओ की संकल्पना करने की योग्यता सृजनात्मक चितन को आसान बनाती है तथा कला, लेखन, संगीत रचना, सृजनात्मक नृत्य तथा कई अन्य सृजनात्मक उपलब्धियों के क्षेत्रो मे सफल सृजनात्मक कार्य के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। छविया जो जीवंत तथा प्रत्यक्ष से परे हो, कल्पना शक्ति की प्रचुरता की द्योतक हैं। स्वप्न चित्र भविष्य की संभावनाओ, परिस्थितियों को विभिन्न कोणों से देखने तथा अनजान के साथ सहज होने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह व्यक्ति को उन सभावनाओ के साथ खेलने का अवसर देती है जो कभी सच भी हो सकती है। स्वप्न चित्र भविष्य के बारे में सार्थक ढंग से सोचने तथा सृजनात्मक सोच में सहायता करते है।

सफल और सृजनात्मक रूप से समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है कि उत्पादित तथा चुने हुए विकल्पों को लागू किया जाए। ऐसे बहुत लोग है जिन्होंने कोई आविष्कार किए या कोई बडी बात सोची किन्तु उस सृजनात्मक विचार के वितरण या विस्तार पर कार्य नहीं किया। किसी चीज एक कहानी या कोई वैज्ञानिक आविष्कार को उत्पन्न करना ही काफी नहीं है इसका विस्तार से वर्णन आवश्यक है ताकि उसका वास्तविक मूल्य पता लग सके। एक कहानी या एक विचार मन मे एक क्षण में उत्पन्न हो जाता है किन्तु उसे लिखने पुनर्लेखन, उचित शब्दो और वाक्यो को यहां-वहा बदलने ताकि वह सही सप्रेषण कर सके, में काफी समय लगता है। इसके लिए दृढ़ता, वचनबद्धता तथा अभिप्रेरणा की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि सृजनात्मकता *की अभिव्यक्ति कई कारकों जैसे व्यक्तिगत गुण*, कौशल, स्थान तथा अभिप्रेरणा की जटिल अंतक्रिया पर निर्भर करती है जो प्रत्येक व्यक्ति के भीतर की सामर्थ्य को प्राप्त करने की कुंजी है। ये कारक आवश्यक रूप से सृजनात्मकता से जुड़े हुए हैं तथा मानव प्रयास के किसी क्षेत्र मे सृजनात्मक उपलब्धि तथा सृजनात्मक निष्पादन के लिए आवश्यक हैं। एक बड़े परिप्रेक्ष्य मे देखें जैसे कि वैज्ञानिकों और लेखको के सृजनात्मक व्यवहार के अध्ययन ने दर्शाया है; ये गुण उच्च सृजनात्मक व्यक्तियों की विशेषताए है। सभी लोगों मे बराबर मात्रा में सृजनात्मक उपलब्धि के लिए इन गुणों का होना आवश्यक नही है किन्तु इन योग्यताओं, कौशलो तथा रुझानो द्वारा सृजनात्मकता सहज रूप से उभरती है और उनकी अन्योन्यक्रिया से सृजनात्मक चिंतन और व्यवहार उत्पन्न होते हैं।

अनुसंधान से ज्ञात होता है कि लगातार प्रयोग से तथा अभ्यास द्वारा इन गुणों को वैसे ही पोषित किया अथवा बढ़ाया जा सकता है जैसे हम अपनी दूसरी योग्यता और कौशलों को पुष्ट करते हैं। ऐसे शिक्षक, जिनमे छात्रों मे सृजनात्मकता को बढ़ाने की लगन है, उनके लिए सृजनात्मकता से संबंधित योग्यताओं और गुणों को समझना बहुत सहायक होगा। जब तक यह न जानेगे कि इनमे क्या निहित है, तब तक उन्हें इस दिशा में अपना उद्देश्य स्पष्ट दिखाई नहीं देगा।

योग्यताएं, कौशल, प्रक्रियाएं तथा सृजनात्मकता से जुड़े गुण

विचार प्रवाहिता (Fluency)

बहुत से विचारों, उत्तरों, समाधानो, प्रश्नो या सुझावो (मौखिक या अमौखिक) का उत्पन्न होना।

विचारो या दृष्टिकोणों का प्रवाह।

प्रासंगिक उत्तरों/ विचारों की संख्या या मात्रा।

विविधता (Flexibility)

अनेक प्रकार के विचारो, प्रश्नों, कारणों, समाधानों का उत्पन्न होना, जैसा कि उपागमो में बदलाव अथवा सोच की दिशा मे परिवर्तन जैसे किसी समस्या के समाधान के लिए चीजों के विभिन्न उपयोग, चित्र, कहानी या विभिन्न सम्भावनाओं के अर्थ देना।

मौलिकता (Originality)

असामान्य असाधारण, नवीन तथा लीक से हट कर विचार, प्रश्न, प्रस्ताव, समाधान सोचना, विचारों मे नए अंतर्सबध देखकर कार्य करना, दूरस्थ के विचारो को मिलाना, दृष्टिगत तथा सामान्य स्थान से परे देखना, चीजों को नए ढंग से सुधारना तथा उसी वस्तु को नए कोण से देखना।

विस्तारण (Elaboration)

मूल विचार जैसे कि आकृति अथवा कोई वस्तु मे विस्तार जोड़कर आकर्षित बनाना, विचारों के आशय को देखना।

संवेदनशीलता (Sensitivity)

समस्याओं को देखने, महसूस करने, छूटी हुई सूचना को ढूढ़ निकालने तथा असामान्य कमियों को पकड़ने की योग्यता।

भावनाओ, सरचनाओं, दृष्टि, गंध तथा ध्वनि के प्रति संवेदनशीलता।

जिज्ञासा (Curiosity)

पूछना, पर्यवेक्षण, आश्चर्य करना, खोज करना, प्रश्न पूछना, विचार मंथन, आसपास की वस्तुओं के रहस्य के बारे में सोचना, एक विशेष होनी-अनहोनी के विचार का अनुसरण करना और अनुमान लगाना कि अब क्या होगा।

प्रत्यक्षीकरण और कल्पनाशीलता (Visualization and Imagination)

कल्पना करना तथा जीवंत, समृद्ध तथा अच्छी लगने वाली छविया बनाना, आश्चर्य करना और ऐसी बातों के परिणामों के बारे में अनुमान लगाना और परिकल्पना करना जो कभी घटित नही हुई हैं।

स्वायत्तता (Autonomy)

स्वयं सोचना और कार्यो को अपने आप करना, बिना किसी की सहायता लिए स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेना, योजना बनाना तथा चीजों की पहचान करना।

अस्पष्टता की सहनशीलता (Tolerance of ambiguity)

अस्पष्ट, अंतरहित और उलझी हुई परिस्थितियां जो भ्रमित करे या चुनौती बनें, को सहन करना।

पेचीदगी (Complexity)

विभिन्न समस्याओं और विचारों को सुलझाना, अव्यवस्था मे व्यवस्था स्थापित करना, कठिन परिस्थितियों का भी खुशी-खुशी सामना करना।

जोखिम उठाना (Risk-taking)

अनुमान लगाने का साहस रखना, असफलताओ से न डरना, नए कठिन कार्यो को करने का प्रयास करना, सोच समझकर दांव लगाना, अपने विचारों के पक्ष का बचाव करना।

तात्कालिक प्रबंधन (Improvisation)

बिना स्रोतों और सुविधाओं के स्रोत उत्पन्न करना।

खुलापन (Open-mindedness)

नए विचारों को ग्रहण करना, अपरिपक्व निर्णयो के प्रति प्रतिरोध, और उनको उचित समय तक टालना।

"सृजनात्मक" शब्द के प्रस्तुत प्रयोग के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए अतत इन प्रश्नों को पूछना ठीक रहेगा– क्या हम छात्रों को अधिक मौलिक होना और

वस्तुओं या समस्याओं को नए ढग से देखना सिखा सकते हैं? क्या हम उन्हें समस्याओ के प्रति अधिक संवेदनशील होना सिखा सकते हैं? क्या हम उन्हें सिखा सकते हैं कि एक समस्या के कई पहलू हो सकते है? यदि समस्या का केवल एक ही हल है, जैसे कि गणित में अक्सर होता है, क्या छात्र उसे कई प्रकार से हल कर सकते हैं? क्या हम उन्हें स्वय का सबसे अच्छा आलोचक होना सिखा सकते हैं ताकि वे अपने निर्णय पर विश्वास कर सकें? इन सभी प्रश्नों का उत्तर हा में दिया जा सकता है। फिर भी यह ध्यान मे रखना चाहिए कि व्यक्तियों मे सृजनात्मकता से संबंधित योग्यताओं और प्रवृत्तियों में विभिन्नता होती है। सृजनात्मकता के प्रशिक्षण से कोई कितना लाभान्वित होता है यह एक से दूसरे व्यक्ति में भिन्न हो सकता है।

सृजनात्मकता शिक्षण के उद्देश्य और अपेक्षित परिणाम

बच्चो में सृजनात्मक चितन की योग्यताओं और कौशलो को विकसित करने के कई कारण हैं--

- मानव जीवन के लिए सृजनात्मक चिंतन का विकास आवश्यक माना गया है। यह भविष्य मे होने वाले सामाजिक और वैज्ञानिक परिवर्तनो का सामना करने की क्षमता प्रदान करता है। ज्ञान ही काफी नही है। विविधता, मौलिकता, समस्या का सृजनात्मक समाधान, स्वतंत्र चिंतन, पूछताछ का उत्साह, नई चीजो को प्रयोग करने के प्रयास की तत्परता तथा विचारो में खुलापन अधिक महत्वपूर्ण हो रहे है और होंगे। बच्चों को कल की अनजान दुनिया के लिए तैयार करने के लिए, उनको परिवर्तनो के अनुरूप बदलने और चुनौतियों का सृजनात्मक ढग से सामना करने की क्षमता बढाने के लिए यह आवश्यक है कि उनमें सृजनात्मक बनने के गुण विकसित किए जाएं।
- सृजनात्मकता के लिए प्रोत्साहन मनोवैज्ञानिक रूप से कल्याण और व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास में वृद्धि करता है। हमारे जनतात्रिक दर्शन के मूल में यह बात मानी गई है कि प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है और उसे अपनी योग्यता और प्रतिभा के पूर्ण विकास के अवसर दिए जाने चाहिए। प्रत्येक बच्चे को अपने दिमाग को जिस श्रेणी तक संभव हो और जिस क्षेत्र में प्रयुक्त हो, सृजनात्मक ढंग से उपयोग करने देने से उसे आत्मज्ञान की ओर ले जाने के समान है। व्यक्तिगत स्तर पर बच्चे की सृजनात्मक क्षमताओं को विकसित करने में सहायता करना एक तरह से उसके विकास और वृद्धि की प्राकृतिक प्रक्रिया को निरतर बनाए रखना है। यह न केवल उनके सज्ञानात्मक विकास बल्कि उनके व्यक्तित्व के भावनात्मक पहलुओं को भी प्रोत्साहित करता है। जब बच्चों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति प्रोत्साहित की जाती है और सृजनात्मक योग्यताओ के विकास के अवसर प्रदान किए जाते हैं तब उनका आत्मसम्मान, सीखने की इच्छा, सीखने के प्रति सकारात्मक रुझान तथा आत्मविश्वास बढ़ने की भी संभावना रहती है। यदि उनकी प्राकृतिक योग्यताएं और इच्छाए रचनात्मक तथा सकारात्मक दिशा में नहीं मोड़ी गई तो बच्चे जान-बूझकर आक्रामक और विध्वंसकारी हो जाते हैं। इससे व्यवहार संबंधी समस्याए जैसे कि भावनात्मक अशांति पैदा होना और अत में विद्यालय छोड़ने पर आ जाना आदि बातें हो सकती है। अतः सृजनात्मकता को प्रोत्साहन देना मानव विकास की तरफ अधिक प्रभावशाली कदम है।
- स्कूल स्तर पर सृजनात्मकता के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विद्यालयी शिक्षा को अधिक प्रभावकारी बनाती है। आजकल बच्चों को ज्ञान अर्जित करना सिखाया जाता है पर वे यह नही सीख पाते कि ज्ञान को सृजनात्मक ढंग से कैसे प्रयोग करें। सृजनात्मक चिंतन की प्रक्रियाओं का विकास, उससे जुड़ी व्यक्तिगत अभिप्रेरक विशेषताएं दूसरी वस्तुओं के साथ-साथ सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को बढ़ावा देती है। सृजनात्मकता के लिए पढ़ाना बच्चों को स्वयं सूचना एकत्र करने, संगठित

करने, वर्गीकरण करने, अनुमान लगाने, पूर्वकथन करने, जाचने तथा सत्यापन करने के अवसर प्रदान करता है। ऐसे अधिगम अवसर बच्चों को कल्पना शीलता के विस्तृत अनुभव, अंतरों तथा पड़ताल योग्य प्रश्नों से खलने वाले तथ्यों से अपने विचारों को परखने के अवसर प्रदान करते हैं। शिक्षक से तथ्यो को आत्मसात् करने की बजाय ये प्रक्रियाएं अधिगम के प्रति उत्साह प्रदान करती हैं। शोधों से ज्ञात हुआ है कि इससे सभी तरह के छात्रों को लाभ होता है– प्रतिभा संपन्न, कम ग्रहणकर्ता और धीमे सीखने वाला भी।

सृजनात्मकता के लिए शिक्षण केवल छात्रों का ही व्यक्तिगत विकास नहीं करता बल्कि शिक्षकों का भी करता है तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को भी सुधारता है।

जब सृजनात्मकता के लिए शिक्षण एक लक्ष्य हो तो छात्रों के अधिक चैतन्य होने, सृजनात्मक विचारो तथा नए परिवर्तनों को स्वीकार करने की संभावनाएं अधिक होती हैं। वे चेतन मन से सृजनात्मक ढग से सोचने का प्रयास करते हैं तथा व्यक्तिगत विकास में सृजनात्मकता के महत्व के प्रति जागरूक हो जाते हैं। यह प्रक्रिया उनके सर्वागीण विकास में सहायक योग्यताओ तथा गुणों को बढ़ाती है।

सृजनात्मक शिक्षण की रणनितियां बेहतर अधिगम उपलब्ध कराती हैं। सृजनात्मक अधिगम अनुभवों मे भागीदारी होने के लिए बच्चों को प्रेरणा मिलती है। इस तरह छात्रो के लिए कक्षा एक अधिक आनंददायक स्थान बन सकता है। अतः सृजनात्मकता शिक्षण और अधिगम के गुणात्मक सुधार का साधन बन जाएगी।

शिक्षण में सृजनात्मकता को बढ़ाने का लक्ष्य शिक्षको की अपनी व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक वृद्धि को भी बढ़ावा देना है। सृजनात्मक चिंतन में सहायक शिक्षण रणनीतियां इस बात पर विशेष बल देती हैं कि शिक्षक बच्चों के साथ सकारात्मक दृष्टिकोण तथा अन्योन्यक्रिया के मार्ग अपनाएं। यह उन्हे सृजनात्मक शिक्षण कौशलों को अमल में लाने में सहायता करेगी जिससे उनका सृजनात्मक शिक्षक के रूप में विकास हो। समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि बच्चों में सृजनात्मकता का पोषण शिक्षण के उन्नत तरीको के साथ छात्रों व शिक्षकों के अच्छे विकास के द्वारा प्रभावी शिक्षण और अधिगम को आसान बनाने मे सहायक है।

कक्षा के कुछ सिद्धांत

सृजनात्मकता शिक्षण के लिए एक अनुक्रियाशील वातावरण प्रदान करने हेतु निम्नलिखित कुछ सिद्धांत है जिन्हें शिक्षक को कक्षा में उपयोग करना चाहिए। इनका संबंध शिक्षक के रवैए, व्यवहार तथा बच्चों के साथ अन्योन्यक्रिया से है। सही रुख के अभाव में, सृजनात्मक शिक्षण की पद्धतियां, रणनीतियां उपयोगी या प्रभावी नहीं होंगी। यह निम्नलिखित है–

मनोवैज्ञानिक रूप से सुरक्षित वातावरण प्रदान करना

सृजनात्मक शिक्षण का एक मूल सिद्धान्त अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, धमकी, उपहास, कटाक्ष आदि से मुक्त कक्षा के वातावरण का विकास है। ऐसे वातावरण मे रुचि उत्पन्न होती है। बच्चे शिक्षक के साथ अपनी समस्याओं के बारे में खुलकर चर्चा करने मे स्वतन्त्रता अनुभव करते है। अपने विचार और भावनाओ को व्यक्त करने में वे प्रोत्साहित होते हैं। यह किसी तानाशाह शिक्षक द्वारा शासित वातावरण नहीं है और न ही ये संरचना या अनुशासन रहित पूर्ण स्वेच्छाचारी अव्यवस्थित वातावरण है। यह ऐसा वातावरण है जो बच्चे को एक ऐसी रूपरेखा प्रदान करता है, जिसमें बच्चा सीखता है। वास्तव में इसका लक्ष्य छात्र के लिए एक भावनात्मक वातावरण उत्पन्न करना है। जिसमें वह अपने महत्व सम्मान, आत्मविश्वास का अनुभव करे जिससे उसमे आत्म-अनुशासन पैदा हो। कई अध्ययनो से पता चला है कि ऐसा वातावरण जो भय और आशका को कम करे, सृजनात्मक अभिव्यक्ति को बढ़ाता है।

रचनात्मक आलोचना करना

वास्तव में आलोचना शिक्षण का आवश्यक अग है, क्योकि छात्रों को यह समझने देना भी ठीक नही है कि उन्होने

जो किया है वह पर्याप्त है, यद्यपि ऐसा नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में छात्र शिक्षकों में विश्वास खो सकते है क्योंकि शिक्षक हर चीज स्वीकार तो कर लेते हैं परन्तु छात्रो को अधिक सुधारने और अधिक अच्छा करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते। दूसरी तरफ कई बार आलोचना से लगता है कि व्यक्ति पूरी तरह गलत है। आलोचना का अच्छा तरीका छात्र को यह बताना है कि उत्पाद अथवा विचार अभी उस सामर्थ्य, योग्यता या प्रदर्शन के अनुरूप नहीं है वास्तव मे रचनात्मक और सार्थक प्रतिपुष्टि आवश्यक है। नकारात्मक टिप्पणियो से बचने की आवश्यकता है। यह कहने की बजाय कि तुमने फिर यह भूल की, क्या तुम इसे ठीक प्रकार से नहीं करोगे? अध्यापक यह कह सकते हैं क्या तुम इसे करने का कोई और तरीका सोच सकते हो? "या" इसे करने का मैं तुम्हें और दूसरा तरीका बताता हूं। आदि-आदि।

गलतियों को स्वीकार करना

छात्रों को त्रुटियों का मूल्य समझाना चाहिए। सदेश यह है कि भूल अथवा गलतिया काम का हिस्सा हैं और बहुत कुछ सिखाती हैं। ऐसा जानने से बच्चे गलतियों को छिपाने की कोशिश नहीं करेगे और न ही उनसे शर्मिदा होंगे। चाहे बच्चे किसी समय असफलता का अनुभव करते हैं इसका अर्थ किस प्रकार निकाला जाएगा इससे उनकी सृजनात्मकता और अभिप्रेरणा पर विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। कुछ ऐसे पाठ हैं या कुछ ऐसी सीखें हैं जो केवल गलतियो द्वारा ही सीखी जा सकती हैं।

आवेशपूर्ण निर्णयों तथा मूल्यांकन संबंधी टिप्पणियों की अनदेखी करना

कई बार छात्रों से कोई काम और आबंटित कार्य बिना मूल्यांकन के भय के कराया जा सकता है। यदि मूल्यांकन करना ही हो तो छात्रो को अपने कार्य को स्वयं मूल्यांकन करने में शामिल करना चाहिए। शुरू मे तो बच्चों को यह कठिन लगेगा क्योंकि वे आमतौर पर शिक्षक के मूल्यांकन पर निर्भर रहते हैं। यह प्रवृत्ति कुछ हद तक बदली जा सकती है। उदाहरण के लिए बजाय इसके कि वे अपना निर्णय स्वय दे, शिक्षक पूछ सकता है कि उन्होंने जो कार्य किया क्या वे उसे पसंद करते हैं? जो तुमने किया है उसमें तुम्हें सबसे अच्छा क्या लगता है? उसमें सुधार के लिए तुम क्या परिवर्तन करना चाहोगे? जहां मूल्यांकन के केवल कुछ ही वस्तुपरक मानक हों वहां यह अधिक आवश्यक है' किसी भी दशा मे अस्पष्ट, अमूर्त मूल्याकन से बचना चाहिए। कभी-कभी जब सृजनात्मक विचारों को उत्पन्न करने की प्रक्रिया शुरू हो जाए तो मूल्यांकन तथा परिणाम स्थगित कर देना चाहिए।

छात्रों के विचारों तथा प्रश्नों के प्रति प्रतिक्रिया

अपने छात्रों के विचारों तथा प्रश्नों के उत्तर देने में शिक्षक की प्रतिक्रिया अधिक महत्वपूर्ण होती है। यह शिक्षक और छात्र के समकक्ष प्रतिक्रिया ही है जो छात्र के प्रयास को बनाए रखती और बढ़ाती है। शायद शिक्षक की छात्रों के प्रति सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया यह होगी कि वह उनके विचारों और प्रश्नों का आदर करे और व्यक्त करे कि उनके विचार मूल्यवान हैं। मूल अवधारणा यह है छात्र के प्रश्नों और विचारों का आदर हो। हम कई तरह से अनजाने में जताते हैं कि हम दूसरो, विशेषकर यदि वे बच्चे हैं, के सृजनात्मक विचारों और उत्पादों का सम्मान नहीं करते। बच्चो की टिप्पणियों का उपहास करते हुए उनकी आलोचना करना बच्चों की अभिव्यक्ति को अवरुद्ध करता है। यह जरूरी है कि बच्चे स्वयं को अभिव्यक्त करें। जब तक हम उन्हें अभिव्यक्त नहीं करने देंगे, हमें पता नहीं चलेगा कि वे क्या सोचते हैं। तथापि सृजनात्मक विचारों और असामान्य प्रश्नों के प्रति आदर के लिए शिक्षक में ग्राह्य-श्रोता तथा धैर्य आवश्यक हैं।

प्रतिपुष्टि देना

सृजनात्मक चिंतन की प्रक्रिया के लिए किस प्रकार की प्रतिपुष्टि दी गई है यह जरूरी है। यदि छात्रों को नकारात्मक प्रतिपुष्टि दी गई है या उन्हें लगे कि शिक्षक उनकी बात से सहमत नहीं हैं तो वे सूचना पर विभिन्न

दृष्टिकोणों से देखने में रुचि नहीं दिखाएगे और संकोच करेगे। किसी विचार या उत्पाद मे कई कमियां हो सकती हैं, किन्तु यदि उन्हें प्रशसा के द्वारा कुछ स्वीकृति मिले तो उन्हें आलोचना को दूर करने के लिए बचाव नही [illegible] और वे अपने विचारों को अधिक सार्थक ढंग से जांचने को तैयार होंगे। छात्रों की जिज्ञासा बढ़ाए जाने की इच्छा उत्पन्न करने और कल्पना को बढ़ाने के लिए शिक्षक या किसी सहायक के लिए उनका विश्वास पाना आवश्यक है। छात्रो को जानना चाहिए कि उनका उपलब्ध संभावनाओ के परे जाना ही स्वीकार्य है।

जब बच्चे पहचानने, खोजने, अनुमान लगाने, व्याख्या करने की प्रक्रिया मे हों तब आमतौर पर सृजनात्मकता को सराहना चाहिए। नकारात्मक टिप्पणी की जगह यह जरूरी है कि उनके विचार या उत्पाद मे कोई एक तत्व, जैसे कोई अलंकरण अथवा कक्षा में व्यक्त कोई विचार, की प्रशसा की जाए। एक शिक्षक ने जब प्रश्न पूछने के बाद देखा कि पूरी कक्षा शात थी तो उसने कहा कि "मुझे खुशी है कि तुम लोग इस बारे मे सोचने में समय लगा रहे हो। इससे पता चलता है कि तुममे एकाग्र होने की क्षमता है।" चुप्पी में भी उस शिक्षक ने प्रशंसा करने और प्रेरणा देने का मार्ग ढूढ़ लिया। शोध द्वारा पता चलता है कि छात्रों व शिक्षकों की पारस्परिक सराहना वास्तव मे छात्रो के मन पर प्रभाव डालती है शिक्षकों के बारे में एक छात्र ने कहा "यदि हम असफल भी हों तो वह हमें समय देते और उत्साहित करते कि हम अपनी ही गति से कार्य कर सकें।" दूसरे छात्र ने कहा "उन्होंने हमें सदा अपनी सृजनात्मकता और अनोखेपन के साथ सहज रहने दिया।" एक और छात्र ने कहा "हमारे शिक्षक ने सहभागिता को प्रोत्साहित किया। उसने ढेरों प्रश्न पूछे, सभी उत्तर स्वीकार किए और वह भी बिना अपमानित किए।" सकारात्मक बिदुओ को तलाशने मे यदि शिक्षक को लगे कि परिणाम प्रशंसनीय नही हैं तो उसे चाहिए कि वह उसे टुकड़ों में आके और विचार विशेष की प्रंशसा करे।

पुरस्कार के कई रूप हो सकते हैं। ये है— स्वर्ण-तारा (तमगा), पारितोषिक सुविधाए तथा सार्वजनिक मान्यता, जैसे पूरी कक्षा मे बच्चे का लेख पढना, उसे सूचनापट्ट पर प्रदर्शित करना आदि। सबसे अच्छे पुरस्कार अमूर्त होते है जैसे एक मुस्कान, एक हामी, पीठ पर थपकी, प्रोत्साहन का एक शब्द, अपना कार्य प्रदर्शित करने का एक अवसर, बच्चो को अपने कार्य के बारे मे अभिव्यक्त और गर्वित होने देना। जब मूर्त पुरस्कार जैसे तमगे, पट्टिया दी भी जाए तो वे बच्चों को अचानक आश्चर्यजनक ढंग से मिलें। जब वे कोई विशेष अच्छा कार्य करें तो उन्हें अतिरिक्त अधिलाभ भी मिले। मूर्त पुरस्कार इस प्रकार दिए जाने चाहिए कि छात्र सदा उनकी अपेक्षा न करें। पुरस्कार सदा काम के साथ-साथ सृजनात्मक कार्यों के लिए भी देने चाहिए। यदि बच्चों को लगेगा कि वे जो कुछ भी कहते हैं वह पुरस्कारों के कारण है तो इससे उनकी सृजनात्मकता कम होगी। शोधों से ज्ञात हुआ है कि जब बच्चे पुरस्कारो को ध्यान मे रखकर कुछ करते हैं, उनकी आंतरिक अभिप्रेरणा क्रमशः कम होती है।

आंतरिक अभिप्रेरणा बढ़ाना

सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने का एक महत्वपूर्ण ढंग आंतरिक अभिप्रेरणा को बढ़ाना है जैसे किसी कार्य को उसी की खातिर करने की प्रेरणा, किसी कार्य को करने की प्रेरणा क्योकि वह रुचिपूर्ण, आनंनदायक, संतोषप्रद तथा चुनौतीपूर्ण है। इस अभिप्रेरणा का स्रोत भीतर ही है। जब लोग कुछ कार्य किसी ध्येय के लिए करते हैं तो वे बाह्य रूप से प्रेरित होते हैं, जैसे धनार्जन, कोई इनाम जीतना, दंड से बचना, एक निश्चित सीमा तक जाना, किसी अन्य के आदेश को पूरा करना। जब शिक्षक यह मानता है कि छात्र सापेक्ष रूप से स्वावलम्बी हों, जहां प्रयास मार्गदर्शन का हो और छात्रों के अपने स्वय के विचारो के अनुसार उन्हें प्रोत्साहन मिले आंतरिक अभिप्रेरणा फलती-फूलती है।

इसी प्रकार अन्य अध्ययनों से पता चला है कि स्वायत्तता मिलने पर बच्चे और अधिक आंतरिक अभिप्रेरणा दिखाते है, कम तनाव होता है और उन्नत अवधारणात्मक अधिगम होता है।

अनुरूपता के दबाव से बचाव

शिक्षक के अलावा कक्षा में बच्चे एक रूप होने के दबाव के कारण एक-दूसरे की सृजनात्मकता को हानि पहुचा सकते हैं। समकक्ष होने का प्रभाव उनके ढंग और पसंद में दिखाई देता है जो उनकी सृजनात्मकता में गिरावट ला सकता है। शिक्षक को दिखाना है कि सृजनात्मक अभिव्यक्ति ज़ायज है, तभी बच्चे अनुभव करेंगे कि सृजनात्मकता का कक्षा में महत्व है।

सृजनात्मकता की आदत डालना

शिक्षकों के पास छात्रों को सृजनात्मक चिंतन के कौशलो को सीखने में सहायता करने के अनेक अवसर होते हैं। अध्यापक उन कौशलो को प्रतिमान बनाकर कर सकते हैं। किसी क्रिया को करने के विभिन्न विकल्पों के बारे में सोचते हुए शिक्षक को छात्र सुनें। शिक्षक छात्रों के सामने समस्या को सब पहलुओं से देखे और उस विचार प्रक्रिया में छात्र भी उनके साथ सोचें। यदि छात्र लगातार शिक्षक को यह कहते हुए सुने "आओ इसे सृजनात्मक ढंग से करने का प्रयास करें, इसे करने के अन्य सभावित कौन-कौन से तरीके हो सकते हैं? तो छात्र अपने आप धीरे-धीरे सृजनात्मक सोच के प्रति रवैया अपनाएंगे।

पसंद का मौका

जहां तक संभव हो बच्चों को अपनी पसद के अनुसार कार्य करने का अवसर दें। उदाहरण के लिए, विज्ञान में विभिन्न वस्तुएं प्रयोग करने के लिए दी जाएं। कला की किसी क्रिया के लिए विभिन्न वस्तुएं और सामग्री दे। भाषा की कक्षा मे बच्चों को लिखने के लिए अपने विषय का चुनाव स्वय करने दिया जाए आदि।

सृजनात्मक शिक्षण के लिए ये मूलभूत सिद्धांत है। ये एक समग्र शिक्षण दर्शन की ओर इंगित करते है जो कि शिक्षकों को समझने चाहिए।

पाठ्यक्रम में सृजनात्मक चिंतन को सम्मिलित करना—कुछ शैक्षणिक रणनीतियां

जब शिक्षक सृजनात्मकता के लिए प्रक्रियाओं तथा गुणों को जानते हों, और विषय-सामग्री तथा कक्षा के मूलभूत सिद्धांतों से परिचित हो, उनके लिए विषय विशेष के क्षेत्रो में कुछ शिक्षण रणनीतियों को लागू करने में कठिनाई नहीं होगी।

अनुसधानों ने कुछ महत्त्वपूर्ण शिक्षण रणनीतियो की पहचान की है जिनमें बच्चों को अवसर दिए जाते हैं कि वे असामान्य सोचने का अभ्यास कर, एक प्रवाह और अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न करें, अनुमान लगाएं, पूर्वकथन करें, अपनी ही वास्तविकताओं में ठीक बैठने पर उनका सत्यापन करें आदि। ऐसी प्रक्रियाए तब घटित हो सकती हैं जब बच्चों को अवसर दिया जाए कि वे तथ्यों को आत्मसात् करें, सूचना या आंकड़ों के प्रति संवेदनशील हों तथा साथ ही साथ विषय-सामग्री को सीखें।

यह बात ध्यान में रखनी होगी कि सभी शैक्षणिक रणनीतिया विभिन्न विषय क्षेत्रों मे एक समान लागू नहीं होंगी। शिक्षक को निर्णय करना होगा कि किसी विषय पर कौन-सा प्रसंग सृजनात्मक अभिव्यक्त के लिए उपयुक्त है। सामान्यतः विद्यालयी स्तर पर विज्ञान तथा गणित की तुलना में भाषा, सामाजिक अध्ययन तथा कला आदि सृजनात्मक सोच के लिए अधिक अवसर प्रदान करते हैं। नीचे कुछ शैक्षणिक रणनीतियां दी गई हैं, जो व्यावसायिक साहित्य से ली गई हैं।

सृजनात्मकता के लिए शिक्षण में कुछ उदाहरण स्वरूप क्रियाकलाप

लगभग 60 उदाहरणस्वरूप क्रियाकलापों का एक सैट विकसित किया गया (गुलाटी, 1999) जिसमे कुछ अभ्यास कर्ताओं द्वारा सुझाए गए विचारों का उपयोग किया गया है। इन क्रियाकलापों को प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तरों के लिए विभिन्न विषय क्षेत्रों के शिक्षण द्वारा बच्चों में सृजनात्मक चिंतन की विभिन्न प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित

शिक्षण रणनीतियां

पर्यवेक्षण तथा संवेदनशीलता प्रशिक्षण	– ध्यानपूर्वक बारीकी से देखना तथा संवेदन अनुभव करना।
प्रश्न तथा उत्तेजक प्रश्न पूछना	– किसी एक विषय पर विभिन्न प्रकार के प्रश्न तैयार करना।
	– ज्ञान की खोज के लिए प्रश्न पूछना, भविष्य के लिए नए ज्ञान की खोज, काल्पनिक तथा अनुमानित परिस्थितियां संबंधी प्रश्न।
खोजना तथा प्रयोग करना	– प्रयोगात्मक परिस्थितियों में क्या घटता है, उसकी खोज करना।
असंगति तथा रिक्तता	– विरोधाभासों, खोई हुई कड़ियों तथा ज्ञान में रिक्तता को पकड़ना।
मूल्यांकन	– तथ्यों के सामने विचारो व अटकलों को जांचना, सभावनाओं तथा तात्पर्य को तय करना, भविष्य की समस्याओं व परिस्थितियों की भविष्यवाणी करना।
संसर्ग तथा अनुरूपता	– वस्तुओं और विचारो में सबंध स्थापित करना, दूरस्थ तथा नए संसर्ग बनाना। वस्तुओं तथा परिस्थितियों मे समानता का पता लगाना, एक की दूसरे से तुलना करना।
मिलाना तथा सश्लेषण करना	– विचारों, तथ्यों तथा वस्तुओं के ताजे तथा आवश्यक संसर्गो को नए संरूप में डालना, वस्तुओं/विचारों को सार्थक व्यवस्थाओ को पुनर्आयोजित करना तथा मिलाना।
पुनर्परिभाषा	– वस्तुओं, विचारो को विभिन्न कोणों से देखते हुए नए अर्थ प्रदान करना।
गुणों को सूचीबद्ध करना	– मुख्य विचारों, वस्तु या समस्या के आयामों के बारे मे सोचते हुए प्रत्येक को सुधारने के बारे में सोचना।
रूपांतरण	– परिवर्तन करना, बदलना, सुधार का सुझाव देना, पुनर्रूपांकन करना।
अधूरे को पूरा करना	– बहुल परिकल्पनाओं और संभावनाओं को बनाना, अधूरे को कई प्रकार से पूरा करना।
परिकल्पना करना	– विचारों और सवेदनाओ को अंलकृत करना, विचारों को दृश्य रूप मे व्यक्त करना।

करने के लिए शिक्षकों के प्रयोग के लिए तैयार किया गया। कुछ क्रियाकलाप विविधता को प्रेरित करने के लिए उपयुक्त हैं, जबकि दूसरे मौलिकता को प्रोत्साहित करने के लिए हैं और कुछ विचारों की अधिक व्याख्या आदि के लिए उपयोग किए जा सकते है।

प्रत्येक क्रियाकलाप का एक आकर्षक शीर्षक है और वस्तुनिष्ठ ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह भी बताया गया है कि किस विषय क्षेत्र में एवं विद्यालय स्तर पर लागू हो सकता है। प्रक्रिया अपेक्षित परिणाम तथा टिप्पणियों के रूप में शिक्षक के लिए सुझाव भी दिए हैं। कुछ क्रियाकलाप जो विभिन्न विषय क्षेत्रों से संबद्ध शैक्षणिक रणनीतियो का प्रयोगात्मक उपयोग प्रस्तुत करते हैं, यहां दिए गए हैं।

प्रश्नों की खोज

उद्देश्य– उत्तेजक प्रश्नों को पूछकर विविध चिंतन को प्रोत्साहित करना।

विषय– भाषा, सभी विषयों में भी लागू हो सकती है

स्तर– उच्च प्राथमिक

प्रक्रिया– शिक्षक बच्चो से असामान्य प्रश्नो के बारे में सोचने को कहता है जो वे पूछना चाहे। उदाहरण के लिए एक बच्चा कहता है "आकाश नीला है।" उस समय शिक्षक को लगता है कि कुछ बच्चों को नही आता कि प्रश्न कैसे पूछते है। बच्चो के जोडे बनाकर प्रश्न पूछने और आपस मे बदलने की क्रिया के साथ पाठ जारी रहता है। अधिकाश प्रश्न "कैसे हुआ" या "कैसे होगा" से शुरू होते है। बाद में शिक्षक कहता है कि "हम कैसे" शब्द से शुरू होने वाले प्रश्नों को छोडकर और किसी और शब्द का प्रयोग कैसे करें? जैसे छात्र प्रश्न पूछने का अभ्यास करते हैं, उन्हें विविध प्रकार से सोचने का कौशल प्राप्त हो सकता हैं! वैसे ही विचारों को उत्तेजित करने वाले कुछ प्रश्न इस प्रकार है–

- सांपो में जहर क्यो होता है?
- क्या हम ईश्वर को देख सकते है?
- लोग मरते क्यों है?
- ईश्वर से बड़ा कौन है?
- हम कैसे कह सकते हैं कि महाभारत और रामायण सच्ची कहानियां हैं?
- कंगारू के चार पैर होते है जबकि वह दो पैरों पर क्यों भागता है?
- हवा किस चीज से बनती है?
- फूल कैसे उगते हैं?
- मै किस चीज का बना हूं?

अपेक्षित परिणाम–बच्चे उत्तेजित करने वाले प्रश्नों को पूछने की कला विकसित करेंगे। प्रश्न पूछने से उनमें प्रश्न का कौशल ही विकसित नहीं होगा वरन् उनमें पूछे गए प्रश्नों के बारे मे अधिक जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होगी और उनमे तलाशने का कौशल विकसित होगा।

टिप्पणी–अध्यापक इस क्रियाकलाप को किसी भी विषय को पढ़ाते समय उपयोग कर सकता है। यदि किसी विशेष विषय या प्रसग तक ही सीमित रहते हैं तो प्रश्नों के स्वरूप सबद्ध विषय या प्रसंग पर निर्भर करेगा।

रुको, देखो और विराम चिन्ह लगाओ

उद्देश्य– संवद्ध वस्तुओ में समानता पता करके, एक की दूसरे से तुलना करके तथा विचारो को नया अर्थ देकर जिज्ञासा और विविधता को प्रोत्साहन देना।

विषय– भाषा (व्याकरण)

स्तर– प्राथमिक

प्रक्रिया– विभिन्न विराम-चिन्हो को पढ़ाते समय शिक्षक इस पाठ-विचार का प्रयोग कर सकता है। शुरू मे शिक्षक बच्चो से कहता है कि वे यातायात के सभी चिन्हो को याद करे और दिमाग मे रखे। उदाहरण के लिए–

रुको
चलो
विद्यालय पार-पथ
धीमे
एकमार्गीय।

अध्यापक तब उनसे लिखने में प्रयुक्त इनमे से कुछ निशान तथा विराम-चिन्हों में सभावित समानताओं के बारे मे विचार करने को कहता है। सामान्य रूप से छात्र विराम-चिन्ह को पूर्ण विराम (), धीमे चलो के चिन्ह को अर्ध विराम या कौमा (,) या अपोस्ट्राफी ("), चलो के चिन्ह को कैपिटल अक्षर, जेब्रा क्रॉसिंग को डेश (–) और कैपिटल अक्षर से जोड़ेंगे। छात्र व्यक्तिगत रूप से ऐसे संसर्ग बनाने में अपने विचार व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किए जाते हैं। उनके ससर्गो को सुदृढ़ करने के लिए शिक्षक उनसे विराम-चिन्हों के स्थान पर यातायात के चिन्हो को बनाने के लिए कहता है। वह शिक्षक एक लघु कथा सुनाता है और बच्चो से कहता है कि वे उस कहानी को विराम-चिन्हों की जगह यातायात के चिन्हों को प्रयोग करते हुए फिर से लिखें।

अपेक्षित परिणाम– बच्चे अकसर विराम-चिन्हो को बहुत उबाऊ और सीखने में कठिन पाते है किंतु इस क्रियाकलाप के द्वारा छात्र अच्छी तरह सीख सकेंगे और याद कर सकेंगे कि कहां और कैसे उपयुक्त विराम-चिन्हो को प्रयोग करे और साथ ही सृजनात्मक रूप से सोचे।

टिप्पणी– इस क्रियाकलाप को करने से पहले शिक्षक

सुनिश्चित करे कि बच्चे विभिन्न यातायात के चिन्हों को जानते हैं और उन्हें विभिन्न विराम-चिन्हो का भी स्पष्ट ज्ञान है। तभी वे दोनो का ससर्ग करने योग्य होगे।

मिलाओ और विस्तार करो

उद्देश्य– मौलिकता तथा विचारो/परिस्थितियो को अनुमान तथा परिकल्पना द्वारा जोड़ने तथा विस्तार देने की योग्यता को प्रोत्साहन देना।

विषय– भाषा

स्तर– उच्च प्राथमिक

प्रक्रिया– शिक्षक छात्रों के सामने एक कथन जैसे "वह बूढ़ा व्यक्ति जल्दी से भाग गया" कहता है। शिक्षक बच्चो से सभी संभावनाओं के बारे मे सोचने को कहता है कि वह आदमी क्यों भाग रहा था? वह कहा जा रहा था? दिन का वह कौन-सा समय था? उसके साथ क्या होगा, आदि-आदि। वाक्य को जटिल बनाने के लिए और अधिक सूचना जोड़ सकते है। इसी प्रकार छात्र आगे करते जाएं ताकि अंत मे कम से कम एक जटिल मौलिक वाक्य बन सके।

अपेक्षित परिणाम– बच्चे अपने सरल वाक्यों को विस्तार देने, मिलाने, सुधारने के द्वारा जटिल बना सकेगे। जिसमे कहां, कब, क्यो तथा किन परिस्थितियों मे जैसी सूचनाएं भी शामिल होंगी। ऐसे क्रियाकलाप उन्हे अनुमान लगाने, आश्चर्य करने, तात्पर्यो के समझने में सहायक होंगे।

टिप्पणी– निचली कक्षा में एक अमौखिक क्रियाकलाप इस सामानातर ढग से किया जा सकता है, जैसे बच्चो को किसी घटना का चित्र दिखाना और बच्चो द्वारा उस घटना का विस्तृत वर्णन कराना तथा उत्तर जानने के लिए प्रश्न पूछना कि क्यो, कैसे और क्या आदि। शिक्षक पाठ्यपुस्तक से किसी चित्र का प्रयोग कर सकता है अथवा भाषा के पाठ से कोई वाक्य ले सकता है।

सभी फंदों को लपेटना

उद्देश्य– प्रस्तावित सीमाओ से परे कल्पना को खींचकर लोचनीय चिंतन तथा जिज्ञासा को प्रोत्साहित करना।

विषय– विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, भाषा

स्तर– उच्च प्राथमिक

प्रक्रिया– जब शिक्षक फंदों (जाल अथवा फसाने) की बात करे तो पूरी कक्षा निम्नलिखित विचार-विमर्श मे भाग लेगी। शिक्षक बताता है कि लोग कैसे बाढ, आग, तूफान, दुर्घटना मे तथा कई अन्य प्रकार से फस जाते है। जानवर भू-स्खलन और वन मार्गो मे फंस जाते हैं। जब छात्र इस बारे मे सोचेगे तो पाएगे कि ससार में बहुत से अन्य तरीको से, मनुष्यों और जानवरो के अतिरिक्त, कई अन्य चीजें फंस जाती हैं। उदाहरणार्थ पानी, बादलो और पाइपों में फस जाता है। जो चीजें फंस सकती है, उनकी सूची बनाने को कहा जाता है। उनमें कुछ हैं– ध्वनि, बिजली, ऊर्जा, रवैया, ताप, धूप, धुआ, हंसी, समय, शक्ति, सूचना आदि के कुछ प्रकार हैं– लोग, बाध, बैटरी, परिवार, अभिलेख, टेप, नौकरी, पुस्तकें आदि।

बच्चो से निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर लिखने को कहा जाता है– हमारी सूची में से किसी चीज को तुम फसाना चाहोगे और क्यों? यदि तुम इसे फंसाने में सफल होते हो तो तुम क्या समझते हो कि कब तक यह उस तरह रहेगी जैसा कि तुम चाहते हो? क्यो?

कुछ उदाहरणस्वरूप उत्तर ये है– "मै हंसी को सदा के लिए फसाना चाहूंगा क्योकि लोग मुझे चाहेंगे।" "मै कम से कम परीक्षाओं तक अपने दिमाग में सूचना को फसाऊंगा।"

"मैं पुरानी यादों को बहुत दिनों तक फंसाना चाहूंगा क्योंकि मुझे पुराने दिनों को याद करना पसद है।"

अपेक्षित परिणाम– यह क्रियाकलाप बच्चों को मूर्त से अमूर्त के परे सोचने में सहायता करेगा तथा वे अपने विचारों तथा भावनाओ को व्यक्त कर सकेंगे।

टिप्पणी– यह व्यक्तिगत या सामूहिक क्रियाकलाप तथा मौखिक या लिखित क्रियाकलाप की तरह प्रयोग किया जा सकता है।

जागरूक बनने के लिए तुलना

उद्देश्य– अनुमानित परिस्थितियो की कल्पना करके, एक वस्तु की दूसरी से तुलना करके तथा दूरस्थ के संसर्गो द्वारा जिज्ञासा तथा नए संबंधो को उद्दीप्त करना।

विषय– विज्ञान

स्तर– उच्च प्राथमिक

प्रक्रिया– जीवित तथा निर्जीव वस्तुओं, पहलुओ तथा पौधो आदि जैसे प्रसंगो को पढ़ाते समय शिक्षक इस प्रकार के प्रश्न पूछता है कि उनसे पूछताछ उत्पन्न होती है। शिक्षिका पूछती है–

– मर्मर पक्षी तथा हैलीकॉप्टर में क्या समानताएं हैं?
– उनमें क्या असमानताएं है?
– कौन तेज जा सकता है?
– हैलीकॉप्टर ऐसा क्या कर सकता है जो मर्मर पक्षी नहीं कर सकता?
– तुम क्या बनना चाहोगे– एक मर्मर पक्षी या हैलीकॉप्टर और क्यो?

छात्र निम्न प्रकार के उत्तर दे सकते है–

– दोनो आकाश में उडते हैं।
– दोनो के पख होते है।
– पक्षी दाने चुगता है जबकि हैलीकॉप्टर मे ईधन लगता है।
– पक्षी बढ़ते हैं, हैलीकॉप्टर नहीं बढ़ते।
– पक्षी के घौंसले होते है, हैलीकॉप्टर के नहीं।
– मैं पक्षी बनना चाहूगा क्योंकि यह यहां-वहां उड़ने को स्वच्छंद होता है।
– मै हैलीकॉप्टर बनना चाहूगा क्योकि उसकी मृत्यु नहीं होती।

अपेक्षित परिणाम– ऐसे प्रश्न मर्मर पक्षी तथा हैलीकॉप्टर के बारे में कई प्रकार के उत्तर तथा काफी जिज्ञासा उत्पन्न करते है। पक्षियों तथा हैलीकॉप्टरों के बारे मे जानकारी के अलावा शिक्षक पाएंगे कि छात्र जिज्ञासु हो जाते है और अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए जाग्रत करके शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया आनददायक हो जाती है।

टिप्पणी– यह क्रियाकलाप उन प्रसगों में उपयोग हो सकता है जहा वस्तुओ की तुलना तथा समानता आंकी जाए। प्रत्येक प्रश्न एक-एक कर पूछा जाना चाहिए ताकि प्रसंग आधारित एक विषय पर बात हो, न कि असबद्ध प्रश्नों के रूप मे। क्रियाकलाप समयानुसार लिखित या मौखिक हो सकता है।

नए समीकरणों के बारे में सोचो

उद्देश्य– जिज्ञासा तथा मौलिकता उत्पन्न करने के लिए, वस्तुओं को नए अर्थ देकर और वस्तुओं को विभिन्न कोणों से देखकर छात्रो द्वारा वातावरण में वस्तुओ में नए संबंधों को देखने में सहायता करना।

विषय– भाषा

स्तर– प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक

प्रक्रिया– विभिन्न विचारों के समीकरणों से उपजे विभिन्न नवाचारों के बारे में शिक्षक छात्रों को उदाहरण देता है।

पहिए वाली-कुर्सी फाइबर ग्लास-पर्दे
जेबी-दर्पण धुलाई-मशीन

शिक्षक बच्चों को अपने आसपास वातावरण में देखने और कई नई वस्तुओं के बारे मे सुझाव देने को कहता है जिन्हे एक साथ मिलाकर या समीकरण बनाकर कोई नया शब्द या वस्तु बनाई जा सके। कुछ मौलिक विचारों को लेखाबद्ध किया जा सकता है और कक्षा के सूचनापट्ट पर लगाया जा सकता है। इससे दूसरो को मौलिक समीकरणों को बनाने की प्रेरणा मिलेगी।

अपेक्षित परिणाम– बच्चे विचारो वस्तुओं के नए समीकरणों की खोज कर सकेंगे।

टिप्पणी– यह क्रियाकलाप कक्षा के केवल एक पीरियड (घंटा) मे नही हो सकता है। अत. छात्रो के चिंतन को जारी रखने तथा शब्दो / विचारो के समीकरण बनाने और उन्हें लिखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

अपने स्वप्न चित्रों को अनुभव करो और व्यक्त करो

उद्देश्य– छात्रों से अनुमानित परिस्थिति की कल्पना करके अपनी भावनाओ तथा विचारों को व्यक्त करने के लिए कहे और उनकी कल्पना और जिज्ञासा को प्रोत्साहित करें।

विषय– सामाजिक अध्ययन, भाषा (रचना)

स्तर– प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक

प्रक्रिया– शिक्षक बच्चों से कहे कि वे सोचें कि वे पक्षी हैं और तब मन मे उठने वाली भावनाओं का वर्णन करे। फिर, बताएं कि आकाश से जब वे नीचे धरती को देखेंगे तो उन्हें कैसा लगेगा? उनकी भावनाएं वायुयान

से धरती को देखने वाले मनुष्यों की भावनाओ से किस प्रकार समान होगी? कितनी भिन्न होंगी? तब बच्चो से पक्षियों की भूमिका खेलने और उनके साथ समानुभूति अनुभव करने को कहे। छात्र कुछ ऐसे उत्तर देंगे—

- बिना खर्च किए विभिन्न देशों मे जाओ और उनका खाना खाओ।
- जो चाहो वो करो की स्वतन्त्रता।
- सड़कें लकीरे जैसी दिखाई देंगी।
- भोजन को खोजना होगा।

अपेक्षित परिणाम— बच्चे सृजनात्मकता से जुड़ी प्रक्रिया से जैसे कि परिकल्पना, अनुमान, समानता तथा अतर पता करना, चित्रित करना, काल्पनिक चिंतन तथा भावनाओं में व्यस्त रहेंगे।

टिप्पणी— यह क्रियाकलाप कुछ उत्साहवर्धन के बाद करना चाहिए। यदि बच्चों को यह क्रियाकलाप कठिन लगे तो शिक्षक उन्हें उदाहरण दे कि यदि वह स्वयं पक्षी होता या हवा में उडता तो उसे कैसा लगता। शिक्षक बच्चों के आयु-वर्ग के अनुसार इस क्रियाकलाप को अपना सकते हैं। छोटे बच्चे इसे भूमिका के अभिनय द्वारा कर सकते हैं और बडे बच्चे *लिखकर व्यक्त कर सकते है।*

संबंध स्थापित करना और नवाचार

उद्देश्य— दूरस्थ संसर्ग स्थापित कर धारा प्रवाह तथा मौलिक चिंतन को प्रोत्साहन।

विषय— भाषा

स्तर— उच्च प्राथमिक

प्रक्रिया— छात्रों के पास सदृश्यों पर एक पाठ है जैसे हाथों के लिए दस्ताने, पैरों के लिए जूते, मानव के लिए वस्त्र तथा पशुओ के लिए खाल। उनसे अन्य सादृश्यो के बारे में सोचने को कहा जाता है। इन्हे श्यामपट्ट पर लिख दिया जाता है। उन्हें कागज के पन्ने दिए जाते हैं और उनसे उन सादृश्यो के बारे में सोचने के लिए कहा जाता है जिनका वर्णन पहले नहीं किया गया है। बच्चे बहुत कुछ असामान्य सादृश्यों को बताते हैं, जैसे—

- ईश्वर वैसे ही स्वर्ग के लिए है जैसे हम धरती के लिए।
- घड़ी वैसे ही समय के लिए है जैसे कलैडर दिनों के लिए।
- हवा वैसे ही आकाश के लिए है जैसे जमीन पृथ्वी के लिए।
- अंक वैसे ही गिनने के लिए हैं जैसे अक्षर पढ़ने के लिए।

अपेक्षित परिणाम— इस क्रियाकलाप से उदार-अंत चिंतन तथा अनम्य सीमाओ से परे की कल्पनाशीलता उत्पन्न होगी। इससे शिक्षको को उन छात्रो की पहचान करने मे भी सहायता होगी जो लेखन के द्वारा सृजनात्मक विचारों को व्यक्त करने की क्षमता रखते है। उन्हें सृजनात्मक लेखन, जिसमें समृद्ध तथा असामान्य सादृश्यो का समावेश किया गया हो, के लिए भी प्रोत्साहित किया जा सकता है।

टिप्पणी— असामान्य सादृश्यो को पूछने से पहले, छात्रो को आसान सादृश्यो के बारे में सोचने की प्रक्रिया की पूरी जानकारी देनी चाहिए। यह उदाहरण सहित समझाना चाहिए।

अभिनय और लीक से हटकर प्रतिक्रिया करें

उद्देश्य— विभिन्न भूमिकाओं को करते हुए, पुरातन को नए अर्थ देते हुए, परिणामो की कल्पना करते हुए धारा प्रवाह तथा मौलिक चिंतन को प्रोत्साहन देना।

विषय— भाषा

स्तर— प्राथमिक

प्रक्रिया— शिक्षक गोल्डी लॉक्स तथा तीन भालुओं की कहानी बच्चों को सुनाता है। बच्चे कहानी का नाटकीय मंचन करते हैं। एक प्रदर्शन के बाद शिक्षक कहता है स्वांग करो कि गोल्डी लॉक द्वार पर दस्तक देता है। जैसे ही तीन भालू रसोई में घुसते हैं, वह घर में आती है। उन सब बातो को सोचो जो घटेगी। "बच्चे सुझाव देते है वह भागेगी, वह चीखेगी, इत्यादि।" बच्चों द्वारा सुझाए गए विचारों पर बात करने के बाद शिक्षक कहता है—

"अपनी कल्पना शक्ति को प्रयोग करके एक नई शुरुआत और अंत वाली नई कहानी लिखो।" हम स्वांग बनाएं कि जब गोल्डी लॉक और तीन भालुओ ने एक-दूसरे

को देखा तो वे डरे नहीं। अब इस कहानी का एक नया अंत बनाओ।

अपेक्षित परिणाम— बच्चे रोजमर्रा व पारपरिक चिंतन से बाहर निकलने का प्रयास करेगे तथा लीक से हटकर विचारो को सोचने के लिए अपनी कल्पना शक्ति का प्रयोग करेगे।

टिप्पणी— कहानी में कुछ परिवर्तनों के साथ, यह क्रियाकलाप अन्य कक्षाओं में भी प्रयोग किया जा सकता है।

इसे और किस तरह प्रयोग किया जा सकता था?

उद्देश्य— मौलिक, चिंतन तथा वैकल्पिक दृष्टिकोणो और पुनर्परिभाषा के बारे में सोचते हुए सामग्री तथा वस्तुओं को तत्काल करने की योग्यता को प्रोत्साहित करना।

विषय— भाषा, कार्य अनुभव

स्तर— उच्च प्राथमिक

प्रक्रिया— शिक्षक कक्षा से नित्य प्रयोग होने वाली वस्तुओं के बारे में बात करता है, जैसे लिखने के लिए कलम, श्यामपट्ट पर लिखने के लिए चॉक, बैठने के लिए कुर्सी, खेल-टेनिस खेलने के लिए गेंद, आदि। फिर शिक्षक बच्चों को इन सब या कोई एक वस्तु के असामान्य उपयोग को सोचने के लिए कहता है, जैसे कलम, कागज, चॉक, कुर्सी, गेंद, टूटा हुआ चाय का मग, टीन का डिब्बा, नारियल की खोपड़ी, झाडू तथा अन्य फेकने योग्य वस्तुए। छात्रों से अलग-अलग असामान्य उपयोगों के बारे में लिखने को कहा जा सकता है या उनसे मौखिक रूप से भी व्यक्त करने को कहा जा सकता है। जब बच्चे उपयोगों को बताते हैं तब शिक्षक श्यामपट्ट पर असामान्य उपयोगों को लिख देगा। यह क्रियाकलाप कार्य अनुभव कक्षाओं तक भी विस्तारित किया जा सकता है जहां बच्चे वास्तव मे कुछ फेंकने योग्य वस्तुओ, जैसे रबड़ बैड, क्लिपें, कागज, धागा, पत्थर, कपड़े के छोटे टुकड़े आदि से तात्कालिक कार्य करने का प्रयास करते हैं। फिर उनसे इन चीजों को जोड़कर कोई सृजनात्मक उत्पाद बनाने को कहा जाता है, भले उसे वर्तमान में कोई जानता न हो।

अपेक्षित परिणाम— सामान्य वस्तुओ को असामान्य तरीको से उपयोग करने तथा हाथ से करने के अनुभव को प्राप्त करने की विभिन्न सभावनाओं के बारे मे छात्र सोच सकेगे।

टिप्पणी— रोजमर्रा के जीवन में प्रयुक्त अनेक सामान्य वस्तुओं को शिक्षक जोड़ सकता है जिनके असामान्य उपायोगों को बताने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित किया जाता है।

ऊपर वर्णित क्रियाकलापों को प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक कक्षाओ के छात्रों पर प्रयोग किया गया है (गुलाटी, 1995)। प्रयोग आकड़े तथा शिक्षकों के अनुभवों ने छात्रों मे सृजनात्मकता का पोषण करने के लिए तैयार क्रियाकलापो के अल्पकालिक असर का प्रमाण दिया है। इस अध्ययन से पता चलता है कि यदि ऐसे क्रियाकलापों को समग्र विद्यालयी पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया जाए, तो असर दूरगामी होगा। शिक्षक की पहल तथा उसकी कल्पना के आधार पर किसी विशेष क्रियाकलाप की प्रकृति अधिक सरल या जटिल बनाई जा सकती है। यह नही समझना चाहिए कि इसे नुस्खे की तरह, आदि से अंत तक कर्तव्य पालन की तरह मानना ही होगा। शिक्षक अपनी आवश्यकता अनुसार इसमें सुधार कर सकते हैं या पूरक तथा विस्तारित कर सकते हैं। यह आरंभिक बिंदु या अग्रता का कार्य करते हैं। उसके लिए शिक्षक को पोषण के लिए चिंतन प्रक्रियाओं तथा समान्य रणनीतियों, जिनकी चर्चा पहले कर चुके हैं, से अच्छी तरह अवगत होना चाहिए। क्रियाकलापों को अधिक सार्थक होने वाले विषय क्षेत्रो के साथ प्रयुक्त तथा एकीकृत किया जाना चाहिए। ऐसे क्रियाकलापो का तदर्थ तथा मनमाना प्रयोग छात्रों को आनद तो दे सकता है किन्तु रवैयों, मूल्यो तथा सृजनात्मकता के लिए अपेक्षित कौशलों का पोषण करने मे प्रभावी सिद्ध नहीं हो सकता।

सृजनात्मक शिक्षण का मूल्यांकन

इन क्रियाकलापों को शिक्षण के अनिवार्य अग के रूप में प्रयोग शिक्षको को छात्रो की सृजनात्मक क्षमता का समग्र चित्र प्रदान करेगा। इससे शिक्षकों को विभिन्न क्षेत्रों मे "अधिक सृजनात्मक" तथा जो उतने सृजनात्मक

नहीं हों ऐसे छात्रो को ढूढ़ने मे सहायता मिलेगी। कुछ सृजनात्मक लेखन मे अच्छे होंगे दूसरे मौखिक कौशलो में, कुछ भौतिक विचारो के चितन की योग्यता तो दिखा सकते हैं किन्तु विस्तार मे जाने की योग्यता नही रखते कुछ बच्चे अनेको विचार तो दे सकते है कितु उन्हे अधिक सुझाने और प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है जिससे वे दृश्य से परे सोच सके। ऐसा वे तब तक नही कर सकते जब तक कि उन्हें कुछ उदाहरण तथा सकेत न दिए जाएं। शिक्षक छात्रों के विभिन्न आयामो की रूपरेखा रख सकते है ताकि शिक्षक को पता चले कि उसके प्रयास सार्थक भी हैं या नही। आमतौर पर शोधकार्य के लिए पूर्व तथा बाद के परीक्षण सृजनात्मक चिंतन के स्तर मे वृद्धि को आंकने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। परन्तु शिक्षकों के लिए इसका मतव्य कम औपचारिक है। शिक्षक का सबसे अच्छा उपकरण छात्रों का पर्यवेक्षण है। बच्चों का विभिन्न आयामों जैसे कई आदर्श विचारो तथा हलों को बताने की योग्यता, किसी दी हुई परिस्थिति में कई प्रकार के विकल्पो अथवा उत्तरों के विभिन्न वर्गो को बताना, समूह के अन्य लोगो के विचारों की तुलना में दुर्लभ तथा विशेष विचारो को प्रकट करना, मूल विचार मे विस्तार जोड़ना आदि में मूल्याकन करने के लिए शिक्षक सूची अथवा श्रेणी-माप स्वयं तैयार कर सकते हैं। बच्चों में चिंतन परिवर्तन तथा मनोभावों और विचारों के अवलोकन, समस्या के समाधान, प्रश्न पूछने, कक्षा मे सहभागिता, पर्यावरण मे रिक्त स्थान को देखने में सम्मिलित होने तथा अतिरुचि दिखाने, कल्पना शक्ति को बढ़ाने को तत्पर रहने पर नजर रखने के लिए एक सूची बनाई जा सकती है।

उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्र स्वय मूल्याकन कर सकते है। अपने स्वयं के वर्धन और विकास मे सहभागिता से छात्रो मे स्वयं को महत्वपूर्ण समझने तथा उत्तरदायित्व को सभालने की समझ मे वृद्धि होती है।

शिक्षक की चुनौती

सृजनात्मकता के लिए शैक्षणिक रणनीतियों को आरभ करना शिक्षक के लिए एक चुनौती है क्योकि उन्हें लगेगा कि उनके मूल्यवान समय की हानि होगी और निर्धारित पाठ्यक्रम भी पूरा नहीं हो सकेगा। इसके अलावा सृजनात्मक शिक्षण के लिए अतिरिक्त प्रयास तथा अधिक समय की आवश्यकता होती है।

यद्यपि इनमें से कुछ चिताए वास्तविक हो सकती हैं, किन्तु इन्हे शिक्षक के उत्साह को मन्द नही करने देना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सृजनात्मकता का प्रवेश केवल अधिगम की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुपालन ही नहीं कर रहा बल्कि स्व-अधिगम को उद्दीपन, आनंद तथा प्रेरणा प्रदान कर रहा है। यह सिद्ध करने के लिए प्रमाण है कि सृजनात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा अधिगम बेहतर स्मरण तथा सीखी हुई सामग्री को याद करने की ओर अग्रसर करता है। इसमें चहु ओर बेहतर अधिगम, विश्वास, सफलता का अनुभव, हर्ष तथा सतोष होता है। यदि बच्चे सृजनात्मक तरीको से सीख रहे है तो वे अपने काम में अधिक संलग्न, दूसरों के विचारों के प्रति अधिक सहनशील, स्वतंत्र अभिव्यक्ति वाले, बेहतर प्रेरणा तथा जिज्ञासा वाले बन जाते हैं। शिक्षको के लिए शायद यही सबसे बड़ा पुरस्कार है कि वे प्रेरित हों और सृजनात्मकता के लिए शिक्षण के प्रति अपने प्रयासों को जारी रखें। ❑❑

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली

पांच-छः वर्ष आयु-वर्ग के बच्चों में सृजनात्मक चिंतन की नींव डालना

❐ ए. सी. पचौरी

यह केवल भ्रांति है कि जब तक बच्चे पढ़ने-लिखने के कौशल विकसित नहीं कर लेते, उनमें वियालयी शिक्षा के द्वारा अधिक सृजनात्मक उत्पादकता का विकास अथवा पोषण नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत लेख में इस धारणा के विपरीत संभावनाओं का परखा हुआ उल्लेख है। रचना में अनुभव जन्य प्रमाणों के आधार पर यह रेखांकित करने का प्रयास किया गया है कि खेल, कहानी सुनाना, कल्पना करना, शाब्दिक वाक्य बनाना, चित्र को स्थिर करना, प्रश्न पूछना, सृजनात्मक गणित, ध्वनियां, रद्दी सामान और समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता जैसे क्रियाकलापों से छात्रों की सृजनात्मक क्षमता को बढ़ाने के लिए विद्यालय में शिक्षकों द्वारा किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है। उपयोगिता की दृष्टि से धारा प्रवाहिता, लोचनीयता, मौलिकता तथा विस्तार के सृजनात्मक घटकों की जानकारी के सुझाव भी दिए गए हैं। आशा है कि विद्यालय में प्रवेश लेने वाले पांच-छः वर्ष आयु-वर्ग के बच्चों में सृजनात्मक चिंतन प्रारंभ करने में प्रस्तावित क्रियाकलाप प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के लिए सहायक होंगे।

संज्ञानात्मक सिद्धांतवादियो तथा सरचनात्मकतावादियों द्वारा इस विषय में एक जैसे तर्क दिए गए हैं कि अपने पिछले अनुभवो तथा संज्ञानात्मक परक्राम्यता स्तर के आधार पर व्यक्ति अपने अर्थो का निर्माण स्वयं करता है। इस दृष्टिकोण से देखने पर हम पाते हैं कि मानव अधिगम न तो मात्र ज्ञान-अर्जन है और न ही सहजवादी। सिद्धांतवादियो द्वारा संरचनाओं के संरक्षण पर बल देना पश्चजनक प्रणाली के अनुसार अधिगम रूपातरण तथा संरक्षण के संश्लेक्षण को मान लेना है (प्याजे, 1974)। यह संभव है क्योंकि मानव मस्तिष्क मे वर्गो तथा संबंधों की श्रेणीबद्धताओ के प्रयोग से बोध तथा अवधारणाओ को रूपातरण तथा विस्तारित करने की सामार्थ्य है (लेडा, 1974)।

बच्चे सामान्यतया छः तथा इससे ऊपर (6+) की आयु के लगभग विद्यालय में प्रवेश करते है। अनुसंधान प्रमाण सुझाते हैं कि विद्यालय में प्रवेश करने वाले बच्चे संज्ञानात्मक विकास के पूर्व-संक्रियात्मक तथा मूर्त-संक्रियात्मक चरणों की एक अतरदशा पर होगे (पचौरी, 1996)। अतः यह वाछनीय है कि पांच से छः वर्ष की आयु के बच्चो के सृजनात्मक चिंतन का प्रारंभ उनके प्राकृतिक तंत्रिका-मनोवैज्ञानिक स्तरों के विकास के अनुपात में हो।

तर्काधार

गिलफोर्ड के "बुद्धि की संरचना" प्रतिमान (स्ट्रक्चर ऑफ दि इंटलैक्ट मॉडल) में सृजनात्मकता को विचलित उत्पादन सामर्थ्यो के रूप में माना है। विचलित उत्पादन किसी घटना अथवा प्रेरणा को "बहुसंख्यक परिदृश्यों से देखने की क्षमता है जो किसी भी सृजनात्मक प्रक्रिया के लिए आवश्यक है" (जिसबर्ग तथा औपर, 1969)। मानव मस्तिष्क कैसे विभिन्न प्रकार की वास्तविकताओ को सृजनात्मक कार्यो मे सरचना करता है, डिरेक्स (1977) द्वारा उपयुक्त रूप से वर्णित किया गया है।

संरचना तथा अंवेषण सज्ञान, अभिसारी उत्पादन तथा विचालित उत्पादन अथवा मूल्याकन द्वारा सन्निविष्ट करके इन संक्रियाओं के मिश्रण द्वारा वास्तविकता को उत्पाद मे रूपातरित करते हैं।

चौबीस विचलित उत्पादन सामर्थ्यो (गिलफोर्ड, 1976) मे से जो सृजनात्मक क्रियाओ को सहायता करती हैं, बच्चों में केवल दस शुरू करने योग्य पाई गई है (गिलफोर्ड 1973)। ऐसी पांच विचलित उत्पादन सामर्थ्य अर्थगत प्रभाव क्षेत्र से जुड़ी है तथा अन्य पाच दृश्य आकार प्रभाव क्षेत्र से।

जेन्सन (1969, 1972) मानव बुद्धि के विकास मे अस्सी प्रतिशत परिवर्तन आनुवांशिकता के कारण मानते हैं। सृजनात्मकता में व्यक्तिगत मतभेद लगभग संपूर्ण रूप से जीवन के अनुभवो के कारण है (टौरेन्स तथा अन्य, 1978)। टिसडाल (1962), राउज (1965), तथा कौले और चेज़ (1967) के अध्ययनो से ज्ञात होता है कि मानसिक रूप से बाधित बच्चे भी सृजनात्मक रूप से चिंतन कर सकते है। विद्यालयी बच्चों मे सृजनात्मकता के पोषण पर मत व्यक्त करते हुए गिलफोर्ड (1959) ने कहा था—

> हमारी सृजनात्मक शक्तिया हमारी विचलित चितन सामर्थ्यो के अध्ययन द्वारा विकसित होती हैं और बुद्धि विकास का यह भाग हमारे प्राथमिक विद्यालयों में घोर उपेक्षित रहा है।

टौरेन्स तथा सैफ्टर (1986) ने ऐसे ही विचार व्यक्त किए है "छात्रो में सृजनात्मकता के विकास, सहायता अथवा मूल्यांकन के लिए शिक्षक अकसर साधन सपन्न नहीं होते हैं।" इस कारण न केवल विकासशील देशों, बल्कि तकनीकी रूप से अमरीका और कनाडा जैसे विकसित देशों के द्वारा भी मानव संसाधन की उत्पत्ति के लिए पांच-छः वर्ष की आयु के बच्चो के सृजनात्मक चिंतन के पोषण पर बल दिया गया है।

सृजनात्मकता की विशेषताएं

क्रियाकलाप का पोषण

गिलफोर्ड (1970) ने कहा था कि "सृजनात्मकता केवल एक वस्तु नहीं है, यह कई वस्तुएं हैं और कई रूप धारण करती हैं।" औसबार्न (1967) ने जोर देकर कहा था कि "यह अनंत है।" इन आधारभूत कथनों के अनुसार यह मान्यता है कि सृजनात्मक चिंतन का विकास कई प्रकार से किया जा सकता है। नीचे कुछ क्रियाकलापों का सुझाव दिया गया है जो 5 से 6 वर्ष के बच्चो में सृजनात्मक सामर्थ्य के विकास का पोषण कर सकते हैं।

विचलित उत्पादक चिंतनो के विकास को अपरिहार्य बनाने वाले क्रियाकलापों का सुझाव देने वाली तीन कसौटियां निम्न हैं—

☐ किसी भी क्रियाकलाप की मूल विशेषताओं का निर्माण खुलापन करता है क्योकि बच्चे अपने अनुभवों तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर इसका प्रति उत्तर देते हैं (टौरेन्स, 1970)। ऐसे क्रियाकलाप बच्चों को "अज्ञात की ओर पहुचने" का अवसर प्रदान करते हैं, (डैरो तथा ऐलन, 1993)।

☐ बच्चे परीक्षण परिस्थितियों जैसे खेलों मे स्वेच्छा से भाग लेते है।

☐ क्रियाकलाप जो 5 से 6 वर्ष के बच्चों के लिए मान्य हैं (डेविस तथा रिम, 1977; खतेना, 1974, मोरन, 1983, रकडाल, 1977; रिम, 1976, रिम तथा डेविस, 1976; वालाक तथा कोगन, 1965; वार्ड, 1968)।

प्रस्तावित क्रियाकलाप

टौरेन्स (1970) ने कहा है कि विचलित उत्पादक चिंतन क्रियाकलाप "शैक्षिक अनुभवों के द्वारा सुधार के लिए अति संवेदनशील होते हैं" (इसाकसेन तथा अन्य 1993)। अतः 5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चे में सृजनात्मक चिंतन शुरू करने के लिए निम्नलिखित क्रियाकलापों का सुझाव दिया गया है।

बनावटी खेल क्रियाकलाप

बच्चे स्वाभाविक रूप से खेल जैसे क्रियाकलापो को पसंद करते है। बनावटी खेल के क्रियाकलाप 5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों की सृजनात्मकता सामर्थ्य के पोषण हेतु अच्छा स्रोत प्रदान करते हैं। इस प्रकार के क्रियाकलाप आत्म रूपांतरण तथा वस्तुओ, व्यक्तियों तथा स्थितियों आदि के रूपांतरण के प्रयोग द्वारा विभिन्न प्रकार की कल्पनाओं का पोषण करते हैं। बनावटी खेल में बच्चों के संज्ञानात्मक तथा भाषाई अनुभवों के बीच एक

गतिशील अन्तर खेल क्रिया होती है। अत. ये आपस में मिलकर सृजनात्मक विकास को पोषित करते हैं। कल्पनाशील खेल 5 से 6 वर्ष के आयु के बच्चो में भी मौखिक अभिव्यक्ति के निर्माण में आवश्यक साधन है। मिलासिकी (1968) ने विशेष रूप से सुविधा वचित बच्चों के लिए सामाजिक नाटक का सुझाव दिया था क्योकि यह उनकी सृजनात्मक सकारात्मकता को आकार प्रदान करता है (टौरेन्स, 1970)। इसलिए प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक अपने छात्रों की सृजनात्मक सामर्थ्य को विकसित करने के लिए बनावटी/कल्पनाशील खेलो का प्रयोग कर सकते है।

आरभिक चरण मे एक बच्चा किसी ऐसी वस्तु का अभिनय करे जिसे कक्षा जानती हो, जैसे एक बत्तख अथवा कोई अन्य वस्तु जिसे बच्चे समुचित रूप से पहचानते हो। उदाहरण के लिए एक बच्चा बत्तख के व्यवहार का अभिनय इशारो से अथवा ध्वनि निकाल कर कर सकता है। बच्चे द्वारा वस्तु के अभिनीत व्यवहार का अर्थ अन्य साथी मौखिक रूप से निकालेगे। वस्तुओं की कल्पित क्रियाएं शारीरिक क्रिया द्वारा भी व्यक्त की जा सकती हैं। भूमिका करने वाले बच्चे की मौखिक अभिव्यक्ति कक्षा द्वारा साकार रूप मे प्रस्तुत की जा सकती है। उदाहरणार्थ बत्तख की कों-कों बोली को एक रेखाचित्र द्वारा भी दर्शाया जा सकता है। भूमिकाओ को दर्शाती शारीरिक क्रियाएं चिंत्राकन न केवल 5 से 6 वर्ष आयु के बच्चो के तंत्रिका-मांसपेशी समन्वय क्षमता का निर्माण करेगी वरन् उन्हे लाक्षणिकी द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करने का माध्यम प्रदान करेगी, जो बाद में सक्रिय ज्ञान के लिए आवश्यक पूर्वगामी है (पचौरी, 1996)।

5 से 6 वर्ष आयु के बच्चो के अनुभवों के आधार पर शिक्षक खेल/ काल्पनिक क्रियाकलापों को अन्य कार्यो जैसे विभिन्न जानवरों की बोलियां, पद-चिन्ह, भोजन सग्रह की आदतें/ प्राकृतिक वास आदि में भी बढ़ा सकता है।

ग्रामीण बच्चो के पास पालतू तथा घरेलू पशुओं के व्यवहार से सबधित समृद्ध तथा विविध अनुभव होते है। जंगली जानवरो के बारे मे उनका अनुभव अपने शहरी साथियों की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। इसलिए ग्रामीण शिक्षकों को इन जानवरो की कल्पित/ बनावटी भूमिकाओं को करवाने में 5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों के अनुभवों का उपयोग करना चाहिए। काल्पनिक खेल परिस्थितियों की एक अन्य श्रेणी, स्थानीय उत्सव का अवसर, समुदाय के लोग तथा उनकी जीवन शैली हो सकती है। फूलों की सुगध/फलो का स्वाद आदि अभिनय द्वारा प्रस्तुत करना इन बच्चो का बहुत मनोरंजन करेगा। शिक्षक किसी विशेष भूमिका के अभिनय करने के लिए छात्र के कान मे कहता है और फिर पूरी कक्षा इस बात का अनुमान लगाती है कि यह क्या हो सकता है।

टौरेन्स (1970) का मत है कि प्रस्तावित बनावटी/ काल्पनिक खेल क्रियाकलाप बच्चों की सीमित जानकारी के आधार पर 5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों की कल्पनाशीलता का निर्माण वैकल्पिक संभावनाओं को उत्पन्न कर करेगे। उनमें सृजनात्मक चिंतन के पोषण के अतिरिक्त, बनावटी/ काल्पनिक भूमिका, अभिनय, क्रियाकलाप उनकी मौखिक अभिव्यक्ति का पोषण भी करेंगे।

कहानी सुनाना

बच्चों को कहानी सुनना अच्छा लगता है। उन्हें दूसरों को अपनी कहानी सुनाना भी पसंद है। 5 से 6 वर्ष आयु के बच्चों द्वारा कहानी सुनाना उनके रचनात्मक व्यवहार को कहानी सुनाने की प्रक्रिया के दौरान प्रोत्साहित करता है (ड्रेक, 1998)। रेडकल ने कहा कि 5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चे जो कहानी सुनाते हैं, उनमे उनकी सही कल्पना की अभिव्यक्ति होती है। इन कहानियों को आसानी से, उनकी वाक्य की लंबाई (प्रवाह), विशेषणों का प्रयोग (लोचनीयता) शब्दावली (प्रवाह, लोचनीयता तथा मौलिकता) तथा काल्पनिक विचारों, विशेषकर सीधी सादृश्यता (टौरेन्स, 1970; खतेना, 1976) के लिए, प्रतिलिपि तैयार की जा सकती है।

शिक्षको द्वारा तीन प्रकार की कहानियों का प्रयास किया जा सकता है—

असामान्य वस्तुगत कहानी— शिक्षक कहानी सुनाने के लिए सूत्र दे सकता है जैसे "एक पीला कौवा या एक हरा कुत्ता था" आदि। कहानी को आगे बढ़ाने में बच्चो को छूट देनी चाहिए। सुविधा रहित विषयों में भाषाई कल्पनाशीलता अधिक अच्छी पाई गई (टौरेन्स, 1970)। शर्मीले कहानी कहने वाले बच्चो को "और फिर क्या हुआ" या कहानी की कथा से किसी पात्र को लेकर पूछना "उसने और क्या किया" आदि कह कर प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

समानुभूतिपूर्ण कहानी— बच्चे धीरे-धीरे समानुभूति विकसित करते हैं। इसमें स्वयं को दूसरे के स्थान पर रख कर कल्पना की जाती है, जैसे दूसरे पात्र की भूमिका का अभिनय करना। इसलिए इस प्रकार की कहानी कहना, भूमिका का अभिनय करने वाले के लिए समानुभूतिपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न करने पर निर्भर करता है। गोलमेन (1996) की सवेदनापूर्ण बुद्धि गार्डनर (1997) के अंतर-वैयक्तिक/अंतर वैयक्तिक ज्ञानार्जन विधियो से मेल खाती है। अत: इस योग्यता को 5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों मे विकसित करने के अवसर प्रदान करना अत्यावश्यक हो जाता है (ओनील, 1996)। समानुभूतिपूर्ण कहानियां बच्चो द्वारा मौखिक रूप से यह अभिव्यक्त करके कि कहानी का पात्र कैसा महसूस करता है, उन्हे जानने का अच्छा स्रोत है।

टौरेन्स (1970) ब्रूनो मुनारी की रचना "हाथी की इच्छा" का उदाहरण देता है जो बच्चो द्वारा विकसित की गई समानुभूतिपूर्ण कहानियो में से एक अच्छा उदाहरण है। "हाथी भारी शरीर और बड़े पैरो वाला जानवर होने के कारण परेशान था।" बच्चो से कहा गया था कि वे हाथी के स्थान पर स्वयं की कल्पना करे और बताए कि वे क्या होना चाहेंगे। हाथी क्या सोचता था, इस बारे में बच्चो ने "फोल्ड आउट" पद्धति अपनाई। बच्चो के अपने अनुभवों तथा सास्कृतिक सबंधो के आधार पर ऐसे समानुभूतिपूर्ण कहानी के शीर्षक शिक्षक को तैयार करने चाहिए। उदाहरणस्वरूप विद्यालय के शरारती बच्चे तालाब के एक पुराने मेढक पर रोज पत्थर मारते थे। एक ऐसी कहानी का निर्माण कीजिए जिसमे वह पुराना मेढक नित्य बच्चो द्वारा पत्थर मारे जाने पर कैसा महसूस करता होगा।

शिक्षक द्वारा अपूर्ण कहानी सुनाना— शिक्षक 3-4 वाक्यो की एक लघु कथा बच्चों को सुनाए, जिसे बच्चे पूरा करें। ऐसी कहानियां बच्चों को विस्तार देने की क्षमता को समृद्ध करने के अवसर प्रदान करती हैं।

मात्र कल्पना करो— इस प्रकार की सामग्री पर विशेष बल एक ऐसी परिस्थिति को उत्पन्न करना है जिसमे बच्चे "संभावित वैकल्पिक परिणामों" की रचना करते हैं (टौरेन्स, 1970)। ऐसी घटनाओं का स्वरूप निम्नलिखित क्रियाकलापों द्वारा दर्शाया गया है।

यह एक पात्र (जानवर, पक्षी तथा व्यक्ति आदि) को अस्पष्ट परिस्थिति, देश, स्थान आदि में रखकर किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, यदि एक महीने तक निरंतर बर्फ गिरती रहे तो तुम्हारे साथ क्या घटित होगा।

थोड़ी सी कम परिचित, परिस्थिति, दशा मे परिवर्तन से बच्चो को संभावित परिणामों के बारे मे सोचने दिया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति के कगारू जैसी बड़ी पूछ, अथवा यदि तुम्हारा पालतू पशु तुमसे बात कर सकता, आदि।

बच्चो को चित्रो, फोटोग्राफों आदि से प्रदर्शित व्यवहार के कारणो और परिणामों के द्वारा समझने मे प्रोत्साहित करना चाहिए। यह सामग्री लोगों की भावनाओ के बारे में बहुल परिकल्पनाओं को उत्पन्न करने की योग्यता में सहायता करेगी (टौरेन्स, 1970)। उदाहरण के लिए अखबार की एक कतरन जिसमें पुलिस का दस्ता लोगों को खदेड़ रहा है— लोगो द्वारा प्रदर्शन के क्या कारण हो सकते है?

शाब्दिक मुहावरा बनाना— नाटिगर तथा डीकार्रिओ (1992) ने पाया कि शाब्दिक मुहावरा बनाना छोटे बच्चों मे धारा प्रवाहिता विकसित करके काफी प्रेरणादायक सिद्ध हुआ है। शाब्दिक मुहावरा चमत्कार आसानी से ग्रहण किया जा सकता है और बारबार घटित होता है। यह एक संदर्भ में अर्थ उत्पन्न करने से सबधित है। संज्ञानात्मक, मनोवैज्ञानिको तथा सरचनावादियों द्वारा भी अन्तर/अन्तर वैयक्तिक अनुभवो तथा संज्ञानात्मक क्रिया

के आधार पर अर्थ का विकास देखा जाता है। टौरेन्स (1970) भी सृजनात्मक विकास (संदर्भित अर्थो की उत्पत्ति) के लिए "सीमित सूचना से भविष्यवाणी" को एक प्रभावी रणनीति के रूप में देखता है। पहले ऊचे शाब्दिक घनत्व वाले शब्द, लगभग 3-4 दिए जाएं। कुछ समय बाद कम घनत्व वाले शब्दो का प्रयोग ऐसे क्रियाकलाप के लिए करने का सुझाव दिया गया है।

चित्र को स्थिर करना तथा भविष्यवाणी–संपन्न शहरी विद्यालयों में जहां वीडियो सुविधा उपलब्ध है, शिक्षक को टी.वी. के पर्दे पर चित्र को स्थिर कर देना चाहिए तथा 5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चो से इनके कारणों की भविष्यवाणी करने को कहना चाहिए– ● पात्रों का अग संचालन, ● चेहरे के हाव-भाव तथा ● संवेदनशील स्वर, इत्यादि।

प्रश्न पूछना– बच्चे स्वभाव से जिज्ञासु होते हैं और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए वे प्रश्न पूछ कर अपनी जिज्ञासा का संतुलन बनाते हैं। आवेशवश शिक्षक तथा माता-पिता भी उनकी जिज्ञासा को दबा देते हैं। इस प्रकार हम निरंतर अनुसारको की संख्या उत्पन्न करते और बढ़ाते रहते हैं। बच्चे अर्थ जानने तथा अपने अनुभवों से स्वयं को जोड़ने के लिए प्रश्न पूछते हैं (किंग, 1955)। अनेक प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयो के शिक्षको ने माना है कि "प्रश्न पूछना एक आदर्श शिष्य की वाछनीय विशेषता है" (पचौरी, 1997)। अतः विद्यालयी बच्चो की सृजनात्मक सामर्थ्य के विकास के लिए प्रश्न पूछने को सहर्ष स्वीकार किया जाना चाहिए। प्रश्न कई प्रकार से पूछे जा सकते है– वस्तुओ, कहानी, चित्र, परिस्थितियों, पहेलियो तथा प्रदर्शनों / परीक्षणों आदि पर। कक्षा में शिक्षण के दौरान उत्पन्न असगतिया छात्रों द्वारा तुरत प्रश्न पूछने के अच्छे अवसर प्रदान करती हैं। शिक्षकों को 'क्यो' वाले प्रश्नों को प्राथमिकता देनी चाहिए बजाय इसके कि बच्चो को 'क्या' वाले प्रश्नो तक सीमित करना। प्रश्नों के कुछ नमूने इस प्रकार हैं–

- फूल रगीन क्यों होते है?
- चुम्बक लोहे के टुकड़े को क्यों खींचता है?
- मकडी जाला क्यों बनाती है?
- फल वृक्ष से नीचे क्यो गिरते हैं?
- सूखी हुई घास पीली क्यों होती है?
- मच्छर शोर क्यों करते है?

5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों द्वारा प्रश्न पूछने का मुख्य उद्देश्य उन्हें सीमित सूचना के आधार पर बहुविध अनुमानों को उत्पन्न करने मे सहायता करना है (टौरेन्स, 1970)।

सृजनात्मक गणित–5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चो द्वारा सृजनात्मक गणित का अनुसरण इस बात पर निर्भर करता है कि उन्होने जोड़ने और घटाने की कुशलता कितनी अच्छी तरह सीखी है। उदाहरणस्वरूप उनसे कहा *जाए कि 1 से 5 तक की संख्याओं से ऐसे जोड़े बनाएं* जिनका कुल योगफल छ· हो। 1 से 5 तक की संख्याओ से इतनी सख्याए बनाएं जिनका योगफल 10 हो। यह क्रियाकलाप घटाने की क्रिया में भी प्रयोग किया जा सकता है। एस.ओ आई मॉडल (गिलफोर्ड, 1967) के अनुसार यह 5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों के विभिन्न अर्थतात्विक संबंधो को मापता है।

ध्वनि के साथ सृजनात्मकता का पोषण– हममें से प्रत्येक प्रतिदिन अनेक प्रकार की ध्वनियों का अनुभव करता है और अनुमान लगाता है कि वे क्या हो सकती हैं। पेस्टालोज्जी (1894) ने इस बात पर जोर दिया था कि प्रथम शिक्षा बोले और गाए जाने वाले क्रियाकलापो के रूप मे होनी चाहिए। शिक्षक ऐसी वस्तुएं, जैसे– खिलौने ले सकते हैं जो ध्वनि उत्पन्न करते हों और तब छात्रो को कल्पना करने को कहें कि ये ध्वनियां क्या हो सकती हैं। ध्वनि की बेडौल विशेषता काल्पनिक संबद्धता के लिए समृद्ध पृष्ठभूमि प्रदान करती है। शहरी विद्यालय टौरेन्स तथा अन्य (1973) द्वारा विकसित ध्वनि परीक्षण खरीद कर प्रयोग कर सकते हैं।

रद्दी सामान से क्रियाकलाप– आजकल शहरी घरों और उनके आसपास प्रचुर रद्दी सामान उपलब्ध होता है। ग्रामीण वातावरण भी प्राकृतिक चीजों, जैसे विभिन्न प्रकार की मिट्टी तथा पत्थर, पत्तियां, फूल तथा फल, डंडियां तथा जड़ें तथा पशुओं की सामग्री इत्यादि से भरपूर होता है। शिक्षक इन प्राकृतिक तथा मानव निर्मित वस्तुओं

में सुधार करने अथवा इनसे कुछ नया बनाने मे छात्रो की सहायता कर सकता है। गिलफोर्ड और मेरीफील्ड (1960) के अनुसार इस सामग्री को कुछ रूपातरण की आवश्यकता होती है जो बच्चे सुधार के रूप में करते हैं।

5 से 6 वर्ष की आयु के बच्चे इन विभिन्न प्रकार के रद्दी सामानो से तुरंत खेलते हुए एक सौदर्य बोधी संवेदनशीलता के लिए गहन समझ प्रदर्शित करते हैं। इन सामग्रियो के साथ अन्योन्यक्रिया करते हुए वे हंसी-मजाक भी करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि ये सामग्री न केवल बच्चों की उत्पादक सृजनात्मकता (विशेषकर मौलिकता) का पोषण करती है वरन् यह उनके सौंदर्य बोध तथा हास्य-बोध (लाइबर मैन, 1965; टौरेंस, 1960; टौरेंस तथा अन्य 1968) को विकसित करने के लिए अवसर भी प्रदान करती है।

समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता— गिलफोर्ड तथा अन्य (1951) के अनुसार ऐसी कार्य सामग्री समस्या वाली परिस्थितियो मे उत्तरदाताओं के दोषों व कमियो को देखने की योग्यता का आकलन करती है। उदाहरणार्थ बच्चों से पूछा जा सकता है कि वे कल्पना करें कि कम हवा वाली फुटबाल को खेलने से खिलाड़ियों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। अन्य समस्या वाली परिस्थितियां ये हो सकती हैं— पेड़ पर चढ़ना, जंगली पशु का पीछा आदि। शिक्षक के लिए सुझाव है कि वह बच्चों के संस्कृति आधारित अनुभवो का लाभ उठाए। यह दशा उन्हें दूर के विचारों को आपस मे जोड़ने में मदद करेगी। बच्चों द्वारा दिए गए उत्तरों को धारा प्रवाहिता, लोचनीयता तथा मौलिक घटको के लिए अंक दिए जा सकते हैं।

आकृति-सृजनात्मकता का पोषण— बच्चों को आकृतियां बनाने में आनंद आता है। उन्हें उनकी कल्पनाओं को आकृतियों में परिवर्तित करने मे सहायता करनी चाहिए।

वस्तु की संरचना— बच्चे असामान्य वस्तुओं के निर्माण मे क्रेयन, वाटरकलर, क्राफ्ट पेपर, पत्रिकाओं की कतरनें, तीलियां, माचिस, रेत, बुरादा तथा बीजों आदि का प्रयोग कर सकते हैं। उन्हे ये बताने को कहा जाए कि उन्होंने क्या बनाया है। सृजनात्मकता के चारों घटक इन क्रियाकलापो द्वारा पोषित, आंके जाते हैं।

आकारों को बनाना— निम्न आकृतियों से एक असामान्य वस्तु बनाओ— आयाताकार, त्रिभुज, गोल, अंडाकार (प्रत्येक को स्वतंत्र रूप से प्रयोग करो)। बताओ ये क्या हैं। यह क्रियाकलाप वस्तुओं को विस्तार देने तथा सृजनात्मकता के अन्य तीन घटकों— धाराप्रवाहिता, लोचनीयता तथा मौलिकता प्रदान करने की योग्यता को पोषित करता है।

रूपरेखा की संरचना— बैरन (1963) के अनुसार सृजनात्मक व्यक्ति अस्पष्टता तथा असंतुलन के प्रति सहिष्णुता प्रकट करते हैं। वे वस्तुओं में जटिलता पसंद करते है। बच्चो से नीचे दिए आकारो के अधिकाधिक प्रयोग से एक रूपरेखा बनाने को कहें।
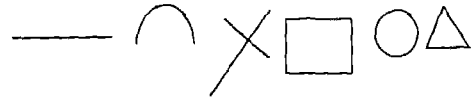
बताओ तुमने क्या बनाया है।

यह क्रियाकलाप भी संश्लेषण की रणनीति के प्रयोग से सृजनात्मक कल्पना की प्रेरणा को पोषित करता है (खतेना, 1975)।

स्ट्रोक (कलम की घसीट) अभ्यास— विचलित आकृति श्रेणियो की योग्यता को पोषित करने के लिए छात्रों से नीचे दिए स्ट्रोकों से जितने हो सकें अक्षर बनाने को कहें।

शिक्षक क्षैतिज, सीधी खड़ी तथा तिरछी रेखाओं वाली 2 × 2 इंच (5 cm × 5 cm) की चौकोर आकृतियां बनाएं जिसमे एक विशेष शब्द जड़ा हो। छात्र का काम उस चौकोर आकृति में शब्द को ढूढ़ना है। यह क्रियाकलाप छात्रो में विभिन्न आकृति रूपांतरण की योग्यता के विकास में सहायक होगा।

परीक्षित सृजनात्मक वस्तुएं– वालाक तथा कोगन (1965) ने खेल की दशाओं के आधार पर बच्चों की सृजनात्मक सामर्थ्य को जानने के लिए एक टेस्ट बैटरी बनाई। इस टेस्ट बैटरी का प्रयोग वार्ड तथा मोरन (1983) ने विद्यालय पूर्व बच्चों की विभिन्न उत्पादक योग्यताओं को परखने के लिए किया था। अत. यह वाछनीय है कि प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक वालाक तथा कोगन की टेस्ट बैटरी को जानें ताकि 5 से 6 वर्ष आयु के बच्चों के स्थानीय अनुभवों और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक अपनी स्वयं की परीक्षण वस्तुओं का निर्माण कर सकें।

मौखिक सृजनात्मक वस्तुएं

उदाहरण– जितनी भी हो सकें ऐसी वस्तुओ के नाम बताएं जो गोल हों, आवाज करें तथा लाल रंग की हों।

वैकल्पिक प्रयोग– जितने भी संभव हो उतने तरीके बताएं जिनमें एक चाभी, एक चम्मच, समाचार-पत्र तथा एक पत्थर का प्रयोग हो सके।

समानताएं– जितने भी सभव हों उतने तरीके बताएं जिनमें एक संतरा और एक नींबू तथा गोश्त और दूध मे एक समानता है।

आकृति सृजनात्मकता वस्तुएं

रेखा के अर्थ– निम्न रेखाचित्रों के जितने हो सकें उतने अर्थ बताओ–
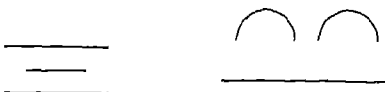
नमूना के अर्थ– निम्न रेखाचित्रो के जितने हो सकें उतने अर्थ बताओ–

हमारे देश में इस टेस्ट बैटरी को परमेश ने भारतीय विषयो के लिए अपनाया है।

सृजनात्मक घटकों के लिए प्राप्तांक योजना

अनुसंधान प्रमाण के अनुसार विभिन्न चितन स्वतत्र अधिगम, अन्वेषण तथा अंतरण का प्रशिक्षुओं में पोषण करता है (डाइरेक्स, 1977)। धाराप्रवाहिता, लोचनीयता तथा मौलिकता को आवश्यक विभिन्न उत्पादन योग्यताए माना जाता है, जो सृजनात्मकता की अधिक जटिल संरचना में योगदान देती है (गिलफोर्ड, 1967)। टौरेन्स (1962) ने सृजनात्मकता को संरचनात्मक रूप से परिभाषित किया था। इसमे धारा प्रवाहिता, लोचनीयता, मौलिकता तथा विस्तार सम्मिलित हैं। कल्लाहन तथा रेंजुल्ली (1977) भी टौरेन्स की अवधारणा से सहमत हैं। अत. सृजनात्मकता के सामान्यता के घटकों के परिदृश्य मे गिलफोर्ड (1977), मैकिनन (1978) तथा टौरेन्स (1979) ने ठीक ही कहा है कि "सृजनात्मकता का चमत्कार और कुछ नहीं बल्कि एक आयामी था।" जेगास (1976) ने सृजनात्मकता के परीक्षण पर विशेष टिप्पणी की है। गिलफोर्ड की विभिन्न चिंतन बैटरी वालाक-कोगन तथा टौरेन्स दोनो के परीक्षणों के समान है। आने वाले अनुसधान तथा सांख्यिकी की कार्य पद्धतियों ने हमारी अवधारणाओं तथा इसके बहुमुखी स्वरूप मे वृद्धि की है। सही ढंग से सृजनात्मकता के घटकों का आकलन करने के लिए यह सदर्भोत्तर नहीं होगा कि पहले उनके बारे में अवधारणा संबंधी स्पष्टता हो। रिस्टन तथा स्मिथ (1975) ने उन्हें निम्न प्रकार से परिभाषित किया है।

धारा प्रवाहिता– यह एक व्यक्तिगत योजना है जिससे

व्यक्ति "संप्रेषण की निरतर धारा में अभिव्यक्त करता है" (एक प्रेरक वस्तु के बारे मे वर्णित प्रत्युत्तरों की कुल सख्या)।

लोचनीयता— यह तत्परता से एक विचार से दूसरे पर छलाग लगाने की योग्यता है (प्रत्युत्तरो की श्रेणियां बनाना)।

मौलिकता— यह एक प्रेरक वस्तु के बारे में बार-बार न होने वाले साख्यकीय प्रत्युत्तरों से संबंधित है।

विस्तार देना— यह "एक विचार को सवारने या विस्तार देने" से सबंधित है।

सृजनात्मक चिंतन के परीक्षण के दो रूप— मौखिक तथा आकार रूपी मे होते हैं।

धारा प्रवाहिता, लोचनीयता तथा विस्तार की श्रेणियों के लिए प्रत्येक उत्तर के लिए एक अक रखा गया है। मौलिकता के लिए एक उत्तर 15 प्रतिशत से अधिक आने पर शून्य से सात; 15 प्रतिशत को 1 अक; 3 से 6 प्रतिशत को 2 अक; 1 से 2 प्रतिशत को 3 अक तथा 1 प्रतिशत से कम को 4 अंक (क्रौप्ले 1967)। उडविन (1983) ने निम्न योजना का सुझाव दिया है। एक उत्तर एक बार आने पर 3 अंक, दो बार आने पर केवल 2 अंक और तीन बार आने पर केवल 1 अंक।

यह देखा गया है कि लोचनीयता तथा मौलिकता के माप धारा प्रवाहिता के माप से गड़बड़ा दिए गए है (क्लार्क तथा मीरेल्स 1970, जोन्स तथा मौर्स, 1977)। अतः यह सुझाव दिया गया है कि उनके लिए आनुपातिक अंक दिए जाएं, जैसे लोचनीयता में से धारा प्रवाहिता को घटाना, उसी प्रकार मौलिकता में से धारा प्रवाहिता को घटाना। यह आवश्यक नही है कि प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक कुतर्कपूर्ण परिमाणीकरण में रुचि रखे, अतः अपने छात्रों की इन सृजनात्मक चिंतन सामर्थ्यो के लिए वे गुणात्मक आकलन को पसंद कर सकते हैं। एक त्रि-बिंदु श्रेणी माप ठीक कार्य कर सकता है, उदाहरण के लिए सृजनात्मक घटक बहुत अच्छी तरह विकसित किए गए है, सामान्य रूप से विकसित या अल्प विकसित है। अधिक महत्वपूर्ण यह है कि सृजनात्मक चिंतन सामर्थ्यो के पोषण के लिए किए गए क्रियाकलापों के आधार पर प्रत्येक बच्चे पर एक पार्श्व चित्र विवरण रखा जाए। वालाक तथा कोगन की परीक्षण बैटरी संख्या तथा विषयों से उत्पन्न अनन्यता के लिए अंक देती है। संख्या का संबंध प्रेरक विषय के बारे मे उत्पन्न कुल उत्तरों से है। अनन्यता के अंक आंकड़ो के एक समूह में केवल एक बार आने वाले उत्तर को दिए जाते है। गुणात्मक रूप से अनन्यता के अंक सतुलित, अच्छे या बहुत अच्छे करके दिए जा सकते हैं।

टौरेन्स के सृजनात्मक चितन परीक्षण के कसौटी सदर्भित उपायों के लिए बाल तथा टौरेन्स (1980) ने सुझाव दिया है कि एक बार होने वाले/ दो बार होने वाले कसौटी व्यवहार को + अंक दिए जाए, तथा तीन बार से अधिक आने वाले को + + दिए जाएं।

सृजनात्मकता के मौखिक अथवा आकृति सूचकांक प्राप्त करने से पूर्व अनुसधान शुद्ध अंकों को मानक अंको में परिवर्तित करते रहे थे।

सृजनात्मक अधिगम वातावरण की विशेषताएं

स्टार्को (1995) मानता है कि अधिगम को "एक सृजनात्मक प्रक्रिया जो पूर्व ज्ञान तथा नए ज्ञान को जोड़ते हुए सूचना को प्रासगिक बना कर छात्रो को सम्मिलित करती है"। यह अधिगम विशेषताओ के परीक्षण को आवश्यक मानता है जो छात्रों मे विभिन्न चितन सामर्थ्यो को विकसित करने को बढ़ावा देता है। अनुसंधान से ज्ञात होता है कि अधिगम परिस्थितिया जो "स्वतंत्रता, जोखिम उठाना तथा तात्विक प्रेरणा" को प्रोत्साहन प्रदान करती हैं, प्रशिक्षुओं में सृजनात्मक चितन में बहुत सहायक होती हैं (एन्डर्सन तथा अन्य 1970; हिल तथा एमेवाइल 1993, रिचर्डसन 1883, शौधनैस्सी 1991)। टौरेन्स तथा मेयर (1970) ने उत्तरदायी कक्षा वातावरण की वकालत की है उनके अनुसार जब कक्षा की अन्योन्य क्रियाएं, असामान्य प्रश्नों, कल्पनाशील तथा असामान्य विचार तथा जब छात्र निश्चिंत हों कि वे मूल्यांकन के भय मुक्त हैं, के लिए आदर-भाव का रूप ग्रहण करती हैं तो सृजनात्मक चिंतन निर्बाध फलता-फूलता है।

टौरेन्स (1970) का सुझाव है कि सुविधा वंचित की निम्नलिखित छः सृजनात्मक सकारात्मकताएं उनमे सृजनात्मक सामर्थ्यों के सफल पोषण के लिए उपयोग मे लाई जानी चाहिए।

- ☐ अमौखिक धारा प्रवाहिता तथा मौलिकता में वे उच्च हैं।
- ☐ छोटे समूहों मे वे अच्छी तरह कार्य करते है।
- ☐ दृश्य कला क्रियाकलापो मे वे अपवाद स्वरूप अच्छे है।
- ☐ अंग संचालन, नृत्य तथा अन्य शारीरिक क्रियाकलापों में वे उच्च सृजनात्मकता दर्शाते है।
- ☐ खेलों, संगीत, क्रीड़ा, हास्य तथा मूर्त वस्तुओं में वे उच्च प्रेरणा दर्शाते हैं।
- ☐ उनके पास कल्पनाशीलता में समृद्ध भाषा है।

लेखक विद्यालयी शिक्षा के प्रथम वर्ष से ही सृजनात्मक सामर्थ्य के पोषण की आवश्यकता अनुभव करता है क्योकि प्रत्येक बच्चा अपनी तरह से सृजनात्मक होता है। मानव पूंजी हमारे सीमित प्राकृतिक स्रोतो की तुलना में अनत विस्तार युक्त है। अपने छात्रों के बेहतर कल तथा उन्नतिशील भारत के लिए आओ हम "सृजनात्मक प्रदर्शन के सामान्य स्तर" (गिलफोर्ड 1967) को ऊपर उठाएं।

टिप्पणियां

सृजनात्मकता की परिभाषा कई प्रकार से दी गई है। कुछ का वर्णन इस प्रकार है –

- यह कल्पना करना, पूर्वावलोकन तथा विचारो को उत्पन्न करना है। (ओसवोर्न 1967)
- यह एक प्राकृतिक विशेषता, एक अभिरुचि विशेषता, एक अंतर मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया और एक जीवन पद्धति है। (गोलान्न 1963)
- सृजनात्मकता किसी नई चीज को उत्पन्न कर अस्तिव में लाने से संबद्ध है। (बैरन 1765)
- सृजनात्मकता ज्ञान से विकल्पों की ओर छलांग है। (पिकार्ड 1990)
- यह रिक्त स्थानों या लुप्त तत्वों की अनुभूति, अनुमान लगाने, परिणामो का संचार तथा इन अनुमानो को सुधारने तथा पुनर्निरीक्षण की प्रक्रिया है। (टौरेन्स 1965)

24 विभिन्न उत्पादन परीक्षणो में से 23 कारक विश्लेषण के आधार पाए गए हैं, जो सृजनात्मक सामर्थ्य के विकास को बढ़ाते हैं। ऐसे दस परीक्षण (अर्थतात्विक तथा दृश्य आकार–प्रत्येक के लिए पाच) बच्चों के लिए उपयोगी पाए गए है। (गिलफोर्ड तथा क्रिस्टेंसेन 1973)। ये निम्नलिखित हैं –

अर्थतात्विक परीक्षण

- ☐ कहानियों, कथानक के शीर्षकों का सुझाव देना।
- ☐ वस्तुओं के वैकल्पिक उपयोग बताना।
- ☐ समान अर्थ वाले शब्दो का विकल्प देना।
- ☐ दिए गए शब्दों के आधार पर वाक्य लिखना।
- ☐ लोगो के संभावित उद्देश्यों का सुझाव देना।

दृश्य आकृति परीक्षण

- ☐ रेखाचित्रो द्वारा वस्तुएं बनाना।
- ☐ दिए गए स्ट्रोकों (कलम की घसीट) से अक्षर बनाना
- ☐ दी गई रेखाओं से वस्तुएं बनाना।
- ☐ आकारों में छिपे अक्षरों का पता करना।
- ☐ वस्तुओं को सजाना। ☐☐

टी-110 बी, सुष्मि
सैक्टर-ए, सर्वधर्म कोलार रोड, भोपाल, म.

प्राथमिक स्तर पर सृजनात्मकता अन्वेषण हेतु व्यूह रचनाएं

❏ जी. सी. भट्टाचार्य

प्रतिभावान विद्यार्थी देश तथा समाज के लिए वरदान स्वरूप होते ही हैं लेकिन सृजनशील विद्यार्थियों का महत्व शायद उनसे भी अधिक है। सभी नई-नई खोज, आविष्कार, अनुसंधान, मौलिक चिन्तन तथा रचनात्मक कार्य कुछ ऐसे ही लोगों की देन हैं। अत. यदि प्रतिभावान देश के संचालक है तो कहिए कि सृजनशील राष्ट्र के विकासकारी है। क्रो एवं क्रो के अनुसार—सृजनात्मकता मौलिक परिणाम या उपलब्धि को अभिव्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है। सृजनात्मक गुण और सृजनात्मक उत्पादन इससे सम्बन्धित होते हैं। सृजनात्मक गुण या क्षमता व्यक्ति को सृजनात्मक चिन्तन के लिए तैयार और प्रेरित करता है जबकि सृजनात्मक उत्पादन वह मूर्त परिणाम या नवीन उत्पादन या विचार आदि होते हैं जो समूह के लिए नवीन, मान्य, उपयोगी और उपादेय हो। चाहे विज्ञान का क्षेत्र हो या फिर कला-कौशल का, या तकनीकी ज्ञान या साहित्य का, या फिर सामाजिक, मानसिक या व्यक्तिगत क्षेत्र ही क्यों न हो, सृजनात्मकता प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित हो सकती है।

यह आवश्यक नहीं कि सृजनशील बालक या बालिका अति बुद्धिमान ही हों, वे सामान्य बुद्धिलब्धि के भी हो सकते है। अतः यह आवश्यक है कि उनमें निहित अन्य गुणो के आधार पर प्रतिभा खोज के समान ही सृजनशील खोज का अभियान प्रारम्भ हो। प्राथमिक स्तर पर निहित योग्यता को यदि खोज लिया जाता है तो सही मार्गदशर्न समय से सम्भव होने के कारण प्रतिभा क्षरण के समान सृजनशीलता का अपरदन नहीं हो पाता है। प्रतिभा पलायन के समान सृजनशीलता का ह्रास ही नहीं, पलायन भी होता रहता है।

सृजनात्मक प्रतिभा में वे बच्चे समृद्ध समझे जाते हैं जो क्रियाशील, मौलिक चिन्तक, स्वतन्त्र अभिव्यक्ति प्रिय, निर्णय शक्ति सम्पन्न, अति जिज्ञासु, उच्च बोधगम्यता स्तर युक्त, भावाभिव्यक्ति में कुशल, अन्तर्दृष्टि और पूर्वानुमान क्षमतायुक्त, समायोजन कुशल, अति संवेदनशील, सौन्दर्यानुभूति व सौन्दर्याभिव्यक्ति आदि गुणों से सम्पन्न होते हैं। सृजनात्मकता मात्र जन्मजात की प्रतिभा न होकर अतिकुशलता के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। अतः प्राथमिक स्तर से ही ऐसे बच्चों के बारे में खोज करना जरूरी हो गया है जिनमें या तो सृजनात्मकता निहित है या जो कुशलता को प्राप्त करने में सक्ष्म हैं।

लक्षण

सामान्य रूप से सृजनशील व्यक्ति के कई मूलभूत लक्षण होते हैं जिनकी सहायता से उन्हें आसानी से पहचानना सम्भव हो पाता है। जैसे—सृजनशील व्यक्ति अपनी रुचि के क्षेत्र से सम्बन्धित उत्तेजक के प्रति उच्चस्तरीय प्रतिक्रियायों का प्रदर्शन करते हैं। वे एक समय में एक से अधिक विचारों पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। वे जटिल घटनाओं या समस्याओं के समाधान में अधिक रुचि लेते है। वे अपूर्ण वस्तुओं को नवीन ढंग से पूर्ण बनाने का प्रयास करते रहते हैं। वे अपनी बात को काफी विचारने के बाद कहते हैं और फिर उस पर दृढ़ रहते हैं, उसी के अनुसार निर्णय लेने की क्षमता उनमे होती है। इतना ही नहीं, वे अपने निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए भी प्रयास करते हैं।

बाल सृजनात्मकता का महत्वपूर्ण लक्षण है जिज्ञासु प्रवृत्ति या उत्सुकता। जब तक जिज्ञासा नहीं होगी, तब तक न तो किसी विषय में रुचि का होना सम्भव है और न जानने के लिए प्रवृत्ति। अधिकाधिक सीखने के लिए वह प्रश्न भी नहीं करना चाहेगा जिसमें यह प्रवृत्ति न हो।

इसी से समीक्षा के गुण का विकास होता है। निर्णय लेना तो समीक्षा के बाद ही सम्भव होता है। अतः निर्णय की शक्ति इन प्राथमिक गुणों पर निर्भर है।

स्वतन्त्र चिन्तन अवश्य ही निष्पक्ष और पूर्वाग्रह से रहित होता है और इसके तहत न केवल प्रश्न ही पूछे जा सकते हैं बल्कि स्वय उत्तर या हल भी ढूंढा जा सकता है। एक ही जैसा हल नही, विभिन्न दृष्टिकोणों से हल फलतः समाधान अवश्य ही नवीनता से तृप्त होगा। सूती रुमाल मे सोखने का गुण होता है। अतः आंसू पोछना, खून का बहना रोकना, पानी सुखाना, सिर को ठडा रखना जैसे प्रयोग एक ही दृष्टिकोण पर आधारित होगे। यह अपारदर्शी होने से किसी वस्तु को इसमें छिपाया जा सकता है, लम्बा होने से किसी वस्तु को बांधा भी जा सकता है। लचीला होने के कारण इसमें किसी वस्तु को लपेटा जा सकता है। यह सभी विभिन्न दृष्टिकोण से विचार का परिणाम है। इस प्रक्रम को विचार उत्पत्ति (आइडिया जेनरेशन) कहा जाता है। विचारोत्पत्ति, सृजनशील बनने के लिए जरूरी है। यह नवीनता से जुड़ा होता है। नवीन रचना ही नहीं, किसी दो या अधिक वस्तु या घटनाओ के मध्य नवीन कार्य कारण या अन्तर्सम्बन्ध को ढूंढना भी इसका लक्षण है।

आज सृजनशीलता जन्मजात लक्षण न होकर प्रशिक्षणाधीन तथा निर्माणीय माना जा रहा है। इन गुणों तथा विशेषताओं मे दक्षता प्रदान कर सृजनशील व्यक्तित्व का निर्माण करना सम्भव है। सृजनशील किसी भी समस्या या घटना की तह तक जाने का प्रयास अवश्य करता है। छोटा बच्चा किसी खिलौने को यदि तोड़कर उसके अन्दर क्या है, यह जानने के लिए प्रयास करता है और अपने इस प्रयास में देर तक संलग्न रह लेता है तो, वह सृजनशील हो सकता है। डांट-डपटकर हम इसे रोकने के लिए ही प्राय. कोशिश करते रहते है। फिर सृजनात्मकता, धैर्य और एकाग्रता से भी जुड़ा होता है। अतः उन्हें धीर स्थिर होना तो अपरिहार्य हो जाता है।

प्राथमिक स्तर से यदि सृजनशील प्रवृत्ति तथा प्रतिभा को अवसर नहीं दिया जाता है तो प्रायः यह देखा जाता है कि इस दिशा में विकास अवरुद्ध होने लग जाता है। यह उपेक्षा घरों में तो आजकल एक आम बात हो चुकी है क्योंकि प्रतियोगिता का जमाना है और सब कुछ समय के साथ सीमित बनता जा रहा है। खासकर अच्छे विद्यालयो में पढने वाले बच्चे तो सपने में भी कक्षा में अपने आप को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने का सपना देखने लग गए हैं। ये सपने वे देखते नही बल्कि उनके घर के अभिभावक या माता-पिता के द्वारा दिखाए जाते हैं। व्यर्थ के कामों या आचरण में समय नष्ट करना उनके लिए मूर्खता बन चुकी है। इसके विपरीत वे बच्चे जो सामान्य या साधारण विद्यालयों मे पढ़ते हैं, वहां न तो उनकी प्रतिभा पर घर में ध्यान देने वाला कोई होता है और न ही विद्यालयों मे ही। फलत. आज बौद्धिक विकास तो शिक्षा के माध्यम से कुछ हद तक सम्भव हो पा रहा है लेकिन सृजन प्रतिभा का विकास अवरुद्ध होता जा रहा है। इसके लिए परम आवश्यक हो जाता है कि शिक्षण प्रशिक्षण सस्थाओं के पाठ्यक्रम में शिक्षण विधि, व्यूह रचना, प्रतिमान आदि के समान ही कुछ सृजनात्मकता अन्वेषण व्यूह रचनाओं को भी स्थान दिया जाए ताकि उन व्यूह रचनाओ के बारे में खासकर प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए जो शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे होते है, विशेष जानकारी तथा कुशलता प्राप्त कर सकें। इस ज्ञान के अभाव में वे उन बच्चों के साथ न्याय करने में असमर्थ ही सिद्ध होंगे जिनमें जन्मजात सृजनशीलता सन्निहित होती है। बच्चों को सृजनात्मकता के क्षेत्र मे प्रशिक्षित कर पाना तो दूर की बात ही रहेगी।

इस दिशा मे सम्बन्धित साहित्यों के अवलोकन तथा विश्लेषण के साथ ही शिक्षा मनोविज्ञान के विद्वानों के साथ विचार-विनिमय करने के लिए प्रयास किया गया ताकि कई ऐसी व्यूह रचनाओं के बारे मे ठोस जानकारी प्राप्त करना सम्भव हो सके जिन्हे शिक्षक प्रशिक्षण के अवसर पर प्रयोग मे लाया जा सके। जिन व्यूह रचनाओं का प्रारूप तैयार हुआ और विचार-विमर्श के बाद जिन्हें उपयुक्त पाया गया, उनके बारे में विवरण संक्षेप मे दिया जा रहा है।

- अधिकांशत· अभिमत "कला आधारित व्यूह रचना" (आर्ट बेस्ड स्ट्रेटेजी) के पक्ष मे प्राप्त हुए। इसमें कला के माध्यम से सृजनात्मक अभिवृत्ति को स्पष्ट करने के

लिए अवसर प्रदान किया जाता है। ललित तथा व्यावहारिक कलाए दोनो के माध्यम से ही सृजनात्मक अभिव्यक्ति और उसका विश्लेषण सम्भव है। चित्रांकन करना, मिट्टी के खिलौने तैयार करना, चित्रपूर्ति करना, वृत्त के अन्दर डिजाइन तैयार करना, चित्र में रंग भरना आदि अनेक क्रियाए इस व्यूह रचना के अन्तर्गत सम्मिलित कलात्मक क्रियाकलाप माने जाते हैं। जिन बच्चो में प्रारम्भ से ही कला के प्रति रुचि और आकर्षण दिखाई देता है, उनके लिए यह व्यूह रचना अधिक उपयोगी और सफल सिद्ध हो सकती है। प्रत्येक व्यूह रचना मे कार्य प्रस्तावना, स्पष्टीकरण, प्रदर्शन, व्यावहारिक (सक्रिय) प्रतिभागिता तथा कार्य विश्लेषण और निष्कर्षीकरण जैसे अनुपद प्रयुक्त होते है।

● द्वितीय स्तर पर "मौलिक लेखनाधारित व्यूह रचना" (ओरिजिनल राईटिग बेस्ड स्ट्रेटेजी) को महत्वपूर्ण माना गया क्योंकि इसमें कुछ विकसित बुद्धि स्तर के बच्चे भाग ले सकते हैं। मूलतः स्वतन्त्र और इच्छानुसार लेखन के माध्यम से सृजनात्मकता के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के लिए यह जरूरी माना जाता है कि बच्चे कम से कम उच्च प्राथमिक स्तर के हों लेकिन निम्न स्तर पर भी अनेक प्रतिभावान बच्चे इस कौशल में कुशल दिखाई देते हैं। कला के समान लेखन और मौलिक चिन्तन में भी उपयुक्त ढंग से प्रशिक्षण देना सम्भव है। अध्ययन पाठ्यक्रम से सम्बन्धित या पाठ्यक्रमेतर किसी भी विषय पर बच्चे मौलिक चिन्तन और लेखन कर सकते हैं। आवश्यक यह है कि इसके लिए समाजोपयोगी उत्पादक कार्य या अन्य किसी व्यावहारिक विषय के कालांश का सदुपयोग किया जाए।

● तृतीयतः जिस व्यूह रचना को महत्वपूर्ण माना गया वह है– ''व्यावहारिक क्रियाधारित व्यूह रचना"। यह व्यूह रचना प्राथमिक और उच्च प्राथमिक दोनों ही स्तर के बच्चों के लिए समान रूप से उपयोगी हो सकती है। टीन या दफ्ती के खाली डिब्बों के नवीन उपयोग, खेल या क्रिया के माध्यम से किसी उत्पाद में सुधार या रूप परिवर्तन करना, पुराने कागज या कलम को अधिक उपयोगी वस्तुओं में परिवर्तित करना, किसी साधारण वस्तु को कलात्मक स्वरूप प्रदान करना आदि अनेक टास्क एसाइनमेन्ट या प्रदत्त कार्य हो सकते हैं जिन्हें इस व्यूह रचना के अन्तर्गत सम्मिलित किए जा सकता है।

● इसके पश्चात् जिस व्यूह रचना की पहचान की गई वह है– ''समस्या समाधानपरक व्यूह रचना"। विद्यालयी या सामाजिक / पारिवारिक किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित व्यवहार से सम्बन्धित किसी कठिनाई या समस्या का निराकरण अभिनव ढंग से करने के लिए यदि बच्चों को अभिप्रेरित किया जाता है तो इसके माध्यम से भी उनकी सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति की पहचान हो सकती है। आधुनिक और उच्चस्तरीय क्रियात्मक अनुसन्धान या एक्शन रिसर्च का यह सरलीकृत रूप है। खेल के मैदान में हों या घर में, अनेक समस्याएं नित्य ही सामने आ जाती हैं। सृजनशील प्रतिभावान अवसर मिलने पर प्रायः सरलतापूर्वक उनके समाधान आसानी से वे ढूंढ़ सकते हैं।

● एक और व्यूह रचना को प्रस्तावित किया गया जिसे ''उत्पादक चिन्तनाधारित व्यूह रचना" की संज्ञा दी गई है। इसके माध्यम से तकनीकी कुशलता की ओर अभिमुख प्रवृत्ति के बारे में जानकारी प्राप्त करना सम्भव माना गया। व्यावहारिक उपयोगिता के आधार पर उत्पादक वस्तु निर्मित करने की कुशलता पूर्व रचित या निर्मित वस्तु में गुणात्मक सुधार या मौलिक रूपान्तरण से भिन्न है। इसमें नवीन विचार या कल्पना के आधार पर ही उत्पादक वस्तु की रचना की जाती है जबकि व्यावहारिक क्रिया पर आधारित क्रियाकलापों में किसी पूर्व निर्मित वस्तु या पदार्थ को अधिक व्यावहारिक और उपयोगी बनाया जाता है।

अन्ततः यह कहना आवश्यक है कि सामान्यतः सृजनात्मकता की प्रतिभा से समृद्ध बच्चे क्रियाशील, मौलिक चिन्तक, स्वतन्त्र अभिव्यक्ति प्रिय, निर्णय शक्ति सम्पन्न, अतिजिज्ञासु, उच्च बोधगम्यता स्तर युक्त, भावाभिव्यक्ति मे कुशल, अन्तर्दृष्टि और पूर्वानुमान क्षमता युक्त, समायोजन कुशल, अति संवेदनशील तथा सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्याभिव्यक्ति गुणों से सम्पन्न होने के कारण

इनके साथ व्यवहार करते समय अध्यापक या अभिभावक दोनों को ही मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि सम्पन्न होने की आवश्यकता है। किसी भी सामान्य बात या विषय को वे अति गंभीरतापूर्वक ले सकते हैं या उनके आत्माभिमान को ठेस पहुंच सकती है। अतः उचित प्रशिक्षण के अभाव से इनके आत्माभिमान को वे अहं या अभिमान मानकर यदि दंडित या उपेक्षित करने का प्रयास करते हैं तो शायद उसका परिणाम न केवल उन बच्चों के लिए घातक हो सकता है अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र को एक भावी श्रेष्ठ सृजनशील प्रतिभा से वंचित भी रह जाने की पूरी सम्भावना रहती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम न केवल बुद्धि और बौद्धिक उत्कर्ष को ही एकमात्र श्रेष्ठता का सम्मान दें बल्कि सृजनात्मकता के अन्वेषण हेतु भी सार्थक और गंभीर प्रयास अवश्य प्रारम्भ करें।❑❑

न. 4, टीचर्स फ्लैट्स,
(विश्वविद्यालय परिसर)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.

प्राइमरी शिक्षा में सृजनात्मकता की भूमिका

❑ वाई. डी. माथुर
❑ उषा गोयल

स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि वेदांत का सिद्धांत है कि मनुष्य के भीतर ज्ञान का भंडार निहित है—अबोध शिशु मे भी। आवश्यकता केवल उसको जागृत करने की है। बच्चों को भगवान का रूप माना जाता है क्योकि बच्चे दुनिया में आने के बाद मन-मस्तिष्क, दृश्य-श्रव्य सभी गुणों से परिपूर्ण सासारिक ऊहा-पोह से दूर होता है। प्रत्येक बच्चा सृजक होता है और उसमे सृजनात्मकता का अदृश्य अकुर विद्यमान रहता है। आवश्यकता होती है उसके प्रस्फुटन, पल्लवन और निकास के लिए उसे साधन-प्रोत्साहन, वातावरण और अवसर प्रदान करने की। जैसा कि –

गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दो मे "ठीक से देखने पर बच्चे जैसा पुराना और कुछ नही है। देश, काल, शिक्षा, प्रथा के अनुसार वयस्क मनुष्यो में कितने नए परिवर्तन हुए है परन्तु बच्चा हजारो साल पहले जैसा था, आज भी वैसा ही है।"

बच्चों के लिए सृजनात्मकता

जिज्ञासाओं, आंकाक्षाओं, मन में उठने वाली तरंगों जैसे प्रश्नो, चीजों को जानने की लालसा और आसपास की घटनाओं की जानकारी, देखी हुई चीज की नकल करने की ललक और कौतुहल के पिटारे से कुछ नया करने की जिज्ञासा का नाम है "बचपन" जो जाति, वर्ग, धर्म, ऊच-नीच से दुर बच्चो का वास्तविक अनमोल खजाना है।

जानने-करने-पूछने की इस बहुआयामी अवस्था में बच्चो को यदि समाधान न मिले तो उन के मन में न जाने कितनी उलझने पैदा हो जाती है। वे तरह-तरह के अनुमान लगाने लगते है और उनका कल्पना लोक उन्हे कौन-कौन से विषयों, पात्रों के बीच घुमाता है यह ज्ञात करना स्वय में शोध का विषय है। आज सयुक्त परिवार का वातावरण, नाना-नानी, दादा-दादी का दुलार कहां मिल पाता है। कोमल कलियों को जो खिलने और सुगध विकीर्ण करने की अवस्था मे है इसके विपरीत आज के तनाव बड़े अपने-अपने चक्रव्यूहों में इतने उलझते जा रहे है कि उन्हें बच्चों, उनके बचपन एवं बाल औत्सुक्य तथा कौतुहल के लिए समय ही कहां है? वे अपने दायित्व को क्रेचों, टी.वी. नौकर-चाकरों की गोदियों और खिलौनों के ढेर के बीच छोड़ देते हैं। जिसके फलस्वरूप न तो बच्चे का मन शांत होता है और न ही बच्चा माता-पिता की आशाओं के अनुरूप पूरा उतर पाता है। उसकी बाल बुद्धि इस बात से अनभिज्ञ होती है कि उसको क्या करना है, क्या खेलना है, उसकी रुचि किसमें है। उसके भावी जीवन की नींव एक अपने ही निराले ढंग से सोचने, बढ़ने के लिए मजबूर हो जाती है।

बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए सृजनात्मकता का विकास अति आवश्यक है। उसके विकास में जीन्स, माता-पिता, संगी-साथी, विद्यालय, वातावरण, प्रेरणा, प्रोत्साहन, अवसर, सुविधाएं आदि अनेक कारक हैं। सृजनात्मकता विकास के लिए यह अनिवार्य है कि विद्यालयों में इसे एक विषय के रूप में सम्मिलित किया जाए। साथ ही शिक्षक एवं माता-पिता भी इस दायित्व को निभाने में सहयोग दें तथा समाज में भी उपयुक्त वातावरण हो तभी बच्चों का सही अर्थो में सर्वांगीण विकास संभव है।

आज का बच्चा सामाजिक परिवर्तनों, टूटते संयुक्त परिवारों, घटते नैतिक मूल्यों, एकल परिवारों की सब्जबागी, अव्यावहारिक कल्पना के कारण अल्पायु में असमय की प्रौढ़ता ओढ़े अपनी कुशाग्र बुद्धि की पैनी धार से वार तो कर रहा है परन्तु वह बचपन इस बात से अनभिज्ञ है कि वार कहां करना है? किस पर करना

है अर्थात् आज बचपन दिशाहीन होकर भटक गया है।

सृजनात्मकता के बहुआयामी पक्ष

बच्चों का सर्वागीण विकास तभी संभव है जब उन्हें अभिव्यक्ति के बहुआयामी माध्यम दिए जाएं। ऐसी स्थिति में बाल मनोबल को बढ़ावा दिए बिना उनका विकास संभव नहीं। बच्चों के साथ तीन प्रकार के रिश्ते होते हैं–

- माता-पिता और बच्चे
- शिक्षक और बच्चे
- संगी-साथी अर्थात् समाज

माता-पिता और बच्चे

बच्चे माता-पिता की देन होते हुए भी दोनों में दो पीढ़ी का अतर है जो सनातन है जिसे बदला नहीं जा सकता है। बच्चो को आरभिक अवस्था में कोई पाठ पढ़ाना अथवा सिखाना नहीं पड़ता बल्कि उसकी मौन, शांत बुद्धि माता-पिता एवं परिवार के सदस्यों के सोचने, समझने व जीवन जीने के तौर-तरीकों से स्वयं सीख लेते हैं क्योंकि नकल करना बच्चों की एक आदत ही नहीं एक आनंद भी है।

आज माता-पिता बच्चो के पेट की भूख की चिंता अधिक करते हैं परन्तु उनकी मानसिक भूख शांत नही हो पा रही। जिसके फलस्वरूप उद्दंडता, पलायनवादिता, दिशाहीनता आदि के बादल अधिक मंडराने लगे है। शिक्षा पद्धति में प्रेषण, जानकारी, परिकल्पना और सत्यापन की कड़ी चलती रहे और उन्हें 'करो और सीखो' के माध्यम से कुछ करने दिया जाए तो बच्चे बड़ों को पीछे छोड़कर बहुत आगे बढ़ जाएंगे। उनके साथ आदान-प्रदान द्वारा उनके मन की सृजनात्मक वृत्ति को जानने और उसे आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकते है। बच्चों के सर्वागीण विकास में माता-पिता की अहम् भूमिका होती है। सृजनात्मक माता-पिता अपने कार्यो, घर के वातावरण से बच्चे को अप्रत्यक्ष रूप से सृजनात्मकता की धरोहर सौंप सकते है। बच्चे मे नकल की प्रवृत्ति काफी वर्ष तक रहती है। कुछ बच्चे इतने अधिक बुद्धिमान होते हैं कि वे अपनी रुचि, काम की चीजे चुपचाप दूसरों से ग्रहण करके उसे अपना बाना पहना देते है जिस पर उनकी सृजनात्मकता की मोहर लग जाती है। बच्चे पैतृक रूप में अथवा जीवाणु (जीन्स) द्वारा भी माता-पिता से गुण प्राप्त करते है यद्धपि यह सदैव हो आवश्यक नही, परन्तु इसका आशिक प्रभाव अवश्य होता है। ऐसे बहुआयामी कार्यक्रमों/परियोजनाओ से बच्चों को प्रोत्साहन मिलेगा और उनमें प्रतियोगिता की भावना से आत्मविश्वास बढ़ेगा। यही वह केन्द्र बिन्दु है जो प्रत्येक बच्चे के विकास के लिए अनिवार्य है।

संग्रहालय अनौपचारिक शिक्षा का एक अग है। जिसके द्वारा संस्कृति, इतिहास, भूगोल, विज्ञान सभी का परोक्ष-अपरोक्ष ज्ञान बच्चों में आता है।

महान शिक्षाशास्त्री टैगोर के अनुसार "कल्पना बालक का संसार है, उसका स्वर्ग है। वास्तविक ससार बड़ा कठोर है। कल्पना के पख लगा कर बालक अपने चंद्रलोक की सैर कर आता है। यदि हम उसे इस सुख से वंचित करे दें तो उसका जीवन आनंदरहित तथा नीरस हो जाएगा।" इसी प्रकार से गांधीजी का मत है कि बालकों के लिए "पुस्तको का कम से कम प्रयोग होना चाहिए, नहीं तो शिक्षक पुस्तकों के दास बन जाते है और उनके शिक्षण में मौलिकता को स्थान नहीं मिलता।"

अनुभव करना

यद्धपि जीवन से बड़ी कोई प्रयोगशाला नहीं है। बच्चा जो सीखता है उसका अनुभव उसे बचपन में ही हो यह अनिवार्य नही। कई पहलू ऐसे है जिसका अनुभव वह बहुत जल्दी कर लेते हैं। वर्षा का होना, ओलो का पड़ना, सूरज का चमकना जैसे प्रश्नों की जानकारी का अनुभव वह बचपन मे कर लेता है परन्तु बहुत से ऐसे भी विषय हैं जो उम्र की दहलीज पर चढ़कर ही आ पाते है।

व्यवहार में लाना

नकल करना बच्चों की बाल सुलभ आदमों का एक पहलू है। बच्चा जो भी सीखता है उसे करके देखना चाहता

है। अपने चारो ओर के वातावरण, परिवार, स्कूल, मित्रमंडली में वह जो कुछ भी सीखता, देखता है उसे व्यावहारिक रूप मे करके दिखाने की लालसा उसमें बराबर बनी रहती है। यह अनिवार्य भी नहीं कि जीवन में सीखी गई हर चीज को व्यवहार में लाया जाए अथवा उसका व्यवहार ही हो।

शिक्षक और सृजनात्मकता

शिक्षक बच्चो के साथ तीन प्रकार के रिश्तों के रूप में सामने आता है। माता-पिता, संगी-साथी, शिक्षक। यदि शिक्षक की व्यापक परिभाषा पर चिंतन करें तो शिक्षा देने वाली सज्ञा को शिक्षक कहा जा सकता है परन्तु प्राय· यही धारणा प्रचलित है कि स्कूल मे पढ़ाने वाला व्यक्ति ही शिक्षक है। सच तो यह है कि बच्चे की पहली शिक्षक उसकी मा है जो जन्म के बाद से ही उसे अनेक प्रकार की जानी-अनजानी शिक्षा देती है। बच्चे के निर्माण, विकास मे माता-पिता एवं परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

माता-पिता

माता-पिता का साया बच्चे का मूल है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर और 21 वीं सदी के प्रवेश द्वार पर सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश के बदलाव के कारण संयुक्त परिवार के विघटन एव एकल परिवार प्रणाली में पलने वाले बच्चे अकेले ही नहीं स्वयं को असुरक्षित और भयभीत भी महसूस करते हैं। यह नई सदी चुनौतीपूर्ण है। हकीकत तो यह है कि आज बौनी होती जा रही परिवार की सज्ञा भौतिकता के मोह में धन कमाने मे लगे माता-पिता, शिक्षकों की अनुशासन के नाम पर बच्चो पर हावी होती लीडरशिप के कारण बच्चे को सच्चा प्यार नहीं मिल पा रहा है। परिणामस्वरूप प्यार की खाली जगह उनमें विद्रोह, हाजिर जवाबी, बदले की भावना और आदर का स्थान घृणा का भाव लेता जा रहा है। पहले जैसा आदर का भाव अब तिल में सफेदी बनता जा रहा है। ऐसे माहौल में बच्चों को सृजनात्मक बनाने के लिए बच्चों के साथ सदाचार, शालीनता, अपनत्व, शिष्टाचार का ध्यान रखें तो बच्चे भी अपने साथियों, बडो और पड़ोसियो के बीच इसी का अनुकरण करेगे। नकल करना बच्चे का प्राकृतिक स्वभाव है और बच्चा प्रायः खेल-खेल में उन्ही विषयों को अपनाता है जो वह देखता है या जिसका उसके मन-मस्तिष्क पर अधिक प्रभाव पडता है .... मैडम.........मैडम.... ... टीचर..... .... बच्चों के खेल है, मम्मी-पापा बनना, उनकी नकल करना बच्चो के प्रिय विषय हैं जिनके माध्यम से वे अपने मन के आक्रोश को भी शात करते है। अत. खेल, नया नाटक, नकल द्वारा अभिनय आदि सृजनात्मकता द्वारा बच्चे कुंठा की ग्रथि से बच जाते हैं।

संगी-साथी

बच्चों को उनकी आयु और रुचि के अनुसार सृजनात्मकता का माहौल प्रदान करना चाहिए। बहुत छोटे बच्चों अर्थात् 3 से 5 वर्ष तक की आयु-वर्ग के बच्चों को मोटरगाड़ी, साइकिल स्कूटर, रग-बिरंगे मकान बनाने वाले ब्रिक्स रंगो वाले खिलौने अथवा रंग-बिरंगे अक्षर जोड़कर पशु-पक्षियो के नाम, गिनती-पहाडे, खिलौने वाली सुई घुमाकर टाइम मिलाने का खेल जिसमें वह समय का ज्ञान, अंकों की पहचान सीख लेता है। यदि बच्चे का मस्तिष्क इंजीनियरिंग का है तो वह उसे बार-बार घुमाकर नए-नए तरीके से समय मिलाकर कुछ अपने जैसा सोचेगा, करेगा और अपनी उपलब्धि से बहुत खुश होगा जिसका दूसरों की दृष्टि मे क्या अर्थ होगा? इसकी बच्चों को तनिक चिता नहीं। इस प्रकार बच्चे का खेल भी होता है और सृजनात्मकता का माहौल भी।

पांच से दस वर्ष की आयु-वर्ग के बच्चों की सृजनात्मकता में अतर आ जाता है। बच्चा कुछ पढ़ जाता है उसे लिखने-पढ़ने का ज्ञान होता है यद्यपि यह आरंभिक अवस्था ही होती है। इस अवस्था में बच्चा बहुत ही संवेदनशील होता है। वह 'अपमान' शब्द को अधिक महसूस करता है। उसके शरीर के विकास के साथ-साथ उसका मन-मस्तिष्क, समझ और रुचि सभी परिवर्तित हो जाती है। आज छोटे-छोटे बच्चे वीडियो गेम, की-बोर्ड वाला कम्प्यूटर वीडियोगेम दूरदर्शन के पर्दे पर खोलकर खेलते हैं जिसमें उन्हें अक्षर ज्ञान, जमा-घटा, भाषा-ज्ञान, पेंटिंग-डिजाइनिंग, खेल, कार्टून, फिल्में सभी कुछ मिल जाता है एक ही खेल मे। आज के माता-पिता बच्चों के गाइड अधिक हैं क्योंकि विकास की इस तीव्र

दौड़ में बच्चों का ज्ञान अधिक है। उम्र के तकाजे से फिर भी दोनो के बीच पीढ़ियों के प्राकृतिक अंतराल की खाई अवश्य रहती है यही कारण है कि ओवर कांफिडेंस के आलम मे कभी-कभी बच्चा बचपन के कटघरे से छलांग लगाता अशालीनता के दायरे में बात करने लगता है।

शिक्षक

सृजनात्मकता की परिभाषा समय के साथ आज व्यापक हो गई है। इसके लिए भगवान महावीर का कथन सार्थक है कि "व्यक्ति जन्म से नही अपने कर्म से महान बनता है।" बच्चों और शिक्षकों मे सृजनात्मकता का विकास करके शिक्षा की नींव को सुदृढ़ किया जा सकता है। प्रत्येक बच्चा अपने स्वयं का विधाता है। व्यक्तित्व और नेतृत्व विकास द्वारा शिक्षा के क्षेत्र मे लोक शिक्षण की दशा और दिशा में परिवर्तन करके अध्यापन कार्य को बहुआयामी और दूरगामी तथा श्रेष्ठ बनाए बिना बच्चों के सर्वागीण विकास की परिस्थितियां और सभावनाए प्रबल नहीं हो सकतीं। क्योंकि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चो का सर्वागीण विकास है।

इस क्षेत्र में बच्चों / विद्यार्थी का सच्चा सहायक और समाज का निर्माता शिक्षक ही है। शिक्षा का उद्देश्य प्रमाण-पत्र / डिग्रियों पर केद्रित न होकर गुणात्मक होना चाहिए। इसके लिए शिक्षकों का सृजनात्मक, बहुमुखी होना अनिवार्य है। जबकि आज शिक्षक के चयन में अर्थ और संबंधों के बोझ से योग्यता दबती जा रही है। ऐसी स्थिति में खरीदे हुए शिक्षको से मौलिकता/ सृजनात्मकता की अपेक्षा करना अंधेरे में तीर चलाने जैसा ही है। जब तक शिक्षकों की सृजनात्मक प्रवृत्ति और सेवाकालीन कार्यशालाए, शिक्षक-प्रशिक्षण को बढ़ावा नहीं मिला तो यह बच्चों के सर्वागीण विकास में बाधक रहेगा। इस संदर्भ में अनौपचारिक शिक्षा अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकती है और सृजनात्मकता इसका एक भाग है।

सृजनात्मकता के माध्यम

आज दुनिया एक ग्लोबल विलेज में बदल गई है। कम्प्यूटर के इस युग में कम्प्यूटर के की-बोर्ड का बटन दबाते ही स्क्रीन पर कोई भी सूचना मिल जाती है जो हमें चाहिए। संचार-क्रान्ति के इस युग मे सृजनात्मक माध्यमों का रूप परिवर्तित होकर उसके दायरे भी विस्तृत हो गए हैं।

इस दिशा मे तीन प्रकार के विद्यार्थी हैं—उच्च, मध्यम और निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थी।

उच्च आर्थिक स्तर से सम्पन्न विद्यार्थियो में सृजनात्मकता कम है जबकि मध्यम आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों मे अधिक सृजनात्मकता होती है क्योंकि ये बच्चे अपने परिश्रम, लगन, साधनो की सीमितताओं के कारण उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के समतुल्य रहने का प्रयास करते है। अर्थात् ये बच्चे गागर में सागर भरने की कोशिश में रत होकर स्वयं को साधनहीन कहलाने में हीनता का अनुभव नही करना चाहते। जबकि निम्न आर्थिक स्तर का कोई बिरला ही इस अवस्था में पहुच पाता है।

मानव जीवनपर्यत सीखता रहता है जिसके फलस्वरूप उसके अनुभवों की वृद्धि होती रहती है जो उसके आचार-व्यवहार को दिशा-निर्देश करते हैं इन्ही को मूल्य कहा जाता है। सृजनात्मकता भी एक मूल्य है जो हर युग, हर आयु और हर स्थान पर उपयोगी है। बच्चे अपनी सृजनात्मकता को अनेक माध्यमों द्वारा व्यक्त कर सकते है जैसे—

- ☐ विज्ञान में अभिनवीकरण द्वारा कुछ नया करके दिखाना। यद्यपि यह आविष्कार या शोध नहीं है परन्तु इस दिशा की ओर मुड़ने अथवा जाने का सकेत अवश्य है। शोधपरक बुद्धि रखने वाले बच्चे अथवा खोजी, खुरापाती, मैकेनिकल सोच वाले बच्चों में इस प्रकार की भावनाएं होती है। जिन्हें माता-पिता, शिक्षक, विद्यालय और समाज की प्रेरणा से प्रोत्साहन मिलता है और ऐसा करना जरूरी भी है। यही नन्हे विज्ञानियों की प्रयोगशाला की रूपरेखा है।
- ☐ प्रदर्शन कलाओं में बच्चों की सृजनात्मकता की अनेक धाराए हैं। संगीत एक व्यापक विषय है— ● शास्त्रीय संगीत ● लोक संगीत ● कंठ सगीत ● नृत्य ● वाद्य (विभिन्न) ● गायन किसी भी विधा में बच्चा अपनी सृजनात्मकता को प्रदर्शित

कर सकता है। इस क्षेत्र मे सरकारी/ गैर-सरकारी स्तर पर कुछ सस्थाओ, अकादमियों, परिषदों द्वारा प्रयास हो रहा है परन्तु यह बहुत कम है। इस क्षेत्र मे बहुत कुछ होना शेष है और इसकी गति को तीव्र करना भी बहुत जरूरी है। कुछ वर्ष से राष्ट्रीय बाल भवन में बच्चों की सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए इसके विभिन्न माध्यमों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर 'बालश्री' योजना चल रही है जो बाल जगत के लिए बहुत उपयोगी है।

- सृजनात्मक लेखन की दिशा में काफी संस्थाएं जुड़ी हुई हैं। इनमे भाषण, लेखन, वाद-विवाद जैसे विषय हैं जो स्कूलों, पत्र-पत्रिकाओ, अकादमियों द्वारा बच्चो के सृजनात्मक लेखन की दशा और दिशा की ओर उन्हे प्रोत्साहित कर रही हैं क्योकि इनमें से कौन बड़ा लेखक, कवि, नेता, पत्रकार बने यह तो भविष्य ही बता सकता है परन्तु अवसर, प्रोत्साहन एवं प्रेरणा वर्तमान की वस्तु है जो बच्चों को सभी स्थानों पर मिलनी चाहिए।
- सृजनात्मक कलाए भी इस क्षेत्र में एक माध्यम है इनमे चित्रकारी, आरेखन, स्लोगन, शीर्षक, कहानी का विकास करना आदि..... हैं। स्थलगत चित्रकारी प्रतियोगिता द्वारा आज अनेक अवसरों, दिवसो, कम्पनियों, संग्रहालयों, संस्थाओं द्वारा बच्चो को अवसर मिल रहे हैं और आज बच्चे इस विषय में जानते भी हैं। वे मानसिक रूप से इस प्रकार की सृजनात्मक अभिव्यक्ति मे आत्मतोष अनुभव करते है।
- क्विज अथवा प्रश्नोत्तरी भी सृजनात्मकता का एक माध्यम है जिसका आज प्रिंट मीडिया ही नहीं इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में भी बहुत शोर-शराबा है। यद्यपि यह बहुत प्राचीन तरीका है परन्तु नवीन युग के नवीन रंगों से सजकर यह नवीन लगने लगा है। इससे बच्चों में आनद, प्रतियोगी भावना, सामान्य ज्ञान और कुल मिलाकर सृजनात्मक मानसिकता विकसित होती है। जिसके अनेक लाभ हैं।

सृजनात्मकता की उपयोगिता

सृजनात्मकता बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए अति आवश्यक अभिव्यक्ति है। जैसा कि पहले भी कहा गया है कि प्रत्येक बच्चा सृजक होता है उसकी सृजनात्मकता की कसौटी के विभिन्न आयामों मे जीन्स, माता-पिता, संगी-साथी, वातावरण, प्रेरणा-प्रोत्साहन, अवसर, सुविधाए आदि अनेक कारक है जिनके फलस्वरूप इसका विकास होता है। सृजनात्मकता के विभिन्न माध्यमो में से बच्चा किसको अपनाता है यह उसकी रुचि और प्रेरणा एवं सुविधाओं पर निर्भर करता है। यद्यपि यह भी असत्य नही कि कुछ बच्चे इनके अभाव में भी बहुत आगे बढ़ जाते हैं परन्तु ऐसे विरले ही होते हैं। गुरु रवींन्द्रनाथ टैगोर बहुत ही प्रतिभावान, बहुगुणी और बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न सृजनात्मक व्यक्ति थे परन्तु इन सबके पीछे उनके परिवार, समृद्धि, सुख-सुविधाएं और रुचि की परखता थी। जब टैगोर का मन स्कूल जाने में नहीं लगा तो पिता ने घर मे ही स्कूल बनवा दिया और नियमित रूप से प्रत्येक विषय के शिक्षक आकर स्कूल की तरह उन्हें पढ़ाने लगे। तात्पर्य यह है कि शांति निकेतन के जनक टैगोर के साथ इसका श्रेय उनके पूरे परिवार को जाता है जो अप्रत्यक्ष रूप से इस धरती को तैयार कर रहे थे। परन्तु बच्चा टैगोर के दिखाए मार्ग पर चल सकता है उसे इतनी सुविधाएं कहां? भारत जैसे देश में बच्चों की सृजनात्मकता के लिए यह अनिवार्य है कि स्कूलों में इसे एक विषय बनाया जाए, इसके लिए एक पीरियड हो और शिक्षक भी हो। साथ ही माता-पिता भी इस दायित्व को निभाएं और समाज मे ऐसा वातावरण पैदा किया जाए तभी बच्चों के जीवन का सही अर्थो में सर्वांगीण विकास संभव है। ☐☐

राष्ट्रीय बाल भवन
कोटला रोड, नई दिल्ली

बच्चों में सृजनात्मक सम्पोषण में विद्यालय और शिक्षक की भूमिका

❑ रामगोपाल रैकवार
❑ दामोदर जैन

सृजनशील व्यक्तित्व के विकास में विद्यालयों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। शैक्षिक दृष्टि से सृजनात्मकता संपोषण के अन्तर्गत ऐसी अनेक गतिविधियां हैं जिनके संचालन से विद्यालय में बालकों की सृजनशीलता में अभिवृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है जैसे चित्रकला, मूर्तिकला हस्तकला, संगीत, लेखन, भाषण, अभिनय, साज-सज्जा, खेलकूद बाल सभा, भ्रमण आदि। सृजनात्मकता संपोषण में शिक्षक की सक्रियता, क्षमता और योग्यता का विशेष योगदान है।

सृजनात्मकता मनुष्य को प्रकृतिदत्त अमूल्य उपहार है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ सृजन करने की क्षमता निहित होती है भले ही वह प्रकट न हो। यह एक स्वभाविक गुण है। व्यक्ति में सृजनात्मक क्षमता का विकास बचपन से ही होने लगता है। विशेष सृजनशीलता के गुणो का पता बचपन से ही चल जाता है। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की उक्ति ऐसे ही बच्चों के लिए प्रयुक्त होती है। कुछ बच्चो के नैसर्गिक गुणो का पता देर से चलता है। यह सब संयोग तथा वातावरण पर निर्भर करता है। कई बार तो सृजन संबंधी किसी कला कौशल का उदय प्रौढ़ावस्था या वृद्धावस्था में भी होते देखा गया है जो यह सिद्ध करता है कि सृजनात्मकता मनुष्य में बीज रूप में दबी रहती है जो यथा समय अनुकूलता पाकर अंकुरित हो जाती है। बाल्मीकि ऋषि का उदाहरण इस बात को और अधिक स्पष्ट करता है। सब जानते हैं कि क्रोच पक्षी के क्रंदन को सुनकर पद्य के रूप में उनके उदगार फूट पड़े थे। व्यक्ति में सृजनात्मकता कभी भी प्रकट हो सकती है, इस तथ्य के बावजूद यह बात भी उतनी ही सही है कि व्यक्ति के भीतर छुपी सृजनशक्ति के विकास का सबसे अच्छा समय उसका बचपन ही होता है। बचपन का अधिकांश समय घर के अतिरिक्त विद्यालय मे ही व्यतीत होता है। उन परिवारों के बच्चों, जिनके अभिभावक वर्ग में से कोई कला के किसी क्षेत्र में रुचि रखता है, के अतिरिक्त प्रायः अधिकांश बच्चों की सृजनात्मकता विद्यालय में ही अंकुरित तथा पल्लवित होती है। पारिवारिक वातावरण मे तो मां-बाप बच्चों की किताबी पढ़ाई-लिखाई पर अधिक ध्यान देते हैं तथा उन्हे किसी अन्य कार्य को करने पर रोकते हैं। अधिकांश घरों मे बच्चों को सृजनात्मक कौशल के लिए प्रोत्साहन तथा आर्थिक सहायता नहीं दी जाती है। निर्धन परिवार तो चाहकर भी ऐसा करने मे समर्थ नहीं होते। ऐसी स्थिति मे विद्यालय ही एकमात्र ऐसा स्थान है जहां बच्चों में सृजनात्मक का संपोषण किया जा सकता है। विद्यालय मे बच्चों में सृजनात्मक सम्पोषण के लिए पर्याप्त अवसर होते हैं परन्तु स्थिति यह है कि थोड़े से विद्यालयों तथा थोड़े से शिक्षको के अतिरिक्त अधिकांश विद्यालय और शिक्षक बच्चों में निहित गुणो का विकास नहीं करते हैं। इस उपेक्षा के परिणामस्वरूप पता नहीं कितनी प्रतिभाए सामने आने से रह जाती हैं। शासकीय विद्यालयो में तो संसाधनों के अभाव और शिक्षको की कमी के कारण शायद ही बच्चो के इस पक्ष की ओर कभी ध्यान दिया जाता है वहीं अशासकीय विद्यालयों में भी व्यक्तित्व विकास और सुविधाओं के लम्बे-चौड़े दावों के विपरीत सिर्फ तोता रटंत पढ़ाई को ही प्राथमिकता दी जाती है। फिर भी कुछ विद्यालय (शासकीय और अशासकीय) ऐसे है जो कुछ न कुछ इस ओर भी ध्यान देते हैं तथा इसे शिक्षा का ही अंग मानते हैं। सीमित ही सही पर अधिकतर सृजनशील व्यक्तियों के विकास में उनके विद्यालय की भूमिका को नकारा नही जा सकता।

सृजनशीलता एक बहुआयामी शब्द है। उस प्रत्येक कार्य में जिसमें कला और कौशल है सृजनात्मकता भी होती है। शैक्षिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो सृजनात्मकता सपोषण में वे सभी गतिविधियां सम्मिलित है जिनसे बच्चे के व्यक्तित्व का सृजन होता है। मोटे रूप में निम्नलिखित गतिविधियों को सृजनात्मक संपोषण के अन्तर्गत रखा जा सकता है जिनका विकास विद्यालय में किया जा सकता है अथवा किया जाता है।

चित्रकला

बच्चे न केवल चित्रो को पसंद करते हैं बल्कि स्वयं चित्र बनाना उनका पसंदीदा काम है। वे बचपन से ही आड़ी, तिरछी लकीरें खींचकर अपनी इस कला को व्यक्त करने लगते हैं। चित्रकला मे सूखे रग, मोमी रंग, पेंसिल रंग तथा गीले रंगों (जलीय तथा तेल) का प्रयोग किया जाता है। चित्र बनाने की कई पुरानी तथा आधुनिक विधियां तथा शैलियां हैं। यह एक लोककला भी है। प्राथमिक स्तर पर सूखे रंगों से बच्चों को चित्र बनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। कई शासकीय विभाग तथा अशासकीय सस्थाएं विभिन्न विषयों पर विद्यालयों के माध्यम से चित्र प्रतियोगिताएं आयोजित करते हैं। इनमें बच्चो को सम्मिलित होने के लिए प्रेरणा दी जानी चाहिए। बच्चों द्वारा बनाए गए चित्रो को विद्यालय में अवश्य प्रदर्शित करना चाहिए इससे बच्चों को प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता है। रगों के अतिरिक्त चित्र बनाने की कुछ और भी विधियां हैं।

☐ **कोलाज कला (आर्ट)**— कोलाज आर्ट मे रंगीन कागज, चित्रों, कपड़े की करतनों, घास, सूखे फूलों, पत्तियो, कपास, थर्माकोल, बटन, ढक्कन आदि चीजों को कागज या गत्ते पर चिपकाकर चित्रांकन किया जाता है। इस आर्ट के द्वारा बच्चो की सृजनात्मकता का सरलतापूर्वक विकास किया जा सकता है।

☐ **कुट्टी कला (आर्ट)**— अनाज के दानों, सीकों, छिलकों, ढक्कनों, रंगीन बुरादा, गोबर तथा मिट्टी आदि को कागज अथवा दीवार पर चिपकाकर बनाए गए चित्रों को कुट्टी आर्ट कहते हैं। कुट्टी आर्ट द्वारा रंगीन कंकड़, कांच के टुकड़ों, चूड़ियों, रस्सी या सूती-ऊनी धागों को चिपकाकर भी चित्रों को तैयार किया जा सकता है।

☐ **ठप्पा**— विभिन्न प्रकार की सब्जियों जैसे भिण्डी, आलू, प्याज आदि को काटकर उनके ठप्पे लगाकर भी चित्र बनाए जाते हैं। अंगुलियों और अंगूठे की छाप लगाकर भी चित्र बनाना बच्चों को बहुत भाता है। पत्तियो के ठप्पे लगा कर भी सुंदर आकृतियां बनाई जा सकती हैं।

☐ **टाई और डाई**— इस विधा द्वारा सादा कपड़े को अलग-अलग स्थानों पर धागे से बांधकर गांठनुमा कस लिया जाता है फिर उसे भरे टब में डुबोकर सुखा लेते हैं। सूख जाने पर गांठें खोल देते हैं इस प्रक्रिया से कपडे पर आकर्षक डिजाइनें बन जाती हैं।

इस प्रकार की और भी स्थानीय कलाएं होती हैं ये सब बच्चों की सृजनात्मकता को उभारने में मददगार होती हैं। बच्चे स्वयं भी कई नई विधियां खोज सकते हैं।

मूर्तिकला

मूर्तियां मुख्यतः धातु, पत्थर, लकड़ी और मिट्टी से तैयार की जाती हैं, पत्थर तथा लकड़ी की मूर्तियां तराशकर तथा मिट्टी, चीनी मिट्टी और प्लास्टर ऑफ पेरिस की मूर्तियां हाथ से तथा सांचों में ढालकर बनाई जाती हैं। धातु और मोम की मूर्तियां भी सांचों में ढालकर बनाई जाती है। विद्यालयों में बच्चों मे मूर्तिकला के विकास के लिए लकड़ी तथा मिट्टी के खिलौने और मूर्तियां बनाना, सरल, सहज एवं सस्ता पड़ता है। पेड़ों की सूखी टहनियो, पत्तियो और सूखी जड़ो मे तथा पत्थरों में प्राकृतिक रूप से कलात्मक आकृतियां बन जाती हैं। ऐसी कलात्मक लकड़ी या पत्थरों को एकत्र कर उन्हें संग्रहित कराया जा सकता है। आम की गुठली, मक्का के भुट्टे, नारियल के खोल जैसी सामग्री से भी बच्चे कई प्रकार के खिलौने तथा आकृतियां बना सकते हैं।

हस्तकला

हस्तकला के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कच्चे माल जैसे

कागज, कपड़ा, लकड़ी, मिट्टी तथा अन्य परिवेशीय सामग्री से खिलौने, कलात्मक सामग्री, सजावटी सामान, दैनिक उपयोगी सामग्री बनाना आता है। कई बच्चे लोक तथा पारिवारिक परम्परा के कारण ऐसी सामग्री बनाने मे सिद्धहस्त होते हैं। ऐसे बच्चों तथा व्यक्तियो की सहायता से बच्चो को हस्तकला के विभिन्न आयाम सिखाए जा सकते हैं। अनुपयोगी चीजों से उपयोगी चीजों का निर्माण भी इस कला के अन्तर्गत आता है। सामान्य तौर पर विद्यालयों में इस कला से दैनिक उपयोगी चीजें, खिलौने, खेल सामग्री, सजावटी तथा सहायक शिक्षण सामग्री बनाई जाती है। कागज मोड़कर और काटकर सैकड़ों प्रकार की आकृतियां और खिलौने बनाए जा सकते हैं। ऑरोगेमी नामक यह कला भारत में लोकप्रिय होती जा रही है।

संगीत

संगीत आत्माभिव्यक्ति तथा आनंदानुभूति का प्रमुख साधन है। संगीत का प्रभाव प्रत्येक प्राणी पर पडता है। संगीत में गायन और वादन दोनों पक्ष होते हैं। संगीत शिक्षा के एक विषय के रूप मे मान्यता रखता है। सगीत के लिए अलग से भी विद्यालय होते है। प्रायः विद्यालय में संगीत के प्रति बहुत थोड़े से बच्चों में रुचि देखी जाती है। इसे लड़कियों का विषय मानते है जबकि ऐसा नहीं हैं। संगीत आत्मशिक्षा का सशक्त माध्यम है। संगीत से मनुष्य अपने तथा दूसरों के अन्तःकरण में भव्यता, महानता और सौन्दर्यानुभूति उत्पन्न कर सकता है। प्रकृति स्वयं सगीत से परिपूर्ण है। विद्यालयो में संगीत (गायन और वादन) को प्रोत्साहित कर वातावरण को सरस बनाया जा सकता है। बाल सभा तथा प्रार्थना के समय संगीत का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। सृजनात्मक गुणों में संगीत का स्थान अद्वितीय है।

लेखन

लेखन भी एक सृजनात्मक गुण है इसके अंतर्गत गद्य और पद्य की सभी विधाएं सम्मिलित होती है। यह भी एक नैसर्गिक गुण है। बच्चो में प्रारभ से ही लेखन कला का विकास किया जाना चाहिए इसके लिए विद्यालय में पर्याप्त अवसर होते हैं। लेखन कला के विकास के लिए बच्चों में गीत, कविता, कहानी, निबंध, अनुभव, डायरी, वस्तु-वर्णन, यात्रा-वर्णन, घटना-वर्णन लिखने के अभ्यास कराए जाने चाहिए। विद्यालयों मे समय-समय पर गीत, कविता तथा निबंध प्रतियोगिताएं आयोजित की जानी चाहिए। पाठ्य-वस्तु में लेखन कला के विकास के लिए पर्याप्त सामग्री तथा अभ्यास होते हैं उन पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

भाषण

विचारों की सटीक अभिव्यक्ति भाषण कहलाता है। सामान्य बातचीत, वार्ता, वाद-विवाद आदि भी इसी के अग हैं। भाषण एक वाक कौशल है। बच्चों में प्रारंभ से ही अपनी बात स्पष्ट कहने की आदत विकसित करनी चाहिए। उन्हे प्रश्न पूछने तथा जिज्ञासा व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। अपनी बात कहने का पूरा अवसर और समय देना चाहिए। ताकि उनमें भय तथा झिझक समाप्त हो सके और वे अपनी बात संतुलित ढग से कह सके। भाषण ऐसी कला है जिसके माध्यम से हम दूसरों के विचारों को प्रभावित करते हैं। बच्चो में भाषण कला के विकास के लिए भाषण प्रतियोगिताएं, वाद-विवाद प्रतियोगिताएं, परिचर्चा तथा परिसंवाद कार्यक्रम अधिक से अधिक किए जाने चाहिए। बच्चो में ऐसे कार्यक्रमों को सुनने की आदत भी डालनी चाहिए। विद्यालयो में विशिष्ट व्यक्तियों के भाषण आयोजित किए जाने चाहिए ताकि बच्चे उनसे भाषण देने की कला और शैली सीख सकें। भाषण और लेखन भाषा के प्रमुख दो कौशल– बोलना और लिखना का सही प्रतिनिधित्व करते है।

अभिनय

अभिनय एक विशेष गुण है इसके अतर्गत एकल अभिनय, मूक अभिनय, नाटक, प्रहसन, एकांकी आदि आते हैं। अभिनय के माध्यम से बच्चो में अनेक गुण विकसित होते हैं। विद्यालयीन पाठ्य-वस्तु मे पर्याप्त सामग्री होती है जिसके आधार पर बच्चों में अभिनय की दक्षता

विकसित की जा सकती है। सांस्कृतिक एव वार्षिक कार्यक्रमो में बच्चो द्वारा अभिनीत नाटको, एकांकी आदि के माध्यम से अभिभावको को भी बच्चों के इस गुण से परिचित कराया जा सकता है। इससे विद्यालय की छवि निखरती है।

साज-सज्जा

साज-सज्जा का गुण व्यक्ति के सौन्दर्य बोध को प्रकट करता है। बच्चो का यह सहज गुण है जिसे विद्यालय मे सरलता से विकसित किया जा सकता है। बागवानी तथा फूलों से प्रेम इसी के अंतर्गत आता है। इस सृजनात्मक कला को विकसित कर विद्यालयों के वातावरण को आकर्षक बनाया जा सकता है। साज-सज्जा के प्रति आकर्षण बच्चो में अनेक कलाओं को विकसित करता है। इससे बच्चो में व्यवस्थित कार्य करने, स्वच्छता रखने तथा कार्य को सुरुचिपूर्वक करने की आदत पैदा होती है।

खेलकूद और साहसिक कार्य

खेलकूद भी रचनात्मक कार्य है। इनसे बच्चो में छिपी छ. क्षमताएं उजागर होती हैं। विशेषकर बच्चों के शारीरिक और भावनात्मक निर्माण और विकास मे खेलकूद का विशेष महत्व है। बच्चों में खेल के प्रति आकर्षण होने पर उनके द्वारा नए खेल, नए ढंग तथा नई उपलब्धियां प्राप्त होती हैं। दुर्भाग्य से हमारे देश में खेलों के प्रति रुचि का अभाव, साधनों की कमी तथा खेलों के विकास के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण और निष्ठा का अभाव है। यही कारण है कि एक दो खेलो के अतिरिक्त भारत का विश्व में कोई खास स्थान नही है। खेल एक ऐसी चीज है जिसका विकास बचपन से ही संभव है। ऐसी स्थिति में खेलों के विकास मे विद्यालयों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। विद्यालय स्तर पर खेलों के प्रति अधिक ध्यान, पर्याप्त संसाधन, एवं दृढ़ इच्छाशक्ति वाले सुयोग्य प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता है। सामान्य खेलो के अतिरिक्त बच्चों में साहसिक खेलो को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इसमें ट्रेकिग (पैदल यात्रा) पर्वतारोहण, स्कीइंग आदि सम्मिलित हैं। इनसे बच्चो में कष्ट सहिष्णुता, धैर्य आदि गुणो का विकास होता है। खेल मैत्री बढ़ाने के साधन हैं। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सद्भाव बढ़ाने में खेलों का विशेष योगदान होता है। विद्यालयो में पाठ्य-सामग्री के अतिरिक्त एकाध कालखण्ड कला, उद्योग इत्यादि के लिए अवश्य ही निर्धारित होता है (भले ही उसका उपयोग न किया जाता हो)। पाठ्य-सामग्री में कुछ विषय तथा पाठ ऐसे होते हैं जिनमें कलापक्ष भी निहित होता है। गणित, विज्ञान, भूगोल के अतिरिक्त भाषा इत्यादि में सृजनात्मकता संपोषण के पर्याप्त अवसर होते हैं। विद्यालयो में पाठ्य-सामग्री के अतिरिक्त जिन अवसरों पर बच्चों की सृजनात्मकता को अभिव्यक्ति दी जा सकती है, निम्नलिखित हैं–

- बालसभा।
- विभिन्न पर्व, त्यौहार और प्रमुख विधियां।
- वार्षिक कार्यक्रम।
- विभिन्न दिवसों पर आयोजित प्रतियोगिताएं।
- विभिन्न विभागों और संस्थाओ द्वारा प्रायोजित प्रतियोगिताएं।
- स्काउट गाइड, रेडक्रास, एन.एस.एस., एन.सी.सी. आदि।
- यात्रा भ्रमण।

कुछ विद्यालयों में प्रार्थना के अवसर पर संगीत, समाचार-पत्र का वाचन, योगासन-व्यायाम, उद्बोधन इत्यादि भी नियमित रूप से किए जाते हैं। इससे भी बच्चों में सृजनशीलता का विकास और प्रकटीकरण होता है। विद्यालयों में सृजनशीलता के सम्पोषण हेतु अवसरों की कमी नहीं होती पर इसके लिए विद्यालय में सृजनात्मक सोचयुक्त शिक्षकों की आवश्यकता होती है। कला शून्य अध्यापक बच्चों में सृजनात्मकता का संपोषण नहीं कर सकते बल्कि बाधक भी सिद्ध होते है। ऐसी शिक्षा जो बच्चो में सृजनात्मकता का संपोषण करती है, सही मायनों में बाल केन्द्रित शिक्षा कही जा सकती है। ऐसी शिक्षा ही खेल-खेल में शिक्षा या आनंनदायी शिक्षा कहलाने का अधिकार रखती है। अगर बच्चों में निहित सृजन शक्ति को पहचाना जा सके तथा उसे प्रकट होने का

अवसर दिया जाए तो सृजनात्मक संपोषण शिक्षा काम-काम में शिक्षा का स्थान ले सकती है तथा बच्चो में प्रारंभ से ही व्यावसायिक योग्यता उत्पन्न की जा सकती है। साथ ही बच्चो में श्रम के प्रति सम्मान, आत्मनिर्भरता, पारस्परिक सहयोग, स्वच्छता, उद्यमशीलता, सौन्दर्यानुभूति, संवेगात्मक, बौद्धिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास आदि उपलब्धिया भी प्राप्त की जा सकती हैं। इन सबके लिए शिक्षक के दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन लाने तथा उन्हें प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। यद्यपि जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों मे इसके लिए कला एव सौन्दर्यानुभव शिक्षा विभाग होता है पर शायद ही किसी संस्थान में सेवाकालीन या सेवा-पूर्व प्रशिक्षणों में इस पक्ष को गंभीरता से लिया जाता है।

विद्यालयो में सृजनात्मक संपोषण के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी कारक है शिक्षक। शिक्षक की सक्रियता, क्षमता और योग्यता विद्यालय में अध्ययनरत बच्चों का सर्वांगीण विकास करने के साथ-साथ उनकी रचनाधर्मिता में वृद्धि कर सकती है। अध्यापक का मुख्य ध्येय बच्चों को प्रकृति से प्राप्त गुणों को मुखरित कर उनके नैतिक गुणों को पहचानना, संवारना और उन्हें श्रेष्ठ नागरिक बनाना होना चाहिए। बच्चों का विश्वास अर्जित करने के बाद ही शिक्षक उनके मन में सद्भावनाएं विकसित कर सकता हैं इसलिए आज सर्वत्र "बाल केन्द्रित शिक्षण" की चर्चाएं हो रही हैं।

बच्चों का सृजनात्मक कार्य उनके आत्मिक जीवन का नितात मौलिक क्षेत्र होता है। उनका सृजन उनकी आत्माभिव्यक्ति और आत्मपुष्टि का साधन है। बच्चे अपने आसपास के संसार को अपनी ही नजरों से देखते हैं। कलात्मक अभिव्यक्ति के अपने-अपने साधन और अपनी भाषा होती है। प्राथमिक कक्षाओ के अध्यापकों का यह दायित्व है कि वे बच्चों को कल्पना की उड़ान भरने दें और उन्हें उनके संसार में स्वतन्त्र रूप से विचरने दे। अपनी कल्पना के चित्रलोक और परीलोक में घूमते हुए बच्चों को अपनी भाषा में चर्चा करने का अवसर देने पर उनकी वाणी मुखरित होती है। बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि उन्हें अपने चारो ओर के प्राकृतिक सौन्दर्य, श्रम, सृजन और निर्माण के ससार का दर्शन करने का अवसर दिया जाए। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षको को जिस तरह विषयानुसार सेवाकालीन प्रशिक्षण या उन्मुखीकरण प्रदान किया जाता है उसी प्रकार एक सप्ताह का प्रशिक्षण सृजनात्मक संपोषण की विधाओ पर दिया जाना चाहिए। सृजनात्मकता संपोषण के लिए शिक्षक की कार्यशैली में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। विद्यालयों मे पठन पाठन के स्थान पर सीखना-सिखाना पद्धति, जो गतिविधि आधारित है को सख्ती से लागू किए बिना सृजनात्मक विकास कठिन है। जब तक शिक्षक पुस्तक और ब्लैक-बोर्ड के दायरे से बाहरे नहीं निकलता, तब तक बच्चो में सृजनात्मकता का विकास नही हो सकता। बच्चों मे सृजनात्मकता के विकास के लिए गतिशील शिक्षक होना बहुत जरूरी है। यदि शिक्षक अपने शिक्षकीय अनुभवों से स्वयं सीखते हुए कक्षा कार्य मे आवश्यक सुधार और परिवर्तन कर लेता है तो वह अवश्य ही सृजनात्मकता का सम्पोषण करने में समर्थ होगा, अन्यथा बच्चों की सामर्थ्य और इच्छाओं का दमन कर उनके बालमन पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करेगा।

वर्तमान मे शिक्षकों के समक्ष मुख्य चुनौतिया इस प्रकार है—

- ☐ कार्यक्षेत्र के सभी बच्चों को स्कूल में दर्ज करना।
- ☐ स्कूल में दर्ज हुए बच्चों को पूरे समय स्कूल मे बनाए रखना।
- ☐ स्कूल में दर्ज बच्चों का सर्वांगीण विकास करना।
- ☐ बच्चों मे सीखे गए ज्ञान और कौशलों का समयानुकूल मूल्यांकन करना।
- ☐ सीखने-सिखाने की गतिविधियों की वैधता और विश्वसनीयता बनाए रखना।
- ☐ समुदाय में स्कूलों और शिक्षकों की पारम्परिक छवि और उपयोगिता सिद्ध करना।

इन चुनौतियों से जुझते हुए शिक्षकों का यह महत्वपूर्ण दायित्व है कि वे अपने विद्यालय में अध्ययनरत छात्रों की सृजनात्मकता का सम्पोषण करें। यद्यपि यह कार्य अत्यन्त चुनौतीपूर्ण और कठिन है पर शिक्षक अपनी और

बच्चों की क्षमता को परख सके तो सृजनात्मकता विकास संभव है। वास्तव मे शिक्षक को "कोच" की भूमिका निभानी आनी चाहिए, उसे एक अच्छा मार्गदर्शक तथा अच्छा प्रोत्साहक होना चाहिए। भले ही वह प्रत्येक अथवा किसी एक कला मे दक्ष न हो पर बच्चो में कौन-सी कला विशेष रूप से निहित है उसे पहचान कर विकसित करने की कला अवश्य आनी चाहिए। शिक्षको के अतिरिक्त विद्यालय में इस तरह का माहौल या वातावरण भी होना जरूरी है जिसमें बच्चों में सृजनशीलता का विकास हो सके। इसके लिए प्रबंधन तंत्र को जागरूक तथा सक्रिय रहना चाहिए। यदि संतुलित ढंग से सृजनात्मक गतिविधिया आयोजित की जा सकें तो बच्चों का शैक्षिक स्तर भी ऊंचा उठेगा तथा किसी भी अन्यथा आलोचना का सामना नहीं करना पड़ेगा।

सृजनात्मक संपोषण से बच्चों के सर्वागीण विकास का शैक्षिक लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। मात्र बौद्धिक विकास एक श्रेष्ठ नागरिक का निर्माण नहीं कर सकता। मनुष्य को सही मायनों में मनुष्य बनाने का दायित्व कला पक्ष को ही जाता है क्योंकि यह एक मनुष्य की भावना को आंदोलित करता है। यही भावपक्ष मनुष्य एक प्रशिक्षित पशु या यान्त्रिक रोबोट से अलग करता है। यदि विद्यालयों मे सृजनात्मक सपोषण की व्यवस्था अच्छी प्रकार सम्पन्न होने लगे तो वह दिन दूर नहीं जब भारत के नौनिहाल पूरे विश्व मे खेल, संगीत, साहित्य तथा वैज्ञानिक और साहसिक क्षेत्रो में और भी अधिक उपलब्धियां अर्जित कर देश का नाम रोशन कर सकें। ❑❑

(1) शिक्षक, प्राथमिक विद्यालय
पातरखेरा, टीकमगढ़, म.प्र.
(2) शिक्षक
माध्यमिक विद्यालय
कुण्डेश्वर, टीकमगढ़, म.प्र.

सृजनात्मकता : व्यक्तित्व, विकास एवं संवर्धन

☐ कुसुम यादु लाल

सृजनात्मकता को रचनात्मकता, मौलिकता, सृजनशीलता विभिन्न नामों से पुकारा गया है। पहले सृजनात्मकता का संबंध बुद्धिलब्धि/ बुद्धिमत्ता से था। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आया। सन् 1950 के दशक को सामान्य रूप से सृजनात्मकता की दिशा में सुव्यवस्थित अनुसधान का आरभ माना जाता है। इस समय तक भी सृजनात्मकता का सबंध बुद्धि लब्धि से था। सृजनात्मकता की संकल्पना के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान जे. पी. गिलफोर्ड द्वारा किया गया अनुसंधान है। उनके मतानुसार विचार, स्मृति, बुद्धि लब्धि के घटक और उसकी प्रक्रिया है। टेलर ने कहा है कि सभी बुद्धिमान हैं तथा मस्तिष्क में वे सभी दशाएं विद्यमान हैं जिनका अभी आविष्कार भी नहीं हुआ है। सृजनात्मकता की परिभाषा निर्धारित करने के लिए विभिन्न दार्शनिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने अनेकानेक प्रयास किए और समय-समय पर इसकी विभिन्न परिभाषाएं दी गई हैं।

कुछ विशिष्ट विद्वानों द्वारा समय-समय पर व्यक्त की गई विचारधाराएं निम्न हैं–

- ☐ बैरन के अनुसार नव विचारों के उद्भव की क्षमता/ योग्यता ही सृजनात्मकता है। मानव सृजन भौतिक वस्तुओं का पुनर्निमाण और मानसिक विचारों को नया आयाम देना है।
- ☐ वालाज (1926) ने सृजनात्मक चिन्तन की चार अवस्थाओं का वर्णन किया है–तैयारी का काल, उद्भवन काल, प्रदीप्त करना, उत्पादन।
- ☐ गिल्फोर्ड ने सृजनात्मकता का विविध चिन्तन के रूप में वर्णन किया तथा इसे एक कारक कह कर सम्वोधित किया, जिसका अर्थ तरलता एवं लचीलापन है।
- ☐ गैटमेन (1961) के मतानुसार मनुष्य द्वारा अपने परिवेश के चारो ओर एक नई व्यवस्था कायम करना ही सृजनात्मकता है।
- ☐ स्केटल (1962) के अनुसार रचनात्मक अनुभव के लिए व्यक्ति द्वारा खोज करना या उसकी तलाश करना सृजनात्मकता कहलाती है। अपने अनुभव के आधार पर खोजना/अन्वेषण करना ही सृजनात्मकता है। विश्व मे अपने चारो ओर नए-नए आयामों की खोज करना मनुष्य का प्रयास रहा है।
- ☐ मैडनिक (1962) के अनुसार सृजनात्मक प्रक्रिया मानव चिन्तन के तत्वों के योग अथवा सहचर अर्थात् संयोग से उत्पादित चिन्तन है।
- ☐ गोलसिन (1963) के मतानुसार "सृजनात्मकता का अर्थ व्यक्ति के मस्तिष्क के समस्त क्रियाकलापों एवं ऊर्जा शक्ति का प्रयोग है।"
- ☐ कोस्टलर (1964) के मतानुसार "सहचर अर्थात् विचित्र सदर्भों को परस्पर समीप लाने की योग्यता ही सृजनात्मकता है।"

"सामाजिक क्रियाकलापों को एक नया रूप देने की योग्यता ही सृजनात्मकता है।"

सृजनात्मकता को परिभाषित करने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों ने समय-समय पर अनेकानेक प्रयास किए तथा अपने विचार व्यक्त किए। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप एक यह मत मुख्य रूप से उभर कर निकला है कि सृजनात्मकता के सामर्थ्य को पूर्ण तथा अधिकतम सीमा तक विकसित किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में बालक की सृजनात्मकता का संवर्धन उसकी आयु के विभिन्न स्तरों पर कैसे किया जाए इसके लिए प्रभावी दिशा-निर्देशों का भी उल्लेख है।

अंडरसन के मतानुसार सृजनात्मकता के निम्नलिखित घटक हैं–

- उत्पाद एक प्रक्रिया है,
- जीवन एक मूर्त पहलू है,
- मौलिकता की अभिव्यक्ति,
- विशाल ज्ञान की पृष्ठभूमि,
- समाज के साथ मिलकर चलना अंतरक्रिया करना, सामंजस्य स्थापित करना इत्यादि,
- अधिक स्मृतिवान होना,
- अधिकाधिक विभिन्न पहलुओं पर चिंतन करने की उच्च क्षमता,
- समय के अंतराल पर चिंतन करने की आवश्यकता,
- सहायक परिस्थितियों की आवश्यकता एवं वातावरण के प्रति संवेदनशीलता,
- अतीत के अनुभवों एवं उससे प्रभावित होने वाले सभी अनुभवों के सामंजस्य को सृजनात्मकता कहा जाता है अर्थात् वर्तमान मे हम जो करते हैं वही सृजनात्मकता है यद्यपि उत्पाद अतीत मे ही विद्यमान है,
- अततः मन की अवचेतन अवस्थाओं की गहराइयों से सृजनात्मकता उभर कर आती है।

सृजनात्मक व्यक्तित्व

बारर्बरा क्लाक (1979) ने सृजनात्मकता के सिद्धांतों को चार भागों में विभाजित किया है–

चिंतन की अवस्था

चिंतन की अवस्था व्यवहार है युक्ति संगत और नापी जा सकती है। मर्यादित है और इसका विकास सतर्क और युक्ति संगत व्यवहार से किया जा सकता है।

अंतरबोध की अवस्था

उच्च चेतन अवस्था की स्थिति जो चेतन और विवेकशील मन से नहीं होती है अपितु अवचेतन अथवा परिवर्तित चेतना अवस्था के दौरान प्राप्त होती है। अंतरज्ञान, प्रबोधन की ओर अधिकाधिक बढ़ती है।

सूक्ष्मबोध की अवस्था

सूक्ष्मबोध की अवस्था बुद्धिमत्ता की अवस्था दूसरों द्वारा या दूसरो से सुनी गई, देखी गई, नए उत्पाद का निर्माण करना, दूसरे के सहचर्य से प्राप्त ज्ञान से नए उत्पादों का निर्माण करना इसके लिए अत्यधिक शारीरिक, मानसिक विकास की आवश्यकता है।

अनुभव की अवस्था

आत्मज्ञान की आवश्यकता होती है और आत्म संतुष्टि की प्रक्रिया है और निर्माता से एक संवेदनशील ऊर्जा प्रज्वलित होती है और भावनात्मक अनुभव भी उत्पन्न होते हैं।

बालक के सृजनात्मक विकास की अवस्थाएं तथा संवर्धन

लिंगन (1957) ने जन्म से 16 वर्ष तक की उम्र में कल्पना के विकास के विशिष्ट गुणों के संस्थापन की कोशिश की है।

जन्म से दो वर्ष तक– शिशु जन्म से लेकर 2 वर्ष की अवस्था तक वह वस्तुओं के विषय मे प्रश्न करता है। आवाजों तथा लय व धुनों को दोहराने की चेष्टा करता है। वह बहुत पहले सीख लेता है कि वह कुछ वस्तुओ को छू सकता है तथा कुछ को नहीं।

शिशु के खोजने के प्रयास को, वातावरण को सुरक्षित रखकर प्रोत्साहन देना चाहिए। उन वस्तुओं को जिन्हें वह छू नहीं सकता हटा लेना चाहिए। अभिभावकों को बच्चों के साथ आसान खेल खेलने चाहिए जैसे बड़े ब्लॉक अथवा गुड़िया इत्यादि। अभिभावकों को उन्हें क्रियाशील खेलों से आनंद लेने देना चाहिए तथा बच्चों को अपनी सृजनात्मकता के नाम को बिना किसी प्रश्न के स्वीकार कर लेना चाहिए। जब शब्दों का अर्थ मिलने लगता है तो अभिभावक को इन चीजों के बारे में गुनगुनाना चाहिए।

दो से चार साल तक– शिशु संसार के साथ अपने को ढालने के बारे में सीखता है। वह संसार की खोज अपने सीधे तथा अपने दोहराते हुए क्रियात्मक तथा काल्पनिक खेलों के माध्यम से करता है। उसका

ध्यानपूर्वक रहने का काल थोड़ा होता है तथा वह अचानक अपनी क्रिया को बदल देता है। यदि उसे आदेश न दिया हो तो वह स्वयं के लिए कार्य करना चाहता है।

बच्चों को विभिन्न प्रकार से परिवर्तित होने वाले खिलौने उपलब्ध कराने चाहिए। बड़ो को बच्चे के साथ खेलों में हिस्सा लेना चाहिए। इससे उसकी योग्यता में उसके आत्मविश्वास को बढ़ाने में मदद मिलती है।

चार से छः वर्ष तक– शिशु कार्य योजना बनाने के कौशल को सीखता है। वह संभावित खेल और कार्य की योजना बनाने मे आनंद लेता है और खेल के माध्यम से बड़ों के जैसा व्यवहार करने की कोशिश करता है। वह दूसरो की सवेदना के बारे मे भी जागरूक है तथा उसे यह आभास होने लगता है कि उसकी क्रियाएं किस तरह दूसरों को प्रभावित करती हैं।

सृजनात्मक कला, शब्दो के खेल तथा नए अनुभवों से बालक के अंदर विश्वास बढ़ाया जा सकता है। अभिभावकों और शिक्षकों को बालक को नियोजन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। बालक खेल के माध्यम से अथवा कल्पना के द्वारा अपनी देखभाल करते हैं तो उन्हे प्रोत्साहित करना चाहिए। अभिभावको को बच्चे द्वारा की गई नई चीजों की खोज में भाग लेना चाहिए और उसे नए शब्दों का अर्थ ढूंढ़ने में मदद करनी चाहिए।

छः से आठ वर्ष तक– बालक की काल्पनिक सृजनात्मकता अधिक वास्तविकता का रूप धारण कर लेती है। उसकी जिज्ञासा का विकास होता रहता है। वह अपनी कल्पना का उपयोग चरित्र के सिद्धांतों को व्यक्तिगत स्वरूप प्रदान करने मे दे सकता है।

बालक को अभिनय करने तथा बड़ों की गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यहां नैतिक मूल्यों को व्यक्तिगत स्वरूप प्रदान करने वाले चरित्रों (पात्रों), वार्तालापों, कहानियों तथा पाठो के द्वारा चरित्र निर्माण किया जा सकता है। बालक की एक विचारधारा को लेकर किसी योजना में जहां तक वह बिना मदद के जा सकता है, जाने मे सहायता प्रदान करनी चाहिए। यदि बालक के पाठशाला के अनुभव चुनौतीपूर्ण तथा पुरस्कारित करने वाले है तो बालक सीखने मे रुचि लेगा।

आठ से दस वर्ष तक– इस अवस्था मे बालक अपनी सृजनात्मकता के लिए विविध प्रकार की कलाओं का बढ़ता हुआ उपयोग करने में सक्षम है। वह अपनी विशिष्ट क्षमताओं को सृजनात्मकतापूर्ण प्रयोग करने के विभिन्न तरीको को खोज सकता है। वह अथक प्रयास तथा रुचि वाली योजनाओं को कर सकता है। दूसरों के इसके बारे मे सोचने वाले गलत फैसलों से उसकी भावनाओ पर आघात लगता है। उसकी प्रश्न पूछने की क्षमता बढती है तथा उसकी सत्य को जानने की इच्छा बढ़ती है। उसका चितन अधिक सकारात्मक तथा उत्पादवर्धक होता है।

बालक को अपनी वास्तविक-प्रतिभा (कल्पनाशक्ति) को व्यक्त करने वाली सकारात्मक सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए जो उसने सीखा है उसका उपयोग करने के लिए सुविधाए प्रदान करनी चाहिए तथा असफल होने पर हतोत्साहित नहीं करना चाहिए और बालक को यह अनुभव कराने में मदद करनी चाहिए कि वह प्रत्येक दिशा मे प्रवीण नहीं हो सकते।

दस से बारह वर्ष तक–बालक खोज में आनद लेते हैं। लड़कियां किताबों से, अभिनय खेलों से और लड़के प्रथम प्राप्त अनुभवों को ज्यादा पसद करते हैं। और इस समय सगीत तथा कला की अभिरुचि तेजी से विकसित होती है। इस समय रुचि तथा स्मरण करने की शक्ति, बुद्धि का प्रयोग बड़े लोगों को विभिन्न तरह के तथ्यों को बताने के लिए उत्तेजित करते हैं। इस समय बालक सिद्धातों को ढूंढ़ने तथा सामान्यीकरण करने या सहानुभूति प्रकट करने वाली योजनाओं को चुनौती देने पर बना सकता है।

बालक को अपने अनुभव का आदान-प्रदान करने तथा पढ़ने तथा विकसित करने की सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए। बड़ों को बच्चो के संसार की प्रगति में विराजमान अर्थो-सत्यों को खोजने में तथा उनके मध्य बिना किसी भय के जीवन-यापन करने की चुनौती देनी चाहिए। बच्चो को अपने विचारो तथा कलाओ का परीक्षण करने में मदद करनी चाहिए। यहां बालक को निर्णय लेने तथा कार्यशैली की योजना बनाने मे मदद करनी चाहिए।

बारह से चौदह वर्ष तक— बालक का तर्क के मुकाबले में साहसी संकटयुक्त कार्यो की तरफ ज्यादा ध्यान आकर्षित होता है। विलक्षित बालक कलात्मक काल्पनिक संगीत तथा मशीनी क्षेत्रों मे महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त करते हैं। वह बडों के नियमो के विषय में प्रश्न करता है तथा इस विषय में लिए जाने वाले निर्णयो मे शामिल होना चाहता है। वह अपने को असुरक्षित महसूस करता है। वह समुदाय के प्रभाव के बावजूद अपने सिद्धांतों पर स्थिर रहने में सक्षम होता है।

बालक ने क्या सीखा है? उसका उपयोग व्यावसायिक चयन करने में तथा अपनी गतिविधियों में करना चाहिए। उसे संगठित करने मे तथा अपने विशिष्ट उद्देश्यो के विकास मे प्रोत्साहन देना चाहिए। उसे अपने सहचरों से भिन्न होने के लिए नहीं कहना चाहिए। उसे अपने ग्रुप को प्रभावित करने वाली कलाओ को देना चाहिए तथा अपने समुदाय का स्तर बढ़ाने मे मदद करनी चाहिए। बालक को दूसरो की आवश्यकता जानने का अभ्यास कराने तथा दूसरों का सम्मान, सृजनात्मक हलो द्वारा करने में मदद करनी चाहिए।

चौदह से सोलह वर्ष तक— काल्पनिक गतिविधिया भविष्य के व्यवसाय पर केद्रित होती है। रुचियां तथा अभिरुचिया तेजी से विकसित होती हैं। वह अपने सहचरों की स्वीकृति के विषय में चिंतित होता है तथा इस भय के कारण खोज तथा अपनी क्षमताओं को परखने की परिस्थितियों से बचना चाहता है। वह अभ्यास से अपनी भावनाओं को सृजनात्मक रूप दे सकता है।

बालक वास्तविक रूप में अपनी क्षमताओं का मूल्याकन करने में सहायता की आवश्यकता महसूस करता है। यह नवीन सृजनात्मकता से समस्याओं के हल की विधिया सीखने का समय है तथा सृजनात्मक हल ढूंढ़ने की कला को उत्पन्न करने का समय है जिससे कि वह विवादास्पद परिस्थितियों में अपने आप की मदद कर सके। उससे उन सब चीजों को जिनको कि वह असहाय परिस्थितियों मे कर अथवा नहीं कर सकता को जानने के लिए उत्तेजित किया जा सकता है।

सोलह से अठारह वर्ष तक— वह अपने जीवन के लिए आकाक्षाओं के लिए दृष्टि विकसित करता है तथा अपने जीवन को संपन्न बनाने के लिए कला एवं सामाजिक गतिविधियों का विकास करता है। रुचियां स्थाई होती हैं। वह व्यवसाय परीक्षण एवं मार्गदर्शन की सर्वोत्तम उम्र है। वह इस समय अपनी भावना शक्ति को सृजनात्मकता से समस्याओं के हल ढूंढ़ने में लगाता है तथा समूह में उत्साहपूर्वक भाग लेता है।

युवको को विचारों की उत्पादकता के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए तथा उच्च कोटि के सौंदर्य मूल्य, रुचि तथा कौशल को विकसित किया जा सकता है। बालक अपने विश्वास पर स्थिर रहने के संदर्भ मे सहायता लेने तथा सामाजिक कौशल के अभ्यस्त होने में आवश्यकता महसूस करता है, अध्यापक और अभिभावकों को इसमें सहायता प्रदान करनी चाहिए।

शैक्षिक वातावरण को प्रभावित करने वाले कारक

रिसमैन तथा अन्य के मतानुसार सहशिक्षा, शैक्षिक वातावरण के प्रतिकूल वातावरण पैदा करती है। मिश्रित योग्यता के बच्चों का सहपाठ्यक्रम विलक्षण बालकों के लिए निराशाजनक है। कई बार तो योग्य छात्र बहुमत के साथ समचर होने के लिए कम शिक्षार्जन करते हैं।

टौरेंस के अनुसार सृजनात्मक बालक पहले विचारों की शुरुआत करते हैं लेकिन शीघ्र ही यह अनुभव होने पर कि उसकी उपेक्षा की जा रही है, या अस्वीकार किया जा रहा है। वह प्रतिक्रिया जाहिर करने लगते हैं। इस तरह वे उत्तेजक प्रतियोगी बन जाते हैं तथा निंदाशील, चिड़चिड़े एव विनाशकारी आलोचक बन जाते हैं। कुछ बच्चे अपने को परिस्थिति से पूर्णतया अलग कर लेते हैं तथा अपना समय अकेले अपनी तरह से आविष्कारक (खोजी) खेलों में लगाते हैं तथा व्यक्तिगत कार्यो जैसे पढ़ना, चित्र बनाना तथा लिखना इत्यादि में लग जाते हैं। उनको समुदाय की गतिविधियो मे कम या नहीं के बराबर झुकाव रहता है। वे लोगों के साथ से दूर भागते हैं लेकिन इसके बावजूद उनकी लोगों के साथ के लिए जिज्ञासा रहती है। अपने को स्वीकारणीय बनाने की कोशिश करते हैं तथा अपने मूल्य की समय-समय पर

जानकारी लेते हैं।

गिलफोर्ड के अनुसार सृजनात्मक रूप से विलक्षित पुरुष सामान्य से ज्यादा स्त्रीत्व की कोमलता प्रदर्शित करते हैं। जबकि सृजनात्मक महिलाएं सामान्य से ज्यादा पुरुषत्व प्रदर्शित करती हैं। अभिभावको को अत्यधिक सुरक्षा, तानाशाही रवैया तथा अत्यधिक उदारतावादी रवैया कम प्राप्ति की ओर अग्रसित करता है।

पलसिवर ने विद्यालय के नकारात्मक व्यवहार से बचने की ओर जोर दिया है।

वेनिनगर अकसर विद्यालय विद्यार्थी के वास्तविक तथा सृजनात्मक दर्शन के प्रभाव को रोकते हैं। सामाजिक एकरूपता के लिए भी सृजनात्मकता का परित्याग किया जाता है। इसमें कई सामाजिक बंधन कारक होते हैं। विद्यालय के अंदर बालक घर के सुरक्षात्मक वातावरण के विपरीत विद्यालय के प्रतियोगितावादी वातावरण मे एक स्वतंत्र जीवन की राह में प्रवेश करता है। बालक के सृजनात्मक विकास के लिए विद्यालय की परिस्थितियां, बालक की आवश्यकताएं, प्रेरणाएं, कक्षा के अंदर अध्यापक का व्यवहार, शिक्षक-छात्र संबंध, पाठन की विधिया तथा पढ़ाने की सामग्री बालक के सृजनात्मक विकास में महत्वपूर्ण कारक हैं। मुक्त कक्षाएं परम्परागत कक्षाओं के मुकाबले में ज्यादा सृजनात्मकता का विकास करती है। शिक्षक के विविधतापूर्ण प्रश्न सृजनात्मकता को बढ़ावा देते हैं। सृजनात्मक नाटक, स्वतंत्र अध्ययन, चिंतन, उत्तेजक अधिवेशन, कक्षा का शिक्षा ग्रहण करने का वातावरण, विशेष शिक्षा के कार्यक्रम जो कि बालक की आवश्यकताओं के विकास मे रुचि पैदा करते हैं, बालकों के लिए सृजनात्मकता विकास के माध्यम हैं।

सृजनात्मकता के विकास के लिए अध्ययन कक्ष की अनुकूल परिस्थितियां

विचारों के आदान-प्रदान के लिए स्वतंत्र चिंतन वाला वातावरण प्रदान करना चाहिए। विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को कार्यप्रणाली में महत्व देना चाहिए। विद्यार्थी के आतरिक मूल्यांकन के समय बिना किसी भय के सीखने की परिस्थितियां उत्पन्न करनी चाहिए। मनोवैज्ञानिक सुरक्षा एवं स्वतंत्रता सृजनात्मकता के विकास तथा संवर्धन मे सहायक सिद्ध होती है।

सृजनात्मकता एवं पाठ्यक्रम का निर्धारण

टौरेंस (1970) ने पाठ्यक्रम के संबंध में सृजनात्मकता के विकास को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय निम्न बातें बताई हैं जिन्हें ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्धारण करना चाहिए।

- ☐ पाठ्यक्रम में जिज्ञासा की आवश्यकता।
- ☐ कठिन परिस्थितियों एवं चुनौतियों का सामना करने की क्षमता का विकास करना।
- ☐ लगनशीलता एवं समर्पण की भावना का विकास

विलियम के अनुसार छात्रों में सृजनात्मकता के कारक

प्रथम आयाम	द्वितीय आयाम	तृतीय आयाम
पाठ्यक्रम विषय सामग्री भाषा अंक गणित सामाजिक विज्ञान इत्यादि	विद्यार्थी का व्यवहार अ.. बौद्धिक लचीला चिंतन वास्तविक विस्तृत ब. प्रभावकारी संवेदनात्मक जिज्ञासा, जटिलता, कल्पना, इच्छा, सक्षमता, अनुभूति इत्यादि	शिक्षक का व्यवहार, कौशल एव पढ़ाने की विधियां शिक्षक के व्यवहार के तरीके तथा पढ़ाने की विधियां, खोजी प्रश्न पूछना, सूझ वाली अभिव्यक्ति, सृजनात्मक पाठन, परिस्थिति के अनुकूल मूल्यांकन

करना।

- सत्य की खोज एव ईमानदारी की भावना का विकास करना।
- आवश्यकता है सामान्य से हटकर अपनी अलग पहचान बनाने या व्यक्तित्व की।

अतः पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर छात्र केन्द्रित पाठ्यक्रम तथा छात्रों में ज्ञानात्मक, संवेदात्मक, संज्ञानात्मक पक्षों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का निर्धारण करें।

हिस्ट एवं विल्सन (1968) के मतानुसार पाठ्यक्रम निर्धारण करते समय निम्न बिंदुओं/बातो को ध्यान में रखा जाए—

- पाठ्यक्रम उसके ज्ञानात्मक पक्ष को ध्यान में रखकर व्यापक, सर्वसमावेशी होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम उसकी जिज्ञासा तथा उत्सुकता को जागृत करने वाला होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम में *स्वतंत्रता एव लचीलापन होना* चाहिए।

इस प्रकार पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि छात्रों को विविध चिंतन की ओर प्रेरित करना है, विकास करना है। इनमें विविध विधियों का सहारा लेकर उनके तरीकों तथा विचारों को सभी से परिचित कराना है। छात्रों की प्रतिभा को खेल, नाटक, क्रिया एवं व्यावहारिक प्रयोग द्वारा निकालकर बाहर लाना है न कि उनको जरूरत से ज्यादा निराश बोझ *वाला बोझिल पाठ्यक्रम लादना है जो पूरे सत्र में भी* पूर्ण नहीं हो पाता। □□

श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
कटवारिया सराय
नई दिल्ली

शालेय शिक्षण द्वारा सृजनशीलता का विकास

❒ अनिला गोदरे

सुर बिना वीणा, प्रकाश बिना दीपक तथा अर्थ बिना शब्द जिस तरह अधूरे हैं, उसी तरह शिक्षा बिना मानव जीवन अपूर्ण है। सृष्टि के सृजनहार ने इस पृथ्वी पर नाना प्रकार के प्राणियों को जन्म दिया है। इन प्राणियों में मनुष्य भी है और पशु भी। मानव व जानवर में काफी समानताएं हैं, यदि कोई गुण इन दोनो मे फर्क दर्शाने वाला है तो वह है—"सोच-विचार करने की शक्ति"। मानव में बुद्धि होती है जिसके बल पर आज वह प्रकृति को भी चुनौती देने लगा है। इसी बुद्धि को प्रखर करने का, योग्य सस्कारों से पूर्ण करके इसे तेजोमय बनाने का कार्य करता है—बुद्धि व भावना के परिमार्जन करने की शिक्षण प्रक्रिया सतत् ालू रहने वाली क्रिया है। इतना ही नहीं बालक के सर्वागीण विकास के लिए भी हमारा ध्यान शिक्षण प्रक्रिया पर ही रहता है। आज हम शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भी यही मानते हैं। शिक्षण के द्वारा ही बौद्धिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक, नैतिक, शारीरिक आदि बहुमुखी विकास साध्य किए जा सकते है। कहने का तात्पर्य यह है कि बालक के सपूर्ण व्यक्तित्व विकास में शिक्षण की भूमिका अमूल्य है। सस्कृत के एक श्लोक में भी कहा गया है—

येषां न विद्या, तपो न दानं, ज्ञान न शीलं, गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भूविभारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

अर्थात् जिन व्यक्तियों में विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील व धर्म ये छह गुणो का अभाव हो वे इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में भी मृग की भांति हैं। इसी मृग की भाति विचरते प्राणी को मानव बनाने का कार्य शिक्षण करता है।

इन्हीं सभी बातो को ध्यान रखते हुए शिक्षण के अलग-अलग सिद्धान्त है, अलग-अलग पद्धतियां हैं, जिन्हे शालेय अभ्यास क्रम व बालक के बहुपक्षी विकास की दृष्टि से कार्यान्वित करने का प्रयास किया जाता है। आज हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में छात्रो की ओर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया है अर्थात् वर्तमान शालेय अभ्यास क्रम बाल केन्द्रित है—इसमे दो मत नहीं होगे। साथ ही बालकों के स्वतंत्र विकास का ध्यान रखते हुए शिक्षण भी यथा संभव कृति प्रधान किया जाता है। कृति की प्रधानता के साथ ही जुड़ी हुई हैं छात्रो की सहज प्रवृत्तियां।

प्रत्येक बालक सृजन की अनंत संभावनाओं से परिपूर्ण होता है। यदि उन्हें सही-सही पहचान कर विकसित होने की दिशा में पर्याप्त प्रोत्साहन व मार्गदर्शन दिया जाए तो निश्चित ही बालक रचनात्मक वृत्ति से युक्त यशस्वी बन सकता है।

प्रत्येक बालक मे जन्मजात कुछ प्रवृत्तियां होती है, जिन्हें सही-सही पहचानकर विकसित होने की दिशा में पर्याप्त प्रोत्साहन व मार्गदर्शन दिया जाए तो वह छात्र निश्चित ही उस दिशा में यशस्वी बन सकता है। इसी वृत्ति को मनोवैज्ञानिकों ने "रचनात्मक वृत्ति या सृजनशीलता" का नाम दिया है।

छात्रो में नवनिर्मिती एक सहज प्रवृत्ति है। बालक के मन में हमेशा कुछ नया करने की ललक होती है। इसी सृजनशीलता का योग्य विकास होने पर विभिन्न क्षेत्रों में बालक यशस्वी होते हैं। सृजनशीलता के विकास में काल्पनिकता का भी महत्व है। इसी काल्पनिकता की सीमा और छात्रों में छिपी सृजनात्मक वृत्ति को सही दिशा और मार्गदर्शन देने के लिए हमारा शिक्षण समर्थ होना चाहिए।

छात्रों में शिक्षण के माध्यम से सृजनशीलता का विकास करने के लिए शिक्षक को "सीखने की प्रक्रिया" समझना भी आवश्यक है। इस प्रक्रिया के मुख्य तीन अंग माने गए हैं—

- ज्ञान या जानना।
- क्रिया या करना।
- भाव या अनुभव करना।

इन बातो को ध्यान में रखकर ही शिक्षण के द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियो की स्वाभाविक व सामंजस्यपूर्ण प्रगति का प्रयास किया जाता है।

शिक्षण के माध्यम से यह कार्य पूर्व प्राथमिक स्तर से ही प्रारभ होता है। छात्रों में अन्तर्मूर्त गुणों के सहज विकास को ध्यान में रखते हुए ही इन कक्षाओं का अभ्यास क्रम कृतिप्रधान रखा गया है। यहां ज्ञानेन्द्रिय शिक्षण के साथ ही साथ छात्रो को स्वकल्पना व स्वरचना के लिए भी पर्याप्त मौका दिया जाता है। पूर्व-प्राथमिक के छात्रों में सृजनशीलमा के विकास के लिए "मुक्त व्यवसाय, चित्रकला आदि के प्रयोग काफी उपयोगी सिद्ध होते है"।

छोटे बच्चे चित्रो के माध्यम से अपने मनोभाव प्रकट करते हैं, यदि उन्हे चित्र बनाने की स्वतंत्रता दी जाए तो एक ही वस्तु के विविध रूप हमें दिखाई देते हैं। साथ ही बच्चे को समझकर उन्हें विकसित होने के लिए सही वातावरण देते हैं। अकसर यह देखा जाता है कि पालक अपने बच्चों को अपनी इच्छानुसार बडा करना चाहते हैं। वे अपने बच्चों की क्षमता से अनभिज्ञ उन पर दबाव डालकर अपना हित साध्य करना चाहते है।

ऐसा ही एक उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं—पड़ौस का छोटा स्वानंद चित्रकला मे निपुण है उसमें कला के प्रति रुझान भी है, प्रायः अपनी चित्रो की दुनिया मे खोया रहता है परंतु उसकी मां उसे गणित, भाषा, सामान्य ज्ञान पढ़ाना चाहती है, उसका कहना है कि यह हमेशा अपना अभ्यास छोड़ चित्र बनाने में लीन रहता है कि अन्य विषय की ओर ध्यान ही नहीं देता—उसकी यह शिकायत मेरे पास आई तब मैने कुछ विचार कर उसे अपने पास बुलाया और ऐसे चित्र बनाने के लिए कहा जिनकी शुरुआत या तो अकों द्वारा होती हो या अक्षरों द्वारा। उसे कुछ इस प्रकार के चित्र भी बताए—मेरी बात उसकी समझ में आई और अपनी रुचि के साथ ही वह अंक व अक्षर लिखना भी सीख गया। इस उदाहरण को प्रस्तुत करने का तात्पर्य केवल इतना है कि यहां उस बच्चे में जो कला के प्रति रुझान है उसे प्रोत्साहन भी मिला और उसे कुछ करने का समाधान भी, साथ ही वह भाषा व गणित के अक्षरों व अंकों से भी परिचित हुआ। यदि इसी तरह अन्य विषय में कुछ विचार कर कुछ बच्चों के स्वभाव व रुचि को पहचानकर अध्यापन किया जाए तो अवश्य हमारा उद्देश्य साध्य हो सकता है। छोटे बच्चों में मुक्त व्यवसाय की विभिन्न प्रवृत्तियो द्वारा, हस्तकला द्वारा, व्यर्थ वस्तुओ से उपयोगी वस्तु बनवाना आदि विषयांशो द्वारा उनकी कृतिशीलता व सृजनशीलता को विकसित होने का मौका मिलता है। साथ ही उनमें सौन्दर्य दृष्टि का विकास भी होता है। छात्रों को कुछ रचनात्मक खेल भी दिए जा सकते हैं। खेलों के आयोजन से दो बातों का संगम होता है—यहां शिक्षण के साथ मनोरंजन का मेल होता है तथा छात्रो के स्वाभाविक, सहज व सर्वागीण विकास में मदद मिलती है।

3 से 5 वर्ष तक के बच्चों से रंगीन मिट्टी (modeling clay) के द्वारा अलग-अलग आकार, रूपाकृति बनाने को कहा जाता है। यहां उन छोटे बच्चो के स्नायुओं को हलन-चलन का प्रशिक्षण तो मिलता ही है साथ ही वे अपनी कल्पना के आधार पर न जाने कितने प्राणी, जानवर, आदमी की आकृतियां उस मिट्टी द्वारा बनाते हैं। उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने का यह उपाय कितना सरल व व्यावहारिक है। छोटे बच्चों को वैसे भी मिट्टी या रेत में खेलना अच्छा लगता है। यहां हम थोड़ा सा स्वच्छता का ज्ञान भी दे सकते है।

प्राथमिक कक्षा के छात्रों में गणित विषय के प्रति रुचि निर्माण करने व उनमें कल्पना विकसित करने की दृष्टि से एक छोटा-सा प्रयोग किया गया। छात्र गणित की चारों मूलभूत संक्रियाएं जानते थे। उनका एकत्र प्रयोग करने का कौशल व विविध रचना का दृष्टिकोण निर्माण करना यहां प्रमुख था। छात्रो से कहा गया कि वे 1 से 9 अंक तक में से अंक चुने। उन अंकों पर चारो मे से कोई भी प्रक्रिया लागू करें परंतु उनके सवाल का उत्तर चार ही आना चाहिए—उन्हें नमूने के सवाल भी दिए जैसे—

$1+1+1+1=4$

$1+3=4$

$2\times 2=4$

$8\div 2=4$

$5-1=4$

$(6\times 1)-2=4$

यह प्रयोग कक्षा 3 व 4 के छात्रों के साथ किया गया तथा छात्रों का सहयोग काफी अच्छा रहा। विद्यार्थी अपनी पूरी लगन व निष्ठा से सवाल करने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि यहां उन्हे अपनी प्रतिभा दर्शाने का मौका मिलता

है, उन पर कोई बाह्य दबाव नहीं है। यह तो एक साधारण सा प्रयोग था परंतु बड़ी कक्षाओं मे भी गणित के अन्य विषयांशों को लेकर इस प्रकार के प्रयोग किए जा सकते है जहां गणितीय हल के साथ छात्रो की रचनात्मक वृत्ति को भी खाद्य मिलता है।

विज्ञान विषय में इस उद्देश्य को साध्य करने के लिए काफी प्रावधान हैं। पूर्व-प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्तर तक के छात्रों की शंकाओं का समाधान इसी के खजाने मे है। इसका अभ्यास क्रम भी इसी तरह रचा गया है कि अपने चारों ओर के परिसर से छात्र परिचित हो। उसे पहचाने। बच्चे अधिकतर रंगों की ओर आकर्षित होते हैं। लाल, हरा, नीला व पीला रंग उन्हें विशेषतः आकर्षित करते हैं। कक्षा में शिक्षक जब रंगों के परिचय के समय उन्हें मिश्र रंग अर्थात् 2 या दो से अधिक रंगों के मेल से बने हुए रंगों का ज्ञान देता है तब ये बच्चे अपनी उत्सुकता रोक नहीं पाते और वे स्वयं रंगो की दुनिया में अलग-अलग रंग मिलाकर नए-नए रगों की खोज करते हैं और प्रसन्न होते हैं। कभी वे जिलेटीन या टिश्यू पेपर के अलग-अलग रंग साथ रखकर भी निरीक्षण करते हैं। यही छोटी-सी उत्सुकता क्या जाने कल किसी सृजनात्मकता में बदल जाए। जरूरत है तो सही मार्गदर्शन की। जेम्स वॉट की कहानी हम सभी जानते हैं। चाय की केतली गर्म करने रखी है और उसका ढक्कन बार-बार ऊपर-नीचे क्यों हो रहा है? इसी एक छोटी-सी उत्सुकता को मिटाने के लिए किया गया उनका प्रयत्न हमारे सामने "वाष्प इंजिन" के रूप में आया। हमारी आज की पीढ़ी में भी कुछ छात्र तो अवश्य ऐसे होंगे जिनमें इस प्रकार की प्रतिभा होगी। विज्ञान के छोटे-छोटे व्यावहारिक प्रयोग छात्रों की रचनात्मक वृत्ति के विकास के लिए काफी सहायक होते हैं। प्राथमिक व माध्यमिक कक्षाओं के बच्चे विज्ञान के सिद्धान्त, नियम आदि पढ़ने के पश्चात् कई छोटे-छोटे उपकरण स्वयं बनाते है। जैसे– शोभादर्शी, परिदर्शी, सादा कैमरा, फोन आदि। क्या यह कार्य इनकी रुचि, इनकी रचनात्मक वृत्ति को दर्शाने वाला नहीं। यहां यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि विज्ञान विषय के शिक्षण द्वारा छात्रो को अधिकाधिक इस ओर प्रेरित किया जा सकता है।

केवल गणित, विज्ञान ही नहीं भाषा विषय के अनेक उपक्रम जैसे– निबध लेखन, कथा-कथन, चित्र-वर्णन, काव्य गायन, काव्य लेखन, संवाद, नाटक आदि बच्चों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करते हैं और जिन छात्रों मे यह कलात्मक गुण होते हैं वह अपने आप योग्य वातावरण पाकर मुखरित होता है।

अभिनय गीत या कथा-कथन के समय बालकों के मुक्त अभिनय की कला शिक्षक की दृष्टि से छिपी नहीं रहती। उनकी पैनी नज़रे कलाकारों को पहचान लेती हैं। ऐसे छात्रों को यदि उनकी रुचि के अनुसार ही कार्य करवाए जाएं तो उन्हें विकास का सही मौका मिलता है।

छात्रों के विकास में संगीत, चित्रकला, हस्तकला जैसे विषयों का शिक्षण भी काफी महत्व रखता है। इनसे छात्रों की कल्पनाशक्ति को विकसित करने के साथ ही उनमें सृजनात्मक व सौन्दर्य दृष्टि निर्माण करने का भी मौका मिलता है। कार्यानुभव विषय का खास उद्देश्य ही छात्रों में रचनात्मक वृत्ति को बढ़ाता है। इसी तरह भूगोल व इतिहास विषय का भी इन विषयो के साथ समन्वयन करके शिक्षण अधिक रोचक व उद्देश्यपूर्ण बनाया जा सकता है। नक्शे की रचना ऐतिहासिक व दर्शनीय स्थलों के नमूने, लोकजीवन की झलकिया आदि के परिचय के लिए कार्यानुभव विषय व छात्रों की सूझबूझ उपयोगी सिद्ध होती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि अभ्यास क्रम के अंतर्गत विषयों के द्वारा छात्रो में रचनात्मक वृत्ति के विकास के लिए नए-नए उपक्रमों का आयोजन तथा सह शैक्षणिक कार्यक्रम की रूपरेखा बनाकर उन्हें कार्यान्वित करना असंभव नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बालक सृजन की अनंत संभावनाओं से परिपूर्ण होता है, सिर्फ आवश्यकता इस बात की होती है कि उसे हम शिक्षा की किस पद्धति से पहचान सकते हैं, उसकी संभावनाओं का अन्वेषण कर सकते हैं। इसके बाद ही शिक्षण द्वारा उसकी सृजनशीलता के विकास को रेखांकित किया जा सकता है। ❑❑

श्रीमती एस.के.एस. जूनियर कालेज ऑफ एजुकेशन
विद्या विहार, मुंबई

विद्यालयों में सृजनात्मकता का पोषण

❑ मदन मोहन वशिष्ठ

प्रस्तावना

प्राणी इस विशाल सृष्टि में हमारी धरती और समुद्रो में लाखों जीव है जिनमे मनुष्य एक विचित्र प्राणी है। उसकी विलक्षणता उसकी बुद्धि है। इसके अतिरिक्त उसमें उच्च मानसिक प्रक्रिया है जो अन्य जीवो में नहीं पाई जाती या बहुत सीमित रूप से पाई जाती है। उच्च मानसिक प्रक्रियाओं में चिन्तन एक प्रमुख प्रक्रिया है। 'चिन्तन करना' और 'सोचना' एक-दूसरे के पर्याय हैं और यह मानव मस्तिष्क का एक स्वाभाविक गुण है। यह गुण जिस व्यक्ति में जितना ही प्रबल होता है वह व्यक्ति उतना ही उत्कृष्ट स्तर का होता है। चिन्तन और सृजनात्मकता क्या है? विद्यालयो में सृजनात्मकता का पोषण कैसे किया जा सकता है इस पर विचार व्यक्त किए गए हैं।

चिन्तन क्या है?

मनुष्य अपने जीवन में तरह-तरह की परिस्थितियों से गुजरता रहता है। यह भी कहा जाता है कि मनुष्य परिस्थितियों का दास है। कुछ परिस्थितियां अनुकूल होती हैं, कुछ समस्याए उत्पन्न करती है। समस्या सामने आने पर व्यक्ति उसको सुलझाने या हल करने की कोशिश करता है समस्या के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित विचार एक-एक करके उसके सामने आते हैं, एक शृंखला सी दिखाई देती है। एक के बाद एक विचार उठने लगते हैं। कई सम्बन्धित बात भी सामने आती हैं, यहां तक कि समस्या का हल निकल आता है। फिर समस्या का हल ढूंढ़ने की यही प्रक्रिया बन्द हो जाती है। चिन्तन की परिभाषा अनेक विद्वानों ने समय-समय पर दी है। वुडवर्थ ने चिन्तन की परिभाषा इस प्रकार दी है कि–

'चिन्तन किसी बाधा पर विजय प्राप्त करने का एक तरीका है'–वुडवर्थ

चिन्तन उच्च मानसिक प्रक्रियाओं में एक प्रमुख प्रक्रिया है। यह गुण जितना प्रबल होता है वह व्यक्ति उतना ही उत्कृष्ट स्तर का होता है। चिन्तन और सृजनात्मकता में घनिष्ट संबंध है। कोई भी नया विचार, आविष्कार, नवीन विधियां, ज्ञान में वृद्धि आदि सृजनात्मकता की उपलब्धियां हैं। उत्पादक चिन्तन की प्रक्रिया सृजनात्मकता संपोषण में सहायक होती है।

चिन्तन के तत्व

चिन्तन की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष, प्रतिमा, प्रत्यय, प्रतीक और भाषा आदि तत्व शामिल होते हैं। सांसारिक वातावरण में स्थित जितनी भी वस्तुएं हैं, सभी प्रत्यक्ष कहलाती हैं। इन्हीं से समस्याएं उत्पन्न होती हैं इन्हीं से तरह-तरह की परिस्थितियों का निर्माण होता है। जब बालक इन प्रत्यक्ष चीजों को देखता है वे चीजें उसे सोचने के लिए बाध्य करती हैं। वे सभी चीजें उसे अपने विचार व्यक्त करने के लिए मजबूर करती हैं। वे सभी विचार सृजनात्मकता का प्रतीक होते हैं। वातावरण की वस्तुओं में बहुत से गुण होते हैं जब तक वातावरण का कोई तत्व हमारी इन्द्रियों के सम्पर्क में प्रत्यक्ष रूप से होता है। उसके गुणों का आभास हमें अपनी ज्ञानेन्द्रियों से होता है। जब वह वस्तु हमारी ज्ञानेन्द्रियों के सम्पर्क से अलग कर दी जाती है या हो जाती है। तो हमारे मन मे उसकी प्रतिमा रह जाती है जिसके द्वारा हम उसका ध्यान करते हैं। मनुष्य के गत अनुभव प्रतिमाओ के रूप में उसके दिमाग में रहते हैं। चिन्तन में प्रतिमाओं का व्यापक प्रयोग होता है। ये प्रतिमाएं हमारी सृजनात्मकता का विकास करती हैं। वातावरण की जितनी

वस्तुएं हमारी जानकारी मे आती है उतने ही प्रत्यय बनते हैं। प्रत्ययो का सम्बन्ध मस्तिष्क मे बने सस्कारो से होता है। ये प्रत्यय चिन्तन में बहुत सहायक होते हैं। आयु बढ़ने के साथ-साथ प्रत्ययों में और भी अर्थ जुड़ने लगते हैं और प्रत्यय का रूप अधिक व्यापक हो जाता है। ये प्रत्यय सोचने की क्रिया के आवश्यक तत्व हैं बालको में प्रत्ययों का निर्माण विशिष्ट मानसिक प्रक्रियाओं से होता है जैसे प्रत्यक्षीकरण, विश्लेषण, तुलना, सश्लेषण, नामकरण इत्यादि। ये सभी मानसिक प्रक्रियाएं बालक को सृजनशीलता की ओर ले जाती हैं। किसी वास्तविक वस्तु की अनुपस्थिति मे मस्तिष्क में उसका ध्यान दो प्रकार से आता है— एक तो प्रतिमा के रूप मे, जिसमे उस वस्तु का स्थल रूप ही ज्ञानेन्द्रिय के सामने उपस्थित हुआ मालूम पडता है और दूसरा प्रतीक के रूप में। प्रतीक किसी वस्तु का सूक्ष्म प्रतिनिधि होता है अकसर प्रतिमा मस्तिष्क में न आने पर प्रतीक से ही काम चल जाता है और उसका विचार की प्रक्रिया में हम प्रयोग करते है। नाम एक प्रतीक है किसी वस्तु का नाम उस वस्तु की अनुपस्थिति मे उसका बोध कराता है। प्रक्रिया मस्तिष्क में न आने पर प्रतीक विचार मे सहायक होते हैं। कभी-कभी स्थूल वस्तुए ही प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होती हैं। विद्यालयों मे लम्बी घन्टी का अर्थ छुट्टी होने से होता है इस प्रकार के प्रतीको का प्रयोग भी हम चिन्तन में करते है कुछ विशेष परिस्थितियों में प्रतीक चिन्ह का रूप धारण कर लेते हैं। गणित मे +, ×, –, + इत्यादि चिन्ह प्रयोग किए जाते है जो विशेष प्रकार की गणितीय प्रक्रियाओं के प्रतीक हैं। इस प्रकार से ये प्रतीक भी चिन्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं। इन प्रतीकों का सृजनात्मकता के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। चिन्तन का महत्वपूर्ण तत्व भाषा है। वास्तव में भाषा के लिखित अक्षर या बोली हुई ध्वनियां वास्तविक वस्तुओ और प्रत्ययों के प्रतीक होते है। कुछ भाषाओ मे चिन्ह और संकेतो का प्रयोग किया जाता है। कुछ में चित्र ही भाव, विचारों और वस्तुओ के प्रतीक होकर भाषा मे प्रयुक्त होते हैं। भाषा में ध्वनियो से अक्षर, अक्षरों के सार्थक समूह से शब्द, शब्दों से वाक्य बनते हैं। मानसिक चिन्तन का माध्यम भाषा की सृजनात्मकता को बढ़ाने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व होता है।

चिन्तन के प्रकार

चिन्तन निम्नलिखित प्रकार का होता है।

- ☐ **प्रत्यक्षात्मक चिन्तन—** यह सबसे निम्न स्तर का चिन्तन है और इसमें वस्तु के सामने रहने पर ही उसके विषय में चिन्तन होता है जैसे कुत्ते को देखकर कुत्ते के विषय में विचार उठना, पुस्तक को देखकर पुस्तक के बारे में सोचना इत्यादि।
- ☐ **कल्पनात्मक चिन्तन—** इस प्रकार के चिन्तन में प्रतिमाओं और प्रत्ययों के आधार पर भविष्य की कल्पना की जाती है जैसे देश के नेता और शासक उसकी उन्नति और प्रगति के लिए योजनाएं बनाते हैं, कवि नई कविता की रचना करता है, वैज्ञानिक किसी नई वस्तु या यन्त्र की कल्पना करता है, आदि।
- ☐ **प्रत्यात्मक चिन्तन—** बालक जैसे-जैसे बड़ा होता है उसके विशिष्ट प्रत्यय सामान्य प्रत्ययो का रूप ले लेते हैं। धीरे धीरे प्रत्ययों के द्वारा चिन्तन होता है तो ऐसा चिन्तन प्रत्यात्मक चिन्तन कहलाता है जो आगे चलकर सृजनात्मकता को जन्म देता है।
- ☐ **तार्किक चिन्तन—** तार्किक चिन्तन विशेष रूप से किसी समस्या के उपस्थित होने पर किया जाता है। इसमे अन्य सभी प्रकार के चिन्तनों का प्रयोग होता है जिन्हे व्यक्ति समस्या के उद्देश्य से जोड़ देता है और इस प्रकार उस उद्देश्य की प्राप्ति की जाती है। यह तार्किक चिन्तन है और इसमे चिन्तन समस्यात्मक होता है।

चिन्तन को प्रभावित करने वाली दशाएं

सफल चिन्तन वह होता है जिसमे समस्या का समाधान या हल निकल आए। इस प्रकार का चिन्तन अच्छा या प्रामाणिक चिन्तन कहलाता है। इस प्रकार के चिन्तन के लिए प्रेरणा, रुचि, अवधान, लचीलापन, सतर्कता, बुद्धि, समय की पर्याप्तता, और विश्राम आदि महत्वपूर्ण दशाएं हैं। अच्छा चिन्तन करने के लिए मनुष्य को पक्षपात, अन्धविश्वास, दूसरे के सुझाव और संवेगावस्था से दूर

रहना चाहिए। चिन्तन प्रक्रिया पर इसके प्रभाव पड़ने पर समस्या का ठीक हल नहीं निकल पाता और चिन्तन का निष्कर्ष या परिणाम दूषित हो जाता है।

चिन्तन और सृजनात्मकता

मनुष्य के लिए चिन्तन की प्रक्रिया एक प्रकृति के द्वारा दिया हुआ वरदान है। इसी की वजह से मनुष्य ससार में आज सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। चिन्तन का विकास, बालक के जीवन काल से ही आरम्भ होता है। वह प्रारम्भ में छोटी बातो पर विचार करता है और उसकी विचार प्रक्रिया सीमित होती है इस प्रकार से उसमें सृजनात्मकता की भावना जन्म लेने लगती है। चिन्तन और सृजनात्मकता का महत्व उच्च शिक्षा की अवस्था में होता है और उस समय होता है जब मनुष्य वयस्क होकर जीवन के क्षेत्र में प्रवेश करता है। भाषा के गूढ़ अर्थ, वैज्ञानिक विषय, सामाजिक विज्ञान की दार्शनिक पृष्ठभूमि, गणित की समस्याएं आदि को समझने और सुलझाने में चिन्तन का ही उपयोग होता है। इस प्रकार, दुनिया मे जो महान कार्य हुए है उनमे सृजनात्मकता और चिन्तन का महत्व देखने को मिलता है।

वास्तव मे सृजनात्मकता का चिन्तन से घनिष्ट संबंध है। कोई नया विचार, आविष्कार, किसी कार्य को करने की नई विधि, ज्ञान में कोई वृद्धि ये सब सृजनात्मकता की उपलब्धियां हैं। इस प्रकार उत्पादक चिन्तन की प्रक्रिया हमें सृजनात्मकता मे मदद करता है।

सृजनात्मकता से संबधित योग्यताओं का परीक्षण परम्परागत बुद्धि परीक्षणों द्वारा नहीं होता। मनोवैज्ञानिक मौलिकता और विदग्धता के मापन के लिए अलग से परीक्षण बनाए जा रहे हैं। इससे यह मत प्रतिपादित हुआ कि सृजनात्मकता से बुद्धि बिल्कुल भिन्न है। किन्तु यदि हम बुद्धि को कई योग्यताओं द्वारा सघटित मानें तो सृजनात्मक उत्पादन की क्षमता उसका महत्वपूर्ण अंग होगा। यह बात सही है कि कुछ लोग जो सामान्य बुद्धि परीक्षा में बहुत अच्छा करते हैं, बहुत सृजनशील नही होते, और कुछ ऐसे होते हैं जो बुद्धि परीक्षण मे अच्छा नहीं कर पाते किन्तु काफी सृजनशील निकलते है, किन्तु यह बात अन्य योग्यताओं पर भी लागू होती है। साधारणतया सभी योग्यताए साथ-साथ चलती है और अधिक उच्च बुद्धि वाले समूह में हमें अधिक सृजनशील व्यक्ति मिलते हैं बजाय कम बुद्धि के लोगों मे।

सृजनात्मकता का अर्थ है मौलिक और सामान्य से हटकर कोई कार्य करने की योग्यता। इसके अर्थ विभिन्न विचारों को उत्पादित करना, आविष्कार करना, परिचित वस्तुओं के नए उपयोग सोचना और समस्याओ के कई हल खोज पाना हो सकते है। सृजनात्मक प्रक्रियाओं को उनके अन्तिम परिणामों के द्वारा समझा जा सकता है। सृजनात्मकता सामान्य या उच्च स्तर की हो सकती है। यह एक बिरली (rare) प्रतिभा के स्तर पर कार्य कर सकती है। मनोवैज्ञानिक सृजनात्मकता के परीक्षण निर्मित कर रहे हैं। कुछ आधुनिक अन्वेषकों ने बच्चों मे सृजनात्मकता को मापने के लिए कई विधियों का उपयोग किया है, जैसे कहानी पूरा करना, विभिन्न वस्तुओं के बीच समानताएं बताना और बच्चों से विभिन्न प्रकार के रेखाचित्रो का वर्णन करने को कहना।

सृजनात्मकता को विद्यालय स्तर पर बालकों में पोषित करना

भारत वर्ष अब 21वीं शताब्दी में प्रवेश कर चुका है। 20वीं सदी एक संघर्ष की सदी रही है। आज का युग इलेक्ट्रॉनिक युग है। आज हमें यह युग सामान्य कार्यों और सामान्य समस्याओं को हल करने से धीरे-धीरे मुक्त कर रहा है। इस प्रकार के कार्य मशीनों के द्वारा किए जा रहे है। हमारी तकनीकी सस्कृति यदि विकसित होती रही तो मानव की शारीरिक शक्ति पर मांग कम होगी और सृजनात्मक विचारो पर अधिक बल होगा। मांग होगी अनूठे विचारो की और नई समस्याओं को हल करने के मौलिक तरीकों की। सामाजिक, राजनैतिक, औद्योगिक और शैक्षिक प्रगति को कायम रखना बहुत हद तक समाज के सदस्यों पर निर्भर करता है। जिन क्षेत्रों मे सृजनात्मकता की अधिक संभावनाए हैं उनका पता लगाना आवश्यक है जिससे इनकी ओर विशेष ध्यान दिया जा सके। साथ ही भारतीय विद्यालयों से यह आशा

की जाती है कि वे सभी छात्रों में सृजनात्मकता के विकास के लिए प्रयास करे। इसकी मुख्य जिम्मेदारी शिक्षक और माता-पिता की है शिक्षकों को ऐसी समस्याएं उठानी होंगी और ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करनी होगी जिनसे नवीन और अपूर्व विचारों का सृजन हो सके और समस्याओं को नए दृष्टिकोण से देखना सिखाया जा सके। बच्चों में सृजनात्मकता को बढ़ाने के लिए एक तरीका यह भी हो सकता है कि जिस भी समस्या या प्रश्नों पर कोई छात्र कार्य कर रहा हो उनके उत्तर उत्पादित करने का प्रयास किया जाए। मात्रा से गुण उत्पन्न हो सकता है। एक दूसरी जरूरत इस बात की है कि विद्यार्थियों में आत्मविश्वास पैदा किया जाना चाहिए। उन्हें अपने विचारों में विश्वास होना चाहिए। मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह सरल कार्यो को जल्दी करना चाहता है और कठिन कार्यो से बचना चाहता है। कुछ विद्यार्थी यह कहकर कि समस्या कठिन है, हताश होकर कार्य छोड़ देते हैं। शिक्षक को छात्रों को सिखाना चाहिए कि इस प्रकार के विचार को मन से निकाल दें। समस्याएं आती रहती हैं उन समस्याओं का समाधान सृजनात्मकता के द्वारा किया जा सकता है। अगर कोई छात्र, नए विचारों के सृजन के बाद उनकी आलोचना में जल्दबाजी करने लगता है तो यह एक प्रकार की आत्मा पराजय है। यह नए विचारों के उत्पादन को रोक देती है। अध्यापकों से यह आशा की जाती है कि छात्रों को किसी भी समस्या पर विचार करने के लिए ज्यादा से ज्यादा अवसर देना एक सफल अध्यापक का कार्य होता है। जिससे कि छात्र का मस्तिष्क तीव्र गति से एक के बाद एक विचार उत्पन्न करे चाहे वे विचार कितने भी ऊट-पटाग क्यो न लगें। यह एक अच्छा तरीका है। विचारों की विवेचना मूल्यांकन के बाद की जानी चाहिए। शिक्षक छात्रों को सभी कार्यो मे मौलिक होने की छूट दे सकता है और इस प्रकार मौलिकता को प्रेषित कर सकता है। विद्यालयों में सृजनात्मकता का अध्ययन अनेक विद्वानों द्वारा किया गया है। उनके परीक्षणों की रिपोर्ट है कि सृजनात्मक विद्यार्थी का व्यवहार बहुधा विनाशक होता है वह शिक्षक की बात का उत्तर ऐसा देता है कि उनके व्यक्तिगत मूल्य तथा गुण उसके विपरीत होते हैं जिनकी आशा एक आदर्श विद्यार्थी से की जाती है। यही कारण है उन्हे जो पाठ्यक्रम निर्धारित होता है उस पर ही केन्द्रित रहने में कठिनाई होती है यही कारण है कि बहुत से शिक्षक सृजनात्मक विद्यार्थी का बहुत पसन्द नहीं करते। सब अध्ययन यह तो प्रदर्शित नही करते कि शिक्षक सृजनात्मक विद्यार्थी के विरुद्ध होते ही हैं किन्तु सामान्य रूप से यह पाया गया है कि वह विद्यार्थी जो सृजनात्मकता के परीक्षण पर ऊंचे अंक प्राप्त करते है, वह शिक्षकों के मूल्यांकन में नीचे स्तर पर होते हैं। समस्या यह है कि हमारा शैक्षिक वातावरण ज्ञान उपलब्धि के अंकों पर केन्द्रित है जिसमें ऊंचे स्तर संरूपता की आशा की जाती है। इसमें समस्याओ की ओर नवीन दृष्टिकोण को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। सृजनात्मक बालक उपलब्धि परीक्षणों में भी अच्छे होते हैं किन्तु वह कक्षा में अनुशासनहीनता दिखाते हैं। यद्यपि वह सीखते हैं किन्तु यह कहना ठीक नहीं होगा कि सृजनात्मक बालक कुछ असामान्य होते हैं। उनका बहुधा अपनी शक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। वह केवल भीड़ के साथ चलना पसन्द नही करते क्योंकि वे कुछ नवीनता अपने चिन्तन और कृत्यों में लाते हैं। शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह विद्यार्थी में सृजनात्मकता का प्रवाह पैदा करे। यह जहां तक सम्भव हो, स्कूल के विषयों द्वारा करना चाहिए। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

भाषा

भाषा, शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भाषा के द्वारा हम अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचाते हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि शिक्षा रूपी इमारत में भाषा नींव के रूप में कार्य करती है। अध्यापकों से यह भी आशा की जाती है कि सृजनात्मकता के द्वारा भाषा का विकास करें। बड़े-बड़े लेखकों ने जो कहानियां, उपन्यास या साहित्यिक कार्य किए हैं अकसर उनकी शुरुआत किसी क्षणिक घटना या मुठभेड़ से होती है, बाकी की पूर्ति साहित्यकारों ने अपनी कल्पना से की है। दुनिया के महान साहित्यकार तुलसीदास जी, कालिदास

जी और विलियम शैक्सपियर भी क्षणिक घटना से प्रभावित होकर महान रचनाओं का प्रतिपादन कर सके। विद्यालयों में अध्यापको को छात्रों को, जो वे लिखे उसके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष अनुभव करने और अच्छी तरह से अवलोकन करने के लिए बच्चो को प्रोत्साहित करना चाहिए। जब लिखने की दृष्टि से कोई व्यक्ति अवलोकन करता है तो वह बहुत-सी बारीकिया देखता है और सामान्यता उसकी दृष्टि से छूट जाती हैं। छात्रों को इस प्रकार की छूट होनी चाहिए कि वे अपने विचार और भावनाएं जिस प्रकार चाहें व्यक्त करें। आत्मविश्वास को प्रोत्साहित करना चाहिए। अगर शिक्षक बालक को कहेगा कि जो मैं कहता हूं उसे लिखो इसमें आत्म अभिव्यक्ति में बाधा होगी तथा बालक मे सृजनात्मकता का विकास नहीं होगा। उदाहरण के रूप में अगर बच्चों मे सृजनात्मकता का विकास करना है तो हम ऐसी कहानियों का प्रारूप पहले प्रकट करके फिर कहानी को पूरा करने के लिए छात्रों से कह सकते हैं इससे वे अपनी कल्पनाओं का प्रयोग करेंगे और उनके विचार सृजनात्मकता का रूप लेंगे। छोटे बच्चों को अगर हमें वाक्य निर्माण करना सिखाना है तो हम वाक्य की कुछ लाइन लिख सकते हैं तथा जो खाली स्थान है वे बच्चों से पूरे किए जाने चाहिए।

जैसे

राम----------जाता है(?)

इस प्रकार से अध्यापक से यह आशा की जाती है कि वह छात्रों में सृजनात्मकता का विकास करे। बहुधा विद्यालयों में देखा गया है कि जो सामग्री कक्षा में अध्यापक तैयार करा देता है उसे बालक अच्छी तरह से तैयार कर लेते हैं अगर छात्रों को उसी से मिलती-जुलती सामग्री लिखने के लिए कहें तो छात्र लिखने मे असमर्थ होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि शिक्षकों ने छात्रों मे सृजनात्मकता का विकास या पोषण नहीं किया है। आज जरूरत इस बात की है कि भाषा के क्षेत्र में शिक्षक को बहुत सतर्क रहना चाहिए और छात्रों में ज्यादा से ज्यादा सृजनात्मकता पोषित करे ताकि आने वाले समय मे एक सृजनात्मक प्रवृत्ति के नागरिक बनें। अध्यापकों और माता-पिता पर इस बात की विशेष जिम्मेदारी है।

सामाजिक अध्ययन

इस विषय का उद्देश्य इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल और अर्थशास्त्र को सगठित करने का है। ये सभी विषय चिन्तन के लिए उपयुक्त हैं। सामाजिक घटनाएं चिन्तन को प्रभावित कर सकती हैं।

इतिहास– जो घटनाएं घट चुकीं उन्हें इतिहास कहते हैं। अगर अध्यापक बच्चो को ऐतिहासिक इमारतों और संग्रहालयों के विषय में जानकारी देना चाहता है तो उसे छात्रों को ऐतिहासिक इमारतों और संग्रहालयों को देखने के लिए ले जाना उपयोगी है। वह विद्यार्थियों से इन इमारतों और संग्रहालयों का वर्णन करने के लिए कह सकता है। इससे छात्रों में सृजनात्मकता का विकास हो सकता है। इसी प्रकार ऐतिहासिक वस्तु जैसे सिक्का, मूर्ति या अभिलेख से वे उस समय की सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों के विषय में निष्कर्ष निकाल सकते हैं इस प्रकार से छात्रों में सृजनात्मकता पोषित होती है।

भूगोल– पृथ्वी तथा पृथ्वी से सम्बन्धित वस्तुओं का अध्ययन भूगोल के अन्तर्गत आता है। भूगोल में यह देखा जाता है कि प्राकृतिक कारको का जैसे जलवायु, नदियां, झीलें, समुद्र का तट, पर्वत, वन, खनिज, तापमान, वर्षा इत्यादि का मानव जीवन पर काफी प्रभाव पड़ता है। अध्यापक छात्रों से पूछ सकता है कि उत्तर भारत के निवासी गोरे हैं जबकि दक्षिण भारत के निवासी काले हैं। ऐसा क्यों? बालक अपनी सृजनात्मकता के जरिए अनेक उत्तर देंगे। इस प्रकार से सृजनात्मकता का पोषण विद्यार्थियों मे होगा।

आज हम अगर विभिन्न विद्यालयों का जाकर पुनरीक्षण करें तो हम पाएंगे कि सृजनात्मकता के विकास के लिए स्कूलों में सही और कारगर कदम नहीं उठाए जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि छात्र सामाजिक विषयों की कक्षाओ से पलायन करते हैं उनके पलायन के अनेक कारण हो सकते हैं। बल्कि इस बात से इंकार नहीं किया

जा सकता कि अध्यापक इन विषयों में सृजनात्मकर्ता का पोषण करना नहीं चाहते। विद्यार्थियों को सोचने का अवसर नही देते। इन विषयों को विद्यार्थी रटता है। परिणामस्वरूप छात्रों मे सृजनात्मकता का विकास ही नहीं होता। आज वक्त का तकाजा है कि अध्यापकों को छात्रों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिए भरसक कोशिश करनी चाहिए। छात्र भारत का भविष्य है और शिक्षक भविष्य निर्माता है। इस बात से इकार नहीं किया जा सकता कि सृजनात्मकता के विकास में शिक्षक की अभिवृत्ति बहुत महत्वपूर्ण है। अध्ययनों के आधार पर पता लगा है कि अपने देश में शिक्षक आज्ञाकारिता, समय पर काम करना, शिष्ट व्यवहार पर अधिक बल देते हैं जबकि वे स्वतन्त्र चिन्तन और स्वतन्त्र निर्णय को कम महत्व देते हैं। इसमे परिवर्तन लाना चाहिए। शिक्षकों को छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे अपनी स्वतन्त्र राय व्यक्त करें। यदि छात्र उनसे सहमत नहीं होते तो इनका उन्हे बुरा नहीं मानना चाहिए। हास्य और विनोद का सृजनात्मकता से घनिष्ट सम्बन्ध है इन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। विनोद से एक स्वच्छ और तनाव मुक्त वातावरण का सृजन होता है जो नवीन विचारों के उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है।

भारत एक विकासशील देश है। विकास की गति को तीव्र करने के लिए सृजनशील नागरिकों की नितान्त आवश्यकता है। छात्र भारत का भविष्य है। अध्यापक भारत के भविष्य निर्माता हैं। विद्यालय विद्या के मन्दिर है। अध्यापको से यह आशा की जाती है कि वे बालको में सृजनशीलता का विकास करें ताकि ये सभी बालक अपनी सृजनात्मक प्रवृत्ति के द्वारा एक खूबसूरत देश का निर्माण करें। भारत प्रतिभाशील नागरिकों का धनी है। भारतीयों की प्रतिभा देश में और विदेशो में भी कार्य कर रही है। भारत ने सर हर गोविन्द लाल खुराना, जगदीश चन्द्र बसु, अमर्त्यसेन जैसी महान हस्तिया पैदा की हैं। वे शिक्षक धन्य है जिन्होंने अपने इन छात्रों में सृजनात्मकता का विकास किया। इन सभी महान लोगो के साथ उनके शिक्षकों का नाम भी गूजता है। बीट्रिस ग्रॉस और रोनैल्ड ग्रास की अंग्रेजी कविता में अध्यापक और छात्र के विषय में 'विल इट गो इन ए क्लासरूम' में कहा गया है–

मैं पहुचा हूं इस भयानक नतीजे पर,
मै ही हू कक्षा में निर्णायक तत्व।
मेरा ही उपागम रचता है वातावरण,
मेरी भृकुटी से बनता है कक्षा का मौसम,
शिक्षक के नाते मेरे पास है शक्ति अपार,
दुःखद या सुखद बनाने, बच्चे का जीवन,
करके शर्मिन्दा या प्रमुदित,
पहुचा के चोट या लगा के मरहम,
सभी परिस्थितियों मे मेरी ही अनुक्रिया,
करती है निर्णय–संकट बढ़ेगा या घटेगा,
बच्चा मानवीय होगा या अमानवीय बनेगा।

❑❑

राजकीय बाल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
गोकलपुर गांव, दिल्ली

सृजनात्मक अभिव्यक्ति

❑ चन्दन सेनगुप्ता

शिक्षा का अभिप्राय व्यक्तित्व विकास से है, एवं व्यक्तित्व विकास की रूपरेखा में सृजनात्मकता का सफल प्रतिफलन आधुनिक शिक्षण प्रक्रिया का अंग मानना होगा। सृजनात्मक अभिव्यक्ति एक ऐसी मनःस्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के सभी आयामों के बीच सफल सामंजस्य स्थापित करते हुए शोध का प्रतिफलन करना प्रारम्भ करते हैं। वे वास्तविकता की पृष्ठभूमि मे हर घटना को परखना चाहते हैं। वर्तमान परिस्थिति को आधुनिक शिक्षण प्रक्रिया की पृष्ठभूमि मे अगर परखना चाहें तो कई मान्यताओं को साथ में लेकर चलना होगा। कुछ बुनियादी प्रश्नों का उत्तर भी आज के सत्य को तलाशने के लिए उपयोग में लाना होगा। विद्यालय व्यवस्था मे बच्चों के लिए क्या सृजनात्मक अभिव्यक्ति को बराबर सम्मान करने योग्य वातावरण बनाकर रखा जाता है? क्या बच्चे सृजनात्मक ध्येय का विकास कर पाते हैं? जो बच्चे कर पाते हैं उन्हें प्रेरणा का स्रोत कहां से मिलता है?

अगर हम आज की वस्तु-स्थिति को अनुभव के आलोक में समझना चाहें तो मिश्रित प्रतिफल ही मिलेंगे। महिला सेवा मण्डल, वर्धा एवं लोक सेवायतन जैसी कुछ सस्थाएं कर्म केन्द्रिकता को ज्यादा प्रधानता देकर चलने मे भरोसा रखती हैं। अंग्रेजी शिक्षण व्यवस्था पर आधारित कुछ अन्य संस्थाएं व शिक्षण संस्थान विषय ज्ञान को परिमार्जित करके व्यक्तित्व विकास मे पूर्णता लाने की बाते करते हैं। भारत सेवाश्रम संघ, रामकृष्ण मिशन एव अन्य कई सनातन परम्परा पर आधारित शिक्षा प्रतिष्ठान वस्तु ज्ञान के साथ-साथ आत्मशुद्धि को ज्यादा उपयोगी मानकर चलते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित विश्वभारती में सृजनात्मक अभिव्यक्ति को कुछ हद तक स्थान दिया गया, पर छात्र-शिक्षक सम्बन्ध एव अन्य कई पहलुओ पर इस विधि को स्थानान्तरित नहीं किया गया।

सृजनशीलता कोई विशेष क्रिया न होकर सकल क्रियाओं में निहित विशेष मानसिक प्रतिफलन है, जिसे हम प्रायः सृजनात्मक, अभिव्यक्ति के रूप में मानते हैं। इस अभिव्यक्ति के कई प्रमुख पहलू हैं एवं उन सभी पहलुओं को शैक्षिक प्रक्रिया में समाहित करते हुए अगर किसी व्यवस्थापन की कल्पना की जाए, तो वही सबसे अधिक आकांक्षित विवर्तन की धारा मानी जाएगी। इसी मान्यता के अन्तर्गत आगे की क्रियाओं का प्रतिपादन इस शोधपरक रचना में किया गया है।

बीसवीं शताब्दी के अन्त में जापान के शिक्षाविदों के लिए एक ही चिन्ता का विषय था, कि कैसे शिशु को पढ़ने हेतु उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराया जाए जिससे कि मानसिक सन्तुलन बनाकर रखते हुए शिक्षण प्रक्रिया मे वे भाग ले सके। वहां भी महसूस किया जा रहा है कि अब विस्तार के क्षेत्र में न सोचकर व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में परिमार्जित व्यवस्था बनाकर चलना होगा। सृजनात्मक अभिव्यक्ति के विभिन्न पहलू पर बराबर ध्यान केन्द्रित रखकर चलने का समय आ गया है (तालिका 1 देखें)। हर विद्यार्थी को हर प्रकार के वातावरण में सामंजस्यता स्थापित करने हेतु अवसर प्रदान करना ही हमारा ध्येय होना चाहिए।

अगर सृजनात्मक अभिव्यक्ति के हर एक पहलू को बराबर ध्यान में रखकर चलने की बात आ रही है तो शैक्षिक व्यवस्थापन के हर एक पहलू में इसका सफल प्रतिफलन होना चाहिए। क्रमशः प्रमुख क्षेत्रों में हम इसकी विवेचना कर सकते हैं।

छात्र-शिक्षक सम्बन्ध

सृजनात्मकता का पहला एवं सबसे बड़ा उपक्रम छात्र-

शिक्षक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को पूर्णतः सृजनात्मक अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि में समझना होगा। शैक्षिक वातावरण को भी हम इस सम्बन्ध में सुधार लाने के द्वारा ही सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अनुकूल बना सकते हैं।

अकसर देखा गया है शिक्षक अपने शिक्षुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित किए बिना ही पाठ प्रारम्भ कर देते हैं, सिर्फ इतना ही नहीं वे शिक्षु की अभिव्यक्ति में सृजनात्मकता तलाशने में भी व्यर्थ पाए जाते हैं। व्यर्थता क्या उपलब्धि के आधार पर होती है या सम्यक अनदेखी है? इसे अगर हम मनोवैज्ञानिक क्रिया का अन्तर्जली मानकर चलें, तब भी एक प्रश्न मन में रह जाता है— क्या शिक्षक शिक्षु की प्रतिभाओं से अवगत होकर कार्य करते हैं। ज्यादातर हमारा ध्यान रहता है बच्चों में विषय-ज्ञान, शब्द ज्ञान एवं पुस्तक आधारित नैतिकता सम्बन्धी कुछ ज्ञान उपलब्ध कराना। सृजनात्मकता को हम सम्यक सहावस्थान के साथ मानकर चलने में असमर्थ पाए जाते हैं। सिर्फ इतना ही नहीं अगर शैक्षिक अनुक्रिया में इस सम्बन्ध को स्थापित करने का प्रयास नहीं किया गया तो हम शिक्षण संस्कारों के माध्यम से सृजनात्मकता को अवतरित नहीं कर पाएंगे। जिन मान्यताओं को सामने रखकर हम चलना चाहते हैं एव जिन वास्तविकताओं पर उन्हें प्रतिष्ठित करना होगा उन सबसे हटकर हम किसी संकुचित अनुक्रिया के द्वारा छात्र-शिक्षक सम्बन्ध को परिभाषित नही कर सकते।

सृजनात्मकता

सृजनात्मकता का अभिप्राय व्यक्तित्व केन्द्रित अनुभवों एवं कलात्मक दक्षताओं की अभिव्यक्ति से है यह एक सर्वजन विदित वास्तविकता है। क्या हम उन वास्तविकताओं से पृथक होकर कुछ सोचने की स्थिति मे आ सकते हैं? क्या शिक्षक और शिक्षु के बीच स्थापन करने योग्य सामंजस्यता का सही समाकलन हमें सृजनशील अभिव्यक्ति को सम्पोषित करने के लिए सहायता कर सकेगा? हम कहां तक सृजनी को उभरने में सहायता कर सकेंगे? विस्तृत क्षेत्र में कलात्मक उत्सर्जन अगर हमारा ध्येय है तो सृजनी के हर क्षेत्र में इसका सफल सम्पोषण ही क्रियात्मक धारा होनी चाहिए (तालिका 2 देखें)। कलात्मक उत्सर्जन के क्रमोन्नत मान्यता के अनुसार सृजनी के भी कई पक्ष हो सकते हैं—

- ☐ सृजनात्मक नयापन, जिसके अनुसार हम अपनी सकल अनुक्रियाओं को स्थैतिक सूक्ष्मता के साथ नई भावधारा के आलोक में उपस्थापित कर सके।
- ☐ कलात्मक-अभिव्यक्ति एक ऐसी सम्वर्धनशील मानसिक परिव्यक्ति है जिससे व्यक्ति क्रमशः भावनात्मक सूक्ष्मता को प्राप्त कर लेता है एवं क्रमशः उसी को संकर्षित करते हुए प्रकाशमान होना चाहता है। वैचारिक मन्थन भी भावनात्मक सूक्ष्मता के साथ समरूप दृष्ट होते रहते हैं।
- ☐ सृजनात्मक नयापन एवं एक कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ-साथ वास्तविकता को सही ढग से सम्पोषित करने हेतु व्यक्ति उत्पादकता के मानदण्ड पर अपनी सकल अनुक्रियाओं को सजाना चाहता है एवं उसे क्रमशः बढ़ाने की दृष्टि से कार्यरत रहना पसन्द करता है। उत्पादकता मात्रा बढ़ाने के लिए सहायक सभी तत्वों के बराबर सम्मान मे ही व्यक्ति अधिक विश्वास रखता है।
- ☐ उत्पादकता बढ़ाने हेतु सहायक तत्व ज्ञान ही व्यक्ति के जीवन में सम्पूर्णता का एहसास दिलाता है, इस तत्व ज्ञान को बराबर संकर्षित करके ही उत्पादकता में क्रमिक वृद्धि सम्भव है। यह भी सृजनात्मक अभिव्यक्ति व सृजनी का उच्चतम प्रतिफल माना जाएगा।
- ☐ तत्व ज्ञान से पुष्ट उत्पादकता के आधार पर संकलित सकल वास्तुकला व्यक्ति के केन्द्रीय गुणवत्ता को सजाकर रखने के साथ-साथ वैकल्पिक चिन्तन का स्रोत उन्मुक्त कर देता है। सिर्फ इतना ही नही सृजनात्मक अभिव्यक्ति मे क्रमिक सूक्ष्मता का प्रदर्शन इसी स्तर पर हो सकता है।
- ☐ तत्व ज्ञान द्वारा पुष्ट उत्पादकता के आधार पर सृजनात्मक वास्तुकला में नैसर्गिक सुन्दरता का सफल समायोजन ही हमें उच्चस्तरीय सृजनी तक अवतरित कर सकती है।

भावना प्रधान संस्कृति

भारतीय वातावरण में अगर हम सृजनात्मक अभिव्यक्ति की रूपरेखा पर प्रकाश डालना चाहें तो हमें क्रियात्मक धारा में समाहित भावना प्रधान संस्कृति को ध्यान में रखकर चलना होगा। सनातन परम्परा में जिसे बारीकी से सजाया गया है उससे अचानक हटकर प्रतिवादी भावनाओं द्वारा पुष्ट, सुधारवादी संस्कारों द्वारा संकर्षित किसी अनुक्रिया को शैक्षिक प्रकरण मे स्थानान्तरित करना एक चुनौती होगी। उजाला प्रशिक्षण कार्यक्रम को रूपायित करते समय प्रायः सभी प्राथमिक शिक्षा परियोजना के जिला स्तरीय इकाई में इस कठिनाई को समझा गया। सभी शिक्षक जिस भावना से प्रभावित होकर लम्बे समय से कार्यरत रहे उससे अचानक हटकर किसी सृजनात्मक प्रक्रिया को अपनाकर चलना सम्भव नहीं होगा। इससे यह भी साबित नहीं होता कि शिक्षक नवाचार की रूपरेखा पर काम करने में असमर्थ है। यह भी कहना कठिन है कि उनमें दक्षताओं की कमी है। विषय ज्ञान द्वारा अधिक प्रभावशाली शिक्षण क्रिया से स्वतः हटकर स्फूर्त विद्यालय की कल्पना भी गुरुकुल में असम्भव या अस्वाभाविक माना नहीं जाएगा।

विस्तृत पृष्ठभूमि पर विश्व बाजार की प्रतिस्पर्धा मे सफलतापूर्वक स्थान बनाकर रखने के लिए हमें सृजनात्मक अनुक्रिया को शैक्षिक उपक्रम के रूप में अपनाना होगा। इसी उपक्रम को सर्वमान्य मानकर चलने से पूर्व अवश्य, हमे राष्ट्रीय संस्कारात्मक विविधता को अनुक्रमणीय सत्य मानकर क्रियाशीलन करना होगा। भावना प्रधान संस्कृति से न हटते हुए उसके क्रियात्मक पहलू को सर्वमान्य कर्म केन्द्रिकता बनाकर चलना पड़ेगा। हम शिक्षक के रूप में इस प्रक्रिया को अगर समझना चाहें तब भी हमें वास्तविक अनुक्रिया से सीख लेकर अपनी योजनाओं को रूपायित करना चाहिए।

सृजनात्मकता के वैज्ञानिक पहलू

व्यक्ति अपने मस्तिष्क के विभिन्न अंशो की संतुलित क्रिया द्वारा भावनाओं को व्यक्त करते हुए परिवेश आधारित क्रियाकलापों में भाग लेता है एवं उसी आधार पर सम्यक ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रयासरत होना चाहता है। मुख्यतः मानव मस्तिष्क के दो अंश परस्पर सम्पूरक का कार्य करते हैं, इसी दृष्टिकोण से किसी एक अंश का क्रियाशीलन बाधित होना ही अनुक्रिया-मध्य असम्पूर्णता को जन्म देता है। अगर हम इसे कल्पनाजन्य सत्य का आधार मानकर उसमें सबकी प्रतिभागिता की उम्मीद करें तो वह भी हमें सम्यक आधारभूत क्रिया मे असफल बना देगा। व्यक्ति जिस भावना से पुष्ट होकर अंशभागी परिकल्पना मे भाग लेता है उसमें सृजनात्मकता के वैज्ञानिक पहलू की विवेचना करके चलना चाहिए। मस्तिष्क का क्रियाशीलन किस आधार को सामने रखकर होता है यह कहना शरीर वृत्तीय प्रक्रिया को सामने रखकर ही सम्भव हो सकता है (चित्र 3 देखें)।

क्या हम अपने शिक्षु को उनके सभी मस्तिष्क क्रियाओं का अनुपालन करने योग्य व्यवस्था व अभ्यास प्रकरण दे पाते है? क्या हमारे सभी शिक्षु वास्तविकता की भावधारा से सीखने हेतु समरूप दक्ष हैं? इन सभी प्रश्नों का सफल समाधान तभी सम्भव है जब हम तत्व ज्ञान सम्बन्धी सकल उत्सर्जन की सीमाओं का बराबर ज्ञान प्राप्त कर लें।

सृजनात्मक प्रतिभागिता

सृजनात्मक प्रतिभागिता के अन्तर्गत हम अवलोकन की तत्व ज्ञान के द्वारा व्याख्या कर सकते हैं। सिर्फ इतना ही नहीं उस घटना का कार्य-कारण अनुसंधान करने हेतु अपनी समझ के अनुसार प्रश्नावली का सहारा ले सकते हैं। घटना के आलोक में तात्विक अनुक्रिया को समझते हुए अगर हम पुनरावलोकन करें तो वही पुराने संस्करण को दोहराना होगा। सृजनात्मक ढंग से प्रतिभागिता सुनिश्चित करने योग्य इन सभी पहलुओं से हटकर अगर हम तात्विक अनुक्रिया के अनुरूप अन्य घटना की व्याख्या करना चाहें तभी सृजनी के सर्वोच्च क्रिया का अनुवर्तन सम्भव होगा (चित्र 4 देखें)। अगर हम अपने अनुभवों से सीखते हुए नई अनुक्रियाओं को समझने का प्रयास करें एवं अनुकूलन से हटकर अनुकरण पर केन्द्रित रहने हेतु सचेष्ट हों तो उन्हीं सृजनात्मक दृष्टिकोण से अग्रज की भूमिका अदा करनी होगी।

सर्वोपरि बात यह भी सन्दर्भित हो रही है— क्या हम अपनी जीवन शैली के हर एक पहलू से अवगत होते हुए क्रियाशील रहना चाहते हैं? क्या हम बुनियादी जिज्ञासा का सम्मान करके चलना चाहते हैं? अगर हा तो उसकी रूपरेखा क्या सभी सृजनात्मक दृष्टिकोण का बराबर सम्मान करके चलना जानती है? जिस उत्कण्ठा से हम विकास के धाराप्रवाह को परखना चाहते हैं उसी उत्कण्ठा व कर्म चंचलता के साथ क्या सृजनात्मक अभिव्यक्ति की धारा शैक्षिक अनुक्रियाओ को पुनः स्वच्छन्द बना सकेगी? सिर्फ भावनाओं से पर्यवसित होकर हम क्रियाओं को रूपदान करना नही चाहते, बल्कि एक बलिष्ठ आधारशिला पर बुनियादी सत्य को प्रतिष्ठित करना चाहते है। इस सत्य की प्रतिष्ठा किए बिना हमारा ध्येय एक सामान्य सत्य के द्वार पर रहेगा और हमें सत्यासत्य की रूपरेखा दिखेगी। अगर सृजनात्मकता को भारतीय पृष्ठभूमि में हम नही समझ सके तो अनुक्रियाओं को सम्पोषित करने योग्य शैक्षिक प्रक्रिया का प्रतिपादन एक स्वप्न होकर रह जाएगा और हम शिक्षण-प्रशिक्षण की प्रमुख धारा में सृजनात्मकता को शामिल करने में असमर्थ पाए जाएगे। अगर हम क्रमोन्नति के बुनियादी तत्व को प्रमुख मानते हैं तो हमें शैक्षिक व्यवस्था में शिथिलता को दूर करके पारम्परिक महा समारोह को सम्पोषित करना होगा, एवं उसी धारा में अन्य क्रियाओं की धाराप्रवाह को संगम का जरिया बनाना होगा, ताकि वैचारिक मन्थन को सृजनी का स्पर्श मिल सके।
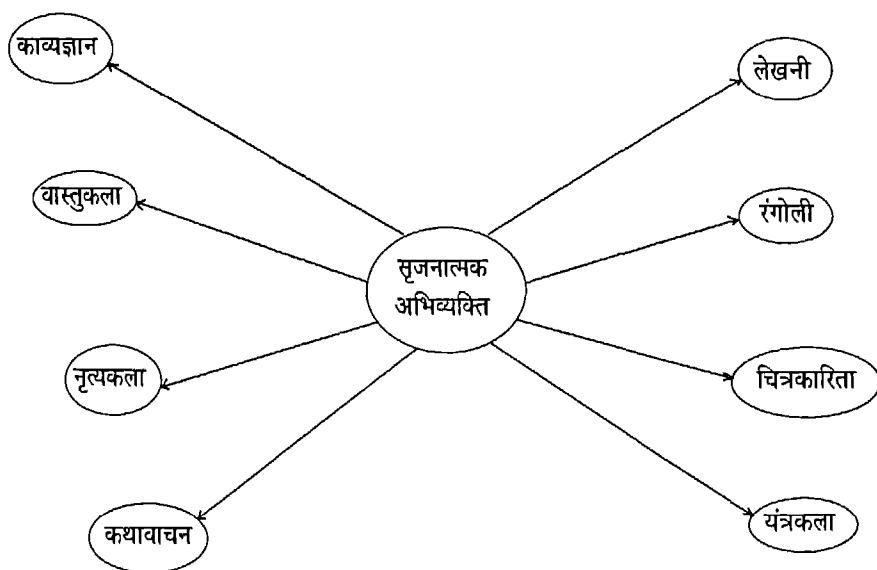
चित्र 1

सृजनात्मक अभिव्यक्ति के प्रमुख पहलू
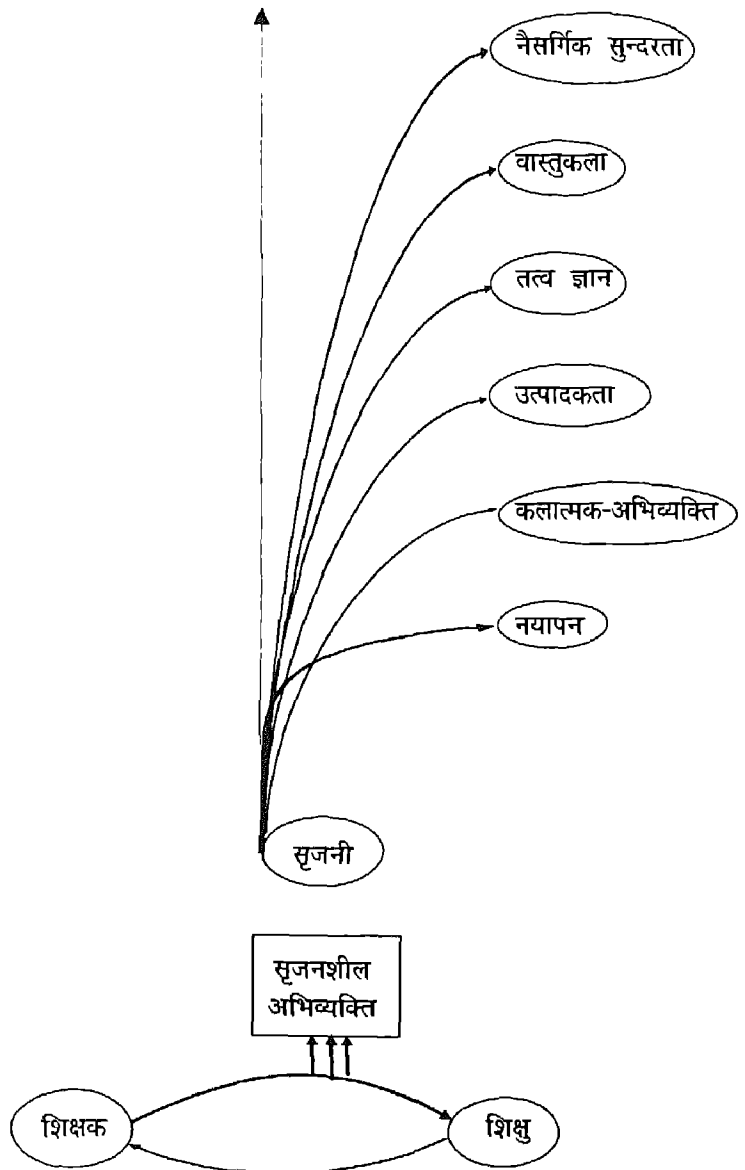
चित्र 2

शिक्षक-शिक्षु सम्बन्ध के आलोक में सृजनशील अभिव्यक्ति की रूपरेखा
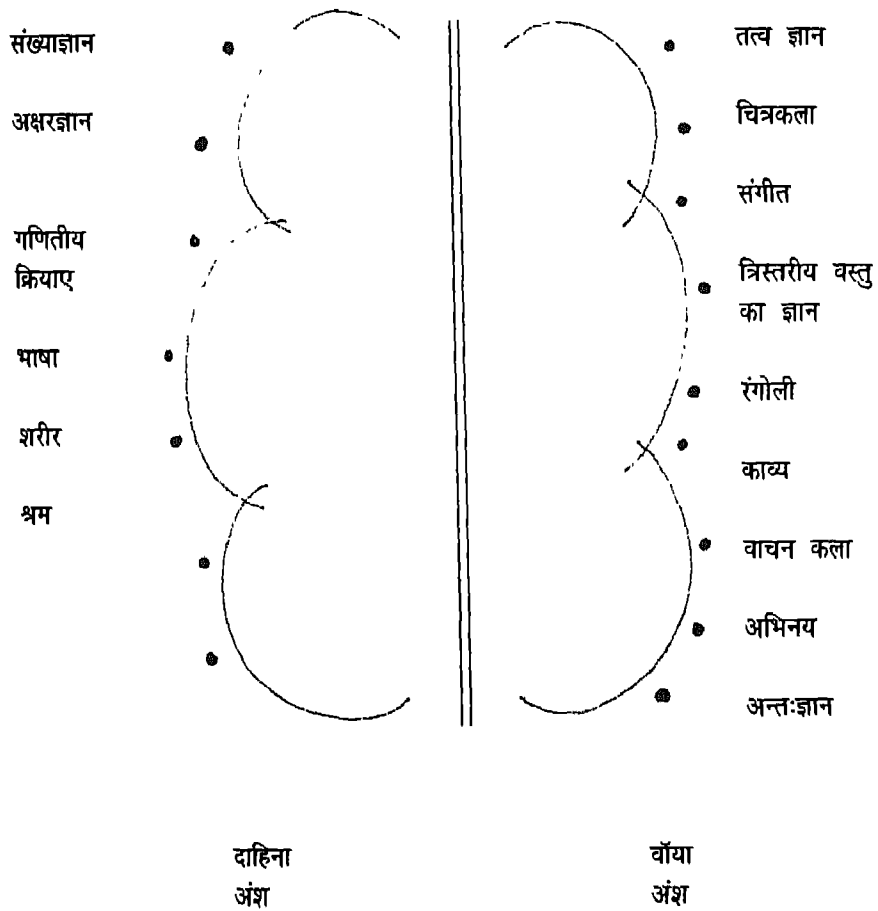
चित्र 3
मानव मस्तिष्क के दोनों अंशों की क्रियाएं
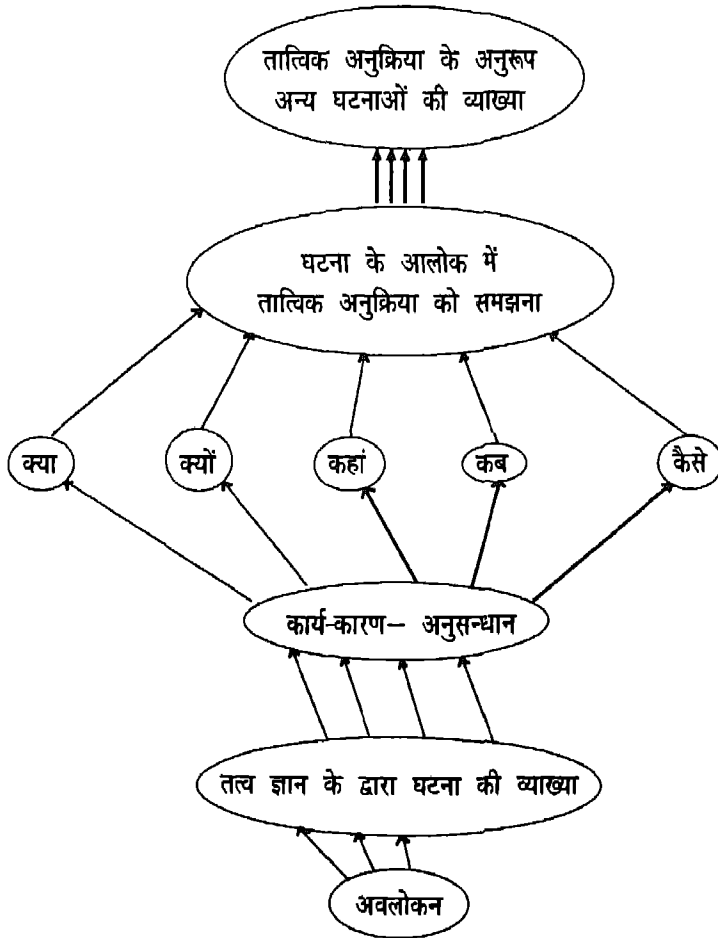
चित्र 4
सृजनात्मक प्रतिभागिता के विभिन्न पहलू

□□

अरविन्द नगर
बांकुड़ा, पश्चिम बंगाल

सृजनशीलता के लिए शिक्षण

☐ रूपानारायण काबरा

देश में अनेक प्रतिभा विकास विद्यालय प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए चलाए जा रहे हैं। ऐसे आदर्श विद्यालयों में यह बहुत कुछ संभव है कि अनेक सृजनात्मक व्यक्तित्व वाले बालक वहां प्रवेश पाने से ही वंचित रह जाते हैं, क्योंकि वहा प्रवेश के लिए शैक्षणिक एवं बौद्धिक स्तर पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जो थोडे-बहुत सृजनशील छात्र प्रवेश पा जाते है, उनकी सृजनशीलता उस शिक्षा के भार से दब जाती है तथा निष्क्रिय हो जाती है, जो केवल पूर्व-परीक्षित एवं ज्ञात तथ्यों की उत्तम जानकारी तक ही निर्दिष्ट हैं।

वस्तुतः सृजनशीलता व्यक्ति की वह क्षमता है जिससे कि वह कोई नवीन रचना, नई वस्तु, नए विचार इत्यादि कुछ भी प्रस्तुत करे, जो मूलतः उसके लिए नवीन हों, जिसका उसे पूर्व ज्ञान न हो, भले ही दुनिया उसे किसी अन्य रूप मे जानती भी हो। पर यह सब लक्ष्य-निर्दिष्ट एव उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए, न कि मात्र दिवास्वप्न, यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि वह रचना या विचार तुरंत व्यावहारिक प्रयोग का हो, पूर्ण हो, अथवा उपयोगी हो।

प्रत्येक बालक में एक कलाकार अपनी सृजनशीलता सहित विद्यमान है। सच्ची शिक्षा का यह उद्देश्य है कि वह ऐसा वातावरण प्रस्तुत करे, जिससे अन्तर्निहित सृजन क्षमता पूर्ण प्रकाश में आ सके। एक ऐसे वातावरण मे, जो आत्माभिव्यक्ति के लिए अनुकूल है, बालक स्वयं अपनी अभिव्यक्ति के लिए उचित माध्यम ढूंढ़ लेता है। यह चाहे संगीत हो, चित्रकला हो, नृत्य हो, नाटक हो, रचना हो, विज्ञान हो अथवा कुछ और। शिक्षक को केवल बालक की अन्तर्निहित शक्ति को मालूम करना एवं उसको छात्र की अपनी ही विशिष्ट शैली में विकसित होने में सहायता करना है। यह कहना कठिन है कि सृजनशीलता कैसे प्रस्फुटित होती है, पर इसके प्रस्फुटन की आवश्यक परिस्थितियां अवश्य प्रस्तुत की जा सकती हैं, जो इसमे सहायक हों। सबसे आवश्यक है स्वच्छन्दता एवं सहज स्वतः अभिव्यक्ति। एक विद्यालय में भले ही सभी सुविधाएं उपलब्ध हो, यथा प्रयोगशाला, पुस्तकालय, कुशल अध्यापक-मण्डल इत्यादि, लेकिन यदि छात्रों को उनके उपयोग एवं उपभोग की पूर्ण स्वच्छन्दता नहीं है तो उनकी सृजनशक्ति का विकास नहीं हो सकता।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आज हम वस्तुनिष्ठ परीक्षा के पीछे दौड़ रहे हैं जहां बालक की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का कोई स्थान नहीं है। विद्यालय में सृजनशीलता की कोई शिक्षा दे, यह एक असंबद्ध सा सवाल है। सर्वप्रथम आवश्यकता है यह पहचानने की है कि किस बालक में कौन-सी विशिष्ट सृजनशीलता है, तत्पश्चात् उसके विकास में अध्यापक सहयोग प्रदान कर सकता है। अतः अध्यापक का स्वयं सृजनशील होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

सृजनशील होने की आवश्यकता अन्दर से उठती है, अतः यह मूलतः सहज एव स्वतः होती है। शिक्षक केवल प्रेरित ही कर सकता है, एक अनिच्छुक एवं उदासीन विद्यार्थी कभी भी सृजनात्मक नही हो सकता।

सृजनशीलता प्रकट होने में अपना समय लेती है। छात्र को शान्तिपूर्वक गंभीरता से कुछ सोचने एव कल्पना करने की आवश्यकता होती है। अंकुश एवं तनाव मे यह सब नहीं हो सकता। यह आवश्यक नहीं है कि सृजनशीलता का यह प्रकाश उच्चतम बौद्धिक चेतना मे ही हो। महान वैज्ञानिकों के जीवन से स्पष्ट है कि अवकाश के क्षणों मे अकस्मात् यह प्रकाश की किरण फूटती है। आर्केमिडिज को टब में स्नान करते वक्त आप्लावन का सूत्र मिला और जेम्स वाट को रसोई घर मे, जिससे कि वह क्रांतिकारी सिद्धान्त सृजन कर सके। तात्पर्य यही है कि सृजनशीलता की प्रतीक्षा करनी होती है।

प्रारंभ में ही पूर्णतया व्यवस्थित विचार अथवा रचना की अपेक्षा करना अत्यन्त गलत होगा। स्पष्टता, स्वच्छता एव व्यवस्थित रूप यह सब अपने आप में प्रशसनीय

गुण अवश्य हैं, पर सृजनशीलता की प्रारंभिक अवस्था में प्रायः दृष्टिगत नहीं होते। आरम्भ में विचार अथवा रचना, राग अथवा ताल अस्पष्ट एवं अव्यवस्थित प्रतीत होते हैं। जैसे सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखने पर धीरे-धीरे ही वस्तु स्पष्ट होती है, जब ठीक "फोकस" होता है, एकदम से नहीं। शिक्षक को यह मानकर चलना चाहिए कि बच्चों के कार्य बेतरतीब एवं अस्पष्ट होंगे ही। कुछ बालक उस क्रिया के प्रति अरुचि दिखाने, त्यागने एवं प्रयास छोड़ने के लिए बहाने ढूढ़ने लगते है। शिक्षक को यह कभी नही भूलना चाहिए कि कोशिश करते-करते अकस्मात् ही बालक कुछ सृजन कर डालता है। अतएव उसे आत्माभिव्यक्ति की क्रिया से किसी भी कारण से विमुख नही करना चाहिए, चाहे उसकी क्रिया का स्वरूप कितना ही अस्पष्ट, अस्वच्छ या अव्यवस्थित क्यो न हो।

लेखक जब विज्ञान शिक्षक था, परीक्षा की उत्तर पुस्तिका में एक छात्र ने डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त को समझाते हुए एक चित्र बनाया था उसमें विद्यालय के प्रधानाध्यापक (जो गंजे थे) के दो चित्र बनाए, एक में प्रधानाध्यापक के सिर पर घने बाल थे पीछे पूंछ भी थी पर दूसरे चित्र मे प्रधानाध्यापक का सिर सफाचट था, सूट बूट में थे और पूंछ भी गायब थी। पहले चित्र के नीचे लिखा था "अनपढ़ आदि मानव" और दूसरे के नीचे लिखा था "मिट्ठनलाल शर्मा एम.ए., एम.एड." कोष्ठक मे लिखा था (विकासवाद)। मुझे इस छात्र मे सृजनात्मकता प्रतिभासित हुई। उसका उदाहरण लीक से हटकर था। प्रधानाध्यापक जी को दिखाया तो बहुत गुस्सा हुए और बोले, "बदतमीज कही का! ऐसे बेहूदा चित्र बनाता है!" बालक की अन्तर्निहित प्रतिभा इस गुस्से से दब गई होती पर मैंने स्नेहिल प्रोत्साहन से इसे दबने नहीं दिया और आज वह बालक एक प्रतिष्ठित कलाकार है।

इसी प्रकार जयपुर के एक पब्लिक स्कूल के 11 वर्षीय छात्र को विचार आया कि रेल पर पंखे लगाकर रेल की स्पीड से उनके घूमने से नीचे लगे डायनेमो से बिजली तैयार की जाए तो न ऊर्जा का व्यय होगा और न प्रदूषण। उसके विज्ञान अध्यापक ने उसकी सोच को समझा। संस्था निदेशक ने भी पूरी रुचि ली और बालक की इस "सूझ" को एक टॉय ट्रेन द्वारा मूर्त रूप दिया गया। यह मॉडल वेस्टर्न इंडिया इन्टेल साइन्स फेयर, बम्बई 2000 (प्रतियोगिता) मे पुरस्कृत हुआ। यही नही इस मॉडल को इन्टर नेशनल मिलेनियम पुरस्कार भी मिला। वहां विश्व के विभिन्न राष्ट्रों से 100 विद्यार्थियों को चयनित किया गया था। यह था शिक्षक द्वारा प्रोत्साहित किए जाने का चमत्कार। ऐसी रचनाओं एवं पुस्तकों से प्रभावित होकर कितने ही छात्रो/ छात्राओं ने कुछ लिखने की प्रेरणा प्राप्त की है। शिक्षक का सृजनशील व्यक्तित्व उसके छात्रों के लिए विशेष अनुकरणीय होता है। बरसों पूर्व जब एक किशोर छात्र कुछ तुकबन्दी करके लाया, मैंने उसे ठीक कर दिया, इस प्रकार उसने कई कविताएं लिखीं और कवि बन गया। आज उसका गजल लेखकों एवं कवियों में एक प्रतिष्ठित नाम है।

बुद्धि और सृजनशीलता मे संबंध स्थापित करने हेतु कुछ प्रयोग किए गए। निम्न बुद्धिलब्धांक वालों की सृजनात्मकता भी निम्न कोटि की रही, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उच्च बुद्धिलब्धांक वालों की सृजनशक्ति अधिक हो ही। शिकागो विश्वविद्यालय के दो प्राध्यापकों जे. डब्ल्यू. जार्जल्स एवं पी. डब्ल्यू. जैक्शन ने 500 प्रतिभाशाली छात्रों का अध्ययन किया, जो 6 से 12 वर्ष आयु-वर्ग के थे। अधिकाश प्रतिभाशाली छात्र बुद्धि एवं सृजनशीलता दोनों में ही ऊंचे थे, पर उन्होंने इस तथ्य को प्रमाणित कर दिया कि यह आवश्यक नहीं है कि बहुत ऊचा बुद्धिलब्धांक सृजन करने की क्षमता रखता ही हो। एक ग्रुप बुद्धि मे ऊंचा था पर सृजनशीलता में उतना नहीं एव दूसरा ग्रुप सृजनात्मकता में अधिक था पर बुद्धिलब्धांक मे निम्न। प्रथम ग्रुप लक्ष्य-निर्दिष्टता, लक्ष्य-प्राप्ति एवं महत्वाकांक्षा से प्रेरित था, और ऊंचे अंको, चुस्ती एवं उपलब्धि मे विश्वास रखता था और अध्यापकों तथा अभिभावकों के इच्छित व्यक्तित्व की पूर्ति ही उसका उद्देश्य था। दूसरा जिसकी सृजनशीलता उच्च थी और बुद्धिलब्धांक अपेक्षाकृत निम्न, वे न तो अध्यापको के कृपापात्र ही थे और न स्वय ही शिक्षकों द्वारा निश्चित आदर्श को स्वीकार करते थे। इनको न विशेष सफलता की कामना थी और न विशेष आकर्षण था, उच्च अक प्राप्त करने का। इस ग्रुप के छात्र हास्य, भावात्मक, स्थिरता, मस्ती और व्यापक अभिरुचियों को विशेष महत्व देते थे।

और आज हम दौड़ रहे हैं "वस्तुनिष्ठ परीक्षा" के पीछे, जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का कोई स्थान नही। सृजनशीलता की शिक्षा कोई दे, यह भी एक बेतुकी बात है। कोई किसी को जबरदस्ती कवि,

कलाकार, चित्रकार नहीं बना सकता। हां, यदि उसमें कला के अंकुर हैं तो उसे पुष्पित फलित होने में अवश्य ही सहायता की जा सकती है– अंकुर तो स्वयं बालक में ही है, बागवान तो सिर्फ विकास में सहायक हो सकता है।

सर्वप्रथम आवश्यकता है यह पहचानने की कि किसमें विशिष्ट सृजनशीलता है, तत्पश्चात् उसके विकास में सहयोग एवं सहायता की। शैशवावस्था में जब बच्चे के पास भाषा का माध्यम नहीं होता है, तब उसके चेहरे की भाव-भंगिमा एवं मुद्राओं में उसकी अभिव्यक्ति होती है। बाल्यावस्था में सृजनशीलता को पहचानने का सर्वप्रिय सुगम साधन है, उसकी चित्रकला एवं उसके स्वाभाविक खेल। किशोरावस्था के पूर्व के कुछ वर्ष बड़े विचित्र होते है और किशोरावस्था मे विभिन्न क्षेत्रों में सृजनशीलता देखी जा सकती है जैसे लेखन, विज्ञान, भाषण इत्यादि। व्यक्तित्व संबंधी तत्वों का इसमें विशेष हाथ होता है, यथा आत्मविश्वास, मौलिकता से अनुराग, सुन्दर अभिव्यक्ति में रुचि एवं साथ ही अनुशासन एव व्यवस्था में दिलचस्पी। कई बार उच्च सृजनशील बालक कुछ मौन-वैचित्र्य प्रदर्शित करते हैं। ऐसे लड़के प्रायः बालिकोचित एवं लड़कियां बालकोचित स्वभाव ग्रहण कर लेती हैं। सृजनशील बालक स्वयं सीखने का प्रयास करते हैं और कठिन समस्याओं से जूझते है। दूसरों की अपेक्षा वे खतरनाक कार्यो को पसन्द करते हैं एवं अमिट शक्ति के आधार होते हैं। बहुत सारा काम एक साथ करने की क्षमता रखते हैं। इन्हीं गुणो के कारण ऐसे बालक प्रायः कक्षा में अन्य छात्रों मे सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते।

सृजनशीलता धाराप्रवाहिता, लचीलापन एवं मौलिकता में निहित है। शिक्षकों को चाहिए कि वह बालक की रचना को स्वीकार करे चाहे वह किसी भी रूप में किसी भी स्तर पर क्यों न हो। सृजनशीलता जाग्रत करने हेतु निम्न सिद्धान्त प्रयोग में लाये जा सकते हैं–

- ☐ अनुभव प्राप्त करने के विविध एवं प्रचुर अवसर– (भौतिक, ऐन्द्रिक, बौद्धिक, सौन्दर्यमूलक, भावमूलक एवं सामाजिक इत्यादि सभी प्रकार के)।
- ☐ मुक्त वातावरण की व्यवस्था– जिसमे स्वयं पयोग, परीक्षण एवं अन्वेषण करके सीखने की स्वतन्त्रता हो।
- ☐ चुनौती की व्यवस्था– जिसमें क्रमिक स्तर की समस्याएं प्रस्तुत की जाएं।
- ☐ समस्या का क्षेत्र एवं सीमा समझने मे सहायता।
- ☐ आवश्यक सूचना एवं हल प्रणाली ज्ञात करने में सहायता।
- ☐ छात्र द्वारा अर्जित सूचना एवं प्रणाली को समझने में सहायता।
- ☐ अभि-सिद्धान्त की जांच हेतु अवसर देना।
- ☐ स्वतन्त्र खोज एवं मूल्यांकन को प्रोत्साहित करना।
- ☐ पारितोषिक एवं पुरस्कार द्वारा उनकी सफलता का सम्मान।
- ☐ भावात्मक सुरक्षा, जिसमें उनकी असफलता एवं निराशा में उत्साहवर्द्धन हो तथा प्रेमपूर्ण अनुशासन की व्यवस्था हो।

विद्यालय में सृजनशीलता जाग्रत करने हेतु विभिन्न साधन प्रस्तुत किए जाने चाहिए। वार्षिक कला-प्रदर्शनी महापुरुषों की जीवनियां एवं अन्य रंगमच कार्यक्रम इत्यादि इस दिशा में अच्छी प्रेरणा देते हैं। सृजनात्मक उपलब्धि वही है जिसमे स्वयं का अनुकरणीय व्यक्ति-वैचित्र्य हो शिक्षक का कर्तव्य है कि सृजनशील छात्रों को पहचानें एवं उन्हें उनकी समस्त गतिविधियों में प्रोत्साहित करें। जब तक पाठ्यक्रम का प्रत्येक विषय सृजनशीलता को स्थान एवं महत्व नहीं देगा, इन नौनिहालों की सृजनशीलता यों ही नष्ट होती रहेगी और नोबल पुरस्कार दूसरे ही लोग प्राप्त करते रहेगे। जब तक शिक्षक स्वयं सृजनशील नहीं होंगे इस दिशा में विशेष प्रयत्न की आशा विफल रहेगी। गुरुदेव रवीन्द्र के शब्दों में, "एक दीपक दूसरे को तभी प्रज्वलित कर सकता है जबकि वह स्वयं ज्योतिर्मान हो।" जो घिसे-पिटे पाठ्यक्रम से हटते और मात्र परीक्षा-परिणाम के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहते उनसे भला क्या आशा की जा सकती है इस दिशा में।

ए-438, किशोर कुंज
वैशाली नगर, जयपुर

प्राइमरी शिक्षक त्रैमासिक पत्रिका के इच्छुक पाठकों एवं लेखकों के नाम संदेश

'प्राइमरी शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक ऐसी महत्वपूर्ण पत्रिका है जो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे हो रहे अनेक प्रयोगो, अनुसंधानो तथा अन्य गतिविधियो को पाठको तक पहुचाने का सुगम माध्यम है। इस पत्रिका का प्रकाशन विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे कार्यरत शिक्षाविदो, शिक्षको, शिक्षक-प्रशिक्षको तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं को समर्पित है। इसके प्रत्येक सस्करण मे ऐसे नवीनतम लेखो को विशेष स्थान दिया जाता है जो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक नीतियों से सबधित हों, गुणात्मक सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयोग हो, अधिगम को सुरुचिपूर्ण तथा ग्राह्य बनाने हेतु निजी अनुभव या शोध कार्य हो, विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमो के विवरण तथा पाठको के लिए उपयोगी अन्य विषयो पर अलकृत लेख हो।

इस पत्रिका के सुचारू रूप से प्रकाशन, प्रचार एव प्रसार के लिए पाठकों तथा लेखको का सहयोग अनिवार्य है। इस सदर्भ में आपसे निवेदन है कि इस पत्रिका के स्थायी सदस्य के रूप मे स्वयं अथवा अपने सस्थान विद्यालय को पजीकृत करवाने का कष्ट करें। यह पत्रिका शैक्षिक उपयोगिता की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। अत. परिषद् इसे मूल लागत से बहुत ही कम कीमत पर पाठको को उपलब्ध कराती है। इसका वार्षिक चदा केवल 16 रु. है और प्रति कापी का मूल्य मात्र 4 रु. है। आशा है आप इस दिशा मे शीघ्र ही निर्णय कर सस्थान अथवा निजी वार्षिक सदस्यता के लिए कार्यवाही करेगे। वार्षिक सदस्यता शुल्क-पत्र के लिए अपना पत्र स्वनामांकित लिफाफा सहित बिजनेस मैनेजर, प्रकाशन प्रभाग (एन सी. ई आर टी) श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली—16 को भेज सकते हैं। अन्य जानकारी के लिए 'अकादमिक सपादक' प्राइमरी शिक्षक से सपर्क कर सकते है। इस पत्रिका के लिए विशिष्ट लेखको के लेख सहर्ष स्वीकार किए जाते हैं तथा उनके प्रकाशन के उपरांत समुचित पारितोषिक देने की भी व्यवस्था है।

कृपया अपने लेख निम्न पते पर भेजे .

अकादमिक सपादक, - प्राइमरी शिक्षक
प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली -110 016

४क्ष, प्रकाशन प्रभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली -110 016
. लिए प्रकाशित तथा जैन कम्प्यूटर, शकरपुर, दिल्ली द्वारा लेजर टाईपसैट होकर दीपक प्रिटर्स एव पब्लिशर्स, 6/269,
ग मौहल्ला, पाडव रोड, शाहदरा, दिल्ली-110 032 से मुद्रित।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAININ

is true, you have Mr Ellis, and many other gentlemen in your power, if a hair of their heads is hurt, you can have no title to mercy from the English, and you may depend upon the utmost fury of their resentment, and that they will pursue you to the utmost extremity of the earth'[27] The war continued for another two months after the exchange of this correspondence, and when no doubt was left in the Nawab's mind that victory had gone out of his hand never to return, he had all the English prisoners put to death, leaving only one, named Fullarton, to narrate the account to Fort William It was the most heinous crime of the war, after which the superiority of the English in Bengal, was established beyond question

An unbiased vindication of the Nawab's conduct is to be found in Vansittart's Narrative which he wrote out sometime after the conclusion of the war, it was Vansittart who as Governor of Fort William presided over the operations against the Nawab He says:

> No one instance can be produced of his (the Nawab) sending a man into any of the lands ceded to us, or molesting us in a single article of our commerce, till the contention which he was drawn into by the usurpations of our gomastahs, and our new claims with respect to our private trade, and even to the breaking out of the war, during the height of our disputes, the Company's business, in every part, went on without the least interruption, excepting one or two aggravated complaints of Mr. Ellis's concerning the salt-petre business.
>
> How different was the conduct of the gentlemen, who had formed themselves into a party against him! From the time of his advancement to the subahship, scarce a day passed, but occasion was taken from the most trifling pretences, to trample upon his government, to seize his officers, and to insult them with personal threats and invectives Yet for a long time he submitted to all his grievances, contenting himself with remonstrating against them, in the hopes, that it would be in my power, some time or other, to restore him to his authority
>
> That we were the first aggressors, by the assault of the city of Patna will not be disputed... Mr. Amyatt's negotiation had been broke off, because the Nabob saw, that whatever concessions he might make, would be rendered of no effect, by the preparations which Mr Ellis was making to attack the city of Patna. I think, that had Mr Ellis left the Nabob any hope of

[27] *Ibid*, p 374

an accommodation, he would have consented to the terms which were demanded of him, and submitted to all the inconveniencies they would have laid him under, until justice could be done him by the Company . Let any impartial person now put himself in the place of Meer Cossim, and say whether he could have regarded this assault on the city of Patna, in any other light than an act of treachery, and the strongest argument, that all the pacific declarations and proffered treaties, were only artifices to make him a dupe to our designs, and the instrument of his own ruin

Meer Cossim had not to this time shewn any instance of a vicious, or a violent disposition, he could not be taxed with any act of cruelty to his own subjects, nor treachery to us He had sense enough to know, that the English friendship would be his greatest security, and to dread their power, if ever they should come to be his enemies As he perceived some of the Council were disinclined to him, he was the more cautious to avoid giving occasion of disputs; and as long as he saw I could support him against any direct insults, he suffered many affronts and encroachments upon his government with forbearance

When the war broke out between us, altho' he wanted the courage to face his enemies in person, yet his soldiers fought for him with a bravery and fidelity rarely experienced in the undisciplined troops of Indostan, nor did any one of his officers, in the most distant part of his dominions, revolt from his authority to join us, till Patna was taken, and he was preparing to fly the province This must be attributed to their affection for him

On the murder of the English prisoners by the Nawab, Vansittart comments

This unhappy affair, even supposing him as culpable as he appeared to be at the time in which it was transacted, had many circumstances to extenuate the guilt of it, when put in comparison with the last dreadful effect of his resentment . . .His forces had been successively worsted, his country was wrested out of his hands, all his hoped of a reconciliation were for ever cut off by our new engagements with Meer Jaffier, and his re-appointment to the subahship He had no way to elude the danger which pressed upon him, but to fly for shelter into the dominions of the Nabob Shuja Dowla . .His ruin he knew to be irretrievable, and a violent death the certain consequence

of ill success and lost power. A dreadful reverse of fortune in a man, who, but a few months before, saw himself master of the richest province of Indostan . Fallen as Meer Cossim was to this state of desparation, it is no wonder that his temper broke all his former restraints, and gave a loose to that spirit of revenge, so common among his countrymen, and inculcated by their religion and education In effect, the hoarded resentment of all the injuries which he had sustained in continual exertion of patience, during the three years of his government, from this time took entire possession of his mind, now rendered frantic by his natural timidity, and the frightful prospect before him; and drove from thence every other principle, till it had glutted itself with the blood of all within his reach, who had either contributed to his misfortunes, or by real or fancied connections with his enemies became obnoxious to his revenge.[28]

[28] *Ibid*, pp. 382-97.

CHAPTER SIXTEEN

New Treaty with Mir Jafar: Repetition of Old Complaints

IN THE first week of July 1763, when Fort William was making preparation for the invasion of Bihar and had offered the Nawabship to Mir Jafar, the governing council proposed to him a new treaty, which required him (1) to vest in the Company, with full proprietory rights, and 'for ever', the three districts of Burdwan, Midnapur, and Chittagong, (2) exempt the English trade, both foreign and inland, of 'all duties, taxes and impositions, in all parts of the country, excepting the article of salt on which', a duty of two and a half per cent would be paid, (3) to grant to the company 'the exclusive right of purchasing the salt-petre of the province of Purniah', (4) to agree to restrict his government's troops to '6,000 horse, and 12,000 effective foot', to be used only 'for the protection of his frontiers, and collection of his revenues', (5) to agree to the stationing of 'a body of' the English 'forces', at the place of his court, and 'near his person', (6) to withdraw the order by which Mir Kasim had granted to all merchants, Indian and English alike, 'exemption of all duties' for a period of two years, the exemption being 'destructive of the immunities enjoyed by the Company', (7) to ensure acceptance of the rupee coins of the Calcutta mint 'throughout his government without any deduction', (8) to 'defray all the expences and loss accruing to the Company from the war' with Mir Kasim, and to make good the losses the Company and individual merchants would suffer, in consequence of the war, from 'stoppage of their investment' and disturbance to their trade, the former being fixed at Rs 30 lakhs, and the latter at Rs. 10 lakhs, (9) to 'assign' to the Company 'the revenues of certain lands for making good the sums stipulated', in the event of the invading English army not being 'so fortunate as to seize Cossim Allee Cawn's treasure and effects' (The draft treaty provided that Mir Kasim's 'treasure and effects' would 'be put in possession' of Mir Jafar)[1]

[1] *Bengal & Madras Papers,* Vansittart, vol III, *op cit ,* pp 336-40

Vansittart, consistently with the stand he had taken up throughout, expressed again his dissent over the proposed inclusion of inland trade in the privileges granted by the imperial *farman;* he said that the new demand was 'beyond the true intent and meaning of the Firmaun'[2] in whose name it had been put forward Another member of the council, Warren Hastings, agreeing with Vansittart, expressed himself against all the new demands, he said, 'there is a manifest injustice and inconsistency, in exacting the Nawab's compliance with new terms, not mentioned in the original agreement with him'[3]—the one that was entered into in 1757. But Vansittart and Hastings were overruled by a majority

When the draft treaty was taken to Mir Jafar, he offered some amendments, which, though not curtailing the new advantages sought by the English, were indicative of his consciousness that he had been approached at a difficult time, and that his little amendments would not be turned down He objected to the three districts being 'invested in the Company for ever', arguing that (1) any future Nawab if he 'was inclined and able to dispute the Company's possession, might insist' that 'it was a cession' which was beyond the power of a Nawab to make, and (2) the Company would enjoy the advantage of absolute cession by appropriating the revenues 'for defraying the expences of the English army' as in the time of Mir Kasim On three other articles his amendments were (1) he would like to have half the produce of the Purniah salt-petre for the use of his own government; (2) his forces should be 12,000 horse and 12,000 foot, and 'in case of troubles', he should have the power to increase them 'with the consent of the Governor and Council' of Fort William; (3) he would not agree to English troops being stationed at his court, contending that this proposal 'implied a suspicion of his friendship and good intentions towards' the English, and that its implementation 'would be extremely prejudicial to his as well as' the Company's business [4]

Fort William agreed 'unanimously' to the Nawab's amendments about cession, saltpetre, and his force, and 'thought it better not to insist upon' the last, namely stationing of English troops at his court, 'for fear of giving him distrust'. Distrust, it was felt, would prejudice joint action against Mir Kasim, and the council said. 'the present situation of affairs (which renders the Nabob's presence at the city, as soon as possible, absolutely necessary) will not admit of time being wasted in discussing further '[5]

[2] *Ibid*, p 342 [3] *Ibid*, p. 343. [4] *Ibid*, pp 356-7
[5] *Ibid*, pp 357-8

On 11 July 1763, the new treaty, incorporating the Nawab's amendments, was signed between him and the Company At the time of signing, Mir Jafar, profiting by his past experience of the English, demanded certain assurances, one of which was that his re-accession to the Nawabship should be notified to the Company and the King of England, so that it might not be terminated by the present Fort William Council's successors (In 1757, he rose to the Nawabship with the aid of Clive, and was removed by [Clive's successor] Vansittart.) The assurances he demanded were

First, I formerly acquainted the Company with the particulars of my own affairs, and received from them repeated letters of encouragement with presents I now make this request, that you will write in a proper manner to the Company, and also to the King of England, the particulars of our friendship and union, and procure for me writings of encouragement, that my mind may be assured from that quarter, that no breach may ever happen between me and the English; and that every Governor and Counsellor, and Chief, who are here, or may hereafter come, may be well disposed and attached to me

Secondly, Since all the English gentlemen, assured of my friendly disposition to the Company, confirm me in the Nizamut, I request, that to whatever I may at any time write, they will give their credit and assent, nor regard the stories of designing men to my prejudice, that all my affairs may go on with success, and no occasion may arise for jealousy or ill-will between us

Thirdly, Let no protection be given, by any of the English gentlemen, to any of my dependents, who may fly for shelter to Calcutta, or other of your districts, but let them be delivered up to me on demand

Fourthly, From the neighbourhood of Calcutta to Hooghly, and many of the perganahs bordering upon each other, it happens, that on complaints being made, people go against the taalookdars, reiats, and tenants of my towns, to the prejudice of the business of the Sirkar, wherefore, let strict orders be given, that no peons be sent from Calcutta on the complaint of any one, upon my taalookdars or tenants; but on such occasions, let application be made to me, or the Naib of the fougedarree of Hoogly, that the country may be subject to no loss or devastation.

Fifthly, Whenever I may demand any forces from the Governor and Council for my assistance, let them be immediately sent

to me, and no demand made on me for their expences.[6]

These demands were readily agreed to by the council, and duly signed

Another demand, which Mir Jafar had made when he was requested to become Nawab again, was that Nand Kumar would be employed by him as his principal officer 'to assist him in commencing and carrying on the business' of the government Nand Kumar was then in confinement with the English, for allowing himself to be used, while 'living in Calcutta under the Company's protection', as 'the channel for carrying on a correspondence between the (French) Government of Pondichery, and the' Mughal Prince 'then at war with 'the English' The demand aroused considerable misgiving and apprehension in the Council Vansittart said Nand Kumar was 'a dangerous man, and not fit to be trusted'; and the Governor had, in this opinion, the majority of the council with him. But everybody believed that Mir Jafar would insist on Nand Kumar, and the Council, therefore, acceded to this request also.

Neverthcless, the treaty, exacted as it was from one who was virtually a prisoner of the English, provided for further ruin of Bengal It was the English merchants' loot, violence, and oppression that had exacerbated the relations between Fort William and Mir Kasim, it was the inland trade which was at the root of this oppressive behaviour, it was Mir Kasim's insistence not to withdraw his order abolishing all levies on trade, which finally constituted the cause of the rupture between him and Fort William, it was the English who started the aggression, and yet the cost of war was charged, under the treaty, to Mir Jafar, and he was made responsible for the loss sustained, during the period of the war, by the English The great distance between Calcutta and London, involving months of voyage, is responsible for several disasters, which, if the English Company's Court of Directors' orders had been received in time, would have been avoided. The war with Mir Kasim is one of them On 8 February 1764, the Court of Directors, still believing that Mir Kasim was Nawab of Bengal and having received an account of the happenings caused by the English merchants' self-willedness and encroachment upon inland trade, despatched an order to their Governor and Council in Bengal, asking them to abandon forthwith the inland trade. They said

[6] *Ibid*, pp 363-6

One great Source of the Disputes, Misunderstandings, and Difficulties, which have occurred with the Country Government, appears evidently to have taken its Rise from the unwarrantable and licentious Manner of carrying on the private Trade by the Company's Servants, their Gomastahs, Agents, and others, to the Prejudice of the Subah, both with respect to his Authority and the Revenues justly due to him The diverting and taking from his natural Subjects the Trade in the Inland Parts of the Country, to which neither we, or any Persons whatever, dependant upon us, or under our Protection, have any Manner of Right; and consequently endangering the Company's very valuable Privileges, in order therefore to remedy all these Disorders, we do hereby positively order and direct, That from the Receipt of this Letter, a final and effectual End be forthwith put to the Inland Trade in Salt, Beetle Nut, Tobacco, and in all other Articles whatsoever, produced and consumed in the country, and that all European and other Agents, or Gomastahs, who have been concerned in such Trade, be immediately ordered down to Calcutta, and not suffered to return or be replaced as such, by any other Persons. That as our Phirmaund Privileges of being Duty free are certainly confined to the Company's Export and Import Trade only, you are to have recourse to, and keep within, the Liberty therein stipulated, and given, as nearly as can possibly be done . We are under the Necessity of giving the before-going Orders, in order to preserve the Tranquillity of the Country, and Harmony with the Nabob[7]

The Court of Directors thus not only vindicated the stand persistently taken up by Vansittart, but also exposed the farcical majority in the Fort William Council, which, by mischievous interpretation of the Imperial *Farman*, had made the authority of the Company a machine for looting the helpless government and people of Bengal In the above order, the court even disapproved of the arrangement Vansittart had made with Mir Kasim about inland trade. The Court observed

We cannot avoid in this Place, taking Notice of the Endeavours of President Vansittart, to form a Plan of Regulations, which, though it appeared so advantageous to Individuals, was strongly censured by the Majority of the Council, as not giving them,

[7] *Bengal & Madras Papers, 1757-1795,* vol III 'General Letters' to Bengal, 1764-7, pp 29-30

according to their Way of judging, a sufficient Scope for their unwarrantable Trade, however, we are satisfied of the President's good Intentions, but at the same Time, we say, it was not calculated so as to prevent future Misunderstandings with the Subah and his Government, because thereby an Inland Trade was to be admitted of; which, as has been before observed, would certainly be attended with constant Embroils and Difficulties[8]

There can be no better authority than the above to warrant the conclusion that it was the diabolical conduct of the council which let those a reign of terror in Bengal, led to a war, and caused the loss of thousands of lives and millions of rupees The court's orders reached Bengal on 13 July 1764, when Mir Jafar had already been in office for a year The cause of disturbances—the inland trade—still remained, though 'legalised' by the new treaty, and the oppressive behaviour of the English merchants and their agents continued The war and the preceding events left no lesson, and Mir Jafar was, says Vansittart 'no less clamorous upon these subjects, than Meer Cossim was'.[9] Even some chiefs of the English factories made complaints to their Governor, corroborating the Nawab's grievances For example, George Gray, the chief at Malda, said, writing on 7 January 1764

Since my arrival here, I have had an opportunity of seeing the villainous practices used by the Calcutta gomastahs in carrying on their business The government have certainly too much reason to complain of their want of influence in their country, which is torn to pieces by a set of rascals, who in Calcutta walk about in rags, but when they are sent out on gomastahships, lord it over the country, imprisoning the reiats and merchants, and writing and talking in the most insolent, domineering manner to the fougedars and officers[10]

And A W. Senior, the chief at Kasimbazar, complained on 23 March 1764 'It would amaze you, the number of complaints that daily come before me, of the extravagances committed by our agents and gomastahs, all over the country'[11] Mir Jafar 'repeatedly declared to the Governor and Council that it was impossible for his government to subsist upon such a footing', and, in disgust, he proposed the same step which his predecessor, Mir Kasim, had

[8] *Ibid* [9] Vansittart, *op cit*, vol III, p 409.
[10] *Ibid*, pp 412-3 [11] *Ibid*, p 413

been obliged to take, namely abolition of all duties[12] The proposal opened the threat of repetition of the old story, which culminated in war, and the council, wise after the event, 'resolved to . give up the inland trade entirely' making an exception in the case of Patna and Kasimbazar factories to which salt and betel-nut would continue to be sent European agents were forbidden 'to reside in the country,' and 'positive orders' were sent to the factories at Chittagong, Dacca and Lakhipur, 'to relinquish the salt works they had set up in prejudice of the country merchants'[13] As Vansittart observes, 'if the same consideration had been' shown to Mir Kasim, 'he would have proved a faithful ally'[14]

Whether for laxity in the enforcement of the resolution, or for the fact that it was not easy to neutralise, merely by issuing an order, the forces of disorder which had been growing all over the three provinces for several years, and which had all along been encouraged by the council, and legalised by a treaty, the inland trade continued, with its painful accompaniments

Ignoring the authority of the Nawab and his officers, the English merchants tyrannised the people, seized their possessions, and compelled them to carry out their unlawful behests The Nawab was a helpless onlooker, he could only complain to Fort William, and this he often did, he did it more grievously in September 1764 In a long letter he addressed to the Governor and Council of Fort William, he enumerated instances of English merchants and officers' oppressive conduct He said (1) the English officers had established their own market places—a market place was a source of revenue to the Nawab's government—and with the design of throwing those of his government into disuse, they carried by force the Indian merchants to the new places, (2) the English agents 'interrupted' the administration and 'prejudiced' state 'affairs' by giving 'protection to the dependants' of the government; (3) the men of the Kasimbazar factory had 'forcibly' taken possession of some villages, and did not even pay revenue dues, (4) the English agents compelled landlords and tenants to grow tobacco and other articles the English merchants needed, thus causing loss of revenue to the government, (5) 'The people of several Englishmen' had appropriated to themselves a monopoly of buying and selling rice and other grains in the market places, and prevented the government's officers from sending foodgrains to the army, (6) in Patna, the English had put themselves in possession of forty reception houses, depriving the Nawab, his family and

[12] *Ibid*, p 414. [13] *Ibid*, p 414 [14] *Ibid*, p 415

his dependants of their use in case of need, in Purniah they had seized the wood farm, which yielded to the Nawab a tribute of Rs 50,000 annually, (7) soldiers of the English force 'desolate the villages and put the ryots to flight by their disorders and oppressions', and (8) 'The poor of this country, who used always to deal in salt, betel-nut and tobacco, &c are now deprived of their daily bread by the trade of the Europeans'.[15]

Never was a complaint redressed, ever since the government of Bengal became subservient to the English Company, and it was idle to expect that the new ones would be attended to On the contrary, Fort William's fresh demands made the Nawab more miserable. Under the treaty, he had been made responsible (1) to defray the expenses of war with Mir Kasim, which were fixed at Rs. 30 lakhs, and (2) to make good the losses the Company and individual merchants would suffer, these were fixed at Rs 10 lakhs The latter amount was later raised to Rs. 40 lakhs, and then to Rs 48 lakhs To the former was added another sum of Rs 25 lakhs for payment to the men of army and navy over and above their regular emoluments Once again Mir Jafar grumbles, without shirking his 'responsibility' to pay

> What has been the state of my collections from Bengal and Behar is not unknown to you, gentlemen. The province of Behar has been entirely laid waste and ruined, and the affairs of Bengal also have been greatly injured Forty lakhs of rupees have been appointed for the Company by way of gratuity and indemnification for the losses they sustained from Meer Cossim, and twenty-five lakhs have been granted to the King's and Company's troops, besides the expenses of my own troops, and restitution to the English merchants, and other dependants of the Company, these different articles amount to so considerable a sum that it must be a very difficult matter to discharge them from the revenues of such parts of Bengal as are in my possession, and besides my own necessary expenses, and the various charges of the Government are to be provided for out of these revenues Accordingly it is written in the treaty made between us at the time of my appointment to the subadarry that besides the assigned lands you will not make any other demands for the expenses of your army, and that you will furnish me with as many troops as I may want . With respect to the restitution to the English merchants and others dependant on the Company,

[15] *Long's Selections,* pp 356-8

I will not be negligent in this business, whereas you imagine it will amount to about forty lakhs of rupees, whatever may be determined by you, gentlemen, in Council, you will give me an account of the particulars, which when I have understood I will use my endeavours towards the discharge thereof, but the terms of payment shall be such that leisure may be allowed me [16]

The Nawab, however, pleaded 'You, gentlemen, know that in Colonel Clive's time, when the English merchants and other inhabitants of Calcutta delivered in their accounts of the losses they had sustained by the troubles with Seeraj-ul-Dowla, the Colonel deducted half the amount of the claims and caused the other half to be paid'[17]

By this precedent, the Nawab believed, the demand of Rs 40 lakhs would be halved But the Nawab got a severe rebuff from Vansittart, who met him on behalf of the Council. What transpired between the English Governor and the Nawab is recorded thus in Fort William's Consultation, dated 10 September 1764

The President acquaints the Board further that in a visit he has since paid to the Nawab he represented both to him and his ministers the impropriety of the excuses he has made in his answer and the bad consequence which may attend further delays, that our demands are not made with a view to any advantage to the Company, but merely to assist the public service for his security and our own, that with respect to the restitution demand, he had with all care and diligence inspected every account, and though it would amount to a much larger sum than what we had mentioned, yet we had determined to reduce, and rest it upon that, but that the greatest part thereof should be paid in ready money and the rest in proportionate payments in the course of this year.[18]

The Nawab paid Rs 10 lakhs in cash, and promised to discharge the balance in instalments. But the amount having been raised from Rs 40 lakhs to 48 lakhs, the Nawab, in order to gain time, suggested that the settlement of the amount of losses, should be postponed until the arrival of Clive, whose appointment as Governor in place of Vansittart had already been announced and who was about to arrive in Bengal The excuse did not prevail, and the council made a stern demand on the Nawab to make 'imme-

[16] *Bengal & Madras Papers, op cit*, pp 12-3 [17] *Ibid* [18] *Ibid*

diate payment' of another ten lakhs, and to discharge the remaining twenty-eight lakhs in four instalments in December 1764, and March, July and September 1765.[19]

Depositions and appointments of Nawabs, during the years of political supremacy of the English in Bengal, had been motivated mostly by private gains the principal servants of the Company made from them They fabricated plausible excuses for contravening the orders of their masters and withheld from them the knowledge of private terms under which they received huge amounts of money from different Nawabs for themselves In the case of the re-appointment of Mir Jafar to the Nawabship, it was from some letters the Duke of Albany had received from Bengal that the Directors came to know that the Nawab had been saddled with the obligation of paying them several heavy sums. It was said in those letters, to quote the Directors,

> that the present Nabob shall pay, over and above the thirty lacks for the Company, mentioned in that treaty, forty lacks by way of restitution, to make good the losses of private persons, besides twenty-five lacks to the army, and twelve lacks to the navy, not named in that treaty, making together the enormous sum of one hundred and seven lacks of rupees, which is above one million three hundred thousand pounds sterling [20]

The Directors further said

> The amazing sums demanded for restitution, in respect of losses sustained in this trade, have opened our eyes to the vast extent to which it has been carried; the oppressions of the unhappy natives, that have attended the carrying it on, and which have pervaded all parts of the Nabob's dominions, have convinced us, that a monopoly of the necessaries of life, in any hands whatever, more especially in the hands of the English, who are possessed of such an over-ruling influence, is liable to the greatest abuses [21]

All the trouble in Bengal during the Nawabship of Mir Kasim arose mainly from the English encroachment upon the inland trade, and if an authority, whose decision was binding on the English in Bengal, declared that they had no right to deal in it, the responsibility for the evil consequences and losses that resulted from it

[19] *Ibid*, p. 22. [20] *Ibid*, General Letters, p 31 [21] *Ibid*, p 36

would be theirs. The Court of Directors unequivocally declared that under the imperial *farman* the English were not entitled to inland trade, and instructed the Fort William Council to withdraw from it. The following are the relevant excerpts from the Court's three letters

> In our letters of the 8th February, and 1st June last, we gave you our Sentiments and Directions very fully, in respect to the inland trade of Bengal, we now enforce the same in the strongest manner, and positively insist, that you take no steps whatever towards renewing this trade, without our express leave, for which purpose you must not fail to give us the fullest information upon the subject, agreeable to our above mentioned directions
>
> The enforcing our said orders is the more indispensably necessary, from our observing the complaints of the present Nabob, taken notice of and referred to, in your separate letter of the 20th February 1764, relating to the many difficulties, hardships, and oppressions he meets with, resulting from the before-mentioned unwarrantable and licentious trade [22]
>
> (Letter dated 15 February 1765)
>
> The English in Bengal for these last four years have been guilty of violating treaties, of great oppression and a Combination to enrich themselves We do not here mean to enter into a Discussion, respecting the political Conduct of our late Governor and Council, but must say, that an unbounded Thirst after Riches seems to have possessed the whole Body of our Servants to that Degree, that they have lost all Sight of Justice to the Country Government, and of their Duty to the Company In reading the Opinions of the several Members of the late Council, respecting this illegal Trade, by which we mean, the Articles of Salt, Beetle Nut, and Tobacco, we are astonished to find those among them, who pretended to found their Right on the Phirmaunds. Treaties of Commerce are understood to be for mutual Benefit of the contracting Parties Is it then possible to suppose that the Court of Delhi, by conferring the Privilege of trading free of Customs, could mean an Inland Trade, in the Commodities of their own country, at that Period unpractised and unthought of by the English, to the Detriment of their Revenues, and the Ruin of their own Merchants? We do not find such a Construction was ever heard of until our own Servants first invested it, and afterwards supported it by Violence. They ....

[22] *Ibid*

used the Authority of the Company to obtain, by a Treaty exacted by Violence, a Sanction for a Trade to enrich themselves, without the least Regard or Advantage to the Company, whose Forces they employed to protect them in it [22a]

(Letter dated 26 April 1765)

The vast Fortunes acquired in the Inland Trade have been obtained by a Scene of the most tyrannic and oppressive Conduct, that ever was known in any Age or Country, we have been uniform in our Sentiments and Orders on this subject [23]

(Letter dated 17 May 1766)

The Fort William Council itself admitted (in its Consultation of 17 October 1764) that the inland trade had ruined the people of Bengal 'The poor of this Country, who used always to deal in Salt, Beetle Nut, and Tobacco, are now deprived of their daily Bread by the Trade of the Europeans' [24] But neither this realisation nor the Court of Directors' orders made an agreeable influence on the council, which continued, as the Court itself lamented (in its letter dated 17 May 1766), its 'defiance to those orders' [25]

On 6 February 1765 occurred the death of Mir Jafar, which, as Hunter remarks, 'is said to have been hastened by the unseemly importunity with which the English at Calcutta pressed upon him their private claims to restitution' [26] The late Nawab was succeeded by his son, Najm-ud-daula, who was naturally to be the nominee of the English, and had to enter into a new treaty with them prior to his accession The fifth article of the treaty provided 'I do ratify and confirm to the English the privileges granted them by their Phirmaund and several Husbulhookums, carrying on their Trade by means of their own Dustuck, free from all Duties, Taxes and Impositions, in all Parts of the Country, excepting in the article of salt, on which a duty of 2½ per cent is to be levied' This article again palpably defied the Court's order, and once again the Directors sternly protested

The fifth article is totally repugnant to our Orders . in which we not only expressed our abhorrence but in positive terms directed you to form an equitable plan As there is not the least Latitude given you for concluding any Treaty what-

[22a] *Ibid*, pp 30-31 [23] *Ibid*, p 34

[24] *Ibid*, p 32 (Quoted in the Court of Directors' letter to Bengal dated 24 December 1765) [25] *Ibid*, p 36

[26] W W. Hunter, *Statistical Account of Bengal*, vol IX, p 191.

soever respecting this Inland Trade, we must and do consider what you have done as an express Breach and Violation of our orders, and as a determined resolution to sacrifice the Interest of the Company, and the peace of the country, to lucrative and selfish views [27]

The court also asked the Council to 'renounce' this part of the treaty, and convey the 'renunciation' to the Nawab 'in the Persian language' The Directors carried their emphasis to the extent of saying that any Englishman found 'directly or indirectly guilty' of indulging in inland trade should 'be forthwith sent to England' so that they 'may proceed against him' [28]

The Select Committee of the Company in London employed more emphatic expressions to prevail upon the Bengal Council

The opinions of the first lawyers in this Kingdom confirm our sentiments, and whenever we receive the list of the claims for restitution, we shall then with precision know whom we are to call to account for these ellicit practices We are fully sensible that these innovations and illegal traffic laid the foundation of all the bloodshed, massacres, and confusion, which have happened of late years, we cannot suffer ourselves to inludge a thought towards the continuance of them, upon any conditions whatsoever [29]

All these directions thoroughly vindicated Mir Kasim and absolved Mir Jafar of all responsibility for the payments which the treaty imposed on him and which were later enhanced arbitrarily by the Fort William Council Yet the poor Nawab was not spared, he, in his turn, had to fleece his subjects to fill the English pockets

[27] *Bengal & Madras Papers, op cit*, p 33 [28] *Ibid.*
[29] *Ibid*, p 36

CHAPTER SEVENTEEN

English Victories in Oudh : Role of the Puppet Emperor

AFTER HIS defeat, Mir Kasim had quitted Bihar and proceeded, with such of his loyal followers as, unlike others, did not go over to the English, and with the remnant of his army, to seek the Nawab of Oudh, Shuja-ud-daula's help in organising a more powerful attack on the English Shuja-ud-daula not only possessed considerable resources for a war, but also enjoyed the privilege to wage it in the name of the emperor, who had been staying on in Oudh and whom Shuja-ud-daula, failing to mobilise adequate backing, could not yet carry to Delhi to put him on the throne of his ancestors Shuja-ud-daula had been appointed Wazir (Prime Minister) of the empire by the titular emperor, and was styled as Nawab-Wazir

But Mir Kasim's past conduct, while he was Nawab of Bengal, causing annoyance to Shuja-ud-daula, and the latter's gestures of a friendly disposition towards the English, repeatedly expressed after the latest revolution which reinstated Mir Jafar to the Nawabship, seemed to preclude the possibility of his design being accomplished In 1762, Shuja-ud-daula, while fitting out an expedition against Hindupati, a powerful chief of Bundelkhand, had requested Fort William to assist him with a body of 1,000 European troops, some Indian soldiers and a few guns [1] The request was followed by the emperor's authoritative letter to the English and by Shuja's personal letter to Mir Kasim, begging him to use his good offices But Mir Kasim gave a contrary advice to the Fort William Government 'As I see that Shuja-ud-daula is not well-disposed towards me, I therefore evade sending him any assistance, nor would I counsel you to send him any, because I am well-acquainted with his real disposition that his heart is full of enmity and ill-will' Even if Mir Kasim had given a favourable advice, the English would have never liked to strengthen the hands of a

[1] *India Office Correspondence,* 1762, pp 235-6; *Calendar of Persian Correspondence,* vol I, No 1622

ruler, who, for a long time, harboured an aspiration to annex the territories of Bengal to his dominion, with whose help Shah Alam had repeatedly invaded Bihar, and whose designs had been frustrated The English Governor, Vansittart, did not reject the request outright, but expressing loyalty and attachment to the emperor, said that he would consult Mir Kasim on the emperor's errand A second request from Shuja-ud-daula was similarly put off

In August 1763, Shuja-ud-daula, then camping at Allahabad with Shah Alam, offered to help the English in their war with Mir Kasim, but the English, perhaps rightly interpreting the offer as the Nawab-Wazir's excuse to meddle in the affairs of Bengal, wrote back saying that they did not need his assistance and were powerful enough to deal with Mir Kasim A month or two before the final collapse of Mir Kasim's resistance, that Nawab had despatched an envoy, named Mirza Shams-ud-din to Shuja-ud-daula begging his assistance; the Mirza carried considerable amounts of money with him, and made a present of Rs 17 lakhs to the Nawab-Wazir, Rs 10 lakhs to the emperor, and quite a big sum to the principal men of the Oudh Court But Shuja-ud-daula did not deviate from his profession of friendship towards the English; he was afraid of jumping into a hazardous alliance, and swallowed the money without discharging the obligation it imposed on him Nay, while Mir Kasim was moving into Oudh to establish contact with Shuja-ud-daula, the latter and Shah Alam were anxiously repeating the profession in their letters to the English, and Fort William was reciprocating with similar 'sentiments' [2] But in order to obviate the possibility of the combined might of Shuja-ud-daula and Mir Kasim invading Bihar in the future, the English demanded of the Nawab-Wazir and the emperor to deliver up the fugitive Nawab to them, or at any rate to strip him of his fighting power How they looked at the situation is expressed in the following paragraph of their letter of instructions to Major John Carnac (dated 2 February 1764), commander-in-chief of their forces in Bihar

> From the disposition which the King and Shuja Dowla have expressed in their late letters to us, and the answer which we wrote them, we are in hopes they may determine to surrender Cossim Aly Cawn into our hands or at least, by stripping him

[2] *Bengal & Madras Papers, op cit*, (Proceedings of the Committee appointed for the administration of Bengal, 1763-64, p 1.)

of his wealth, and obliging him to disband his forces put it out of his power to give us any further disturbance But if contrary to our expectations they should resolve to join the fortunes of Cossim Aly Cawn, and march with their forces towards Bengal, we desire you will advance the army to the banks of the Carumnassa, and oppose and prevent any enemies from entering the country [3]

At the Oudh Court, the English had, in the person of one Shitab Rai, a watchman of their interests Shitab Rai was once Diwan of Bihar, during the Nawabship of Mir Kasim, he happened to incur the Nawab's displeasure, and had taken service under the Nawab-Wazir As early as October 1763, when he heard of Mir Kasim's agent making overtures of help to Shuja-ud-daula, he, at his own initiative, opened negotiations for the recognition by the Emperor of Mir Jafar as Nawab of Bengal Should this plan work, Shitab Rai believed, he would frustrate all chances of the Nawab-Wazir lending support to Mir Kasim He contacted the English army authorities and Mir Jafar at Patna, secured a formal petition from the latter, and submitted it to Shuja-ud-daula's minister, Beni Bahadur Beni Bahadur, an unlettered man, whose vanity happened to be injured by Mir Kasim's agent by incidentally ignoring him when that agent came to seek Shuja's help, readily promised to back up the petition A *nazrana* (present) of Rs 5 lakhs, according to the usual custom, was sent along with the petition, but the Nawab-Wazir additionally demanded an undertaking from Mir Jafar that the emperor's tribute should be regularly paid to him from the revenues of Bengal. Mir Jafar agreed, and the documents formally recognising him as Nawab of Bengal, were issued, at the instance and with the approval of Shuja-ud-daula, who thus provided another proof of his agreement with the consequences of the revolution in Bengal

But Shitab Rai did not know that his action was contravening the intentions of the Fort William Council, who did not wholly trust the professions of Shuja-ud-daula, and did not want to encourage any proceeding which would have the effect of augmenting his resources If they did not curb Mir Jafar's eagerness for the imperial *sanad*, it was because they could not afford to antagonise him at a trying time But they looked upon this development as one calling for greater precaution, and alerted the commanding officer of their army in Bihar.[4] With some concern, they

[3] *Ibid.* [4] *Ibid*

wrote to Carnac in their letter dated 2 February (cited above)

> We are sorry to find that notwithstanding our council he (Mir Jafar) . has actually executed an agreement to pay to the King 28 lacks of rupees annually with 5 lacks nuzerana with a view of obtaining these sanads, and that he is seeking means to remit above one-half of that sum immediately to Court And we cannot help repeating here, that we think this step of the Nabob's a mark of bad policy and great imprudence, for making remittances to the King can only be considered as supplying the finances of Shuja Dowla who seeks but an opportunity of invading and molesting his (the Nabob's) Government, nay, is perhaps at this very period become his open and declared enemy [5]

They instructed Carnac to tell Mir Jafar that 'a more proper time to apply for' the sanad would be 'when all parts of the country have testified a firm allegiance to his Government, and he has been fully established in his dominion' [6] But Mir Jafar insisted, and his insistence was allowed to prevail by the English army authorities on the border who had been influenced by Shitab Rai's communications

While Mir Jafar's petition was still pending disposal with Shuja-ud-daula, Mir Kasim had arrived (January 1764) and been received with sympathy and cordiality by the Nawab-Wazir But when Mir Kasim urged that the English should not be given time to consolidate their position in Bengal, Shuja-ud-daula was thinking of sending out a third expedition against Hindupati of Bundelkhand, and told the ex-Nawab that it was his ardent desire to subjugate that ruler first As if the war against Hindupati was a test, Mir Kasim volunteered himself for it, and putting all his forces at the disposal of Beni Bahadur who headed the expedition, Mir Kasim himself took the field He advanced ahead of Beni Bahadur, and was crowned with victory

But while Mir Kasim was engaged in Shuja-ud-daula's affair in Bundelkhand, the latter revived consideration of Mir Jafar's petition, prepared the *sanad,* and with the Emperor's seal and signatures, despatched it through Shitab Rai's son, Kalyan Singh It was delivered to Mir Jafar on 24 March 1764 at Buxar When Mir Kasim returned from the Bundelkhand expedition, and came to know of the transaction, he was unnerved, and placing his

[5] *Ibid*, pp 1-2 [6] *Ibid*

turban on Shuja-ud-daula's feet, begged of him to annual the *sanad* It is hardly imaginable that Mir Kasim's mortification affected the Nawab-Wazir so powerfully that all of a sudden he changed his mind and became ready to scrap all his professions and commitments Nevertheless, he gave word to Mir Kasim that he and the emperor would join hands with him. This, as the finale of a series of dramatic performances of the Nawab-Wazir, the latest being the grant of the *sanad,* would naturally appear somewhat surprising, and calls for an answer What was the consideration that impelled him to make friendly gestures to the English from time to time? The answer apparently is his consciousness of their superiority as a fighting power. But Mir Kasim's victory over the obstinate Bundela chief must have assured the Nawab-Wazir that the ex-Bengal ruler had in his possession a strong and dependable force, and that this and his own would constitute more than a match to the English troops What now remained was the purpose for which Shuja-ud-daula should enter the war To this question, the answer was provided by Mir Kasim undertaking to cede the province of Bihar to Shuja-ud-daula, together with whatever treasure might be found in that province He also undertook to defray the expenses of the Oudh army at the rate of eleven lakhs of rupees per month. He is also said to have agreed to pay to the Nawab-Wazir a lump sum of Rs 30 million on the successful conclusion of the war. (The cash and jewellery in possession of Mir Kasim, while he was in Oudh, was estimated at Rs 100 million)

In Shitab Rai the English had a trustworthy spy, and he was communicating to them information of every new development at the Oudh Court In the middle of March (1764) he sent word saying, 'it appears . that Shujauddaula designs to march towards Behar'[7] On 28 March, he wrote 'Mir Qasim is collecting an immense force'[8] In his despatch dated 30 March, he said 'The Wazir has joined Mir Qasim and gone to Allahabad'[9] 8 April 1764· 'Mir Qasim has promised to defray the expenses of their (*the King's and the Wazir's*) armies'[10] Shitab Rai must have been spending a good deal of money on messengers, and employing ciphers to make sure that he remained safe in case of seizure of his messages

Sometime in March, the allied armies, headed by the Nawab-

[7] *Calendar of Persian Correspondence,* vol I, p 291, No 2114
[8] *Ibid,* p 293, No 2124 [9] *Ibid,* p 294, No 2133
[10] *Ibid,* p 296, No 2151

Wazir, set out for Bihar, and, the Oudh-Bihar border being undefended then, marched into that Province without any opposition, and occupied quite a large territory It was from his camp in Bihar that Shuja-ud-daula served on the Governor and Council of Fort William an ultimatum, in his capacity as Prime Minister of the Emperor, who was with him The ultimatum, which reached Calcutta on 25 April 1764, said

> Former Kings of Hindustan by exempting the English Company from duties, granting them different settlements and assisting them in all their affairs, bestowed greater kindness and honour upon them than either upon the country merchants or any other Europeans Moreover of late His Majesty has graciously conferred on you higher titles and dignities than was proper, and jagheers and other favours Since notwithstanding these various favors which have been shown you you have interefered in the King's country, possessed yourselves of districts belonging to the Government, such as Burdwan and Chittagong, &c, and turned out and established Nabobs at pleasure without the consent of the Imperial Court, since you have imprisoned dependents of the Court, and exposed the Government of the King of Kings to contempt and dishonour, since you have ruined the trade of the merchants of the country, granted protection to the King's servants, injured the revenues of the Imperial Court and crushed the inhabitants by your acts of violence and oppression, and since you are continually sending fresh people from Calcutta and invading different parts of the royal dominions, and have even plundered several villages and purgunnas belonging to the province of Illabad, to what can all these your proceedings be attributed but to an absolute disregard for the Court and wicked design of seizing the country for yourselves; if you have behaved in this manner in consequence of your King's commands or the Company's directions, be pleased to acquaint me of the particulars thereof that I may show a suitable resentment. But if these disturbances have arisen from your own improper desires, desist from such behaviour in future, interfere not in the affairs of the Government, withdraw your people from every part and send them to their own country, carry on the Company's trade as formerly, and confine yourselves to commercial affairs In this case the Imperial Court will more than ever assist you in your business and confer its favours upon you Send hither some person of distinction as your Vackeel to inform me properly of

all circumstances that I may act accordingly If (which God forbid) you are haughty and disobedient, the heads of the disturbers shall be devoured by the sword of justice, and you will feel the weight of His Majesty's displeasure which is the type of the wrath of God, nor will any submission or acknowledgments of your neglect hereafter avail you As your Company has of old been supported by the royal favours, I have therefore wrote to you You will act as you may think advisable [11]

The English had a cogent case to counter all the allegations Shuja-ud-daula had hurled at them Mir Jafar's first appointment to the Nawabship of Bengal, after the treacherous drama at Plassey, had been duly approved by the then Emperor of Delhi, the English had secured similar approval from the present emperor for Mir Kasim in 1761, and again, Mir Jafar, as already stated, had been awarded a *sanad* confirming his second appointment Shuja-ud-daula's ultimatum made absolutely no case for the emperor's intervention in the affairs of Bengal The Fort William Council refused to treat Shuja-ud-daula's letter as an ultimatum from the Emperor, and decided that, in the reply to be sent to him, he should be addressed as Nawab, and not as Prime Minister. The council made the following reply.

The English have been always faithfully attached to the Kings of Hindustan and sensible of the favors they have bestowed upon them, and they were moreover the first to acknowledge the present King Shah Allum, who on his part has frequently expressed a dependence on the English above all others, and might have benefited by their assistance had he not unfortunately fallen into your hands Instead of asserting the King's rights when you received him from us, and proceeding to put him in possession of his capital, you have detained him ever since in a kind of slavery, and made use of his name to carry on your own ambitious and unjust designs on the rights of others We have still the strongest proofs of the King's affection and regard for us, and that it is entirely contrary to his inclination and without his authority that you are advancing towards these provinces With respect to what you write, that we have interfered in the King's country, and turned out and established Nabobs at pleasure, without the consent of the Imperial Court, you yourself in a former letter express the highest approbation and

[11] *Ibid.*, p. 16

> applause of our deposing Meer Cossim and supporting the Nabob Meer Jaffur, and as a proof of the King's approbation of our conduct he has graciously confirmed the said Nabob by his Imperial sunnud in the Subadarey. In the same letters you revile Meer Cossim for his tyrannies and oppressions, and meanly sue for our assistance against him Now that, forgetting your former declarations, you join with a tyrant and oppressor against us, in what light can we regard you but as an abettor and a partner in his murders and oppressions Since your conduct has proved so inconsistent and unworthy of the rank you hold, and notwithstanding the warning we have given you, you still persist in your designs upon these provinces, we are resolved for the future to answer your threats only by the force of our arms, nor shall we desist till we have amply revenged ourselves of the injuries which you have done us and given the world this fresh proof that as the English will never injure others so none shall dare to attack them with impunity
>
> This will not only be a justice to ourselves, but by the blessing of God will be a means of rescuing the King from the bondage in which you have impiously detained him and putting it in his power to resume the throne of his ancestors [12]

What the English wrote to Shuja-ud-daula about the Emperor was no mere cant. Several weeks before the Nawab-Wazir's letter reached Fort William, the English president and council had received separate confidential letters from Shah Alam assuring them 'that the resolution for marching to Bengal in support of Meer Cossim is by no means agreeable to him, that he is unable of himself to prevent it'.[13] The English spy, Shitab Rai, betraying his master, Shuja-ud-daula, had also communicated to the English the Emperor's attitude to the war, and 'that the Vizier has suffered himself to be deluded by Meer Cossim's promises of money and yielded to his solicitations' Shitab Rai had further 'assured' the English 'that he shall not fail to exert his utmost endeavours for' their 'service'[14] In another letter, the Emperor had informed the English that should the English agree to defray his expenses, he would part company with Shuja-ud-daula and march away to Delhi.[15] After the receipt of Shuja-ud-daula's ultimatum and their reply to it, the Fort William authorities instructed Major Carnac

[12] *Ibid*, pp 16-17
[13] *Ibid.*, p 12 (Fort William Consultation, dated 3 April 1764)
[14] *Ibid* [15] *Calendar of Persian Correspondence*, vol I, pp 2134-5.

to do all he could to 'effect release' of the King and give him 'all the encouragement'[16] But this could not be done, and the unwilling emperor remained with Shuja-ud-daula, ostensibly leading the invading army

The invaders numbered about 40,000, of whom not more than 12,000 were regular troops The forces under the English amounted to 19,000 strong, which were made up of 12,000 men of Mir Jafar's army, and about 1,000 Europeans and 6,000 Indians of the English army, all well trained and disciplined The English commander-in-chief, Carnac, was advised by the Fort William Council to take up the offensive, in accordance with their tried policy which had invariably brought them success Carnac reached Buxar on 17 March 1764 (when the invaders were yet on the other side of Benares), and was to proceed with his forces to the border of Bihar to launch the offensive, but just when Shuja's forces were crossing into the province, he (the Major) made a backward move This sudden step, purporting to be a defiance of the orders of the Council, was partly due to lack of 'money and grain', with which Mir Jafar had failed to provide him,[17] and partly to his ill-conceived strategy Carnac's withdrawal enabled Shuja-ud-daula to march, without having to face any resistance, up to the close proximity of the city of Patna He set up his encampment in the village of Phulwari, seven miles west of Patna, and intended to pass some days there studying the enemy's disposition and plan of defence But the information that the British Marines would soon be arriving on the front to reinforce Carnac, precipitated his action With the Emperor who had no interest in the war, with Mir Kasim, whose initiative had been blunted by the Nawab-Wazir arrogating to himself all power of making decisions relating to policy and strategy, with Beni Bahadur who had grown very intimate with Shitab Rai, and with the ruler of Benares, Balwant Singh, who was a half-hearted ally, Shuja-ud-daula proceeded to make war upon the English The battle was fought at Panch-Pahari, in the neighbourhood of Patna on 3 May 1764 The first few engagements were encouraging to the invaders, but in the afternoon the hope began to wither away, and in spite of remarkable bravery Shuja-ud-daula and his army displayed, they had to withdraw For about a month he continued his camp in the vicinity of Patna, and then, by slow withdrawals, he returned to Buxar, deciding to stay there until the rains were over, and to utilise the intervening

[16] *Bengal & Madras Papers, op cit*, p 17
[17] *Ibid*, p 13

period in negotiations for peace, and in making preparations for a fresh offensive

But Buxar was to spell the beginning of his doom On 12 may, while still at Phulwari, he communicated a message to Mir Jafar, sympathising with his lot under the English and advising him to surrender and make peace But the message made a proposal which was bound to create the contrary effect It said

> Now that His Majesty has bestowed these provinces upon my son Ausuph-ud-doula, who is your nephew, look upon yourself as the rightful manager of all the affairs of the Government and deliver it from the daily insults to which it is exposed Affairs shall not remain upon their present footing, nor shall the hand of any one be upon you The districts which belong to the English I will get confirmed to them by the King in case of their faithful obedience and attachment[18]

To propose that Mir Jafar would be reduced from the Nawabship to the managership of Bengal, and still to expect that he would respond to the overtures, shows Shuja's utter lack of knowledge of the human nature Mir Jafar turned down the proposal, and demanded Mir Kasim to be delivered to him as a precondition to any negotiation for peace Shuja's letter to Mir Jafar was followed by dozens of letters from the emperor, Shuja-ud-daula himself, and his principal officers, they were addressed to the English army chief, and sought a peace treaty to be concluded All these letters gave the English the positive impression that 'Shuja Dowla, finding himself deceived in the fond hopes he had entertained of carrying all before him, has evidently for some time past wanted to introduce a negotiation, in order that he might go back and yet save his credit'.[19] The English made the same answer as Mir Jafar had done at their instance The Emperor, who was eager for peace at any cost, sent word that their wish would be done Shuja-ud-daula also replied to the same effect without, however, meaning it The correspondence between the two camps dragged on for several months, Shuja-ud-daula thought he was gaining time, little knowing that the interval would be utilised by the English to create dissension and disloyalty among his men

Major Hector Munro (who had taken over the command from

[18] *Ibid*, p 23

[19] *Ibid*, p 26 (Fort William Consultation, dated 11 June 1764 precis of Carnac's letter)

Carnac on 12 August), soon after his arrival in Bihar, opened correspondence with the Mughal officers in Shuja-ud-daula's army, through some partisans in the pay or favour of the English, with a view to buying off their loyalty The Mughal officers had under their command five to six thousand troops, and the desertion by such a large number, Munro rightly thought, would by itself unnerve Shuja-ud-daula and compel him to agree to the dictated peace terms The terms—rates of salary, etc —demanded by the Mughals, were not, however fully acceptable to the English, and the negotiations broke down. But one Mughal officer, Asad Khan, agreed to the revised terms, and went over to Munro with the force under his command[20] Another army officer, Zain-ul-Abdin, contacted by Asad Khan, also succumbed to the temptation. He tries to justify his self-deceived conscience thus, in his response to Munro's invitation

> I have had the honor to receive by the means of Ussud Khan Bahadre your friendly letter expressing your desire that I should join you with as many able-bodied and well-mounted horsemen, Moguls, Tooranies, as I can
>
> Sir, although it is very dishonorable to all men, particularly to persons of family, to desert the service they are enagaged in, and go over to their master's enemies, yet there are several circumstances which justify such a conduct in us For instance, Shuja-ul-dowla, notwithstanding his oath upon the Koran, murdered the Nabob Mahomed Cooly Khan The assisting and supporting of such an oppressor is neither conformable to reason, nor to the Koran, nor to the rules of any religion, and the quitting his service can reflect no dishonour upon any one, either in the sight of God or man[21]

Ghulam Hussain Khan, the author of the well-known work of contemporary history, *Seir-ul-Mutakharin,* and his father were in the employ of Shuja-ud-daula, but both, responding to the alluring offers from the enemy, turned traitors Ghulam Husain explains his conduct thus in his book·

> I resolved to attach myself to the English, for whom I had this long while conceived an affection I had even some connections with them, especially with Doctor Fullarton. ..Some corres-

[20] *Calendar of Persian Correspondence,* vol I, pp 2423-32.
[21] Long, *op cit*, pp 358-9

> pondence had also subsisted between him and me, and it was by that means he had informed me that the Emperor was inclined to the English party in his heart He had likewise advised me early to provide for myself and for that Prince's reaching the English camp This intelligence I imparted to my father, and I exhorted him to take the lead in an affair that would establish our family, and entitle him to the gratitude of the nation I added that it was evident that so long as the Vazir continued to command such unruly troops, and to be at variance with his confederates, as well as to turn a deaf ear to every sober advice, he would not be likely to prevail against the English, that matters standing in such a predicament, it would be advantageous to join a nation that seemed to entertain a veneration for the Imperial person, and an inclination for its interests, both of which they expressed everywhere in their correspondence with me, in such a manner, as rendered it proper and expedient for that Prince to write to the ruler of that nation, such a letter as they seemed to wish for [22]

Men closer to the Nawab-Wazir in feigning loyalty to him did not lag behind in making their contribution to the treachery Shitab Rai's son, Kalyan Singh, who had distinguished himself in concluding negotiations for the grant of the *sanad* to Mir Jafar, sent a special messenger, (to quote his own words), 'to give assurance to the English officials and Mir Muhammad Jafar Khan that I was with them and was on the look-out to find an opportunity to turn the tide in their favour'.[23] Shitab Rai's treachery (in which his son collaborated) was motivated by the aspiration that the English victory would again get him the position of a minister in the government of Bihar, besides other gains There is no positive evidence against Shuja-ud-daula's minister, Beni Bahadur, but his conduct does not appear to be wholly above suspicion He had been constantly advising his master to make peace with the English, and after the later war at Buxar had worsted the Nawab-Wazir and the fulfilment of the English terms was demanded of him, Beni Bahadur 'told' Munro 'that if the Vizier did not make peace, he would leave him, and be at the disposal of the King and the English' [24] Beni Bahadur's indifference and inertness at the

[22] Ghulam Husain Khan, *Seir-ul-Mutakherin*, vol II, p 536
[23] *J B & O R S*, vol VI, pp 148-9
[24] *Bengal & Madras Papers, ibid*, p 29 (Hector Munro's letter dated 22 November 1764 to Government Vansittart)

battle of 3 May aroused suspicion of his loyalty. In March 1765, while the Nawab-Wazir was organising, in his own dominions, resistance to the English, Beni Bahadur went over to the English 'with a large body of troops' and was put (by them) in charge of the province of Oudh At the battle of Buxar also, he did not acquit himself convincingly, and had fled with the forces under him Similarly the conduct of Balwant Singh, the ruler of Benares, who was one of the principal allies of Shuja-ud-daula, does not appear to be free from suspicion The Fort William papers record about him that he played 'double part in the beginning of the war'[25]

As if these tamperings and the Panch-Pahari debacle were not enough, Shuja-ud-daula made his final defeat doubly certain by the horrid treatment he meted out to Mir Kasim Mir Kasim was not a general , even in his war with the English in 1763, the command was in the hands of his army officers, while he stayed away in his camp at some distance At Panch-Pahari, he took the field, but being unable to give proof of his prowess, he excited a dislike for him in the mind of Shuja-ud-daula, who began to feel that he (Mir Kasim) could be done away with without any adverse consequence During the few months the two were together, their personal relations had also been impaired and Shuja-ud-daula had made up his mind to dispossess Mir Kasim of his stupendous wealth and to disgrace him He thought of a specious excuse to put his avaricious design into effect He sent a messenger to Mir Kasim accusing him of failure to pay the Emperor's share from the revenues of Bengal during his tenure of Nawabship and demanding immediate payment of the arrears amounting to Rs 4 crores. While this demand was hanging on the head of Mir Kasim, Shuja-ud-daula quietly managed to buy off the former's principal men in the army. Thus weakened, Mir Kasim was easily made a helpless victim One morning (in the middle of August 1764) the Oudh troops surrounded his camp, and took him prisoner to the Nawab-Wazir. All the cash and jewellery in the camp were seized , he would have been reduced to destitution had he not prudently removed a little while earlier some of his possessions and sent them to Delhi After a brief period of imprisonment, Mir Kasim was released and allowed to go wherever he liked Destiny came to his aid and removed him in good time from the disaster, which awaited his victimiser at

[25] *Ibid*, p 20 (The Fort William Consultation, dated 6 November 1764 —letter to Munro)

Buxar and which might have thrown him into the hands of the English.

The first fruit of Shuja-ud-daula's disdainful deed and the traitorous proceedings in his camp came from Rohtas-Garh Sahumal, Governor of the fort of Rohtas, still possed a fund of good will for Mir Kasim, and sandwiched as he just then was between two manoeuvres—the English and Shuja-ud-daula—both desiring to occupy his strategic position, he had to make a decision quickly, and he did so in favour of the former The English engaged historian Ghulam Husain Khan to impress on the mind of Sahumal that the superiority of their arms would ultimately prevail and that the Rohtas-Garh governor's interests would be safe in their hands 'Major Munro had wrote me', says Ghulam Husain, 'by the channel of Doctor Fullaraton, that if I could contrive to put the fortress of Rohotas in the hands of the English, I would entitle myself to their friendship and gratitude' And this is what he did to earn their 'gratitude' 'Upon this intimation I applied to Raja Sahomul, a man who had the greatest obligations to our family . I informed him that it was not in the nature of things that the English should not prevail shortly, and shortly should not overthrow and ruin the Vezir, and his confederates , that it was incumbent upon him therefore to examine the respective circumstances of both parties and to take the resolution be times' Sahumal was influenced by the plausible advocacy of Ghulam Hussain, and handed over the fort upon certain conditions, none of which, the historian himself complains, was 'observed' by the English [26]

Shuja-ud-daula cannot escape the guilt of robbing and disgracing one whom he had accepted as his ally , yet he has earned for himself a place of honour by persistently refusing to comply with the English demand to deliver Mir Kasim to them The exigency of his situation might, however, be interpreted as suggesting that the title to the honour cannot be wholly vindicated Before the Kasim Ali incident was enacted, Shuja-ud-daula had cleverly separated from Mir Kasim's force the small party of European troops whom the English called deserters One of the Europeans (not a deserter) was a French commandant, Sumro, who was with Mir Kasim in the 1763 war with the English, and who had given a commendable account of himself After Mir Kasim had been fleeced and imprisoned, Shuja-ud-daula re-opened correspondence for peace, telling the English that the ex-Nawab of

[26] Ghulam Husain Khan, *op cit*, pp 5534.

Bengal had been punished and that they should now consider their wish as duly satisfied. But the English reiterated that Mir Kasim, Sumro, and all the deserters must be delivered; the last letter of the Fort William Council (12 September 1764) told Shuja-ud-daula that if he would 'be kind enough' to comply with this demand and withdraw from Bihar, 'we shall be fully satisfied'[27] Sumro, according to the information conveyed to the English, had carried out, at the bidding of Mir Kasim, the execution of the English prisoners (of the 1763 war), and the deserters were accused of inciting mutiny among British troops These men had become an important part of Shuja-ud-daula's war machine, and he could not afford to deliver them to the English Therefore the delivery of Mir Kasim alone, even if Shuja's conscience permitted the betrayal, would not have satisfied the English. But there is nothing on record anywhere to suggest that Shuja-ud-daula ever entertained an intention of making the person of Mir Kasim a point for bargain

The ambition which had persuaded Shuja-ud-daula to lend his alliance to Mir Kasim and fight his battle was to annex Bihar which had been promised to him by the latter as a reward of victory The ambition remained even after the debacle of Panch-Pahari and after the exit of Mir Kasim, and Shuja-ud-daula demanded of the English, in his reply to their last letter, to surrender Bihar to him and undertake to make regular payment of the Emperor's tribute The wording of this demand bore the likeness of his previous ultimatum he told them that they should look upon the proposal as a heaven-sent blessing, and if they would not accept it, 'whatever is the will of God will be done'[28]

This was the end of the peace talks, and the Fort William authorities sent out orders to Munro not to delay the offensive and to bring the war to a speedy conclusion. As Shuja-ud-daula thought that the only use he could make of Mir Kasim was to acquire his wealth for the Oudh treasury and for the prosecution of the war, so did the English in the case of Mir Jafar. His presence in Bihar was considered by the English commander-in-chief as a liability rather than an asset to the prosecution of the war He was, therefore, called to Calcutta early in September and required, under pain of 'bad consequence' to pay without 'further delays' Rs 40 lakhs as compensation to English merchants and undertake to pay Rs. 5 lakhs every month until the war lasted, army expenses,

[27] *Bengal & Madras Papers, op cit*, p 14
[28] *Calendar of Persian Correspondence,* vol I, pp 2443-7

he was told, now exceeded the revenues of the districts he had assigned to the Company Disagreement was out of the question, and Mir Jafar said 'I agree that for the space of three or four months I will by every means in my power borrow and supply you with the sum of four lakhs of rupees per month' [29] The forces under the English were reported to be in want of money and supplies, free flow of these was now assured, and on 9 October 1764, Munro set out with his army from Patna to meet his adversary at Buxar

The battle of Buxar was fought on 23 October and within three hours of keen contest, in which the Oudh Nawab's forces pushed back the enemy several times, the decision was made in favour of the English From English commanders' accounts of the battle, an inference suggests itself the treacherous activities in the Nawab-Wazir's camp could not succeed so well as to enact a Plassey at Buxar For example, Lieutenant Harper observed 'I fancy had one or two thousand of the enemy's cavalry behaved as well as those few that attacked the grenadiers, we should have lost the day. The chance was more than once against us, and I am of opinion the sepoys would not have been able to stand the cannonade five minutes longer than they did' But, as usual, the Indian side maintained their resistance or advance by pushing forward their men to be indiscriminately slaughtered by the English fire Some 6,000 men of the Oudh army fell dead on the field, against a loss of 300 on the English side, of which the Europeans were only thirty-two Everywhere superiority of British arms and better training and better discipline of their troops resulted in victories with negligible loss of life

As had happened several times in the past, Bihar was cleared of the Oudh invaders, and what now remained to be decided by the English was whether to carry the war into Shuja-ud-daula's territories. The defeat was not an adequate punishment for that Nawab, and the Fort William Council instructed their commader-in-chief, Hector Munro, to demand of the fugitive the cession of a part of his country, in addition to the delivery of Mir Kasim and others, as the price of a treaty of peace 'If Shuja Dowla sues for peace,' Munro was told, 'these are the terms you are to demand, with which if he complies we authorise you to desist from further hostilities, agreeing to the mutual condition that we will not assist his enemies, and that he shall not assist ours [30] The council also sug-

[29] *Bengal & Madras Papers, op cit*, p 13

[30] *Ibid*, p 19 (Fort William Council's Consultation, dated 6 November 1764)

gested an alternative in the event of Shuja-ud-daula refusing to comply with the demand

> If he does not sue for peace, or suing refuses to assent to these terms, we would have you prosecute the war in the most effectual manner to reduce him to compliance But if that object cannot be attained without leading you to too great a distance from our own borders, we would have you give encouragement to such competitor for Shuja Dowla's dominions as you shall think most capable of suppoiting himself in the possession of them without requiring the further assistance of our forces after he is once established [31]

But King Shah Alam, whose title as symbol of the Mughal rule was still a current coin, was not to be ignored, and therefore the council added in its instructions to Munro

> Having never regarded the King as an accessory in the war we are very desirous of separating him from Shuja Dowla, and if this can be done by offering him on the foregoing terms, the possession and sovereignty of Shuja Dowla's country, we would prefer that to all other connections, and whilst there remain any hopes of gaining over the King, whatever persons' pretensions you shall find necessary to encourage, must be supported in the name of the King, and with a reserve of his rights.[32]

The council even anticipated that Shuja-ud-daula might be 'driven out of his country through the rebellion of his subject, or the mutiny of his troops'. There was reason for this anticipation We have it from Ghulam Husain Khan that while Shuja-ud-daula was entering the province of Bihar in February 1764, 'his troops, burning and plundering to the distance of five or six cosses in every direction, did not leave a trace of population throughout all that tract of gound The poor inhabitants, whose hearts had been expanded on hearing of the arrival of an Emperor and a Vazir, no sooner found themselves exposed to every kind of insult and oppression than they returned their heartiest thanks to the English, and prayed to God for their prosperity and return [33] As a chronicler of contemporary events, Ghulam Hussain Khan is trustworthy, and the above account cannot be dismissed as a figment of imagination.

[31] *Ibid*, pp 19-20 [32] Ghulam Husain Khan *op cit.*, p 528
[33] *Bengal & Madras Papers, op cit*, p 20

The council asked Munro to present a contrast to the people, during the English troops' march towards Benares

> It has always been the rule of our conduct to conciliate the affections of the people in the countries where we have made war, and prevent to the utmost of our power all manner of plunder and destruction This we must recommend to your strict observance, and think it the rather necessary on this occasion, as the city of Benares being reputed a place of great wealth may be a temptation to the sepoys, and it would give us a particular concern were any mischief committed in a place which is so much respected for its antiquity and held sacred in the eyes of the whole country

With these instructions, Munro set out with his forces towards Oudh, and reaching Benares, met there, instead of hostility, an atmosphere of reception and surrender Rich merchants, who had left in terror, returned to the city on Munro's assurance of protection, and gave four lakhs of rupees for the English army [34] Balwant Singh, ruler of Benares, accepted the English as supplanters of the Nawab of Oudh, and not only offered to pay them the share of the revenues which he had been paying to Shuja-ud-daula, but 'ordered his people to seize such of the Vizier's troops as they may meet within the country' [35] Shuja-ud-daula's Minister, Beni Bahadur, told Munro, at an interview he had with him, that if his master would not come to terms with the English, he would desert him and join them. The emperor was 'very happy' when Munro conveyed to him the council's terms, and said he would do 'anything' the English would 'prescribe' He undertook to write to different chiefs in the realm 'not to join' Shuja-ud-daula, and to secure the loyalty of Beni Bahadur and Balwant Singh He suggested that if the English got possession of Allahabad and the Chunargarh fort, he would be able to dispossess Shuja-ud-daula of the rest of his dominion.[36] Informing the Fort William council of these developments, Munro said (in his letter dated 22 November 1764) 'the King is under our protection', and added that before allowing him to act, 'I shall take care to have it under the King's hand that he holds these rights from the English, that he will agree to whatever the Governor and Council of Calcutta will prescribe to him, and pay the Hon'ble Company yearly such part

[34] *Ibid*, p 28 (Fort William Consultation dated 6 December 1764)
[35] *Ibid*, p 29 [36] *Ibid*

of the revenues of the country as the President of Fort William will desire'.[37]

Shuja-ud-daula's constant refusal to deliver Mir Kasim and others, which finally banged the door of peace against him, fitted in with the desire of the emperor, who told the Calcutta council

> If the English will, contrary to their interest, make peace with the Vizier, I will go to Delhi, for I cannot think of returning again into the hands of a man who has used me so ill. I have no friends I depend on more than the English, their former behaviour to me will make me ever respect and regard them. Now is their time to be in possession of a country abounding with riches and treasure I shall be satisfied with whatever share they please of it [38]

He despatched letters to the English Governor, to the Nawab of Bengal, to Carnac and to Shitab Rai, 'representing in general that Shuja Dowla has met with the just punishment of his perfidy and disobedience of his (the Emperor's) commands . and urging (the English) to establish' themselves 'and him in possession of Shuja-Dowla's country'.[39] The emperor was at this time, as he expressed in his letters to the English authorities, in 'great distress for money', and the Fort William council sent out instructions to Munro to 'advance him such sums as his exigencies may absolutely require'.[40] The emperor was a puppet no doubt, but his writ still prevailed in the country, he was held in high esteem, and the use of his title facilitated collection of revenues The council, therefore, further instructed Munro

> To avoid giving any umbrage or jealousy of our power to the King, or the nobles of the empire, we would have everything done under the sanction of his authority, and that we may appear as holding our acquisitions from him, and acting in the war under his authority in supporting his rights, and not he as holding those rights from us [41]

After the negotiations (November and December 1764) between the emperor and the English had paved the way for a treaty between them, Shuja-ud-daula once again started peace parleys through Shitab Rai, and when again the demand for the delivery of English

[37] *Ibid*, pp 29-30. [38] *Ibid*, p 30 [39] *Ibid*
[40] *Ibid*, p 31 [41] *Ibid*.

enemies—Mir Kasim, Sumro and the deserters—was repeated, he replied (3 January 1765) to Munro

> If the English will now enter into friendship with me, I will immediately dismiss their enemies and withdraw my protection from them, and this friendship being confirmed, I will join with the English army in endeavouring to take them wherever they are to be found, I mean no equivocation in what I now write, for the truth of which I take God and His Holy Prophet to witness [42]

Mir Kasim (having been released from captivity on the eve of the battle of Buxar) was no more in the possession of Shuja-ud-daula, but Sumro and the deserters were still in his employ, and as he was preparing for another engagement against the English and had collected an army of about 30,000, it does not seem safe to assume that he really meant what he said in his letter And cleverer Munro rejoined

> The contents of which I am made acquainted with .. do not correspond with my demands . If you will write me another letter, the whole of it in your own handwriting, offering to make peace with the English and to deliver up to them Cossim, Sombre and the deserters that are with you, you will do right and then terms of peace will not be refused you.[43]

Moreover the Fort William authorities were now disinclined to subscribe to any proceedings which might create misgivings in the mind of the emperor, and noted in their Consultation, dated 17 January 1765

> He (Shuja-ud-daula) was more earnest in his offers for peace than he had ever before appeared This is a measure we should some time ago have noticed to see take place, but as through his obstinacy we have now entered into engagements with the King, no accommodation can take place without a due regard to the interest of His Majesty and those engagements, and previous to all, the absolute delivery into our hands of Mir Cossim, Sombre and our deserters [44]

[42] Bengal Secret Consultation, 1763-75, vol III, pp 11-12 (January 13, 17, 1765) [43] *Ibid*, pp 11-12 (3 January 1765)
[44] *Ibid*, pp 14-15

The new peace parleys thus ended abruptly, and the stage was set for more skirmishes between the two on the soil of Oudh. Already, during the period of the negotiations, a strategy of how to bring Oudh and its principal chiefs under the control of the English and the emperor, was being worked out. The emperor suggested that if the English forces could capture the forts of Chunar and Allahabad, he would be able, without much difficulty, to root out the authority of Shuja-ud-daula from 'the rest of the country'. The English undertook to do the job. Armed with the emperor's order, Munro sent an ultimatum and after despatching a notice to Sidi Mohammed Bashir Khan, the commandant of the fort, to surrender and then repaired to the place with his army. A great disaster awaited the English. Bashir Khan readily agreed to submit to the imperial command, but the garrison refused; they turned out the commandant, and decided to defend the fort. As usual, early morning (3 December 1764) was appointed for the attack, but the advantageous element of surprise was missing here. The garrison was already aware of the coming attack, and it was resisted with admirable doggedness, and ultimately repelled. Next day, at 2 o'clock in the morning, the attack was renewed to meet the same fate again. With 1,000 Indian soldiers and fifty Europeans on the English side killed or wounded, the Chunar siege cost them much more than did the decisive battle of Buxar.

The frustration of the Chunar defeat was aggravated by the news, conveyed to Munro by his Indian spies that Shuja-ud-daula had left Allahabad and was marching with his forces towards Benares. The combination of several factors had imparted to Benares singular strategic importance. The local ruler, Balwant Singh, who never was whole-heartedly loyal to Shuja-ud-daula, had now completely surrendered to the English, the English had made Benares their base for future operations, the emperor had made it his headquarters, and was looking forward to gaining some kind of stability with their help, Beni Bahadur too was there, (apparently) ostensibly engaged in peace negotiations on behalf of Shuja-ud-daula, but actually thinking of formally denouncing his master. If Benares was surprised, Munro apprehended, by Shuja-ud-daula, while the English forces were engaged in a desperate siege, all their achievements in Oudh would be undone; the fugitive Nawab Wazir would re-acquire the person of the emperor, and the English would be deprived of a title in whose name they were acting and were to act in future in the new ter-

ritory. Munro, therefore, withdrew from Chunar and rushed back to Benares. During the absence of Shuja-ud-daula in Bihar, his territories had fallen into a state of anarchy. Many of the chiefs had turned rebellious and repudiated his authority, only a few of them were willing to join with him in the fresh action he was planning. The Mughal troops, whose leaders were prepared to be bought over, constituted one of the main fighting forces of the Nawab-Wazir. Desertions were constantly reducing his fighting power. Yet between fighting and abject surrender, he chose the former, hoping against hope that a chance might re-establish his prestige and the rebels might rally again under his banner. By the middle of January 1765, Shuja-ud-daula was within five miles of Benares. The English force having already returned (7 January) from Chunar, proceeded to meet the enemy and attacked them in the morning on 18 January. With bewildered eyes the Nawab-Wazir witnessed the spectacle of being abandoned by his men; he submitted to the inevitable, and retreated in disorder. After the 'fighting' was over, the Mughal commanders, Abdul Rahim Khan and Mohammed Ali Khan, offered to place themselves, with their 6,000 troops, at the disposal of Major Robert Fletcher. (In December 1764, Major Carnac had been re-appointed commander-in-chief, with the rank of a colonel and the title of a Brigadier-General, and pending his arrival in Oudh, Munro had been relieved by Fletcher on 7 January 1765.) Shuja-ud-daula fled towards Jaunpur. In order to prevent him from making that place a foothold for further preparations, the English troops chased him. Safety, and not fighting, was now his aim. He crossed Jaunpur, and accelerated the pace of his flight until he was at a safe distance (ten or twelve miles). On 20 January the English took possession of the town and the fort with a little fighting necessitated by the feeble resistance offered by the musketry of the fort.

The English now turned their attention to Allahabad and Chunar. As in the case of Chunar, the emperor again issued orders calling upon the authorities of the fort of Allahabad to put it in the hands of the English commander, Major Fletcher, who, he said, had been sent by him. But the likelihood of disobedience to the orders was anticipated, and the English, who had to leave a part of their forces for the defence of Benares, augmented their invading party by 4,000 troops of Mirza Najaf Khan, who was then in the employ of Hindupati of Bundelkhand, and was, like his master, in a revengeful disposition against the Nawab-Wazir. The anticipated possibility of defiance turned out to be a reality, and both

the deputy Nawab of Allahabad and the commandant of the fort (Ali Beg Khan and Ghulam Husain Khan respectively) refused to surrender The garrison consisted of 2,000 men and possessed 150 pieces of cannon, hardly a match to the invaders who were far more numerous and carried considerably more fighting equipment. Another factor, which made English victory doubly sure, was Mir Najaf Khan's[45] knowledge of the vulnerable parts of the fort, in which he had resided for years during the governorship of a relation of his, Mohammed Kuli Khan The weak points were made the special target of attack, the besieged men had to choose between annihilation and surrender; they chose the latter It was a brief action in which seven men on each side were killed

An invading party had been simultaneously sent to Chunar. Here also, the English force was augmented by those of the emperor and the ruler of Benares, and the invading party was now much stronger than it was on the previous occasion. Yet the garrison again refused to surrender and gave a heroic resistance But the men in the fort had only fifteen days' provision, and then they learnt that the Nawab-Wazir, for whom they were supposed to be fighting, had been irretrievably suppressed and was now a fugitive. These two factors made a decision for the resisters, and they surrendered the fort Here too the loss of life was insignificant The formal surrender of both the forts, Allahabad and Chunar, happened to be made on the same date, 8 February 1765

After his flight from Jaunpur, Shuja-ud-daula escaped into Ruhelkhand with the intention of preparing, with the help of local chiefs, another expedition against the English But the English captured Lucknow, won obedience of Shuja-ud-daula's officers and landlords by promising them protection and continuance in their positions, lodged the emperor in the fort of Allahabad, and declared themselves as conquerors of Oudh and the emperor as the direct ruler of Shuja-ud-daula's dominion Beni Bahadur, who had deserted Shuja-ud-daula while the latter was running for life from Jaunpur, joined the English (9 March 1765) with a considerable number of troops, and was offered governorship of his late master's territories He accepted the offer, and promised to give any security the English might demand of his loyalty to them But when he learnt that for the security, he would have to leave his women as hostages under the English guard, he changed his mind and left Benares, where he had transferred his loyalty to the victors, on the pretext that he was going to Lucknow to bring his family. He

[45] Handsome by rewards by the English.

again decided to become a devoted lieutenant to Shuja-ud-daula, but it was too late

On his way to Ruhelkhand and in Ruhelkhand itself, Shuja-ud-daula made desperate efforts to form a confederacy of Indian rulers, meeting one chief after another He sought an alliance with Najib-ud-daula, then supreme dictator at Delhi Nothing tangible came out of these overtures He then turned to the Marathas whose leader, Malhar Rao Holkar, undertook, on certain terms, to fight Shuja-ud-daula's battle for re-conquest of Oudh. Holkar got together 30,000 troops and proceeded with Shuja-ud-daula and the remnant of his force towards Allahabad In the way, the allied army attacked the town of Karra (twenty-four miles south of Kanpur) of which Mirza Najaf Khan was administrator and for whose protection the English had detained two battalions of their Indian soldiers The town's resisting power was hopelessly unequal to the attackers', and Najaf Khan surrendered it (It happened in the third week of April 1765.)

At Karra an interesting episode occurred, which provided an opportunity to Najaf Khan, on Shuja-ud-daula's own initiative, to join the English at Allahabad, and to convey to them Shuja-ud-daula's dislike of his latest ally One day, after the Karra victory, Shuja-ud-daula went into the camp of Holkar The arrogant Maratha leader who was engrossed in playing chess completely ignored him, he did not even make a gesture of acknowledgment of the guest's presence And when Shuja-ud-daula made a humorous remark evidently to make his presence felt, Holkar made on him an urgent demand for money. The late Nawab-Wazir returned, like a child slapped by an outsider, and consulted with Najaf Khan, preferring surrender to the English and seeking his good offices to negotiate terms Najaf Khan welcomed the opportunity which he desired and which came to him unsought and unsolicited

The English commander-in-chief, Carnac (who resumed command in Oudh on 13 February 1765) had in the meantime received news of the Maratha movement, and, in order to be first again with the offensive, as was the English strategy, he hastily proceeded to Karra Shuja-ud-daula's offer for peace was of no meaning, for the principal fighter this time was Mulhar Rao who had no knowledge of the underhand errand Shuja-ud-daula had acted under an emotional strain, and understandably, therefore, Najaf Khan joined the English, with the body of troops he had taken with him, with a view to fighting the Marathas In the first week

of May, the English made a vigorous attack on the armies of the new allies, ostensibly united, but inwardly looking down upon each other The incessant firing from the English side, which was the usual tactics of their warfare, was so effective that the enemy retreated in disorder Once again the English established the superiority of their arms and discipline over the Indian In the third week of May, again there was fighting between the fugitive Marathas and the English near Kalpi, and again the decision went in favour of the former

Broken down irretrievably, Shuja-ud-daula, acting on the advice of his lieutenants, surrendered his person to the English and begged for an honourable treatment The English received him with warmth and respect, and as they needed in Oudh a man who could be useful as a bulwark against the threatening power of the Marathas, they decided to reinstate him to the Nawabship, binding him down to terms which he would not think of violating without peril to his position.

CHAPTER EIGHTEEN

Najm-Ud-Daula as Nawab: The English as Diwan

WHILE MIR JAFAR was confined to his death-bed, he had nominated Najm-ud-daula to succeed him, in fact the latter had already started acting as Nawab. In order that there should be no complication as to the sucession after his death, Mir Jafar had communicated his will to Fort William. With the inheritance of the throne, all the commitments and responsibilities attaching to it naturally devolved on the successor, and no fresh agreement between him and the English Company was called for. But since it was always a fresh treaty that provided Governors and Council of Fort William in the past with an opportunity to make money for themselves, the present occasion was not to be allowed to pass off 'unceremoniously', although the Nawabship did not come to the new incumbent as a prize from the English. The Council appointed a deputation consisting of Johnstone, Leycester, Senior, and Middleton, to negotiate terms of a treaty. But before the treaty had been negotiated and concluded, the English started imposing their will on the new Nawab, the first and the most significant thing they did was to send out instructions to Muhammad Reza Khan, deputy Nawab of Dacca, asking him to proceed to the capital (Murshidabad), to become the Nawab's deputy there. Reza Khan was a lackey of the English, made presents to the principal men of Fort William, and considered them as his real bosses. By this device of placating the English, he withheld from state treasury large amounts of revenue collections, and Mir Jafar had complained to the Fort William governor as late as 30 December 1764, suggesting 'perhaps someone at Calcutta has made the said Khan easy by telling him that no one will trouble him about the balance'[1] When Najm-ud-daula was apprised of the English instructions to Reza Khan, he protested to the governor: 'The Khan has paid only six *lakhs* of rupees and a large sum is still due from him. If he leaves Dacca, the realisation of the money will be considerably delayed.' He also

[1] *Calendar of Persian Correspondence*, vol I, No 2522

pleaded that if the instructions would be carried out, he 'will not be able to discharge his debts to the Company', and that 'with the help of Mr Middleton and others the *Nizamat* is being conducted in the most proper manner'. And he requested that 'the summoning of the Khan to Murshidabad may be deferred'[2] The governor did not listen to the Nawab's pleading, and wrote back to say that 'the Khan will not act otherwise than as a faithful servant'[3] The governor also wanted to foist Raja Durlabh Ram on the Nawab, and Najm-ud-daula again protested that there was 'utmost enmity' between Durlabh Ram and Mir Jafar, and that 'the Raja always violated the engagements he entered into with the latter'. The Nawab was afraid that 'the employing of such a person will be a means of throwing the affairs of the Nizamat into disorder'[4] This request was not turned down, and Fort William did not insist upon the appointment of Durlabh Ram[5] In the meantime the terms of a new treaty were drawn up

The Treaty and Agreement concluded between the Governor and Council of Fort William, and Nawab Najm-ud-daula provided

ON THE PART OF THE COMPANY

We, the Governor and Council, do engage to secure to the Nabob Nudjum-ul-Dowla all the Soubahdairy of the Provinces of Bengal, Behar, and Orissa, and to support him therein with the Company's Forces against all his enemies We will also, at all times, keep up such force as may be necessary effectually to assist and support him in the defence of the Provinces, and as our troops will be more to be depended on than any the Nabob can have, and less expensive to him, he need, therefore, entertain none but such as are requisite for the support of the Civil Officers of his Government, and the business of his collections through the different districts

We do further promise, that in consideration the Nabob shall continue to assist in defraying the extraordinary expenses of the war, now carrying on against Shujah-ud-Dowla, with five lacs of Rupees per month, which was agreed to by his father, whatever sums may be hereafter received of the King, on account of our assistance afforded him in the war, shall be repaid to the Nabob

[2] *Ibid*, Najm-ud-daula's letter dated 20 February 1765, to the Governor, Fort William No 2566

[3] *Ibid*, Letter dated 23 February 1765, No 2567A

[4] *Ibid*, Letter dated 24 April 1765, No 2630

[5] *Ibid*, Letter dated 5 May 1765 No 2635

ON THE PART OF THE NABOB

In consideration of the assistance the Governor and Council have agreed to afford in securing to me the succession in the Soubahdarry of Bengal, Behar and Orissa, heretofore held by my Father, the late Nabob Meer Jaffier Ally Khan, and supporting me in it against all my enemies, I do agree and bind myself to the faithful performance of the following Articles

1. The Treaty which my father formerly concluded with the Company upon his first accession to the Nizamut, engaging to regard the honour and reputation of the Company and of their Governor and Council as his own, and granting perwannahs for the currency of the Company's trade, the same Treaty, as far as is consistent with the Articles hereafter agreed, I do hereby ratify and confirm
2. Considering the weighty charge of Government and how essential it is for myself, for the welfare of the country, and for the Company's business, that I should have a person who has had experience therein to advise and assist me, I do agree to have one fixed with me, with the advice of the Governor and Council, in the station of Naib Soubah, who shall accordingly have immediately under me the chief management of all affairs And as Mahomed Reza Khan, the Naib of Dacca, has in every respect my approbation and that of the Governor and Council, I do further agree that this trust shall be conferred on him, and I will not displace him without the acquiescence of those gentlemen; and in case any alteration in this appointment should hereafter appear advisable, that Mahomed Reza Khan, provided he has acquitted himself with fidelity in his administration, shall in such case be reinstated in the Naibship of Dacca, with the same authority as heretofore
3 The business of the collection of the revenues shall, under the Naib Soubah, be divided into two or more branches, as may appear proper, and as I have the fullest dependence and confidence on the attachment of the English, and their regard to my interest and dignity, and am desirous of giving them every testimony thereof, I do further consent, that the appointment and dismissal of the Muttaseddees of those branches, and the allotment of their several districts shall be with the approbation of the Governor and Council, and considering

how much men of my rank and station are obliged to trust to the eyes and recommendations of the servants about them, and how liable to be deceived, it is my further will that the Governor and Council shall be at liberty to object and point out to me when improper people are entrusted, or where my officers and subjects are oppressed, and I will pay a proper regard to such representations, that my affairs may be conducted with honour, my people everywhere be happy, and their grievances be redressed

4. I do confirm to the Company, as a fixed resource, for defraying the ordinary expenses of their troops, the Chuklas of Burdwan, Midnapore and Chittagong, in as full a manner as heretofore ceded by my father The sum of five Lakhs of Sicca rupees per month for their maintenance was further agreed to be paid by my father, I agree to pay the same out of my treasury, while the exigency for keeping up so large an Army continues When the Company's occasions will admit of diminution of the expenses they are put to on account of those troops, the Governor and Council will then relieve me from such a proportion of this assignment, as the increased expenses incurred by keeping up the whole Force necessary for the defence of the Provinces will admit of, and as I esteem the Company's troops entirely equal thereto and as my own, I will only maintain such as are immediately necessary for the dignity of my person and Government, and the business of my collections throughout the Provinces

5 I do ratify and confirm to the English the privilege granted to them by their Firmaun and several Husbulhookums of carrying on their trade by means of their own dustucks, free from all duties, taxes, or impositions, in all parts of the country, excepting in the articles of Salt, on which a duty of 2 per cent is to be levied on the rowana or Hooghly market price

6 I give the Company the liberty of purchasing half the Saltpetre produced in the country of Purnea, which their Gomastahs shall send to Calcutta, the other half shall be collected by my Foujdar for the use of my Offices, and I will suffer no other person to make purchases of this article in that country

7 In the Chuckla of Sylhet, for the space of five years, commencing with the Bengal year 1171, my Foujdar and a

Gomastah, on the part of the Company, shall jointly provide Chunam, of which each shall defray half the expenses, and half the Chunam so made shall be given to the Company

8 Although I should occasionally remove to other places in the Provinces, I agree that the books of the Circar shall be always kept, and the business conducted at Moorshedabad, and that it shall, as heretofore, be the seat of my Government, and wherever I am, I consent that an English gentleman shall reside with me to transact all affairs between me and the Company, and that a person of high rank shall also reside on my part at Calcutta to negotiate with the Governor and Council

9 I will cause Rupees coined in Calcutta to pass in every respect equal to the siccas of Moorshedabad, without any deduction of batta, and whosoever shall demand batta shall be punished, the annual loss on coinage, by the fall of batta on the issuing of the siccas, is a very heavy grievance to the country, and after mature consideration, I will, in concert with the Governor and Council, pursue whatever may appear the best method for remedying it

10 I will allow no Europeans whatever to be entertained in my service, and if there already be any, they shall be immediately dismissed

11 The Kistbundee for payment of the restitution to the sufferers in the late troubles as executed by my Father, I will see faithfully paid No delay shall be made in this business

12 I confirm and will abide by the Treaty which my Father formerly made with the Dutch

13 If the French come into the country I will not allow them to erect any fortifications, maintain forces, or hold lands, Zemindarees, &c , but they shall pay tribute, and carry on their trade as in former times

14 Some regulations shall be hereafter settled between us for deciding all disputes which may arise between the English Gomastahs and my Officers, in the different parts of the country [6]

(The Treaty was signed by the Governor and Council of Fort William on 20 February 1765, and by the Nawab on 25 February) On 23 June 1765, Najm-ud-daula issued a *sanad* 'reverting in

[6] *Indian Records* (Relations between the British Government and the Nawabs Nazim of Bengal, Behar and Orissa), pp 15-18

perpetuity' the territory known as Clive's Jagir to the Company

On the conclusion of the treaty, the principal men of Fort William extracted their 'presents' from the Nawab. The total amount extracted was Rs 14 lakhs Of this the Governor (John Spencer, who officiated on the departure of Vansittart and the arrival of the new permanent incumbent, Clive) got Rs 2 lakhs. Of the members of the deputation, Johnstone received Rs 2,37,000, Leycester, Rs 1,12,000, and Senior and Middleton, Rs 1,22,500 each Johnstone demanded and received Rs 50,000 for his brother also, who was not connected in any way with the deal

In the summer of 1765, Clive re-appeared on the political stage of India He had already been decorated with the title of the Baron of Plassey, and in the middle of 1764, he was selected again by the Court of Directors to preside over their affairs in Bengal After Plassey, when the Government of Bengal had been made subservient to Fort William, an idea arose in Clive's mind that it was within the compass of practicability for the English to supplant Indian rulers On 7 January 1759, he had communicated the idea to the Prime Minister of his country, William Pitt, and suggested, in the following words, how it could be realised

> The great revolution that has been effected here by the success of the English arms, and the vast advantages gained to the Company by a treaty concluded in consequence thereof, have, I observe, in some measure engaged the public attention, but more may yet in time be done, if the Company will exert themselves in the manner the importance of their present possessions and future prospects deserve I have represented to them in the strongest terms the expediency of sending out and keeping up constantly such a force as will enable them to embrace the first opportunity of further aggrandising themselves, and I dare pronounce, from a thorough knowledge of the Country Government, and of the genius of the people acquired from two years' application and experiences, that such an opportunity will soon occur .. There will be less difficulty in bringing about such an event, as the natives themselves have no attachment to particular princes But so large a sovereignty may possibly be an object too extensive for a mercantile company, and it is to be feared they are not of themselves able, without the nation's assistance, to maintain so wide a dominion .. It is well worth consideration, that this project may be brought about without draining the mother country, as has been too much the case with

> our possessions in America A small force from home will be sufficient, as we always make sure of any number we please of black troops . I shall only further remark, that I have communicated it to no other person but yourself, nor should I have troubled you, Sir, but from a conviction that you will give a favourable reception to any proposal intended for the public good [7]

Clive's proposal did not arouse interest in England, but in India his compatriots had already begun erecting on the foundation of the British empire he had laid in 1757 He reached Madras on 10 April 1765, enroute to Bengal, and 'was delighted'[8] to know that Mir Jafar was dead and that the area under the political influence of the English had been largely extended A week after his arrival in Madras, he intimated to the chairman (Rous) of the Company what he contemplated to do in Bengal 'We must indeed become the Nabobs ourselves, in Fact, if not in Name, perhaps totally so without disguise' And he added

> Let us, and without delay, compleat our three European Regiments to one thousand each Such an Army together with five hundred light Horse, 3 or 4 Companies of Artillery, and the Troops of the Country will absolutely render us invincible In short, if Riches and Stability are the objects of the Company, this is the Method, the only Method, we now have for attaining and securing them [9]

But Clive regulated his ambition by cautiousness and farsightedness, and his immediate aim was to consolidate the English position in Bengal The first thing he did on his arrival in Calcutta on 3 May 1765, was to communicate this view to the English commander-in-chief, Carnac (then in Oudh) 'Your long and extensive expedition, I could wish had been avoided, but of that and all other affairs I will speak more at large For the present, I can only say, that our views ought to be confined to Bengal'[10]

But the consideration which had persuaded the Court of Directors to re-appoint Clive as Governor of Fort William was wholly different from the ambition he was entertaining after his arrival

[7] Sir John Malcolm, *Life of Robert, First Lord Clive*, vol II, p 119
[8] J Talboys Wheeler, *Early Records of British India*, p 329
[9] Quoted in Sir George Forrest, *The Life of Lord Clive*, vol II, p 257
[10] *Ibid*, p 261

in India. Their conscience and business policy had been seriously disturbed by their servants' misconduct in Bengal, and they needed a man of ability, experience and dependability to head the Fort William Council. The managing body of the East India Company was then divided into two groups, Clive, now one of the influential proprietors of the Company, belonged to the group which was in majority, and was considered most suitable to carry out the Court's policies scrupulously Clive had himself made a big fortune during his first term of governorship by questionable methods, but the court now held a high opinion of him About three months before his arrival in Bengal, they had deplored, in their 'General Letter' (dated 15 February 1765) to Fort William, their servants' 'oppressions', and said 'We have such an entire Confidence in Lord Clive's great Abilities and good intentions, that we make no doubt these great abuses will be the particular objects of his care and attention, and that he will be able to carry these our orders effectually into execution[11]

Soon after the assumption of his charge, Clive discovered that the Governor and Council of Fort William had again, in flagrant violation of the Directors' orders, exploited the recent occasion of the change in the Nawabship of Bengal to make illicit gains Najm-ud-daula also represented to Clive and his council that since Mir Jafar's death, Reza Khan, who had knowledge of the Nawab's opposition to his appointment, had distributed twenty lakhs of rupees among the members of the Fort William council in order that they should maintain him in his office.

The knowledge of these illicit gains compelled Clive to vindicate the faith the Directors had reposed in him They had laid down that 'all persons in the Company's service should execute covenants, restraining them from accepting, directly or indirectly, from the Indian Princes, any grant of lands, rents, or territorial dominion, or any present whatever, exceeding the value of four thousand rupees, without the consent of the Court of Directors'[12] Clive laid the matter before the council, but was, to his dismay, confronted with the example of his own unclean past, which Johnstone dug out to justify the latest deal. Johnstone said

> With regard to presents in general, we have the approved example of the President, Lord Clive, himself, for our guide, who, through this Nabob's father's princely bounty on his coming

[11] *Bengal & Madras Papers, op. cit.*, Directors Letters, p 30
[12] Sir George Forrest, *The Life of Lord Clive*, vol II, p 262

> to the government had made his fortune easy, and the Company's welfare his only motive for staying in India, yet acknowledges his having made use of the influence of Juggut Seit to apply for a jaghire which though amounting to £30,000 per annum, was not thought improper by him to accept of, even in the circumstances of distress he then represents the old Nawab to have been in [13]

Clive had no convincing answer to give, and explained away his conduct by saying that the 'present was given to me in a military capacity only, as a reward for real service rendered to the Nabob at a very dangerous crisis' [14] Clive had participated in the conspiracy and treacherous transactions against Siraj-ud-daula, and had led the English force to Plassey as a servant of the Company, and it was the Company which should have benefitted, as it actually did, in consequence, and not Clive Clive suffered a moral defeat at the Council meeting But so far as Johnstone and his colleagues were concerned, they were to conduct themselves according to the directions of the Court of Directors, and not to emulate Clive, and the Court, on a reference being made to it, upheld the objection taken by Clive

But Clive did not have the patience to keep his avarice in check even for a month, and prepared a scheme which would yield him from month to month a heavy amount of money, in addition to the salary and allowances fixed for him by the Court of Directors The appointment of Clive had been decided upon at a time when the Directors were much exercised over the disturbances and oppression which had resulted from the English merchants' indulgence in the inland trade. The Directors considered inland trade as an unlawful extension of the English business in Bengal, and issued strict orders asking the Fort William authorities to withdraw all English merchants from it The main factor which induced the Directors to think of Clive as most suitable for the presidency of Bengal was that his views with regard to the inland trade were in conformity with theirs He had unambiguously written to them in his letter dated 27 April 1764 'The trade in salt, betel, and tobacco, having been one cause of the present disputes, I hope these articles will be restored to the Nabob, and your servants absolutely forbid to trade in them' [15]

[13] Peter Auber, *Rise and Progress of the British Power in India,* vol I, p 134 [14] *Ibid*, p 137

[15] Quoted in Edward Thornton, *History of the British Empire in India,* vol I, p 503

Clive also 'promised' that 'he would not engage in any kind of trade himself, but leave all commercial advantages to the servants, to be divided amongst themselves'[16] The Directors had expressed concern at and disapproval of the inland trade in their letters dated 8 February 1764 and 1 June 1764, and had reiterated it in their letter dated 15 February 1765 'We gave you our sentiments and directions very fully, in respect to the inland trade of Bengal, we now enforce the same in the strongest manner, and positively insist, that you take no steps whatever towards renewing this trade, without our express leave'[17]

Yet within a month of his arrival in Calcutta, Clive, betraying the confidence reposed in him by the Directors, and, as the Company's contemporary servant, William Bolts, remarks, 'in contravention to his most solemn declarations',[18] 'entered into a partnership' with some of his colleagues in the select committee, 'for the purpose of dealing in salt',[19] betel nuts and tobacco This partnership was soon converted into a company of the East India Company's leading servants in Bengal, and the select committee ruled that none, whether Indian or European, would henceforth deal in the three articles Clive deprived the Indian traders completely of whatever of the inland trade in salt, betelnuts, and tobacco, was left to them. The resolution the select committee adopted in this connection (10 August 1765) said

> That the whole trade shall be carried on by an exclusive company formed for that purpose, and consisting of all those who may be deemed justly entitled to a share
>
> That the salt, beetle-nut and tobacco produced in or imported into Bengal shall be purchased by this established company, and public advertisements shall be issued strictly prohibiting all other persons whatsoever, who are dependent on our government, to deal in those articles
>
> That application shall be made to the Nabob to issue the like prohibition to all his officers and subjects of the districts where any quantity of either of those articles is manufactured or produced
>
> That the salt, beetle-nut and tobacco, thus purchased by the public company, shall be transported to a certain number of places for sale, to be there, and there only disposed of by their

[16] William Bolts, *Considerations on India Affairs* (1772), p 165
[17] *Bengal & Madras Papers, op cit.*, p 300
[18] Bolts, *op cit*, p 166 [19] *Ibid*, and Forrest, *op cit*, p 300

> agents; and that the country merchants may then become purchasers, and again transport these articles whither they have the greatest prospect of profit[20]

The formalities necessary for the implementation of this resolution were hurriedly gone through, the puppet Nawab sent round a circular order to different officers, and within weeks, monopoly over the three important articles of inland trade was established, and, perhaps for the first time in history, producers and dealers became bonded dependents of the Company Clive, who had made solemn declaration that he would not engage himself in any trade, was the recipient of greater profits than any other member of the Company's servants This monopoly, according to Bolts, was 'a monopoly the most cruel in its nature, and most destructive, in its consequences, to the Company's affairs in Bengal, of all that have late been established there Perhaps it stands unparalleled in the history of any government that ever existed on earth, considered as a public act'[21]

Obligatory bonds were taken by the authorities of the Company from all chiefs and landlords declaring that they would not 'dispose of a single grain of salt made within the dependencies' of their territories to any person excepting the English gentlemen 'called the English Society of Merchants' The salt monopoly had had a most severe effect on the economy of the people The Society paid 'at the rate of 75 rupees per 100 maunds, for what was sold in many places for upwards of 500 rupees per 100 maund; which in effect was making a poor inhabitant pay at the rate of 6½ rupees for a quantity of salt which, in the common course of the trade, he would have bought for one rupee'[22]

After over seven weeks' interlude of the above incidents Clive applied himself exclusively to his self-entrusted mission, namely, to make the Company Nawab 'in fact, if not in name', and left on 25 June 1765 for Allahabad to meet the emperor Reaching there on 9 August, Clive had an audience with the emperor, and after orally settling the terms of mutual gain, he presented two petitions soliciting (1) grant of the *diwani* (right to collect the revenues) of Bengal, Bihar, and Orissa to the Company, and (2) confirmation of Najm-ud-daula in the Nawabship of these provinces The emperor, who was homeless and resourceless, and had been practically a prisoner of Shuja-ud-daula since 1761, was provided with home, resources and dignity he was offered to be placed in

[20] *Ibid*, pp 167-8 [21] *Ibid*, p 164 [22] *Ibid*, p 178

possession of two fertile provinces, Allahabad and Karra, yielding an annual revenue of Rs 28 lakhs, and was assured that, since the English recognised him as emperor of India, he would be regularly paid the imperial share of Rs 26 lakhs[23] annually from the revenues of the Bengal provinces The fugitive Mughal descendant was overwhelmed with gratitude, and readily agreed to the proposals On 12 August 1765, the emperor took his seat on an improvised throne in Clive's tent, and in a formal ceremony granted the documents the Fort William Governor had applied for. The *farman*, conferring the grant of the Diwani on the Company said

> At this happy time our royal *Firman*, indispensably requiring obedience, is issued, that whereas, in consideration of the attachment and services of the high and mighty, the noblest of exalted nobles, the chief of illustrious warriors, our faithful servants and sincere well-wishers, worthy of our royal favours, the English Company, we have granted them the Diwani of the Provinces of Bengal, Behar, and Orissa . as a free gift and altamagau, without the association of any other person it is requisite that the said Company engage to be security for the sum of twenty-six lacs of Rupees a year, for our royal revenue, which sum has been appointed from the Nawab Najm-ud-daula Bahadur, and regularly remit the same to the royal *Sarkar*; and in this case, as the said Company are obliged to keep up a large Army, for the protection of the Provinces of Bengal, etc, we have granted to them whatsoever may remain out of the revenues of the said Provinces, after remitting the sum of twenty-six lacs of Rupees to the royal *Sarkar*, and providing for the expenses of the *Nizamat* It is requisite that our royal descendants, the Viziers, the bestowers of dignity, the *Omras* high in rank, the great officers, etc . leave the said office in possession of the said Company, from generation to generation, for ever and ever Looking upon them to be assured from dismissal or removal, they must, on no account whatsoever, give them any interruption, and they must regard them as excused and exempted from the payment of all the customs of the Diwani

[23] On 19 August 1765, a separate agreement was signed between Shah Alam and Clive (on behalf of the Company), in which, the emperor, in compliance with the latter's demand agreed to pay, out of his pension of Rs 26 lakhs, a sum of Rs 2 lakhs annually to Mir Najaf Khan in consideration of his (Najaf Khan) 'having joined the English forces' (William Bolts, *Considerations on Indian Affairs,* Appendix XXII, p 36)

and royal demands. Knowing our orders on the subject to be most strict and positive, let them not deviate therefrom [24]

It was the most ludicruous performance ever witnessed in an imperial court. An emperor, without an iota of empire in his possession, without adequate wherewithal to support himself, and dependent of a foreign trading company, issues a writ, not to beguile himself or that company, but the people who, in their ignorance, still believed that he really held the sceptre and therefore the right to collect the revenues or nominate an agent to collect them!

The grant of the Diwani necessitated a new agreement to be concluded with the Nawab of Bengal, whose position was now no less ludicruous than that of the emperor The Company were the masters of the revenues, and he was head of the government! With his hand removed from the purse, the Nawab became a paid titular head, a paid servant of the Company, like the emperor On 30 September, he signed the following agreement drafted for him at the dictation of Fort William

> The King having been graciously pleased to grant to the English Company the *Diwani* of Bengal, Behar, and Orissa, with the revenues thereof, as a free gift for ever, on certain conditions, whereof one is that there shall be a sufficient allowance out of the said revenues for supporting the expenses of the Niazmat. be it known to all whom it may concern that I do now agree to accept of the annual sum of *Sicca* Rupees 53,86,131-9, as an adequate allowance for the support of the Nizamat, which is to be regularly paid as follows, viz the sum of Rupees 17,78,854-1, for all my household expenses, servants, etc, and the remaining sum of Rupees 36,07,277-8, for the maintenance of such horses, sepoys, peons, etc, as may be thought necessary but on no account ever to exceed that amount This agreement (by the blessing of God) I hope will be inviolably observed, as long as the English Company's factories continue in Bengal [25]

A great event had taken place in the history of India; it was a silent revolution, but Clive would not like the tenor of administration to be disturbed, and therefore continued the existing

[24] C U Aitchison, *A Collection of Treaties, Engagements and Sanads relating to India and Neighbouring Countries*, (4th ed) vol I, p 225
[25] *Ibid*, p 229

arrangement for collection of the revenues Raja Shitab Rai, who had equitted himself creditably as the Company's spy at the court of Shuja-ud-daula, was rewarded with the post of *Naib* (deputy) *Diwan* of Bihar, he was now a servant of the Company, and not of the Nawab Reza Khan, who had been imposed on Najm-ud-daula against the latter's will, was put in charge of the collections in Bengal But Clive did not trust Reza Khan 'Never trust to the ambition of any Mussulman whatever',[26] he would say And he added 'I am as fully averse to Reza Ali Khan's remaining in the great post of Naib Soubah. His being a Mussulman, acute and clever, are reasons of themselves, if there were no others, against trusting that man with too much power'[27] Therefore to curtail his power, Clive appointed Rai Durlabh Ram (the man who played a leading role in the conspiracy against Siraj-ud-daula, and who had given ample proof of his loyalty to the English) and the two heads of the firm of Jagat Seth (who had similarly earned trustworthiness) to be with him members of a commission to carry on the administration under the direction of the Fort William Governor

At Allahabad, another matter whose disposal had been kept in abeyance until the arrival of Clive, was the settlement to be reached with Shuja-ud-daula Like Shah Alam and Najm-ud-daula, he too was now completely at the mercy of the English The following treaty was drawn up for him, and he put his signatures on it on 16 August

1 A perpetual and universal peace, sincere friendship, and firm union shall be established between His Highness Shuja-ud-daula and his heirs, on the one part, and His Excellency Najm-ud-daula, and the English East India Company, on the other

2. In case the dominions of His Highness Shuja-ud-daula shall at any time hereafter be attacked, His Excellency Najm-ud-daula and the English Company shall assist him with a part or the whole of their forces, according to the exigency of his affairs, and so far as may be consistent with their own security and if the dominions of His Excellency Najm-ud-daula or the English Company shall be attacked, His Highness shall, in like manner, assist them with a part or the whole of his forces In the case of the English Company's

[26] Forrest, *op cit.*, p 261 (Clive's letter to Carnac)
[27] Malcolm, *op cit.*, p 359 (Clive's letter to Carnac)

forces being employed in His Highness's service, the extraordinary expence of the same is to be defrayed by him.

3 His Highness solemnly engages never to entertain or receive Kasim Ali Khan, the late Subadar of Bengal, etc., Sombre, the assassin of the English, nor any of the European deserters, within his dominions, nor to give the least countenance, support, or protection to them He likewise solemnly engages to deliver up to the English whatever Europeans may in future desert from them into his country

4. The King Shah Alam shall remain in full possession of Kora and such part of the province of Allahabad as he now possesses, which are ceded to His Majesty, as a royal demesne, for the support of his dignity and expences

5. His Highness Shuja-ud-daula engages in a most solemn manner, to continue Balwant Sing in the zemindaris of Benares, Ghazipur, and all those districts he possessed at the time he came over to the late Nawab Jafar Ali Khan and the English on the condition of his paying the same revenue as heretofore

6. In consideration of the great expence incurred by the English Company in carrying on the late war, His Highness agrees to pay them fifty lacs of Rupees

7. His Highness shall allow the English Company to carry on a trade, duty free, throughout the whole of his dominions

8 All the relations and subjects of His Highness, who in any manner assisted the English during the course of the late war, shall be forgiven, and no ways molested for the same

9. As soon as this Treaty is executed, the English forces shall be withdrawn from the dominions of His Highness, excepting such as may be necessary for the garrison of Chunar, or for the defence and protection of the King in the City of Allahabad, if His Majesty should require a force for that purpose [28]

This is how the British occupied Bengal, and laid the foundation of further expansion

[28] Aitchison, *op cit*, p 89

APPENDIX

Note on the Black Hole

THE STORY of the Black Hole is well known. According to the contemporary English, French and Dutch accounts, a ghastly tragedy occurred in Fort William after the seizure of Calcutta by Siraj-ud-daula in June 1756 Some 146 Europeans, these accounts say, were crowded into a little chamber, about eighteen feet square,[1] at 7 o'clock in the evening (20 June), and when it was opened next morning at 6, only twenty-three were found alive How so many prisoners happened to be huddled together in a small chamber is summed up thus by Hill

> Some European soldiers had made themselves drunk and assaulted the natives The latter complained to the Nawab, who asked where the Europeans were accustomed to confine soldiers who had misbehaved in any way He was told in the Black Hole, and, as some of his officers suggested it would be dangerous to leave so many prisoners at large during the night, ordered that they should all be confined in it[2]

Contemporary narrators and later historians exonerate Siraj-ud-daula of an evil design he was ignorant about the space in the chamber and the number of men to be imprisoned

For a century and a half the accounts of the tragedy of the Black Hole went unchallenged In the current century, several Indian writers questioned the veracity about the Black Hole and adduced their reasons to disprove it The main reasons were (1) A space of 324 square feet (or according to some accounts 267 square feet) could not accommodate as many as 146 persons, sitting or standing (2) There is no mention of the tragedy in the accounts of contemporary Muslim historians (3) There is no mention about it in the proceedings of Fulta, or in the letters exchanged between Clive and Watson on the one hand, and Siraj-ud-daula on the other, or in the treaty concluded in February 1757 between the English and the Nawab It is emphasised that if the tragedy had really occurred, a provision for compensation to the surviving relatives of the dead was bound to be made in the treaty (4) Holwell, who is supposed to be the author of what several Indian writers regard as a fabrication, is not considered reliable either by his colleagues in Bengal or by later historians His close colleagues said he fabricated the death-bed story of Alivardi Khan In his account of the fall of Calcutta, he talked of his bravery in staying at the post of duty in Fort William, while president Drake and others fled away According to Clive, 'nothing but the want of a

[1] According to C R Wilson, the exact dimensions were eighteen feet by fourteen feet and ten inches (*Indian Church Review*)

[2] *Bengal in 1756-57*, vol I Introduction, p xc

boat prevented his escape and flight with the rest'[3] When Holwell and Vansittart were accused of causelessly deposing Mir Jafar, Holwell fabricated several causes, one of which was 'The Nawab Jaffar Allee Cawn was of a temper extremely tyrannical Numberless are the instances of men, of all degrees, whose blood he has spilt without the least assigned reason' Clive contradicted this statement 'The horrible massacre wherewith' Mir Jafar 'is charged by Mr Holwell have not the least foundation in truth The several persons who were generally thought to have been murdered by his order, are all now living, except two' (5) Hill, a careful researcher suggests 'Probably the reference to the Black Hole is an amplification, for in the careless talk of Calcutta the Black Hole and Fort William seem to have been often confounded

The first reason can be countered by a suggestion that a tyrant would not pause to think whether there was enough space to sit or stand, men can be callously thrown into a prison chamber in disregard of the space.

About the second, Raymond, the translator of the *Seir Mutacherin* (Ghulam Husain Khan's *Review of Modern Times*), attempts to give an answer in one of his footnotes

> There is not a word here of those English shut up in the Black Hole to the number of 131, where they were mostly smothered The truth is that the Hindustanees wanting only to secure them for the night, as they were to be presented the next morning to the Prince, shut them up in what they heard was the prison of the Fort, without having any idea of the capacity of the room, and indeed the English themselves had none of it This much is certain, that this event, is not known in Bengal, and even in Calcutta, it is ignored by every man out of the four hundred thousand that inhabit that city, at least it is difficult to meet a single native that knows anything of it, so careless and incurious are the people Were we therefore to accuse the Indians of cruelty, for such a thoughtless action, we would of course accuse the English, who intending to embark four hundred *Gentoo* Sipahees, destined for Madras, put them in boats, without one single necessary, and at last left them to be overset by the boar, where they all perished, after a three days' fast[4]

Ghulam Husain Khan was both an 'actor and spectator' in the Bengal events of fifties and sixties, he wrote his book in Persian in 1780 It was translated by Frenchman Raymond in 1789, at the instance of Warren Hastings, 'who was anxious to have it translated into English' Raymond had assumed the Muhammadan name of Haji Mustafa, but for some reason, he published his translation under the pseudonym of *Nota Manus* Ghulam Husain Khan had turned traitor to Siraj-ud-daula who had antagonised the historian by confiscating his estate, as he himself says in the *Seir Mutaqkherin*[5] Ghulam Husain Khan went over to the English, and by rendering whatever help he was capable of to the English and Mir Jafar in the pre-Plassey conspiracy, he got back his estate after the Nawabship had changed hands He played a more conspicuous role

[3] Letter dated 31 January 1757 to William Mabbot, *ibid*, vol II, p 186
[4] *Seir Mutakherin*, p 190 (Valmiki Press, Calcutta edition).
[5] *Ibid*, p 265

as a traitor in Mir Kasim's war with the English In 1780, when Ghulam Husain Khan wrote out his history, he was comfortably basking in the sunshine of prosperity he had secured for himself by his treacherous activities Much of his book appears to have been written to order He abuses Siraj-ud-daula to his heart's content, and welcoming the change says that it was 'decreed by Providence that the guilty race of Aaly-verdy-qhan should be deprived of an empire that had cost so much toil in rearing'[6] He skips over many vital events whose account the English at that time would not have liked to be published It is surprising that such a writer should consciously dismiss a tragedy like the Black Hole as of no concern to his history Other Muslim writers, who give ample proof of their indebtedness to the British, also mention nothing about Black Hole

Other reasons are also conjectural, and are negative in their approach That the Black Hole was enacted is, on the other hand, supported by documentary evidence Clive, in his letter dated 21 January 1757 to Seth Mahtab Rai and Maharaja Swarup Chand, complains

> It would be unfolding a tale too horrible to repeat if I was to relate to you the horrid cruelties and barbarities inflicted upon an unfortunate people to whom the Nabob in a great part owes the riches and grandeur of his province No less than 120 people, the greatest part of them gentlemen of family and distinction, being put to an ignominious death in one night and in such a manner as was quite inconsistent with the character of a man of courage or humanity, such as I have always heard the Nabob represented to be, and for this reason I believe it must have been done without his knowledge[7]

Other confirmatory evidences are supplied by the following persons who wrote their independent accounts (1) Grey (in his account of the loss of Calcutta, June 1756) 'But most of those that remained in the fort were put into the Black Hole to the number of 146, of whom 123 were miserably suffocated by the heat, occasioned by so many being shut up in so small a place'[8] (2) Sykes (letter dated Kashimbazar 8 July 1756 to Fulta) 'Soldiers and officers to the number of 160 were put into a place called the Black Hole and jamed so close that out of 160 put in alive the next morning 110 was brought out dead for want of air'[9] (3) Captain Grant (An account of the capture of Calcutta, dated July 13 1756) 'And such as were so unhappy as to be taken prisoners were at night put into the Black Hole, a place about 16 foot square, to the number of near 200 Europeans, Portugeese and Armenians, of which many were wounded They were so crowded one upon another in this narrow confinement that by the heat and suffocation not above ten of the number survived until morning Some of those who give us the account, say that they fired upon them all night with small arms through the doors and windows, but this is contradicted by others Mr Holwell is one of the number who survived, and is now prisoner with the Nabob'[10] (4) Captain Mills (pocket book account, sixteen pages, octavo, 7 June to 1 July 1756).

[6] *Ibid*, p 189 [7] Hill, *op cit*, vol II, p 124
[8] Hill, *op cit*, vol I, pp 108-9 [9] *Ibid*, p 62
[10] *Ibid*, p 88

'But most of those that remained in the fort were put into the Black Hole, to the number of 144 men, women, and children Of whom upwards of 120 were miserably smuthered by the heat occasioned by so many being shut up in so small a place, as to be obliged to stand upon one another'[11] (5) Holwell (letter dated 17 July 1756 to the English Councils at Bombay and Fort Saint George) 'The Nawab ordered myself and all the prisoners promiscuously to the number of about 165 or 170 to be crammed altogether into a small prison in the fort called the Black Hole, from whence only about 16 of us came out alive in the morning the rest being suffocated to death'[12] In his letter dated 3 August 1756, to the Fort Saint George Council, Holwell corrects himself 'I over reckoned the number of prisoners put into the Black Hole and the number of dead, the former being only 146 and the latter 123 I charged the Nawab with designedly having ordered the unheard-of piece of cruelty of cramming us all into that small prison, but I have no reason to think I did him injustice His orders I learn was only general, "That we should be imprisoned that night, our number being too great to be at large" And being left to the mercy and direction of his *jemidars* and *burkandosses*, their resentment for the number of their brethren slain took this method of revenge.'[13] (6) John Cooke (secretary to Governor Drake in 1756, in his evidence before parliamentary inquiry committee, 1772) 'The number of souls thrust into this dungeon were near 150, among which was one woman and twelve of the wounded officers And when we were released, at eight o'clock the next morning, only 22 came out alive'[14]

These accounts differ in the details of the tragedy, but are unanimous about the tragedy itself From the difference in the figures of dead and alive one cannot conclude that the entire story is nothing but a fabrication, for it must have been almost impossible for the alive to count the total number of prisoners and the number of the dead and alive before moving out of the chamber in the morning Of the authors of the above account, Holwell, Mills, and Cooke, were, according to their own statements, in the Black Hole If it could be established that the story of the Black Hole was told, first of all, by Holwell, then those inclined to disbelieve it, might dismiss it as a fabrication as it came from Holwell But Grey wrote his account in June 1756, when Holwell was the Nawab's prisoner Sykes' account is also of an earlier date than Holwell's, but Sykes got the story from Holwell himself when the latter passed as a prisoner by Kasimbazar where the former was staying Moreover, Grey (who was not in the Black Hole) gave 'correct' figures of the dead and alive as early as June, while Holwell (who was in the Black Hole) gave a wrong estimate as late as 17 July, and corrected himself as late as 3 August The latter acceptance of the figures of 146 prisoners and 123 dead is based on Holwell's corrected account, and not on the earlier account of Grey. From what source Grey got his information is not known, by what means, Holwell corrected himself is also not known One searches in vain to find out Grey's source of information, but, in the absence of positive evidence, it will be unfair to suggest that Holwell managed to contact Grey while the former was in prison, and passed on to him his 'fabrica-

[11] *Ibid*, p 43. [12] *Ibid*, p 115 [13] *Ibid*, p 186
[14] Hill, *op cit*, vol III, p 302

tion' about the Black Hole If a suspicious mind were to be brought to bear upon the accounts of the event, one might say that the authenticity of the accounts credited to Grant and Mills is not absolute Only a copy of Grant's account was available, when it was published in the *Indian Antiquary* for November 1899 It is not known to whom the letter containing the account was addressed Hill presumes that it was addressed to Orme 'Mills' pocket book' was also in the possession of Orme Orme was not a wholly factual chronicler, as is discussed in the Introduction of this book, he had a tendency to suppress facts It will be risky to suggest that he had a tendency to fabricate also

But French and Dutch sources provide further evidence confirming the tragedy On 3 July 1756 (while Holwell was still in prison), the French authorities at Chandra Nagar prepared an account of the English distress In it, the following reference occurs about the Black Hole 'About 160 Europeans who were taken in the fort were shut up in a chamber so small that they could only stand upright with their arms raised The first night 132 died in it suffocated by the heat'[15] Another French account is a letter dated Chandra Nagar 8 October 1756, from Baussett to Dupleix 'They put in prison more than 120 persons, men and women, and forgot them there for seven days at the end of which time when it was opened, only 14 came out alive, the rest were dead'[16] A Dutch letter dated 24 November 1756, from the Dutch Council at Hugli to the Supreme Council at Batavia, says 'About 160 prisoners' were 'sent into the so-called Black Hole They were trampled underfoot or suffocated, all but 15 or 16 were brought out half dead next morning'[17]

From which sources, the French and Dutch gathered their information is not told, from the wording, however, it appears that the source was the current rumour

Nevertheless, unless it be suggested that the different English accounts were the result of a concerted plan of fabrication, it will have to be accepted that some kind of tragedy did occur In the absence of a positive proof as to the number of prisoners and the number of dead, it can be safely suggested that the natural human tendency to exaggerate manifested itself Nobody ever counted the prisoners, nor the dead Never was a complete list of the dead available Grey's and Holwell's figures (146 prisoners and 123 dead) give the impression of precision, but in the absence of positive evidence, which they do not provide, they cannot be accepted as absolutely correct, as late as 1772, Cooke (whose statement about other affairs is more trustworthy than those of some of his colleagues) said that the number of prisoners was 'near 150'—'precise' statements were before him when he made his. According to Grey, there was only one woman in the Black Hole, while Mills says there were 'women' also These disparities have remained unsolved, and one does not find oneself on sure ground to offer corrected figures There were only a few hundred Europeans in Bengal in 1756, and it should not have been difficult to find out the names of the dead, but the names of only sixty-five have been traced out There are no lists of persons who (1) were drowned in the effort to escape, (2) died fighting after the escape of Drake, and (3) perished in prison About the sixty-five dead also, it has not been established beyond doubt

[15] Hill, *op cit*, vol I, p 50 [16] *Ibid*, p. 230
[17] *Ibid*, p 304

that all of them died in the Black Hole

One is therefore driven to the conclusion that the Black Hole was not as ghastly a tragedy as it has been made to appear Nor was it so unique in a victor's diabolic conduct that researchers of the twentieth century should hang down their heads in shame, and endeavour to disprove it. The Black Hole tragedy belongs to the eighteenth century, but a hundred years later, when civilisation had advanced further, the British, who claimed their system of government to be more civilised than that of their Indian predecessors and held charge of the Indian administration, re-enacted the Black Hole—not in ignorance like Siraj-ud-daula but in full knowledge of it Says Beveridge

> Perhaps we ought not to say very much about the Black Hole, or regard it as a detestable instance of malignity on the part of Siraj-ud-daula seeing that a similar misadventure occurred in the Amritsar District on 1st August, 1857 Mr Cooper tells us how a great number of captured sepoys were shut up in a large, round tower, or, bastion, and how, after 237 of them had been taken out and shot, it was reported that the remainder would not come out "The doors were opened, and behold! they were nearly all dead Unconsciously the tragedy of Holwell's Black Hole had been re-enacted forty-five bodies—dead from fright, exhaustion, fatigue, heat and partial suffocation were dragged into light"[18]

The following extracts will give an idea of what the British did after the failure of the Revolt of 1757, called the first War of Indian Independence

> During this march, atrocities were committed in the burning of villages and massacre of innocent inhabitants at which Mohammad Tughlak himself would have stood ashamed (*Greater Britain* by Sir Charles Dilke)
>
> General Havelock began to wreak a terrible vengeance for the death of Sir Hugh Wheeler Batch upon batch of natives mounted the scaffold The calmness of mind and nobility of demeanour which some of the revolutionaries showed at the time of death was such as would do credit to those who martyred themselves for devotion to a principle (*Indian Mutiny,* by Charles Ball)
>
> After the siege was over, the outrages committed by our army are simply heart-rending A wholesale vengeance is being taken without distinction of friend and foe As regards the looting, we have indeed surpassed Nadir Shah! (*Life of Lord Lawrence*)
>
> All the city people found within the walls when our troops entered were bayonetted on the spot, and the number was considerable, as you may suppose, when I tell you that in some houses forty or fifty persons were hiding (Montgomery Martin)
>
> A general massacre of the inhabitants of Delhi, a large number of whom were known to wish us success, was openly proclaimed—(The Chaplain's Narrative of the Siege of Delhi, quoted by Kaye).

[18] H Beveridge, in his paper, entitled 'Old Places in Murshidabad', contributed to the Calcutta Review, April 1892, p 345 Last sentence from *The Crisis in the Punjab,* p 162

> Some of the sepoys were still alive and they were mercilessly killed, but one of their number was dragged out to the sandy plain outside the house, he was pulled by his legs to a convenient place, where he was held down, pricked in the face and body by the bayonets of some of the soldiery, while others collected fuel for a small pyre, and when everything was ready—the man was roasted alive! These were Englishmen, and more than one officer saw it, no one offered to interfere! The horrors of this infernal cruelty were aggravated by the attempt of the miserable wretch to escape when half burnt to death. By a sudden effort he leaped away and, with the flesh of his body hanging from his bones, ran for a few yards ere he was caught, brought back, put on the fire again, and held there by bayonets, till his remains were consumed! (Russel's *Diary*)

Indians by hundreds were hanged from the branches of trees to terrorise the passersby

In 1872, after the suppression of the Kuka revolt in the town of Malerkotla, a British deputy commissioner named Cowan of the district of Ludhiana, caused forty-nine prisoners to be blown away from guns A trial was to be held, and Cowan had been asked to wait by his official superior, the commissioner But so impatient was Cowan that he ignored the commissioner's order, and killed the men without the semblance of a trial

In 1921, a worse Black Hole was perpetrated After the Mopla revolt had been suppressed and many Moplas had been killed in action or by the sentences of court martial, about seventy (one version says 100) of those taken prisoner were huddled in a goods wagon for being transported from Calicut to Madras South India's summer sun was scorching the iron wagon, and when the wagon was opened at the Podanoor railway station, it was found that 66 prisoners had died of suffocation and the rest were in a precarious condition

Even during the period discussed in the present work, when the Black Hole came to be regarded as an event of oustanding shame, more condemnable scenes were enacted Seldom did the English observe the time-honoured conventions of war They usually made their attacks after midnight, and opened fire when their adversaries were either asleep or hurriedly getting up to meet the invaders Such attacks always resulted in colossal loss of life on the other side (Instances of such attacks are recorded in this book)

In fact, the Black Hole did not deserve more notice than other events of killing in the later half of the eighteenth century

Glossary

Arasdas A written petition or memorial
Arisbeggy Officer in charge of Petition, aumils.
Aurangs Factories for piece goods
Bakhshi or *Bokshi* Paymaster.
Banjans Indian brokers
Batta Allowance—*Bhatta*
Beegas About one-third of an acre—*bigha*
Betels Leaves of the piper betel, which Indians chew with areca-nut parings
Bazars or *Buzars* The markets of various commodities
Chawbuck Sawr A rough rider, groom or jockey
Cheenapatan Madras
Chokeys or *Chowkies* Checkpost—*Chauki*
Cos or *Cors* Nearly two miles The real Indian word is *kos*
Cowries Shells used as the smallest coin
Cutcherry Zemindar's or Magistrates Court which dealt with the Indians only
Dewan or *Diwan* or *Duan* Officer in charge of revenue collection
Diwani The authority of collecting revenues
Durbars Courts of the Nawab
Dustucks or *Dusticks* Certificates that goods and merchandise belonged to the English Company and were therefore free from all tolls
Etlack Charges for guards placed upon accused persons so as to ensure their not leaving Calcutta before trial
Farm or *Firman* Edict
Faujdar Administrator
Fauzdar's Dustic Official permit
Futtock Indian word *Phatak*—a gate
Gauts Custom houses—Indian word *ghat, guzerbanns.*
Golahs Houses for grain
Gomastah or *Goumaster* or *Gumashta* Agent
Gunge A market place
Hauts Weekly market—*hat*
Jagat Seat Jagat Seth—a big banker
Jentue rajahs Hindu landlords
Karoorees or *kerows* Crores (hundreds of million)
Katbarra A duty levied on every new boat
Kistibundee An agreement for the stated payments of a sum of money to be discharged at different times

Lack *Lakh*, one lakh is equal to one hundred thousand
Maunds A *man* or *maund* weighs 82 lbs
Mogol Mughal
Munsee Teacher or clerk—*munshi*
Mutsuddies Clerks
Nabob. Nawab—a provincial governor.
Navvies· Literally 'diggers'—probably the coolies employed in making entrenchments
Nazaram Present—*Nazrana*
Nizamat Military and Police Administration.
Padsha or *Patcha* Padshah or Badshah (Emperor).
Peons· Country foot soldiers or attendants
Pergunnahs Subdivisions of a district
Perwannah or *Parwana* Order
Peskhas or *Piscash* A present
Phirmaunds Farmans
Phyrmaund Farman (see above)
Pund The pund is eighty cowries
Royroyan The principal officer under the Dewan who has the immediate charge of the Crown land
Ryots or *Riots* Subjects
Salams Greetings
Sardar Military commander
Sarkar Government
Saukar or *Sahikar* Money-lender.
Sepoy or *Seapoy* A soldier—*Sipahi*.
Shroffs Bankers
Siccas Coins
Sircarry Official records
Soubaship Provincial government.
Subah or *Soubah* Governor of a *Subah* (a province).
Syrang Head boatman
Tuncaws Revenue assignments—*Taalook* (*Taluqa*).
Vackells Agents—*vakils*
Vaqveel or *Wakil* Agent—*vakil*
Vazir or *Vizir* Minister.
Zamindari· The institution of landlords
Zemindars or *Jemindars* Landlords

Bibliography

BOOKS

AITCHISON, C U, *A Collection of Treaties, Engagements and Sanads Relating to India and Neighbouring Countries*, vol I

ANDERSON, PHILIP, *The English in Western India*

AUBER, PETER, *Rise and Progress of the British Power in India*

BALL, V, *Travels in India by Jean-Baptista Tavernier.*

BELL, MAJOR EVANS, *The Empire in India*

BEVERIDGE, HENRY, *History of India*, vol II

BOLTS, WILLIAM, *Considerations on Indian Affairs*

BRUCE, JOHN, *Annals of the Honourable East India Company*

BROOME, CAPTAIN ARTHUR, *History of the Rise and Progress of the Bengal Army*, vol I

BUSTEED, H E, *Echoes from Old Calcutta*

CARRACCIOLI, CHARLES, *Life of Lord Clive*

CAILLAUD, J, *Narrative of What Happened in Bengal*

CLIVE'S *Country Correspondence*

COMPTON, HERBERT, *A Particular Account of the European Military Adventurers of Hindustan*

DODWELL, HENRY, *Dupleix and Clive*

——, *The Cambridge History of India*, vol V

ELPHINSTONE, MOUNTSTUARD, *The Rise of the British Power in the East*

FORREST, SIR GEORGE, *The Life of Lord Clive*

——, *The Administration of Warren Hastings*

FOSTER, WILLIAM, *The English Factories in India*

FORSTER, GEORGE, *A Journey from Bengal to England*

FRANCKLIN, W, *History of the Reign of Shah Alam.*

GLEIG, *Memoirs of Warren Hastings.*

GHOLAM HOSSEIN KHAN, *The Seir Mutaqherin, Or Review of Modern Times*

GHULAM HUSAIN SALIM, *The Riyazu-s-Salatin, A History of Bengal*

HILL, S C, *Abstracts of the Early Records of the Foreign Department, 1756-62*

——, *The Indian Records Series · Bengal in 1756-1757*, 3 volumes

——, *Three Frenchmen in Bengal*

HOLWELL, J Z, *Indian Tracts*

——, *Interesting Historical Events Relative to the Province of Bengal*

HUNTER, W W, *A History of British India*

——, *Bengal Miscellaneous Records*

——, *Statistical Account of Bengal*, vol IX

——, *The Annals of Rural Bengal*

——, *The Indian Empire*

——, *The Rulers of India Series*

——, *Orissa*

INNES, P R, *History of the Bengal European Regiment*
IRONSIDE, *Asiatic Annual Register*
IRVINE, WILLIAM, I C S, *Later Mughals*, vol I
IVES, EDWARD, *A Voyage from England to India*, 1773
KAYE, SIR JOHN WILLIAM, *The Administration of the East India Company.*
——, *History of Christianity in India*
KEENE, HENRY GEORGE, *History of India*
LONG, REV J, *Selections from the Unpublished Records of Government for the years 1748 to 1767*
LOVE, HENRY DAVISON, *The Indian Record Series Vestiges of Old Madras*
LUDLOW, JOHN MALCOLM, *History of British India*
LYALL, SIR ALFRED C, *The Rise and Expansion of the British Dominion in India*
MACFARLANE, CHARLES, *History of British India*
McCARTHY, JUSTIN, *History of Our Own Times*
MAHAN, CAPTAIN, A T, *The Influence of Sea Power upon History.*
MAITRA, AKSHAY KUMAR, *Siraj-ud-dowla,* (in Bengali)
MALCOLM, SIR JOHN, *Life of Robert First Lord Clive*
MALLESON, COL G B, *History of the French in India*
——, *Essays and Lectures on Indian Historical Subjects*
——, *Life of Warren Hastings*
——, *The Decisive Battles of India*
MARSHMAN, J C, *The History of India*
MARTIN, R M, *The Indian Empire*
MILL, JAMES, *The History of British India* (Edited with Notes and Continuation by H H Wilson)
MARSHMAN, J C, *The History of India*
MINNEY, R J, *Clive*
MURRAY, JOHN, *Life of Robert, First Lord Clive*
NOLAN, E H, *The Illustrated History of the British Empire in India and the East*
OLDHAM, C. E A W, *The Battle of Buxar*
ORME, ROBERT, *A History of the Military Transactions of the British Nation in Indostan*
PRINSEP, HENRY J, *Political and Military Transactions of India*
RANADE, M G, *Rise of the Mahratta Power.*
RICHARDS, R, *India*
ROSS, SIR E D, *Calendar of Persian Correspondence*
SCRAFTON, LUKE, *Observations on Mr Vansittart's Narrative*
——, *Reflections on the Government of Indostan*
SARKAR, SIR JADUNATH, *Fall of the Mughal Empire*, vol. I
SLEEMAN, COL, *Rambles of an Indian Official*
SEELEY, J R, *The Expansion of England*
——, *The Growth of British Policy*
STEWART, CAPTAIN, *History of Bengal*
STEPHEN, SIR JAMES F, *Story of Nuncomar*
SULLIVAN, SIR EDWARD, *The Conquerors, Warriors and Statesmen of India*
THORNTON, EDWARD, *The History of the British Empire in India*
TORRENS, W M, *Empire in Asia, How We Came By it A Book of Confessions*

VANSITTART, H A, *A Narrative of the Transactions in Bengal*
——, *Original Papers Relative to the Disturbances in Bengal*
VERELST, HENRY, *A View of the Rise, Progress and Present State of the British Government in Bengal*
WATTS, WILLIAM, *Memoirs of the Revolution*
WHEELER, J TALBOYS, *Early Records of British India A History of the English Settlements in India*
WILLIAMS, CAPT JOHN, *A Historical Account of the Bengal Native Infantry, 1757-96*
WILSON, C R, *The Early Annals of the English in Bengal*
——, *The Indian Records Series Old Fort William in Bengal*
YULE, COL HENRY, *Hobson-Johnson A Glossary of Anglo-Colloquial Words and Phrases, etc*

OTHER RECORDS AND PERIODICALS

Asiatic Annual Register
Asiatic Journal
Asiatic Researches, Society's Journal, *Proceedings* etc, Bengal
Bengal & Madras Papers, vols. I, II
Bengal, Past and Present
Bengal Record Office Ancient Documents of the Government of Bengal.
Chatham Correspondence
Considerations on a Pamphlet entitled "Thoughts on our Acquisition in the East Indies", 1772
General Military Register of the Bengal Establishment
Reports of the Committee of Secrecy Appointed by the House of Commons, 1773
Reports of the Select Committee of the House of Commons, 1772
The Bengal Obituary (Holmes and Co, Calcutta)
Three Years' Gleanings
The Indian Records, with A Commercial View of the Relations between the British Government and the Nawabs Nazim of Bengal, Behar and Orissa
The Bengal Record Office, Ancient Documents of the Government of Bengal

Index